ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्रीशिव-शिवासंवादोपनिबद्धं

मेरुतन्त्रम्

हिन्दीभाष्यसमन्वितम्

शिवोपदिष्ट पूजा-पद्धतिसहित शैव-शाक्त-वैष्णव-गाणपत्य-सौर-कार्त्तवीर्यादि मन्त्रों का दक्षिण-वाममार्गानुसारि साङ्गोपाङ्ग विवेचन एवं कार्त्तवीर्य-दीपदानविधि-प्रतिपादक सर्वातिशायी तान्त्रिक ग्रन्थ

हिन्दीभाष्यकार:

श्री कपिलदेव नारायण 'स्वरूपावस्थित'

पुस्तक परिचय

महाकालेनयत्प्रोक्तम्पञ्चमीमुक्तिसाधनम्।
सर्वेषांम्मेरुतां यातन्तत्तन्त्रं मेरुसञ्ज्ञितम्॥

जो यह महाकाल द्वारा कहा गया पञ्चमीमुक्ति साधन जहाँ मध्यमणि की तरह गुम्फित है वह तन्त्र मेरुतन्त्र के नाम से जाना जाता है।

कलियुग में मनुष्य अल्पायु होता है। वह केवल शिश्नोदर परायण रहता है ऐसे में मृत्यु के उपरांत वह प्रेत योनि में ही भटकता रहता है। ऐसे कलियुग के पशुओं के उत्थान के लिए भगवान महाकाल ने मुक्ति के साधनों को तन्त्र के मध्यमणि या मेरु की तरह गुम्फित कर दिया है। भगवान शिव के द्वारा भगवती गौरी व देवों को कैलाश पर्वत पर यह उपदिष्ट है। इसमें तंत्र साधना के समस्त पक्षों का सम्यक् वर्णन है।

सामान्यतया दक्षिणमार्गीय ग्रन्थ वाममार्गीय ग्रन्थों की व वाममार्गीय ग्रन्थ दक्षिणमार्गीय ग्रन्थों की निंदा करते नजर आते हैं, लेकिन यहाँ ऐसा नहीं है। यहाँ दक्षिणमार्ग व वाममार्ग दोनों को बराबर महत्त्व देते हुए दोनों साधना पक्षों का वर्णन किया है। यह इस ग्रन्थ के महाकाल प्रोक्त होने का प्रमाण है।

इस ग्रन्थ में दीक्षा प्रकरण से प्रारंभ कर मंत्र पुरश्चरण, देवता पूजन व प्रयोगों का वर्णन किया गया है। ग्रन्थ में दशमहाविद्या साधना, अन्य भगवती के स्वरूपों की साधना, शिव, विष्णु, सूर्य व गणेश साधना के साथ-साथ नवग्रह साधना का विधान है। इन सब विषयों का एक स्थान पर साधकों को हस्तामलकवत् प्राप्त होना परमेश्वर की कृपा है। आशा है कि साधक इस महद्ग्रन्थ से लाभान्वित हो इष्टाराध्य की साधना करेंगे।

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

525

श्रीशिव-शिवासंवादोपनिबद्धं

मेरुतन्त्रम्

भाषाभाष्यसमन्वितम्

पञ्चमो भागः * 27-35 प्रकाशः

भाषाभाष्यकारः

स्वरूपावस्थित

श्री कपिलदेव नारायण

संस्कर्त्ता

आचार्य श्रीनिवास शर्मा

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

मेरुतन्त्रम् (पञ्चम भाग)
पृष्ठ : 20+374+2
ISBN : 978-93-89665-15-4 (Set)

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : +91 542-2335263; 2335264
email : chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com
website : www.chaukhamba.co.in

प्रथम संस्करण 2021 ई०
मूल्य : ₹5000.00 (1-5 भाग सम्पूर्ण)

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाष : +91 11-23286537
email : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

•

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

•

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

प्रस्तावना

परमकारुणिक परमेश्वर के अपार संसार में विद्यमान अनेक दुःख-परम्पराओं से मानवों की रक्षा के लिये तत्तत् ऋषियों द्वारा षडङ्ग वेद, दर्शन, आयुर्वेद, उपवेद, पुराण आदि का आविर्भाव किया गया। उनमें पारलौकिक एवं इहलौकिक फल-साधक प्रभूत दुर्लभ अनुष्ठानों के होते हुये भी अल्पायु लोगों के लिये वे शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाले नहीं थे; इसीलिये जगत् के कल्याण की कामना से जगदम्बा उमा के द्वारा अल्पायु जनों के कल्याणार्थ चिन्तित होकर जिज्ञासा प्रकट किये जाने पर भगवान् शंकर ने सर्वोत्तम तन्त्रशास्त्र का प्रतिपादन किया। फिर भी 'तन्त्राणां गहनो गतिः' इस उक्ति के अनुसार तन्त्र अपने-आपमें अतिशय गूढ़ अर्थ को समाहित रखने वाला शास्त्र है। 'तन्त्र' शब्द का शाब्दिक अर्थ है—तनोति तन्यते वेति तन्त्रम्। शास्त्रों में तन्त्र का लक्षण इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च मन्त्रनिर्णय एव च।
देवतानाञ्च संस्थानं तीर्थानाञ्चैव वर्णनम्।।
तथैवाश्रमधर्मञ्च विप्रसंस्थानमेव च।
संस्थानञ्चैव भूतानां यन्त्राणाञ्चैव निर्णयः।।
उत्पत्तिर्विबुधानाञ्च तरूणां कल्पसंज्ञितम्।
संस्थानं ज्योतिषाञ्चैव पुराणस्थानमेव च।।
कोशस्य कथनञ्चैव व्रतानां परिभाषणम्।
शौचाशौचस्य चाख्यानं स्त्रीपुंसोश्चैव लक्षणम्।।
राजधर्मो दानधर्मो युगधर्मस्तथैव च।
व्यवहारः कथ्यते च तथा चाध्यात्मवर्णनम्।।
इत्यादिलक्षणैर्युक्तं तन्त्रमित्यभिधीयते।

अर्थात् जिसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्त्रनिर्णय, देवताओं का संस्थान, तीर्थ, आश्रम धर्म, विप्रसंस्थान,. भूतसंस्थान, यन्त्रनिर्णय, देवताओं की उत्पत्ति, वृक्षों की कल्प-संज्ञात्व, ज्योतिषसंस्थान, पुराणसंस्थान, कोशकथन, व्रतकथन, शौच-अशौच, स्त्री-पुरुष-लक्षण, राजधर्म, दानधर्म, युगधर्म, व्यवहार, अध्यात्म-वर्णन इत्यादि विषयों का विवेचन रहता है, वह शास्त्र 'तन्त्र' शब्द से अभिहित होता है। मनुष्य की समस्त दैवी साधनायें तन्त्र पर ही अवलम्बित होती हैं; यतः समस्त

साधनाओं के गूढ़ रहस्य तन्त्रशास्त्र में ही प्रस्फुटित होते हैं। इसमें स्थूलतम साधन-प्रणाली से लेकर अतिगुह्य मन्त्रशास्त्र एवं अतिगुह्यतर योग-साधनादि के समस्त क्रियाकौशलों का सांगोपांग विवेचन रहता है। यद्यपि तन्त्रों में समाहित दार्शनिक तत्त्व भी अतीव सूक्ष्म हैं, तथापि वे प्रचलित दर्शनशास्त्रों के समान भाषाजाल से जटिल भाष्यों, टीकाओं, नानाविध मत-मतान्तरों एवं विविध वादों द्वारा दुर्बोध्य नहीं हैं; फिर भी साम्प्रदायिक साधनसंकेतज्ञान से सर्वथा शून्य जनों के लिये तन्त्रोक्त साधनजाल में प्रविष्ट होना कथमपि सम्भव नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य की प्रकृति सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक-भेद से तीन प्रकार की होती है, उसी प्रकार यह तन्त्रशास्त्र भी सात्त्विक, राजसिक, तामसिक भेद से त्रिविध होता है। साथ ही इसकी साधनप्रणाली भी तदनुरूप गुणभेद से तीन प्रकार की व्याख्यात होती है। फलितार्थ यह है कि जो साधक जिस प्रकृति से ओत-प्रोत होता है एवं जैसी उसकी रुचि होती है, तदनुरूप साधनपथ को अंगीकार करके ही वह अपने इस नश्वर जीवन को सार्थक बनाने में समर्थ होता है। जिस प्रकार देवस्वरूप अथवा दैवी गुणयुक्त जीवों की जननीरूपा शक्ति है, उसी प्रकार असुर गुणयुक्त अथवा असुरों की भी जननीरूपा शक्ति ही है। यही कारण है कि देवता एवं असुर दोनों ही उसकी उपासना में प्रवृत्त रहते हैं, दोनों ही अपने-अपने स्वभावानुरूप उपासना की प्रणाली का अवलम्ब ग्रहण करते हैं और साधना की प्रकृति के अनुसार ही साधनफल को अवाप्त करते हैं। यही कारण है कि शास्त्र में दोनों ही साधन-प्रणालियाँ विवेचित रहती हैं।

वेदों का अनुसरण करते हुये साधनपथ पर अग्रसर होने वाले साधक साधारणतः पाँच उपासक-सम्प्रदायों में विभक्त हैं—गाणपत्य, सौर, शाक्त, वैष्णव एवं शैव। लोक की अज्ञानतावश ये लोग अलग-अलग देवताओं के उपासक कहे जाते हैं अथवा अपने को देवविशेष का उपासक उद्घोषित करते हैं। वस्तुतः वे सभी एक ही विश्वतोमुख भगवान् की अलग-अलग पाँच भावों में उपासना करने वाले होते हैं। स्पष्ट है कि समस्त देव-देवियों में भेदकल्पना जीव की अल्पज्ञता का ही द्योतक है। पद्मपुराण में स्वयं श्रीभगवान् ने कहा भी है—

सौराश्च शैवगाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
मामेव ते प्रपद्यन्ते वर्षाम्भः सागरं यथा॥
एकोऽहं पञ्चधा भिन्नः क्रीडार्थं भुवनेऽखिले।

साधकश्रेष्ठ पुष्पदन्त भी कहते हैं कि वेद, सांख्य, योग, पाशुपत, वैष्णवमत-प्रभृति भिन्न-भिन्न भावों में तुम्हारी ही उपासना करते हैं। मनुष्य अपनी-

अपनी रुचि के अनुसार कोई सरल, कोई वक्र, नानाविध मार्गों का अवलम्बन कर एकमात्र तुम्हें ही लक्ष्य कर चलते हैं। जिस प्रकार नाना नदियों का पथ विभिन्न होते हुये भी सब एक ही समुद्र में आकर गिरती हैं, उसी प्रकार जिस-किसी मार्ग से होकर जायँ, अन्त में सब कोई भगवान् के चरणतल में ही पहुँचते हैं—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

यही कारण है कि जीव को उपदिष्ट करते हुये शास्त्र भी कहते हैं कि—

यो ब्रह्मा स हरिः प्रोक्तो यो हरिः स महेश्वरः।
या काली सैव कृष्णः स्याद्यः कृष्णः सैव कालिका॥
देवदेवीं समुद्दिश्य न कुर्यादन्तरं क्वचित्।
तत्तद्भेदो न मन्तव्यः शिवशक्तिमयं जगत्॥

अर्थात् जो ब्रह्म हैं, वही हरि हैं और जो हरि हैं, वही महेश्वर हैं। जो काली हैं, वही कृष्ण हैं और जो कृष्ण हैं, वही काली हैं। देव-देवी को लक्ष्य कर कभी भी अपने मन में भेद उत्पन्न होने देना उचित नहीं है। देवता के चाहे कितने भी नाम और रूप हों, सभी एक ही हैं और यह जगत् भी शिव-शक्तिमय ही है। इसी अभिप्राय से श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में भी कहा गया है कि—

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि पञ्चदेवता उस एक ही विश्वतोमुख भगवान् के स्फुरणमात्र हैं, फिर भी मनुष्य अपनी इच्छानुसार अपने उपास्य देवता का ग्रहण नहीं कर सकता; करना उचित भी नहीं है। शास्त्रविधि के अनुसार ही समस्त कार्य होने आवश्यक होते हैं; अतः सद्गुरु ही जीव की प्रकृति का विचार करके उसके उपास्य देवता को निर्दिष्ट करने में समर्थ होता है। भिन्न-भिन्न मनुष्यों की जिस प्रकार भिन्न-भिन्न रसों में आसक्ति होती है, उसी प्रकार जीव की भी प्राक्तन कर्म और स्वभाव के अनुसार भिन्न-भिन्न देवताओं में आसक्ति होती है; साथ ही अपने-अपने स्वभाव के अनुसार ही किसी जीव की पुरुषदेवता के प्रति तो किसी जीव की स्त्री-देवता के प्रति तथा उन देवताओं के विविध वर्णों के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इन समस्त विषयों का किञ्चित् भी विचार न करके मात्र देवता का नाम-जप एवं रूप-ध्यान करने वाले साधक को शुभ फल की कथमपि प्राप्ति नहीं होती। यही

कारण है कि तन्त्रशास्त्र में इस विषय में प्रभूत विचारों और सिद्धान्तों का वर्णन समुपलब्ध होता है।

तन्त्रमतानुसार देवी की उपासना ही एकमात्र शक्ति की उपासना नहीं है। शक्ति के उपासक गाणपत्य, सौर, वैष्णव, शैव और शाक्त सभी हैं। उनके अनुसार पुरुष निर्गुण है और निर्गुण की उपासना नहीं होती। उपास्य देवता के पुरुष होने पर भी वास्तव में वहाँ उसकी शक्ति की ही उपासना होती है। शक्ति ही हमारे ज्ञान का विषय होती है। शक्तिमान अथवा पुरुष तो ज्ञानातीत सत्तामात्र है; अतः वह किसी भी समय किसी के भी बोध का विषय नहीं होता। वेद एवं तन्त्र में ब्रह्म को सच्चिदानन्द-स्वरूप कहा गया है। इस सच्चिदानन्द में सत् अंश पुरुष अथवा निर्गुण भाव तथा चित् एवं आनन्द अंश गुणयुक्त भाव अर्थात् प्रकृति है और इसी प्रकृति के द्वारा हमें पुरुष का परिचय प्राप्त होता है।

पुरुष और प्रकृति का विचारक ही सांख्य शास्त्र है। यहाँ दुःख के आत्यन्तिक विनाश को ही मुक्ति कहा गया है। सुख-दुःख आदि बुद्धि आदि के ही स्वभाव हैं और स्वभाव कथमपि नष्ट नहीं हो सकता। अतः बुद्धि के अतिरिक्त किसी सत्ता को स्वीकार न करने से दुःख आदि से मुक्तिलाभ असम्भव है; यही कारण है कि बुद्धि के अतिरिक्त सुख-दुःखादि से विरहित एक अतिरिक्त वस्तु अथवा आत्मा को अंगीकार करना पड़ता है और वह आत्मा ही सुख-दुःखादि से रहित निर्गुण पुरुष है। बुद्धि आदि के सुख-दुःखादि धर्म पुरुष में आरोपित होते हैं। इस आरोपित सुख-दुःखादि धर्म के अपगत होने पर ही जीव को मुक्ति-लाभ होता है। बुद्ध्यादि स्वयं में अचेतन पदार्थ हैं और चेतन के सान्निध्य में आने पर ही इनकी प्रवृत्ति देखी जाती है। बुद्धि आदि समस्त जड़ पदार्थ भोग्य पदार्थ हैं; परन्तु भोक्ता के बिना भोग्य सिद्ध नहीं होता। भोग्य पदार्थ का मात्र अनुभव होता है और जो अनुभव करता है या भोग करता है, वही पुरुष है।

सांख्यमत से पुरुष के संयोग द्वारा अचेतन बुद्धि आदि चेतन के समान हो जाते हैं तथा बुद्धि आदि के संयोग से अकर्ता पुरुष कर्ता के समान हो जाता है। सांख्य के पुरुष एवं प्रकृति पारस्परिक साहाय्य के विना संसारी रचना में स्वयं कथमपि समर्थ नहीं होते; किन्तु इसमें भगवदिच्छा का भी कोई प्रयोजन नहीं होता। लेकिन यह सांख्य-सिद्धान्त तन्त्र, उपनिषत् अथवा पुराण-सम्मत नहीं है। गीता के अनुसार भगवान् पुरुषोत्तम ही चरम तत्त्व हैं तथा प्रकृति एवं पुरुष इनकी शक्तिमात्र है। तन्त्रोक्त प्रकृति सांख्योक्त प्रकृति के समान जड़ नहीं है; अपितु वह पूर्ण चैतन्यमयी है। तन्त्रमत से शिव साक्षात् परब्रह्म हैं; न कि जाग्रदवस्थाभिमानी,

स्वप्नावस्थाभिमानी एवं सुषुप्त्यवस्थाभिमानी पुरुषविशेष। उनके दो विभाव हैं—सगुण एवं निर्गुण। माया से उपहित परब्रह्म ही सगुण है और माया से अनुपहित होने पर वही निर्गुण कहलाता है। निर्गुण ब्रह्म के सगुण रूप में आने पर ही उसकी कृपा समझ में आती है, उसकी प्रसन्नता का ज्ञान होता है। इसीलिये शास्त्रों में गुणमयी ब्रह्ममूर्ति की उपासना का आदेश है। यह मूर्ति किसी के द्वारा कल्पित नहीं हैं; अपितु साधकों के कल्याण के लिये ब्रह्म स्वयमेव अपनी रूपकल्पना करता है। यही अरूप का रूप है और रूप होने पर भी वह शुद्ध चिन्मात्र है। सगुण भाव में शक्ति सुप्रकट रहती है और निर्गुण अवस्था में ब्रह्मशक्ति ब्रह्म में तल्लीन रहती है।

प्रकृति के साथ ब्रह्म का अविनाभाव सम्बन्ध है अर्थात् प्रकृति के विना ब्रह्म नहीं रहता और ब्रह्म के विना प्रकृति नहीं रहती। तिल में तेल के समान प्रकृति ब्रह्म में सदा अनुलिप्त, अभेद्य सम्बन्ध से रहती है। यह प्रकृति जब उसमें तल्लीन रहती है तब वह ब्रह्म निर्गुण कहलाता है। तब वह केवल चिन्मात्र, मन-बुद्धि से अतीत एवं समाधि से बोधगम्य होता है। प्रकृति जब उसमें जागृत हो जाती है तब वह केवल बोधमात्र या शून्यमात्र नहीं रह पाता। तब वह जड़ातीत होते हुये भी जड़मध्य में आकर प्रकाशित होता है। इस प्रकटभाव को ही भगवत्कृपा या अनुग्रहभाव कहा जाता है। उस समय मानों चैतन्य और कर्तृत्व दोनों ही उसमें एक साथ दिखाई पड़ते हैं और इसीलिये कहीं-कहीं निर्गुण ब्रह्म को केवल चैतन्यमात्र कहा गया है एवं इसके कर्तृत्व-भोक्तृत्व को अस्वीकार किया गया है; परन्तु पुरुष प्रकृति से समन्वित होने पर ही सगुण ब्रह्म के नाम से अभिहित होता है। उस समय उसमें चैतन्य और कर्तृत्व दोनों वर्तमान रहते हैं; किन्तु इस अवस्था का अभाव होने पर पुनः उसका ईश्वरत्व नहीं रह जाता। ईश्वरत्व के स्थायी भाव में प्रकृति-पुरुषयुक्त भाव ही अनादि है—यही तन्त्र स्वीकार करता है।

तत्र में आध्यात्मिक मार्ग के उपायरूप से चार प्रकार के मार्गों का उल्लेख किया गया है—पश्वाचार, वीराचार, दिव्याचार एवं कौलाचार। इनमें वेदाचार, वैष्णवाचार एवं शैवाचार में उपदिष्ट आचार का अवलम्बन कर जो साधना की जाती है, वही पश्वाचार होता है। वीर-साधन के विषय में पञ्चतत्त्वों को अपरिहार्य बतलाया गया है; लेकिन कलिकाल के मनुष्यों के लोभी एवं शिश्नोदर-परायण होने के कारण पञ्चतत्त्वों के प्रति उनकी अपरिहार्य आसक्ति को देखते हुये उनके द्वारा साधना सम्भव ही नहीं है। धीर व्यक्ति बार-बार विषय-सेवन करते हुये भी मुकुन्दपदारविन्द से पृथक् नहीं होते। वह हजारो कर्मों में लगे रहने पर भी मुख्य लक्ष्य को कभी विस्मृत नहीं करते। जो साधक संसार के समस्त कर्मों में लिप्त रहते

हुये भी गोविन्द को कभी नहीं भूलते, वे ही यथार्थ धीर होते हैं और वे धीर ही यथार्थ वीर साधक होते हैं। वे वीर साधक जिस प्रकार अपने मस्तक पर अग्नि रखकर दोनों हाथों में तलवार लेकर अपने विविध रूप से अंग-सञ्चालन के द्वारा खेल दिखलाते हैं, उसी प्रकार तन्त्रोक्त वीर साधक भी विमुग्धकारिणी वस्तु लेकर साधना करते हैं; फिर भी वे वस्तुयें कभी-भी उन्हें लक्ष्यभ्रष्ट नहीं करतीं। दिव्य भाव के साधक वीरभाव की अपेक्षा अधिक उच्चावस्था-सम्पन्न पुरुष होते हैं, उनको नीचा दिखला सकने की शक्ति किसी सांसारिक वस्तु में नहीं होती। दिव्य भावापन्न साधक नरदेव होते हैं। वे निरन्तर सन्तोषी, द्वन्द्वसहिष्णु, रागद्वेष-विवर्जित, क्षमाशील एवं समदर्शी होते हैं। वीरसाधकों के समान उनको अपनी असाधारण शक्ति के प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं रहती। उनका हृदय सर्वदा प्रशान्त रहता है, उसमें लेशमात्र भी उद्वेग या आशंका नहीं रहती।

कौलाचार अत्यन्त ही जटिल विषय है; परन्तु तन्त्र में इसकी अत्यधिक प्रशंसा की गई है। इसकी साधना वीराचार के ही समान होती है; किन्तु इसमें वीरता प्रदर्शित करने की अपेक्षा वीर बनने की साधना पर ही विशेष लक्ष्य रखा जाता है। कुलाचार में भी पञ्चतत्त्वों का व्यवहार प्रचलित तो अवश्य है; परन्तु वह मत्स्य-मांसासक्त व्यक्ति को संयमपथ में लाने की एक चेष्टामात्र है। जो साधनहीन पुरुष पञ्च मकारों में निमग्न हैं, उनके उस घोर नशे को उतारने के लिये, उन्हें और भी उच्चतर दिव्य मद का मार्ग दिखलाने के लिये जीवों के प्रति भगवान् सदाशिव की अद्भुत करुणा इस साधना में प्रकाशित होती है। कुलाचार के अनुवर्ती होने पर बुद्धि शीघ्र ही निर्मल हो जाती है तथा बुद्धि की निर्मलता से जगज्जननी आद्या के चरणकमल में स्थिर बुद्धि उत्पन्न होती है। स्पष्ट है कि बुद्धि को निर्मल और ब्रह्ममुखी बनाने के लिये ही भोग के द्वारा मोक्ष का द्वार खोलना इस साधना का उद्देश्य है। भगवान् ने इस जगत् की प्रत्येक वस्तु को इस कुशलता से बनाया है कि उनके व्यवहार का यथार्थ ज्ञान होने से उनसे अमृत की प्राप्ति हो सकती है और व्यवहारदोष से उन्हीं से विष भी उत्पन्न हो सकता है। कुलाचार जीवों के भवबन्धन को नष्ट करने की ही चेष्टा करता है। जीव के मद्यपायी होने अथवा लम्पट बनाने के उद्देश्य से शास्त्रविधि की रचना नहीं हुई है। स्त्री के द्वारा कुलाचार का साधन होता है; फिर भी उस स्त्री को भोग की वस्तु नहीं समझा जाता। उसे साक्षात् इष्टदेवी-स्वरूपिणी समझे बिना कोई भी मनुष्य तन्त्रोक्त साधना में सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता। चण्डीस्तव में कहा भी है—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः।

स्पष्ट है कि तन्त्र पञ्चमकारों को साधारण दृष्टि से नहीं देखता; अपितु बुद्धि की मलिनता के कारण हम स्वयं तन्त्रों को पवित्रभाव से नहीं देख सकते। तन्त्रोक्त साधना में अतिशीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। जो सिद्धिलाभ के लिये समुत्सुक रहते हैं, वे ही तन्त्रोक्त प्रणाली से साधन करने में अग्रसर हो सकते हैं; लेकिन जिस प्रकार थोड़े दिनों में ही इससे साधनसिद्धि प्राप्त हो जाती है, उसी प्रकार इसमें उसी परिमाण में साधना की उत्कटता भी अत्यधिक होती है। तन्त्रोक्त साधना के स्थान और काल के विषय में विचार करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह जीव के साधारण भाव में स्थित चित्त के द्वारा हो ही नहीं सकती। सर्वप्रथम तो साधना का स्थान ही इतना भयंकर बताया गया है कि वहाँ दिन में भी एकाकी जाने में भय होता है। बिखरे हुये नरकंकाल, नरमुण्ड एवं विच्छिन्न कंकालराशि से समन्वित, दुर्गन्ध से परिपूर्ण एवं शृगालों के भयोत्पादक रुदन अथवा चिल्लाहट वाले निर्जन श्मशानभूमि में अमावास्या के घोर अन्धकार में मृत शरीर के वक्ष:स्थल पर आसीन होने की कल्पना से ही सामान्य मनुष्य जब अचेत होने की स्थिति में पहुँच जाता है, तो फिर वहाँ पर बैठकर साधना करना सम्भव है अथवा नहीं, यह स्वयं विचारणीय है। स्पष्ट है कि जिनका इस मार्ग में अनुराग नहीं है, जिन्हें उक्त वस्तुओं से यथेष्ट घृणा है, उनके लिये यह मार्ग कदापि श्रेयस्कर नहीं है। जीव के रुचिभेद से भिन्न-भिन्न भावमय उपास्य देवता और उनकी साधनप्रणाली में भेद होते हुये भी चाहे जिस मार्ग का अवलम्ब ग्रहण न किया जाय, साधक के लिये लक्ष्य स्थान पर पहुँचने में कोई असुविधा नहीं होती तथा समस्त साधनाओं के चरम लक्ष्यभूत भगवान् भी पृथक्-पृथक् नहीं होते। अतएव साधना की प्रणाली चाहे जो भी हो, भगवत्प्राप्ति के विषय में कोई वैलक्षण्य नहीं घटता। पद्मपुराण में कहा भी है—

सौराश्च शैवगाणेशाः वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
मामेव ते प्रपद्यन्ते वर्षाम्भः सागरं यथा॥

तन्त्र में साधक के बाह्य भाव का उल्लेख करके उसके अन्तर्भाव को जागृत करने के लिये संकेत किया गया है। महादेव पार्वती से कहते हैं कि हे प्रिये! तेज ही आद्य तत्त्व, पवन द्वितीय तत्त्व, जल तृतीय तत्त्व, पृथिवी चतुर्थ तत्त्व एवं जगदाधार आकाश पञ्चम तत्त्व है। हे कुलेश्वरि! कुलधर्म के आचार तथा पञ्चतत्त्व जिस साधक को इस प्रकार विज्ञात हैं, वह निश्चय ही जीवन्मुक्त है; इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये—

आद्यतत्त्वं विद्धि तेजो द्वितीयं पवनं प्रिये।
अपस्तृतीयं जानीहि चतुर्थं पृथिवी शिवे॥

पञ्चमं जगदाधारं वियद्विद्धि वरानने।
इत्थं ज्ञात्वा कुलेशानि कुलं तत्त्वानि पञ्च च॥
आचारं कुलधर्मस्य जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।

तन्त्रों में कुल का स्वरूप इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

न कुलं कुलमित्याहुः कुलं ब्रह्म सनातनम्।

स्पष्ट है कि तन्त्रशास्त्र में 'कुल' शब्द से वंशपरम्परा अभिप्रेत नहीं है; अपितु सनातन ब्रह्म ही 'कुल' शब्द-वाच्य है। इस ब्रह्म को वास्तविक रूप से जानकर जो पुरुष मोहशून्य अथवा निर्विकार हो सकते हैं; वे ही कुलतत्त्वज्ञ कहलाने के अधिकारी होते हैं। जो इस साधना के साधक हैं, वे ही कुलसाधक अथवा कौल कहलाते हैं। इस प्रकार तन्त्र का कुलतत्त्व कोई सहज बात नहीं है, न ही कौल बनना कोई सामान्य बात है। तन्त्र में कहा भी है—

कुलं कुण्डलिनी शक्तिरकुलं तु महेश्वरः।

अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति ही 'कुल' शब्दगम्य है और महेश्वर ही 'अकुल' शब्द से अभिप्रेत हैं। ध्यातव्य है कि कुण्डलिनी तत्त्व का ज्ञान हो जाने पर साधक ब्रह्मज्ञ हो जाता है और यही तन्त्रोक्त साधना का मर्मस्थान है। कुण्डलिनी ही जीवतत्त्व या मुख्य प्राण है। यही यथार्थतः अध्यात्म या परा प्रकृति है तथा जगत् को यही धारण करती है। योगी लोग इसी को प्राणशक्ति कहते हैं—

प्राणो हि भगवानीशः प्राणो विष्णुः पितामहः।
प्राणेन धार्यते लोकः सर्वं प्राणमयं जगत्॥

अर्थात् प्राण ही ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मक है, प्राण ही जगत् को धारण करने वाला है। समस्त जगत् ही प्राणमय है। जो महाशक्ति ब्रह्मरूप से विकसित होकर स्थूल से स्थूलतर जगदादि रूप में परिणत होती है, वह विश्व की मूल या आदि शक्ति बीज ही प्राण या कुण्डलिनी है। राधा के वक्षःस्थल पर स्थित पुरुष ही श्रीकृष्ण अथवा पुरुषोत्तम हैं। श्रीकृष्ण को जानने के लिये सर्वप्रथम राधा को जानना आवश्यक है। वैष्णवों का कथन है कि श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिये राधिका के अनुगत होकर भजन करना होगा, यही परम सत्य है। योगी एवं तन्त्रोक्त उपासक भी यही कहते हैं कि कुण्डलिनी ही चैतन्य शक्ति है और उसकी कृपा के विना कोई भी शुद्ध चैतन्य या निर्गुण ब्रह्म को नहीं जान सकता।

तन्त्र के छः प्रयोगों के साधन में हमारी मनोवृत्ति कैसी रहती है, इसका कतिपय सांकेतिक शब्दों द्वारा भली-भाँति निदर्शन होता है। वे शब्द हैं—नमः,

स्वाहा, वषट्, वौषट्, हुम् और फट्। अन्तःकरण की शान्त अवस्था में 'नमः' का प्रयोग होता है। समस्त दुर्धर्ष, घातक एवं अपकारी शक्तियाँ विनय के समक्ष नत हो जाती हैं। जो मनुष्य यथाशक्ति परोपकार में रत रहकर दूसरों के हित के लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देता है, वह अपने शत्रुओं की समस्त विरोधभावनाओं को हटाकर उन पर पूर्ण अधिकार कर लेता है। 'वषट्' अन्तःकरण की उस वृत्ति का लक्ष्य कराता है, जिसमें अपने शत्रुओं के सम्बन्धियों का अनिष्ट-साधन करने अथवा उनका प्राणहरण करने की भावना रहती है। 'वौषट्' अपने शत्रुओं के हृदयों में एक-दूसरे के प्रति द्वेष उत्पन्न करने का सूचक है। 'हुम्' बल तथा अपने शत्रुओं को स्थानच्युत करने के निमित्त क्रोध का ज्ञापक है एवं 'फट्' अपने शत्रु के प्रति शस्त्रप्रयोग को अभिव्यक्त करता है। मन्त्रों की भाँति यन्त्र भी अनेक होते हैं। वे यन्त्र भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्रों के संकेत होते हैं। बहुत से यन्त्र प्रकृति के चरित्र का रहस्य बतलाते हैं और कई यन्त्र ऐसे होते हैं, जो मनुष्यों तथा जानवरों के चरित्र का निरूपण करते हैं। तन्त्रशास्त्र में मन्त्रों एवं यन्त्रों का विशद् विवेचन उपलब्ध होता है। इसीलिये तन्त्रशास्त्र का माहात्म्य प्रदर्शित करते हुये कहा गया है—

विष्णुर्वरिष्ठो देवानां ह्रदानामुदधिस्तथा।
नदीनाञ्च यथा गङ्गा पर्वतानां हिमालयः॥
अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां राज्ञाभिद्रो यथा वरः।
देवीनाञ्च यथा दुर्गा वर्णानां ब्राह्मणो यथा॥
तथा समस्तशास्त्राणां तन्त्रशास्त्रमनुत्तमम्।
सर्वकामप्रदं पुण्यं तन्त्रं वै वेदसम्मितम्॥
कीर्त्तनं देवदेवस्य हरस्य मतमेव च।
पावनं श्रद्दधानानामिह लोके परत्र च॥

प्राचीनतम तन्त्रग्रन्थों में रथक्रान्त, विष्णुक्रान्त एवं अश्वक्रान्त—तीनों में चौंसठ-चौंसठ ग्रन्थ दृगोचर होते हैं। इस प्रकार कुल एक सौ बयानबे ग्रन्थों के वर्णन उपलब्ध होते हैं। उनमें से रथक्रान्त तन्त्रग्रन्थों में मेरुतन्त्र का स्थान छठा है। इसके सम्बन्ध में ग्रन्थ के प्रथम प्रकाश में भगवान् शिव का कथन है कि—

महाकालेन यत्प्रोक्तं पञ्चमी मुक्तिसाधनम्।
सर्वेषां मेरुतां यातं तत्तन्त्रं मेरुसंज्ञितम्॥

महाकाल ने जिस पाँचवीं मुक्तिसाधन का कथन किया है, उनमें मेरुतन्त्र सुमेरु पर्वत के समान सर्वोच्च है। ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, सूर्य, गौरी आदि देव-देवियों तथा गंगा, यमुना आदि नदियों; साथ ही अन्यान्य उपास्य देवों के मन्त्र,

यन्त्र, न्यास, ध्यान, पीठ, शक्ति आवरणार्चन विधियों एवं वैदिक मन्त्रविधियों का भी प्रतिपादक शिव-पार्वती-संवादरूप यह महनीय ग्रन्थ पैंतीस प्रकाशों में विभाजित है। शिव द्वारा उपदिष्ट एक सौ आठ तन्त्रों में सर्वोच्च स्थान पर अवस्थित होने के कारण ही यह 'मेरुतन्त्र' के नाम से अभिहित है। जलन्धर से भयभीत देवताओं और ऋषियों के लिये भगवान् शिव ने इसका उपदेश किया था। यह महनीय ग्रन्थ लगभग पन्द्रह हजार श्लोकों में निबद्ध है। इस ग्रन्थ में ज्ञान, योग, क्रिया तथा चर्या—इन चारो अंगों के साथ-साथ मन्त्रों के रहस्यात्मक प्रभाव का भी विवेचन किया गया है। यन्त्र-मन्त्र का इसमें विशद् वर्णन है। क्रियाविभाग में मूर्ति एवं यन्त्रपूजन के विधान प्रमुख हैं। चर्याविभाग में दैनिक आचार के साथ-साथ व्रत, उत्सव एवं सामाजिक अनुष्ठानों के विस्तृत विवरण हैं। तर्पण और दीपदान के विधान भी इस ग्रन्थ में विवेचित हैं। इसके अनुसार साधना करके आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—चारो प्रकार के श्रेष्ठ कर्मी अपने मनोरथ पूर्ण कर सकते हैं। गीता के सातवें अध्याय के सोलहवें श्लोक में कहा गया है कि मनुष्य की ईश्वर या ईश्वरीय सत्ता-सम्पन्न वस्तुओं के प्रति अभिरुचि के चार प्रमुख कारण हैं—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

अर्थात् भरतवंशियों में श्रेष्ठ हे अर्जुन! चार प्रकार के उत्तम कर्म वाले लोग मेरा अर्चन-पूजन करते हैं, वे हैं—अत्यन्त संकट में पड़ा हुआ, जिज्ञासु अर्थात् यथार्थ ज्ञान का इच्छुक, अर्थार्थी अर्थात् सांसारिक सुखों का अभिलाषी एवं ज्ञानी। इन चार कारणों में से अन्तिम अर्थात् ज्ञानी के अतिरिक्त प्रथम तीन कारण तो ऐसे हैं कि उनसे कोई बचा ही नहीं है। कुछ केवल पीड़ित हैं, कुछ केवल जिज्ञासु हैं तो कुछ केवल अर्थार्थी हैं। इन कष्टों के शमन-हेतु मनीषियों द्वारा अनेक मार्गों का विवेचन किया गया है, जिनमें तन्त्रसाधना श्रेष्ठ है और उनमें भी मेरुतन्त्र श्रेष्ठ है। प्रकृत ग्रन्थ की सर्वातिशायी विशेषता यह है कि यह ग्रन्थरत्न उक्त चारो ही कारणों का समाधान करने वाला है।

प्रस्तुत संस्करण

तन्त्र-साधना हेतु परमोपयोगी यह महनीय ग्रन्थ जो अद्यावधि उपलब्ध है, वह पूर्णतः संस्कृत वाङ्मय में मूलमात्र है। वर्तमान में अल्पज्ञ पाठकों के संस्कृत भाषा-ज्ञान में पूर्णतः दक्ष न होने के कारण अभीष्ट होते हुये भी वे ग्रन्थ-तात्पर्य को अंगीकार करने में समर्थ नहीं हो पा रहे थे, यही कारण है कि यह ग्रन्थ प्रचलन

में नहीं था। ग्रन्थ की अनिवार्यता एवं ग्रन्थोक्त अनुष्ठानों की उपयोगिता को हृदयंगम करते हुये चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी के अप्रतिम स्वत्त्वाधिकारी गोलोकवासी नवनीतदास जी गुप्त की सतत् प्रेरणा के परिणामस्वरूप इस महनीय ग्रन्थ को भाषाभाष्य से समन्वित करने का दुरूह कार्य पूर्णता को प्राप्त हो सका; यह स्वर्गीय गुप्त जी की उत्कट अभिलाषा एवं उनके अनुवर्ती श्री नवीन एवं नीरज जी के सतत् उत्साहवर्धन का ही प्रतिफल है। आशा एवं विश्वास है कि यह संस्करण अध्येताओं के लिये ग्रन्थ के गूढ़ अर्थ को समझने में सहायक सिद्ध होगा।

श्रीनिवास शर्मा

●

विवेच्य विषय

प्रकृत संस्करण के इस अन्तिम पाँचवें भाग में सत्ताईस से लेकर पैंतीसवें प्रकाश तक को समाहित किया गया है सत्ताईसवें प्रकाश में चौबीस मूर्तिमन्त्रों का कथन किया गया है। उसमें सर्वप्रथम केशव के मन्त्र का विवेचन करने के अनन्तर क्रमशः नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, दामोदर, संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नृसिंह, अभयप्रद नृसिंह, जनार्दन, उपेन्द्र, हरि एवं कृष्णमूर्तिमन्त्रों का अलग-अलग विवेचन करते हुये तत्तत् मन्त्रों के अनुष्ठान का फल भी बतलाया गया है।

अट्ठाईसवें प्रकाश में विष्णु को प्रसन्न करने वाले मन्त्रों का कथन किया गया है। सर्वप्रथम विष्णु को प्रिय मन्त्रों का कथन करने के उपरान्त हयग्रीव-मन्त्र का कथन किया गया है। इसके बाद धारणाप्रद हयग्रीव मन्त्र, तीक्ष्ण बुद्धिप्रद हयग्रीव-मन्त्र एवं ज्ञान प्रदान करने वाले हयग्रीव मन्त्र का सविधि विवेचन किया गया है। तदनन्तर संसाररूपी रोग के एकमात्र औषधिस्वरूप विष्णुमन्त्र का विवेचन कर अनन्तस्वरूप एवं व्यास-स्वरूप विष्णुमन्त्र का कथन किया गया है। इसके बाद चिरञ्जीवित्व प्रदान करने वाले व्यासमन्त्र को बतलाकर गरुड़गायत्री एवं गरुड़मन्त्र का विवेचन कर प्रकाश का समापन किया गया है।

उन्तीसवें प्रकाश में आयुधमन्त्रों का कथन किया गया है। इस क्रम में सर्वप्रथम सुदर्शन चक्र के मन्त्र का विधि-सहित कथन करने के उपरान्त क्रमशः शंख, खड्ग, धनुष, कौमोदकी, मुसल, अंकुश, पाश, छत्र, चामर, ध्वज, पताका, शूल, क्षुरिका, कटार, कन्त एवं वर्म अर्थात् कवच-मन्त्र का सविधि विवेचन किया गया है। तदनन्तर दण्डगायत्री को बतलाकर परशुराम-मन्त्र का विवेचन करते हुये प्रकाश का समापन किया गया है।

तीसवें प्रकाश में विष्णु की शक्तियों के मन्त्र का विवेचन किया गया है। इस क्रम में सर्वप्रथम चित्रेश्वरी नामिका विष्णु-शक्ति के मन्त्र का सविधि विवेचन किया गया है। इसके बाद विष्णु की कुलजा शक्ति के मन्त्र का विवेचन कर गोपालसुन्दरी-मन्त्र को बतलाया गया है। तदनन्तर कृष्णप्रिया एकजटा के मन्त्र का सविधि विवेचन कर एकवीरा-नामिका कृष्णशक्ति का मन्त्र सविधि निरूपित किया गया है। प्रकाश के अन्त में कृष्णशक्तिमन्त्रों की उपासना-विधि बतलाई गई है।

इकतीसवें प्रकाश में शिवमन्त्रों का कथन किया गया है। सर्वप्रथम छः अक्षरों वाले शिवमन्त्र का कथन करने के उपरान्त दक्षिणामूर्ति मन्त्र का सविधि विवेचन किया गया है। इसके बाद शरभावतारि हरमन्त्र का कथन कर विधिपूर्वक अघोरास्त्र मन्त्र का कथन है। तत्पश्चात् पाशुपतास्त्र मन्त्र की विधि बतलाकर विष का नाश करने वाले नीलकण्ठ मन्त्र को कहा गया है। इसके बाद विधिपूर्वक दक्षिणामूर्ति के नवार्ण मन्त्र का कथन है। फिर खड्गरावण मन्त्र का विवेचन करने के उपरान्त शिव के मृतसञ्जीविनी मन्त्र का विधिपूर्वक कथन करके प्रकाशान्त में दशाक्षर रुद्रमन्त्र का कथन किया गया है।

बत्तीसवें प्रकाश में भैरव आदि के मन्त्रों का सविधि विवेचन किया गया है। सर्वप्रथम बटुकभैरव का मन्त्र प्रकाशित करने के पश्चात् भस्म-साधन करने की विधि बतलायी गई है। तत्पश्चात् अभिषेक-विधि वर्णित है। इसके बाद हाथी, घोड़े, ऊँट के रोग आदि की शान्ति किस प्रकार होती है, यह बतलाया गया है। इसके बाद अनेक भैरवों का साधन निरूपित है। अनन्तर क्षेत्रपाल-मन्त्र का कथन करने के पश्चात् विषहर वह्निमन्त्र, चण्डमन्त्र, कार्तिकेय मन्त्र, शीतला मन्त्र, लघुश्यामा मन्त्र, पञ्चकामेश्वरी मन्त्र, रुद्रशीर्ष-निवासिनी मन्त्र, वाङ्मती मन्त्र, मणिकर्णिका मन्त्र एवं नर्मदा मन्त्र का सविधि निरूपण करते हुये प्रकाश का समापन किया गया है।

तैंतीसवें प्रकाश में दैवत यन्त्रों का प्रकाशन किया गया है। इसमें सर्वप्रथम यन्त्रसिद्धि की विधि विवेचित की गई है। तत्पश्चात् क्रमशः हेरम्बयन्त्र, विद्वेषण यन्त्र, स्तम्भन यन्त्र, स्तम्भनकारी हरिद्रागणपति यन्त्र एवं आकर्षणकारी हरिद्रागणपति यन्त्र की रचना-विधि स्पष्टतया प्रतिपादित की गई है। इसके बाद वशीकरण, उच्चाटन, विद्वेषण एवं मारणयन्त्रों का विवेचन किया गया है। इसके बाद मातृकायन्त्र का साधन बतलाकर त्रिपुरभैरवी यन्त्र का विवेचन किया गया है। फिर पञ्चबाणेश्वरी के यन्त्र एवं मन्त्र का विवेचन कर राजमातङ्गी एवं भुवनेश्वरी यन्त्र-निर्माण की विधि प्रदर्शित की गई है। तत्पश्चात् लक्ष्मीप्रद लक्ष्मीयन्त्र का कथन कर त्वरिता, बगला, वाराही, स्वप्नवाराही, तारा, वशीकरण करने वाली भुवनेश्वरी एवं कुरुकुल्ला यन्त्र का कथन किया गया है। आगे सौर यन्त्र, शत्रु को भय-प्रदायक यन्त्र एवं गर्भस्तम्भन करने वाले यन्त्र का विवेचन करने के उपरान्त पृथिवी यन्त्र एवं नारसिंह यन्त्र की निर्माण-विधि प्रदर्शित की गई है। तदनन्तर सर्वविध उपयोगी समस्त बाधाओं के विनाशक यन्त्र, क्षुद्र रोग-विनाशक यन्त्र एवं महारोग-विनाशक-यन्त्र-निर्माण की विधि प्रदर्शित की गई है। इसके बाद नृसिंह के अद्भुत

यन्त्र का कथन कर सुदर्शन नृसिंह यन्त्र का विवेचन किया गया है। तत्पश्चात् स्त्री, पुत्र एवं मित्र प्रदान करने वाले दधिवामन यन्त्र बनाने की विधि बतलायी गई है। इसके बाद वामन, रामचन्द्र, श्रीकृष्णगोपाल यन्त्र का कथन करते हुये समस्त उपद्रवों के विनाशक कृष्णयन्त्र का विवेचन किया गया है। तत्पश्चात् हनुमान्, दक्षिणामूर्ति, मृत्युञ्जय एवं बटुकभैरव यन्त्र का विवेचन करते हुये प्रकाश का समापन किया गया है।

चौंतीसवें प्रकाश में हनुमान् के विविध मन्त्रों का कथन करते हुये उनके अनुष्ठान की विधि प्रकाशित की गई है। इस क्रम में सर्वप्रथम हनुमान् के माला-मन्त्र को बतलाया गया है। तत्पश्चात् हनुमान् का द्वादशाक्षर मन्त्र बतलाकर नवग्रह, भास्कर, चन्द्र, मङ्गल, बुध, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु द्वारा जिन मालामन्त्रों से हनुमान् की उपासना की गई थी, उन मन्त्रों का अलग-अलग विवेचन किया गया है। इसके बाद पञ्चकूटात्मक हनुमन्मन्त्र का कथन किया गया है। तत्पश्चात् रुद्र द्वारा उपासित हनुमन्मन्त्र को बतलाकर हनुमान् के अष्टादशाक्षर एवं अष्टाक्षर मन्त्र का उद्धार बतलाया गया है। इसके बाद प्रकाशान्त में प्लीहा आदि का निवारण करने वाले हनुमन्मन्त्र का विवेचन किया गया है।

अन्तिम पैंतीसवें प्रकाश में कार्तवीर्यार्जुन मन्त्र का विवेचन किया गया है। सर्वप्रथम कार्तवीर्यार्जुन के मन्त्र का कथन करने के उपरान्त दक्षिणमार्ग से कार्तवीर्यार्जुन यन्त्र की पूजनविधि का निरूपण किया गया है। इसके बाद वाममार्गियों द्वारा पूजनीय यन्त्र का विवेचन है। अनन्तर कार्तवीर्यार्जुन के मन्त्रभेद बतलाकर काम्य होम का कथन किया गया है। तदनन्तर कार्तवीर्य का ध्यान एवं उसकी गायत्री बतलाई गई है। इसके बाद कार्तवीर्य के मालामन्त्र को उद्घाटित कर उन्हें प्रसन्न करने वाली दीपदान-विधि का सविस्तर विवेचन किया गया है। पश्चात् दीपाधार यन्त्र का निरूपण करते हुये दीपप्रज्वलन के समय शुभ-अशुभ संकेतों को बतलाया गया है। सर्वान्त में ग्रन्थ-समाप्ति कही गई है।

●

विषयानुक्रमणी

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
सप्तविंशतितमः प्रकाशः	
(चतुर्विंशतिमूर्तिमनुकथनम्)	
केशवमूर्तिमन्त्रकथनम्	१
नारायणमन्त्रविधानकथनम्	३
नारायणमन्त्रविधानम्	१६
माधवमन्त्रविधानम्	१६
गोविन्दमन्त्रकथनम्	१७
विष्णुमन्त्रकथनम्	१९
मधुसूदनमन्त्रकथनम्	२१
त्रिविक्रममन्त्रकथनम्	२२
वामनमन्त्रकथनम्	२३
श्रीधरमन्त्रकथनम्	२४
हृषीकेशमन्त्रकथनम्	२६
दामोदरमन्त्रकथनम्	२८
सङ्कर्षणमन्त्रकथनम्	२९
वासुदेवमन्त्रकथनम्	३०
प्रद्युम्नमन्त्रकथनम्	३५
अनिरुद्धमन्त्रकथनम्	३६
श्रीपुरुषोत्तममन्त्रकथनम्	४६
अधोक्षजमन्त्रकथनम्	४७
नृसिंहमन्त्रकथनम्	४९
अभयप्रदनृसिंहमन्त्रकथनम्	५०
जनार्दनमन्त्रकथनम्	५१
उपेन्द्रमन्त्रकथनम्	५१
हरिमन्त्रकथनम्	५२
कृष्णमन्त्रकथनम्	५३
अष्टाविंशतितमः प्रकाशः	
(विष्णुप्रियमन्त्रकथनम्)	
विष्णुप्रीतिकरमन्त्रकथनम्	५५
हयग्रीवमन्त्रकथनम्	५६
धारणाप्रदहयग्रीवमन्त्रः	६१
तीक्ष्णबुद्धिप्रदहयग्रीवमन्त्रः	६१
ज्ञानप्रदहयग्रीवमन्त्रः	६२
भवरोगैकभेषजविष्णुमन्त्रकथनम्	६२
अनन्तस्वरूपविष्णुमन्त्रः	६४
व्यासस्वरूपविष्णुमन्त्रः	६४
चिरञ्जीवित्वकारकव्यासमन्त्रः	६५
गरुडगायत्री	६६
गरुडमन्त्रः	६७
एकोनत्रिंशः प्रकाशः	
(आयुधमन्त्रकथनम्)	
सुदर्शनचक्रमन्त्रकथनम्	७१
जयप्रदशङ्खमन्त्रकथनम्	८१
खड्गमन्त्रकथनम्	८१
धनुर्मन्त्रकथनम्	८२
गदाकौमोदकीमन्त्रकथनम्	८२
मुसलमन्त्रनिरूपणम्	८३
अङ्कुशमन्त्रकथनम्	८३
पाशमन्त्रकथनम्	८४
छत्रमन्त्रकथनम्	८५
चामरमन्त्रकथनम्	८५
ध्वजमन्त्रकथनम्	८६
पताकामन्त्रकथनम्	८६
शूलमन्त्रकथनम्	८७
क्षुरिकामन्त्रकथनम्	८७
कटारमन्त्रकथनम्	८८
जयप्रदकन्तमन्त्रकथनम्	८८
वर्म(कवच)मन्त्रकथनम्	८९
दण्डगायत्रीमन्त्रकथनम्	८९
परशुमन्त्रकथनम्	९०

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
त्रिंशत्तमः प्रकाशः	
(विष्णुशक्तिमन्त्रकथनम्)	
चित्रेश्वरीमन्त्रः	९१
कुलजाख्यविष्णुशक्तिमन्त्रः	९२
गोपालसुन्दरीमन्त्रविधिः	९३
कृष्णप्रियैकजटामन्त्रविधिः	१०७
एकवीराख्यकृष्णशक्तिमन्त्रः	१०७
कृष्णाशक्तिमन्त्रविधिः	१०९
एकत्रिंशत्तमः प्रकाशः	
(शिवमन्त्रकथनम्)	
षडक्षरशिवमन्त्रविधिकथनम्	११४
दक्षिणामूर्तिमन्त्रविधिकथनम्	१३८
शरभावतारिहरमन्त्रकथनम्	१४९
अघोरास्त्रमन्त्रविधिकथनम्	१५२
पाशुपतास्त्रमन्त्रविधिकथनम्	१५५
विषनाशननीलकण्ठमन्त्रकथनम्	१५७
दक्षिणामूर्तिनवार्णमन्त्रकथनम्	१७३
खड्गरावणमन्त्रः	१७८
मृतसञ्जीविनीमन्त्रकथनम्	१८०
दशाक्षररुद्रमन्त्रकथनम्	१८३
द्वात्रिंशत्तमः प्रकाशः	
(भैरवादिमन्त्रकथनम्)	
बटुकमन्त्रविधिकथनम्	१८६
भस्मसाधनकथनम्	१९९
अभिषेकविधिकथनम्	२००
गजोष्ट्रवाजिनां रोगादिशान्तिः	२०२
नानाभैरवसाधननिरूपणम्	२०४
क्षेत्रपालमन्त्रनिरूपणम्	२१३
विषहरवह्निमन्त्रनिरूपणम्	२१५
चण्डमन्त्रकथनम्	२१६
कार्तिकेयमन्त्रकथनम्	२२१
शीतलामन्त्रकथनम्	२२२
लघुश्यामामन्त्रकथनम्	२२४
पञ्चकामेश्वरीमन्त्राः	२३०

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
रुद्रशीर्षनिवासिनीमन्त्रः	२३२
वाङ्मतीमन्त्रकथनम्	२३७
मणिकर्णिकामन्त्रकथनम्	२३९
नर्मदामन्त्रकथनम्	२४०
त्रयस्त्रिंशत्तमः प्रकाशः	
(दैवतयन्त्रकथनम्)	
यन्त्रसिद्धिविधानकथनम्	२४२
हेरम्बयन्त्रकथनम्	२४६
विद्वेषणयन्त्रकथनम्	२५०
स्तम्भनयन्त्रकथनम्	२५०
स्तम्भनकरहरिद्रागणपति-यन्त्रकथनम्	२५३
आकर्षणकरहरिद्रागणपति-यन्त्रकथनम्	२५६
वश्यार्थ यन्त्रसाधनम्	२५९
उच्चाटनयन्त्रकथनम्	२६५
विद्वेषणयन्त्रकथनम्	२६६
मारणयन्त्रकथनम्	२६८
मातृकायन्त्रसाधनम्	२७०
त्रिपुरभैरवीयन्त्रकथनम्	२७४
पञ्चबाणेश्वरीयन्त्रमन्त्रकथनम्	२७७
राजमातङ्गीयन्त्रकथनम्	२७८
भुवनेश्वरीयन्त्रकथनम्	२८०
लक्ष्मीप्रदलक्ष्मीयन्त्रकथनम्	२८१
त्वरितायन्त्रकथनम्	२८३
बगलायन्त्रकथनम्	२८९
वाराहीयन्त्रकथनम्	२९१
स्वप्नवाराहीयन्त्रकथनम्	२९२
तारायन्त्रकथनम्	२९५
वश्यकृद्भुवनेश्वरीयन्त्रकथनम्	२९६
सौरयन्त्रकथनम्	२९६
कुरुकुल्लायन्त्रकथनम्	२९७
शत्रुभयावहयन्त्रकथनम्	२९७
गर्भस्तम्भकरयन्त्रकथनम्	२९८

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
वाराहयन्त्रकथनम्	२९९
पृथिवीयन्त्रकथनम्	३०१
नारसिंहयन्त्रकथनम्	३०२
सर्वबाधाविनाशनयन्त्रकथनम्	३०३
क्षुद्ररोगविनाशनयन्त्रकथनम्	३०४
महारोगहरयन्त्रकथनम्	३०४
नृहरेरद्भुतयन्त्रकथनम्	३०५
सुदर्शननृसिंहयन्त्रकथनम्	३०६
स्त्रीपुत्रमित्रप्रददधिवामनयन्त्रकथनम्	३०७
वामनयन्त्रकथनम्	३०७
रामचन्द्रयन्त्रकथनम्	३०८
श्रीकृष्णगोपालयन्त्रकथनम्	३१२
सर्वोपद्रवनाशककृष्णयन्त्रकथनम्	३१५
हनुमद्यन्त्रकथनम्	३१७
दक्षिणामूर्तियन्त्रकथनम्	३१८
मृत्युञ्जययन्त्रकथनम्	३१९
बटुकभैरवयन्त्रकथनम्	३२०
चतुस्त्रिंशत्तमः प्रकाशः	
(हनुमन्मन्त्रकथनम्)	
हनुमन्मालामन्त्रकथनम्	३२१
हनुमद्द्वादशाक्षरमन्त्रविधानम्	३२५
नवग्रहोपासितहनुमन्मालामन्त्रकथनम्	३३०
भास्करोपासितहनुमन्मालामन्त्रकथनम्	३३१
चन्द्रोपासितहनुमन्मालामन्त्रकथनम्	३३१
मङ्गलोपासितहनुमन्मालामन्त्रकथनम्	३३२
बुधोपासितहनुमन्मालामन्त्रकथनम्	३३३
गुरूपासितहनुमन्मालामन्त्रकथनम्	३३४
शुक्रोपासितहनुमन्मन्त्रकथनम्	३३५
शन्युपासितहनुमन्मालामन्त्रकथनम्	३३५
राहूपासितहनुमन्मालामन्त्रकथनम्	३३६
केतूपासितहनुमन्मन्त्रकथनम्	३३६
पञ्चकूटात्मकहनुमन्मन्त्रकथनम्	३३९
रुद्रोपासितहनुमन्मन्त्रकथनम्	३४०
हनुमदष्टादशाक्षरमन्त्रकथनम्	३४०
हनुमदष्टाक्षरमन्त्रकथनम्	३४२
प्लीहादिनिवारकहनुमन्मन्त्रकथनम्	३४३
पञ्चत्रिंशत्तमः प्रकाशः	
(कार्तवीर्यार्जुनमन्त्रकथनम्)	
कार्तवीर्यार्जुनमन्त्रकथनम्	३४५
दक्षिणमार्गेण कार्तवीर्ययन्त्रस्य पूजनविधिः	३४९
वाममार्गिणां पूजनीयनृपयन्त्रकथनम्	३५१
काम्यहोमकथनम्	३५२
कार्त्तवीर्यमन्त्रभेदकथनम्	३५३
कार्तवीर्यभूपध्यानकथनम्	३५५
कार्तवीर्यगायत्रीकथनम्	३६०
कार्तवीर्यमालामन्त्रकथनम्	३६१
कार्तवीर्यप्रियङ्करदीपविधिः	३६५
कार्तवीर्यदीपाधारयन्त्रकथनम्	३६६
दीपप्रबोधनसमये शुभाशुभविचारः	३७०
ग्रन्थसमापनम्	३७४

॥ श्रीः ॥

श्रीशिव-शिवासंवादोपनिबद्धं

मेरुतन्त्रम्

भाषाभाष्यसमन्वितम्

सप्तविंशतितमः प्रकाशः

(चतुर्विंशतिमूर्तिमनुकथनम्)

श्रीदेव्युवाच

देवदेव महादेव भक्तानुग्रहकारक ।
चतुर्विंशतिमूर्तीनां मन्त्रांश्च मेऽधुना वद ॥१॥

श्रीदेवी ने कहा—भक्तों पर अनुग्रह करने वाले हे देवदेव महादेव! अब इस समय आप विष्णु की चौबीस मूर्तियों के मन्त्रों को मुझसे कहें॥१॥

ईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मूर्त्तिमन्त्रानशेषतः ।
भुक्तिमुक्तिप्रदान् विप्रैराराध्यान् सचतुर्थकैः ॥२॥

श्रीमहादेव ने कहा—हे देवि! सुनो; अब मैं शूद्र-सहित ब्राह्मणों द्वारा आराधना किये जाने वाले भोग एवं मोक्ष-प्रद समस्त मूर्त्तिमन्त्रों को कहता हूँ॥२॥

केशवमूर्तिमन्त्रकथनम्

को ब्रह्मा तु समुद्दिष्ट ईशः शो वो हरिः स्मृतः ।
वर्णत्रयात्मको मन्त्रः केशवः परिकीर्तितः ॥३॥

पृथक्ताभ्यां षडङ्गानि पूर्णेन व्यापकं चरेत् ।
आनाभिपादपर्यन्तं मङ्गलं मधुसम्मितम् ॥४॥

केशव मूर्तिमन्त्र—'केशव' में 'क' से ब्रह्मा, 'ईश' से कल्याण एवं 'व' से हरि (विष्णु) को कहा गया है। इस प्रकार तीन वर्णों वाला मन्त्र 'केशव' कहा गया है।

मन्त्र के तीनों वर्णों की अलग-अलग दो आवृत्ति से इसका षडङ्ग-न्यास एवं पूर्ण मन्त्र (केशव) से नाभि से पाद-पर्यन्त मङ्गलमय मधुसम्मित व्यापक न्यास करना चाहिये।

शङ्खचक्रे हि शूले च त्वक्षमालां कमण्डलुम्।
भुजैष्षड्भिर्दधानं च रक्तवर्णं च सत्कटिम् ॥५॥

अन्तर्बाह्योत्तरीयं च नागयज्ञोपवीतिनम्।
मयूरमुकुटं रम्यं मकराकृतिकुण्डलम् ॥६॥

एवं ध्यात्वा यजेत्पीठे पद्मे चापि चतुर्दले।
सनकादीन् कर्णिकायां गणेशं नन्दिकेश्वरम् ॥७॥

कार्तिकेयं भृङ्गिणं च दलमध्ये समर्चयेत्।
दलाग्रेषु क्रमाच्चापि प्रह्लादं नारदं बलिम् ॥८॥

पार्श्वयोः पृष्ठतश्चापि रमोमे वेदमातरम्।
अग्रदक्षक्रमाद् गां च हंसं पक्षीश्वरं तथा ॥९॥

भूपुरे लोकपालांश्च तद्धेतींश्च समर्चयेत्।
जपेल्लक्षत्रयं मन्त्रं मधुरत्रितयैर्हुनेत् ॥१०॥

सन्तोष्य विप्रान् सिद्धिः स्यात्कर्त्ता हर्ता तथात्मवान्।
इह लोके सुखं प्राप्य मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥११॥

छः हाथों में शंख, चक्र, शूल, अक्षमाला एवं कमण्ड़लु धारण किये हुये, रक्त वर्ण वाले, सुन्दर कमर वाले, अन्दर-बाहर उत्तरीय धारण किये हुये, सर्प के यज्ञोपवीत से सुशोभित, मयूरपंख का मुकुट धारण किये हुये, मकराकार मनोहर कुण्ड़ल से सुशोभित केशव का ध्यान करके चतुर्दल पद्मपीठ पर मध्य में उनका पूजन करना चाहिये।

उसके बाद षट्कोण में षडङ्ग-पूजन करने के पश्चात् चतुर्दल की कर्णिका में सनक, सनन्दन, सनातन एवं सनत्कुमार का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर दलों के मध्य में गणेश, नन्दी, कार्तिकेय एवं भृङ्गी का यजन करने के बाद दलों के अग्रभाग में क्रमशः प्रह्लाद, नारद एवं बलि का पूजन करना चाहिये।

तत्पश्चात् चतुर्दल के दोनों ओर लक्ष्मी एवं उमा का तथा पृष्ठभाग में वेदमाता गायत्री का पूजन करना चाहिये। पुनः आगे, दाहिने एवं बाँयें क्रमशः गौ, हंस एवं गरुड़ का पूजन करने के उपरान्त भूपुर में दिक्पालों एवं उनके आयुधों का सम्यक् रूप से पूजन करना चाहिये। उक्त प्रकार से पूजन करने के उपरान्त मन्त्र का तीन लाख जप पूर्ण करके मधुरत्रय से कृत जप का दशांश हवन करने के बाद ब्राह्मणों को भोजनादि द्वारा सन्तुष्ट करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।
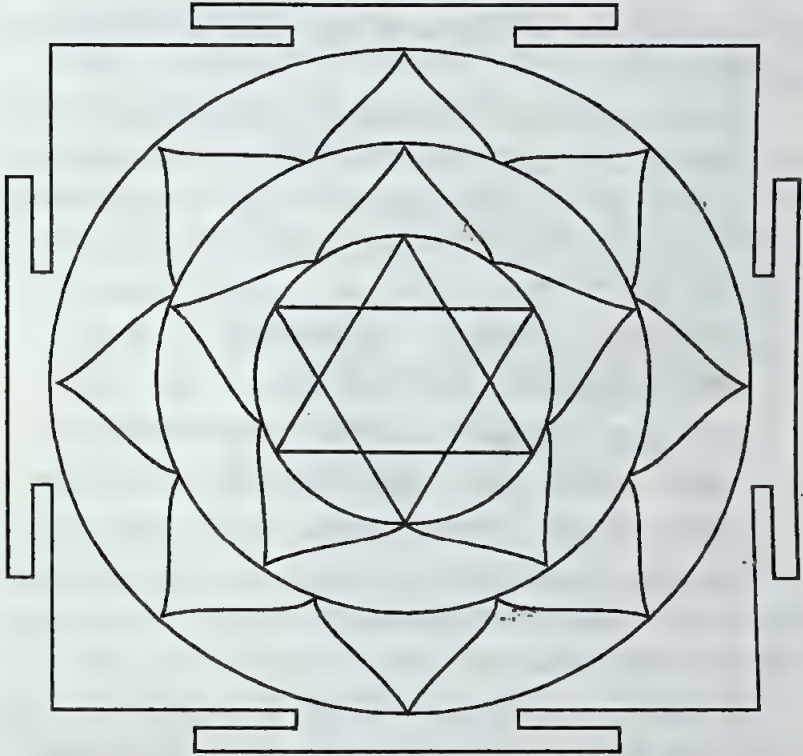
मन्त्रसिद्ध साधक स्वयं ही कर्ता, हर्ता एवं परमात्मा-स्वरूप हो जाता है तथा इस संसार में अपने शेष जीवन को आनन्द-पूर्वक व्यतीत करके शरीरान्त होने पर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।।५-११।।

नारायणमन्त्रविधानकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नारायणमहामनुम्।
नमो नारायणायेति ताराद्यष्टाक्षरो मनुः ॥१२॥

छन्दश्च देवीगायत्री साध्यनारायणो मुनिः।
देवता परमात्मास्य पञ्चाङ्गविधिरुच्यते ॥१३॥

कुब्जोल्कश्च महोल्कश्च अविरक्तोल्क एव च।
सहस्रोल्कश्चतुर्थोक्तः स्वाहोल्को हेतिसंयुतः।
पञ्चाङ्गमन्त्राः सम्प्रोक्ता अङ्गुष्ठादावपि न्यसेत् ॥१४॥

नारायण-मन्त्रविधि—अब मैं नारायण के महामन्त्र को कहता हूँ। नारायण का आठ अक्षरों का मन्त्र है—ॐ नमो नारायणाय। इस महामन्त्र के ऋषि साध्य नारायण,

छन्द देवी गायत्री एवं देवता परमात्मा हैं। इसका पञ्चाङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—

कुब्जोल्काय हृदयाय नमः, महोल्काय शिरसे स्वाहा, अविरक्तोल्काय शिखायै वषट्, सहस्रोल्काय कवचाय हुं, स्वाहोल्काय अस्त्राय फट्। इन्हीं पञ्चाङ्गमन्त्रों से इस प्रकार करन्यास भी करना चाहिये—कुब्जोल्काय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, महोल्काय तर्जनीभ्यां नमः, अविरक्तोल्काय मध्यमाभ्यां नमः, सहस्रोल्काय अनामिकाभ्यां नमः, स्वाहोल्काय कनिष्ठाभ्यां नमः॥१२-१४॥

अष्टाक्षरेण व्यस्तेन कुर्यादष्टाङ्गकेषु च।
सृष्टिन्यासोऽयमुद्दिष्टस्संहारश्चारणादिकः ॥१५॥

नाभौ च गुह्यदेशे च जानूर्वोः पादयोस्तथा।
मूर्ध्नि नेत्रद्वये चैव सुमुखान्ते तथा हृदि ॥१६॥

स्थितिन्यासस्त्वयं प्रोक्तो विभूतेः पञ्जरं शृणु।

तत्पश्चात् मन्त्र के व्यस्त (उल्टे) आठ वर्णों से आठ अंगों में इस प्रकार सृष्टिन्यास करना चाहिये—यं नमः मूर्ध्नि, णां नमः नेत्रयोः, यं नमः मुखे, रां नमः हृदये, नां नमः नाभौ, मों नमः गुह्ये, नं नमः जान्वोः, ॐ नमः पादौ।

संहार-न्यास इस प्रकार होता है—ॐ नमः पादौ, नं नमः जान्वोः, मों नमः गुह्ये, नां नमः नाभौ, रां नमः हृदये, यं नमः मुखे, णां नमः नेत्रयोः, यं नमः मूर्ध्नि।

स्थिति-न्यास इस प्रकार किया जाता है—ॐ नमः नाभौ, नं नमः गुह्ये, मों नमः जान्वोः, नां नमः पादौ, रां नमः मूर्ध्नि, यं नमः नेत्रयोः, णां नमः मुखे, यं नमः हृदये। अब विभूतिपञ्जर न्यास को सुनो॥१५-१६॥

सर्वन्यासेषु तारेण पुटितार्णान् प्रविन्यसेत् ॥१७॥

मूलाधारे हृदि मुखे भुजयोश्चोरुमूलयोः।
नाभिदेशे प्रथमको न्यासोऽयं परिकीर्तितः ॥१८॥

गले नाभौ हृदि कुचद्वये पार्श्वद्वये तथा।
पृष्ठे चेति द्वितीयोऽयं न्यासस्तु परिकीर्तितः ॥१९॥

शीर्षे मुखे नेत्रयुगे कर्णयोर्नासिकाद्वये।
क्रमेण विन्यसेद्वर्णान्न्यासोऽयं स्यात्तृतीयकः ॥२०॥

बाहुमूले बाहुमध्ये मणिबन्धेऽङ्गुलीषु च।
दक्षहस्ते चतुर्थः स्याद्वामबाहौ च पञ्चमः ॥२१॥

दक्षोरुमूलजान्वोश्च गुल्फे चाङ्गुलिषु न्यसेत्।
न्यासः षष्ठोऽयमुदितो वामांघ्रौ सप्तमः स्मृतः ॥२२॥
त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रानिलेषु च।
हृदि ध्यात्वा न्यसेद्वर्णान्न्यासोऽयं चाष्टमः स्मृतः ॥२३॥
शीर्षदेशे मुखे हृत्कजठरोरुषु जङ्घयोः।
पादयोश्च न्यसेद्वर्णान्न्यासोऽयं नवमः स्मृतः ॥२४॥
गण्डयोरंसयोरूर्वोः पादयोश्च ततः परम्।
वामोर्ध्वकरगं चक्रं दक्षेऽधःकरशङ्खकम् ॥२५॥
गदां वै वामोर्ध्वकरे पङ्कजं दक्षहस्तके।
विभूतिपञ्जराख्योऽयं न्यासो दशविधः स्मृतः ॥२६॥

विभूतिपञ्जर के समस्त न्यासों में तार-पुटित मन्त्रवर्णों का तत्तत् स्थानों में न्यास करना चाहिये। उक्त प्रकार से प्रत्येक तार-पुटित मन्त्रवर्णों का क्रमशः मूलाधार, हृदय, मुख, दक्ष भुजा, वाम भुजा, दक्ष ऊरुमूल, वाम ऊरुमूल एवं नाभि में किया गया न्यास प्रथम विभूतिपञ्जर न्यास होता है। द्वितीय विभूतिपञ्जर न्यास में तार-पुटित मन्त्रवर्णों का गला, नाभि, हृदय, दक्ष स्तन, वाम स्तन, दक्ष पार्श्व, वाम पार्श्व एवं पृष्ठ में न्यास किया जाता है। तृतीय तार-पुटित मन्त्रवर्णन्यास मस्तक, मुख, दक्ष-वाम नेत्र, दक्ष-वाम कर्ण, दक्ष-वाम नासापुट में किया जाता है।

एवमेव दक्ष बाहुमूल, दक्ष बाहुमध्य, दक्ष मणिबन्ध एवं अंगुष्ठादि पाँचो अंगुलियों में चतुर्थ विभूतिपञ्जर न्यास; वाम बाहुमूल, वाम बाहुमध्य, वाम मणिबन्ध-सहित पाँचो अंगुलियों में पञ्चम विभूतिपञ्जर न्यास; दक्ष ऊरुमूल, दक्ष जानु, दक्ष गुल्फ-सहित दक्ष पाद के अंगुष्ठादि पाँचों अंगुलियों में षष्ठ विभूतिपञ्जर न्यास; वाम ऊरुमूल, वाम जानु, वाम गुल्फ-सहित वाम पाद के अंगुष्ठादि पाँचों अंगुलियों में सप्तम विभूतिपञ्जर न्यास; हृदय में त्वचा, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र एवं प्राण का ध्यान करते हुये मन्त्रवर्णों का किया गया न्यास अष्टम विभूतिपञ्जर न्यास; शीर्ष, मुख, हृदय, जठर, दोनों ऊरु, दोनों जङ्घा, दोनों पाद में किया गया न्यास नवम विभूतिपञ्जर न्यास एवं दक्ष-वाम कपोल, दक्ष-वाम स्कन्ध, दक्ष-वाम ऊरु, दक्ष-वाम पाद में मन्त्रवर्णों का न्यास करने के उपरान्त वाम ऊर्ध्व कर में चक्र, दक्ष अधःकर में शङ्ख, वाम अधःकर में गदा तथा दक्ष ऊर्ध्व कर में कमल का किया गया न्यास दशम विभूतिपञ्जर न्यास होता है। इस प्रकार यह विभूतिपञ्जर न्यास दस प्रकार का कहा गया है।॥१७-२६॥

क्षित्यप्तेजोमरुद्व्योमाहंमहत्प्रकृतिस्तथा ।
तत्त्वाष्टकमिदं बिन्दुयुग्वर्णाढ्यं तथोक्तवत् ॥२७॥
ङेयुतं हृदयान्तं च स्थानेष्वेतेषु विन्यसेत् ।
पल्लिङ्गहृन्मुखे शीर्षे नेत्रहृद्व्यापकेषु च ॥२८॥
संहारनामा तत्त्वानां न्यासः सृष्टिस्तथा क्रमात् ।

तत्त्व आठ कहे गये हैं—पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार, महत् एवं प्रकृति। संहार तत्त्वन्यास इस प्रकार किया जाता है—ॐ पृथिव्यै नमः लिङ्गे, नं सलिलाय नमः हृदये, मों अग्नये नमः शिरसि, नां वायवे नमः दक्षनेत्रे, रां व्योमाय नमः वामनेत्रे, यं अहंकाराय नमः हृदये, णां महत्तत्त्वाय नमः दक्षपादे, यं प्रकृतये नमः वामपादे। संहार के विपरीत क्रम से सृष्टितत्त्वन्यास होता है। इसमें मन्त्रवर्णों का पाद, लिङ्ग, हृदय, मुख, शीर्ष, नेत्र, हृदय एवं सम्पूर्ण शरीर में क्रमशः न्यास किया जाता है॥२७-२८॥

बिन्दुनादशक्तिशान्तिरूपमात्मचतुष्टयम् ॥२९॥
न्यसेत्पूर्वं तनौ मन्त्री देवताभावसिद्धये ।
मूर्तिपञ्जरविन्यासं प्रणवाद्यं समाचरेत् ॥३०॥
नारायणाय चार्यम्णे अं हृन्मध्ये च नाभिगम् ।
इं माधवाय मित्राय नमः प्रोच्य हृदि न्यसेत् ॥३१॥
ईं गोविन्दाय वरुणाय नमश्चैव गले न्यसेत् ।
उं विष्णवे चांशुमते नमो दक्षिणपार्श्वके ॥३२॥
ऊं मधुसूदनाय च भगाय दक्षिणांसके ।
एं त्रिविक्रमाय विवस्वते हृद्दक्षगण्डके ॥३३॥
ऐं वामनाय चेन्द्राय हृदन्तं वामपार्श्वके ।
ओं श्रीधराय पूष्णे च नमो वामांसके न्यसेत् ॥३४॥
हृषीकेशाय पर्ज्जन्यायौं हृदा वामगण्डके ।
अं पद्मनाभाय त्वष्ट्रे नमो ह्यश्च प्रविन्यसेत् ।
दामोदराय ककुदि सर्गान्तो विष्णवे नमः ॥३५॥

मन्त्रज्ञ साधक को प्रथमतः अपने शरीर में देवताभाव की सिद्धि के लिय विन्दु, नाद, शक्ति एवं शान्ति-रूप आत्मचतुष्टय का न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् आदि में प्रणव का संयोजन कर इस प्रकार मूर्तिपञ्जर न्यास करना चाहिये—

ॐ अं नारायणाय अर्यम्णे नमः नाभौ, ॐ इं माधवाय मित्राय नमः हृदि, ॐ ईं

गोविन्दाय वरुणाय नम: गले, ॐ उं विष्णवे अंशुमते नम: दक्षिणपार्श्वे, ॐ ऊं मधुसूदनाय भगाय नम: दक्षिणांसे, ॐ एं त्रिविक्रमाय विवस्वते नम: दक्षगण्डे, ॐ ऐं वामनाय इन्द्राय नम: वामपार्श्वे, ॐ ओं श्रीधराय पूष्णे नम: वामांसे, ॐ औं हृषीकेशाय पर्जन्याय नम: वामगण्डे, ॐ अं पद्मनाभाय त्वष्ट्रे नम: नासिकायाम्, ॐ अं दामोदराय विष्णवे नम: ककुदि॥२९-३५॥

किरीटहारकेयूरमकराकृतिकुण्डलम्।
शङ्खचक्रगदापद्महस्तं पीताम्बरावृतम्॥३६॥
श्रीवत्साङ्कं लसद्वक्ष:स्थलं श्रीभूमिसंयुतम्।
आत्मज्योति: सम्प्रदीप्तसहस्रादित्यतेजसम्॥३७॥
सम्बुद्ध्योक्त्वा च सर्वाणि तदन्ते च वदेन्नम:।
द्विसप्तत्यक्षरो मन्त्रो व्यापकत्वेन चोदित:॥३८॥

उपर्युक्त समस्त देव किरीट, हार, केयूर एवं मकराकृति कुण्डल धारण किये हुये हैं; उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा एवं पद्म विराजमान हैं; वे पीत वस्त्र से आवृत हैं; लक्ष्मी एवं भूमि से संयुक्त उनका वक्ष:स्थल श्रीवत्स-चिह्न से शोभायमान है; स्वयंज्योति से सम्यक् रूप से प्रदीप्त हजारो सूर्य के तेज से वे सभी युक्त हैं। इस प्रकार उन सबका चिन्तन करते हुये समस्त देवताओं के सम्बुद्ध्यन्त नाम के अन्त में 'नम:' लगाकर बनाये गये बहत्तर अक्षरों के मन्त्र का उच्चारण करके व्यापक न्यास करना चाहिये॥३६-३८॥

अत: परं प्रवक्ष्यामि तत्त्वानाञ्च मनूत्तमम्।
तारोक्त्या खादिकान् वर्णान् सबिन्दून् हृदयान्तकान्॥३९॥
परायेति पदस्यान्तेऽमुकतत्त्वात्मने नम:।
उक्त्वा ह्यमुं न्यसेत्पश्चात्तत्त्वनामस्थलानि तु।
जीवं प्राणं सर्वतनौ न्यसेदेवं द्वयं बुध:॥४०॥
बुद्ध्यहङ्कारमनसां हृदि तत्त्वत्रयं न्यसेत्।
मस्तकाननहृद्गुह्यपादांसेषु च वै क्रमात्॥४१॥
शब्दस्पर्शरूपरसगन्धतत्त्वानि विन्यसेत्।
श्रोत्रत्वगक्षिजिह्वाख्यघ्राणानां तत्त्वपञ्चकम्॥४२॥
कर्णयो: सकलाङ्गाक्षिजिह्वाघ्राणेषु विन्यसेत्।
वाक्पाणिपायुपादाख्योपस्थानां तत्त्वपञ्चकम्॥४३॥

मुखे पाण्योः पादयोश्च गुदे लिङ्गे न्यसेत्क्रमात्।
आकाशवायुतेजांसि जलक्ष्मातत्त्वपञ्चकम् ॥४४॥
मूर्ध्नि वक्त्रे च हृदये न्यसेल्लिङ्गे च पादयोः।
ततस्तु हृदये न्यस्येन्मण्डलत्रितयं पुनः ॥४५॥
सूर्यसोमकृशानूनामर्कषोडशदिक्कलम्।
हंसरं वर्णपूर्वं च योजयित्वा च पूर्ववत् ॥४६॥

अब मैं तत्त्वों के उत्तम मन्त्रों को कहता हूँ। पहले ॐ, उसके बाद नमः अन्त वाले बिन्दु-सहित तत्त्वनाम, तब अमुकपरतत्त्वात्मने नमः कहकर इन मन्त्रों से तत्त्वनामस्थलों में न्यास करना चाहिये। विद्वान् साधक को जीव एवं प्राणतत्त्व का मन्त्रोच्चार-पूर्वक सर्वाङ्ग में न्यास करना चाहिये (ॐ जीवपरतत्त्वात्मने नमः सर्वाङ्गे, ॐ प्राणपरतत्त्वात्मने नमः सर्वाङ्गे)। बुद्धि, अहंकार एवं मन—इन तीन तत्त्वों का तत्तत् मन्त्रों से हृदय में न्यास करना चाहिये। मस्तक, मुख, हृदय, गुह्य, पाद एवं कन्धों में क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध—इन पाँच तत्त्वों का मन्त्रोच्चार-पूर्वक न्यास करना चाहिये। दोनों कान, सर्वाङ्ग, नेत्र, जिह्वा एवं नासाछिद्र में श्रोत्र, त्वक्, अक्षि, जिह्वा एवं घ्राण—इन पाँच तत्त्वों का तत्तत् मन्त्रों का उच्चारण करते हुये न्यास करना चाहियें। वाक्, पाणि, पायु, पाद एवं उपस्थ—इन पाँच तत्त्वों का उनके नाममन्त्रों से क्रमशः मुख, हाथ, पैर, गुदा एवं लिङ्ग में न्यास करना चाहिये। आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी—इन पाँच तत्त्वों का क्रमशः मूर्धा, मुख, हृदय, लिङ्ग एवं पैरों में न्यास करना चाहिये। इसके बाद बारह कला-युक्त सूर्य, सोलह कला-युक्त सोम एवं दस कला-युक्त अग्निमण्डल के पूर्व पूर्ववत् 'हंसरं' लगाकर तीनों मण्डलों का हृदय में न्यास करना चाहिये॥३९-४६॥

ततः कुर्याद्वासुदेवादिकं न्यासं स उच्यते।
न्यसेदोंखाङ्नमः प्रोक्ता पराय परमेष्ठिने ॥४७॥
वासुदेवेति तत्त्वात्मने नमो मस्तके मतम्।
तारो यं नम इत्युक्त्वा पुरुषायपदं वदेत् ॥४८॥
सङ्कर्षणेति तत्त्वात्मने नमश्च मुखे न्यसेत्।
ॐ रं नमः परायेति निवृत्तिं ङेऽन्तनामनि ॥४९॥
रुद्धतत्त्वात्मने प्रोच्य नमोऽन्तं व्यञ्जने न्यसेत्।
ॐ लं नमः परायेति शर्वायेति पदं वदेत् ॥५०॥
नारायणाय तत्त्वात्मने नमः पादयोर्न्यसेत्।
ॐ क्ष्रौं नमः परायेति नृसिंहाय पदं वदेत् ॥५१॥

कोपतत्त्वात्मने हृच्च सर्वाङ्गे व्यापकं चरेत्।
एवं विन्यस्य विधिवत्साक्षान्नारायणो भवेत् ॥५२॥

ज्वररोगाभिचाराद्या भूताद्या यान्ति सङ्क्षयम्।
वैष्णवीर्दर्शयेन्मुद्राः पूर्वोक्ताश्च ततः परम् ॥५३॥

किरीटमनुना दद्यात्स्वके पुष्पाञ्जलित्रयम्।

तत्पश्चात् इस प्रकार वासुदेवादि न्यास करना चाहिये—'ॐ खां नमः पराय परमेष्ठिने वासुदेवतत्त्वात्मने नमः' से मस्तक में, 'ॐ यं नमः पराय पुरुषाय सङ्कर्षणतत्त्वात्मने नमः' से मुख में, 'ॐ रं नमः पराय निवृत्त्यै अनिरुद्धतत्त्वात्मने नमः' से व्यञ्जन (दाढ़ी-मूँछ) में, 'ॐ लं नमः पराय शर्वाय नारायणतत्त्वात्मने नमः' से पैरों में न्यास करने के बाद 'ॐ क्ष्रौं नमः पराय नृसिंहाय कोपतत्त्वात्मने नमः' से सर्वाङ्ग में व्यापक न्यास करना चाहिये। इस प्रकार विधिवत् न्यास करके साधक साक्षात् नारायण-स्वरूप हो जाता है; साथ ही इस न्यास के प्रभाव से ज्वर, रोग, अभिचार, भूत आदि विनष्ट हो जाते हैं।

इसके बाद पूर्वकथित वैष्णवी मुद्राओं का प्रदर्शन करने के पश्चात् किरीट मन्त्र से तीन पुष्पाञ्जलि प्रदान करनी चाहिये॥४७-५३॥

ऊर्ध्वं चाधो दक्षभेदाद् घण्टां च कमलं गदाम् ॥५४॥

शङ्खं चक्रं सूर्यकान्तिं पार्श्वयोर्धरणीं रमाम्।
केयूरहारमुकुटं सपीताम्बरकुण्डलम् ॥५५॥

कौस्तुभोद्भिन्नहृदयं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्।
नवशक्तिसमायुक्ते पीठे देवं यजेत्ततः ॥५६॥

विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रियायोगा तथैव च।
प्रभा सत्या तथेशानानुग्रहा नव शक्तयः ॥५७॥

तदनन्तर ऊपर वाले बाँयें हाथ में घण्टा और कमल एवं नीचे वाले बाँयें हाथ में गदा, ऊपर वाले दाँयें हाथ में शंख और चक्र तथा नीचे वाले दाँयें में सूर्यतेज; साथ ही दोनों पार्श्वों में पृथिवी एवं रमा को धारण करके केयूर, हार, मुकुट, पीताम्बर एवं कुण्डल से अलंकृत; कौस्तुभमणि से प्रकाशित हृदय वाले; वक्षःस्थल पर श्रीवत्स-चिह्न वाले देव का विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रभा, सत्या, ईशाना एवं अनुग्रहा—इन नव शक्तियों से समन्वित पीठ पर पूजन करना चाहिये॥५४-५७॥

तारो नमो भगवते विष्णवे पदमुच्चरेत्।
सर्वात्मने वासुदेवाय साक्षिणे पदमुच्चरेत् ॥५८॥

सर्वात्मने योगपीठपद्मपीठात्मने नमः ।
पीठमन्त्रः समाख्यातः सप्तत्रिंशद्भिरक्षरैः ॥५९॥

अनेन पीठं सम्पूज्य देवमावाहयेत्ततः ।
तुभ्यं तमभिधास्यामि मन्त्रमावाहनस्य च ॥६०॥

एह्येहि भगवन्देव लोकानुग्रहकारक ।
यज्ञभागं गृहाण त्वं वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥६१॥

आवाह्य तत्र विधिवदुपचारैर्यथोदितैः ।

सैंतीस अक्षरों का पीठमन्त्र है—ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वात्मने वासुदेवाय साक्षिणे सर्वात्मने योगपीठपद्मपीठात्मने नमः। इस मन्त्र से पीठ का पूजन करने के उपरान्त 'तुभ्यं तमभिधास्यामि' इस आवाहन मन्त्र से देव का आवाहन करना चाहिये। तत्पश्चात् 'एह्येहि भगवन्देव लोकानुग्रहकारक, यज्ञभागं गृहाण त्वं वासुदेव नमोऽस्तु ते' इस मन्त्र से आवाहन करने के बाद वहीं पर यथोक्त उपचारों से विधिवत् यजन करना चाहिये॥५८-६१॥

कर्णिकायां यथास्थानं यजेदङ्गानि पूर्ववत् ॥६२॥

केशरेषु यजेत्पश्चान्मन्त्रवर्णान् यथोदितान् ।
दिक्पत्रेष्वर्चयेद्वासुदेवं सङ्कर्षणं तथा ॥६३॥

प्रद्युम्नमनिरुद्धं च कम्ब्वब्जारिगदाधरान् ।
गौरहारिद्रकृष्णाख्यशुक्लनीलनिभान् क्रमात्॥६४॥

शान्तिं क्षिप्रां भारतीं च शक्तिं कोणेषु पूजयेत् ।
शुक्लस्वर्णपयःश्यामसङ्काशाश्चारुभूषणाः ॥६५॥

अब्जं चक्रं दरं चैव गदां पीताम्बरं तथा ।
अर्चेन्मुसलखड्गौ च वनमालां दलाग्रतः ॥६६॥

भूपुरे प्रागिमे पूज्याः खगः कृष्णोऽरुणो विराट् ।
अतः शङ्खनिधिपद्मनिधी रक्तोऽथ रक्तभाक् ॥६७॥

ईषच्छ्यामो बाणदुर्गौ विष्वक्सेनो निशानिभः ।
आग्नेयादिदलेष्वेते पूज्याश्चाग्रे दिगीश्वराः ॥६८॥

तदग्रे हेतयश्चेति षडावरणपूजनम् ।

इसके बाद यन्त्र की कर्णिका में यथास्थान पूर्ववत् षडङ्ग-पूजन करने के पश्चात् केशरों में मन्त्र के पूर्वपठित आठ अक्षरों (ॐ नमो नारायणाय) का पूजन करना

चाहिये। इसके बाद अष्टदल कमल के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर वाले दलों में क्रमशः शंखधारी वासुदेव, पद्मधारी संकर्षण, चक्रधारी प्रद्युम्न एवं गदाधारी अनिरुद्ध का पूजन करना चाहिये। ये चारो क्रमशः हल्दी-सदृश गौर, कृष्ण, शुक्ल एवं नील वर्ण वाले हैं। अष्टदल के अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान कोण-स्थित दलों में शान्ति, क्षिप्रा, भारती एवं शक्ति का पूजन करना चाहिये। सुन्दर आभूषणों से विभूषित ये सभी क्रमशः शुक्ल, स्वर्ण, दुग्ध एवं श्याम वर्ण वाली हैं। अष्टदलों के अग्रभाग में कमल, चक्र, शङ्ख, गदा, पीताम्बर, मुसल, खड्ग एवं वनमाला का अर्चन करना चाहिये।

भूपुर में सर्वप्रथम आग्नेयादि कोणों में क्रमशः काले एवं लाल रंग के विराट् गरुड, सुन्दर शङ्खनिधि, थोड़े रक्त वर्ण वाले पद्मनिधि एवं रात्रि-सदृश थोड़े श्याम वर्ण वाले तेजःपुञ्ज-स्वरूप विष्वक्सेन का पूजन करने के बाद इन्द्रादि दश दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार छः आवरणों में यह पूजन सम्पन्न होता है॥६२-६८॥

नारायणस्य गायत्रीं ब्रवीम्येकमनाः शृणु ॥६९॥
नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि ।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥७०॥

क्षत्रियादेस्तु संस्कारं प्राग्वत्कुर्यात्तथाऽनया ।
योग्यः स्याद्विष्णुदीक्षायां द्विजवत्पापवर्जितः ॥७१॥

दन्तलक्षं जपेन्मन्त्रं त्रिमध्वक्तैः सरोरुहैः ।
जुहुयात्तर्पयेत्कृष्णाचन्द्रं च केशराम्बुभिः ॥७२॥

मार्जनान्ते सदाचारान् भोजयेद्वैष्णवान् द्विजान् ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगन्तु समाचरेत् ॥७३॥

अब नारायणगायत्री को कहता हूँ; सावधान होकर श्रवण करो। 'नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्' यह नारायणगायत्री है। इस नारायण गायत्री द्वारा क्षत्रिय आदि का पूर्ववत् संस्कार करने से वे पापरहित होकर ब्राह्मण के समान विष्णु-दीक्षा के योग्य हो जाते हैं।

पुरश्चरण-हेतु इस दण्ड़गायत्री का बत्तीस लाख जप करने के पश्चात् त्रिमधु-सिक्त कमल से हवन करना चाहिये। अगुरु, कर्पूर एवं केशर-युक्त जल से तर्पण-मार्जन करने के बाद सदाचारी वैष्णव ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार से सिद्ध किये गये मन्त्र से प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये॥६९-७३॥

सायुधाष्टभुजं सौम्यं सर्वाङ्गधवलद्युतिम् ।
सम्मुखीकरणे ध्यायेद्विष्णुं गरुडगामिनम् ॥७४॥

एवमेव हरिं ध्यायेद्भोगः संसारकर्मभिः।
दधिमध्वाज्ययुक्ताश्च चतुरङ्गुलसम्मिताः।
गुडूचीरयुतं हुत्वा मृत्युमेवातितर्जयेत् ॥७५॥
शनैश्चरदिनेऽश्वत्थं सम्यगालभ्य पाणिना।
जपेदष्टोत्तरशतं स भवेदपमृत्युजित् ॥७६॥
पञ्चविंशमितं जप्त्वा मन्त्री शुद्धाः पिबेदपः।
निरस्तपातको भूत्वा नीरोगो ज्ञानवान् भवेत् ॥७७॥
जप्त्वायुतं च कुम्भाद्भिः सेचनं सर्वरोगनुत्।
जपित्वा यस्तु भुञ्जानो धीमानारोग्यवान् भवेत् ॥७८॥
चन्द्रसूर्योपरागे तु त्रिदिनं दिनमेव च।
उपोष्याष्टसहस्रन्तु स्पृष्ट्वा शालीन् घृतं जपेत्।
यः पिबेल्लभते मेधां कविताबोधनं च सः ॥७९॥
बिल्वैरयुतहोमेन सद्यो धनपतिर्भवेत्।
पद्मतन्तुमयं सूत्रमयुतेनाभिमन्त्रितम्।
धारयेद्दक्षिणे हस्ते सर्वतः स्यात्सुरक्षितः ॥८०॥
एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तमन्ते मन्त्राष्टकं शृणु।

प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिये आयुध-सहित आठ भुजाओं वाले, सौम्य स्वरूप वाले, सर्वाङ्ग धवल कान्ति वाले, गरुड़ वाहन वाले विष्णु का ध्यान करना चहिये। सांसारिक कर्मों के भोग-हेतु भी इसी प्रकार का ध्यान करना चाहिये।

दधि, मधु एवं गोघृत-सिक्त चार अंगुल लम्बे गुरुचखण्डों से दस हजार हवन करने वाला साधक मृत्यु को भी अत्यधिक दूर कर देता है। शनिवार के दिन पीपल वृक्ष को सम्यक् रूप से हाथ से स्पर्श करके मन्त्र का एक सौ आठ जप करने वाला साधक अपमृत्यु को जीत लेता है। इस मन्त्र के पच्चीस जप द्वारा शुद्ध किये गये जल को पीने वाला साधक निष्पाप होकर निरोगी और ज्ञानी हो जाता है। दस हजार मन्त्रजप से अभिमन्त्रित कलश-जल से स्नान करने पर सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। इस मन्त्र का जप करके भोजन करने वाला साधक बुद्धिमान एवं स्वस्थ होता है।

चन्द्र एवं सूर्यग्रहण के समय तीन दिनों तक उपवास करके शालि (चावल) और घृत को स्पर्श करके प्रतिदिन एक हजार बार मन्त्रजप करके जो उस घृत का पान करता है, वह साधक मेधावी एवं कवित्व शक्ति-सम्पन्न हो जाता है।

बेल से दस हजार हवन करने वाला साधक तत्क्षण धनपति हो जाता है।

कमलतन्तु से निर्मित सूत्र (धागा) को दाहिने हाथ में धारण करने वाला साधक सर्वतः सुरक्षित रहता है। इस प्रकार संक्षेप में दण्डगायत्री का वर्णन किया गया; अब मन्त्राष्टक का श्रवण करो।।७४-८०।।

एते ह्यष्टौ मन्त्रवर्णा मन्त्राष्टकमुदीर्यते ।।८१।।
छन्दर्षिदेवताश्चैषां ध्यानाद्यं च वदामि ते।
गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रः क्रमेण च।
जमदग्निर्वसिष्ठश्च कश्यपोऽत्रिर्घटोद्भवः ।।८२।।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च।
त्रिष्टुप् च जगती चैव विराट् छन्दांस्यनुक्रमात् ।।८३।।
धरा ध्रुवस्तथा सोम आपोऽग्निर्वायुरेव च।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च विज्ञेया देवताः क्रमात् ।।८४।।
अग्निर्भूर्वायुराकाश आदित्यो द्यौर्विधुश्च ते।
तत्त्वानि सप्त लोकास्तु क्षेत्राणि खचरात्मकाः ।।८५।।
शुक्ले हिरणमयं कृष्णं रक्तं कुङ्कुमसन्निभम्।
पद्मकिञ्जल्कनीलाभं रक्तवर्णाष्टको मतः ।।८६।।

मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) के आठ वर्णों को मन्त्राष्टक कहा जाता है। इन आठ मन्त्रों के ऋषि, छन्द, देवता, ध्यान आदि को मैं तुमसे कहता हूँ। इन आठ मन्त्रों के ऋषि क्रमशः गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि और अगस्त्य कहे गये हैं। छन्द क्रमशः गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती एवं विराट् हैं। देवता क्रमशः धरा, ध्रुव, सोम, जल, अग्नि, वायु, प्रत्यूष और प्रभास कहे गये हैं। अग्नि, पृथिवी, वायु, आकाश, आदित्य, अन्तरिक्ष, चन्द्र और जल—ये आठ तत्त्व होते हैं। इनके क्षेत्र आकाशचारी भूः भुवः स्वः महः जनः तपः एवं सत्य—ये सात लोक हैं। श्वेत, स्वर्णिम, कृष्ण, रक्त, कुङ्कुम-सदृश, कमलकेशर-सदृश, नीलाभ एवं रक्त—ये आठ वर्ण कहे गये हैं।।८१-८६।।

षडाद्ययोरुदात्तः स्यात्स्वरितस्तु द्वितीययोः ।
प्रचयस्त्रिचतुर्वर्णैर्निहतं पञ्चमाक्षरम् ।।८७।।
उदात्तं सप्तमं चेति ज्ञात्वा वेदं जपेन्मनुम् ।
दधच्चक्रं गदां पद्मं दरं दक्षिणवामयोः ।
सान्तराः स्युः शङ्खचक्रगदापद्मकराः क्रमात् ।।८८।।

यां मूर्तिं पूजयेत्पूर्वमन्यास्तस्या भवन्ति हि।
अङ्गान्यन्तिमपत्रे तु मध्यस्थं पुनरर्चयेत् ॥८९॥
तत्र प्रणवपूजायां चाङ्गावृत्तिस्तथादिमा।
द्वितीयावरणं प्रोक्तमन्त्रवर्णाष्टमूर्तिभिः ॥९०॥
वासुदेवादिकैः शान्त्यादिसंयुक्तैस्तृतीयकम्।
तृतीयेऽष्टदले प्रोक्ता रतिश्चापि धृतिस्तथा ॥९१॥
कान्तिस्तुष्टिश्च पुष्टिश्च स्मृतिदीप्त्याख्यकीर्तयः।
वज्रादिभिश्चतुर्थी स्यात्प्राग्वत्षष्ठी सपञ्चमी ॥९२॥

इस मन्त्र के आद्य छः वर्ण उदात्त हैं। दूसरे से आगे के वर्ण स्वरित् हैं। तीसरा, चौथा एवं पाँचवाँ उदात्त है। सातवाँ भी उदात्त है। इस प्रकार उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित् का ज्ञान करके मन्त्र का जप करना चाहिये।

क्रमशः दाँयें एवं बाँयें हाथों में चक्र, गदा, पद्म एवं शङ्ख धारण की हुई प्रथम मूर्ति है। दूसरी मूर्ति शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण की हुई है। इसी प्रकार समस्त मूर्तियाँ क्रमशः आयुध धारण की हुई हैं।

जिस मूर्ति की पहले पूजा की जाती है, उससे अतिरिक्त शेष मूर्तियाँ उससे भिन्न स्वरूप वाली होती हैं। अन्तिम पत्र में अङ्गों का पूजन करना चाहिये। इसके बाद पुनः मध्य में स्थित मूर्ति का पूजन करना चाहिये।

इसके पूजन में प्रथम आवरण में कर्णिका में प्रणव-सहित षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। द्वितीय आवरण में आठ मूर्तियों सहित मन्त्रवर्णों का पूजन करना चाहिये। शान्ति आदि से संयुक्त वासुदेवादि का तृतीय आवरण में पूजन करना चाहिये। तृतीय आवरण में ही अष्टदल में रति, धृति, कान्ति, तुष्टि, पुष्टि, स्मृति, दीप्ति एवं कीर्ति का पूजन करना चाहिये। चतुर्थ आवरण में वज्रादि की पूजा की जाती है। पञ्चम एवं षष्ठ आवरण का पूजन पूर्ववत् किया जाता है॥८७-९२॥

मोकारावृत्तिपूजायां तृष्णावृत्तिचतुष्टयम्।
नाकारावृत्तिपूजायामावृत्तित्रयपूजने ॥९३॥
राकारावृत्तिपूजायां तुल्यमेवावृतिद्वयम्।
तृतीयावरणे पूज्या श्रीर्माया च मनोन्मनी ॥९४॥
ह्रीर्मोहिनी महामाया रमाद्या आवृतित्रयम्।
यवर्णमूर्तिपूजायां तुल्यमेवावृतिद्वयम्॥९५॥

तृतीयावरणे चक्रं शङ्खश्चापि गदा हलः ।
शार्ङ्गं च मुसलं खड्गस्त्रिशूलमिति पूजनम् ।
णाकारमूर्तिपूजायां प्राग्वदावरणद्वयम् ॥९६॥

तृतीयेऽष्टदलेऽनन्तो वासुकिस्तक्षकस्तथा ।
कर्कोटकस्तथा पद्मो महापद्मस्ततः परम् ।
शङ्खपालश्च कुलिकः प्रोक्तमत्रावृतिद्वयम् ॥९७॥

यकारमूर्तिपूजायामङ्गैः स्यात्प्रथमावृतिः ।
वासुदेवादिभिः शान्त्यादियुक्तै रमया मता ॥९८॥

तृतीयार्कदले कोणे वाद्यांश्चैव प्रपूजयेत् ।
चतुर्थ्यामष्टपत्रे तु वज्रादीनां समर्चनम् ॥९९॥

पञ्चम्यां दिग्दलेष्वर्च्या मत्स्याद्या ह्यवतारकाः ।
षष्ठ्यामिन्द्रादिकाश्चाग्रे तदस्त्राणीति पूजनम् ॥१००॥

जपेत्षोडशलक्षाणि हुनेदत्र तु पूर्ववत् ।
इह लोके सुखं प्राप्य विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥१०१॥

मोकार की मूर्तिपूजा में चार आवरण-पूजन होता है। नाकार की मूर्तिपूजा में तीन आवरण-पूजन होता है। राकार-मूर्तिपूजा में दो आवरण-पूजन होता है। तृतीय आवरण में श्री, माया, मनोन्मनी, ह्री, मोहिनी, महामाया, रमा आदि का तीन आवृत्ति में पूजन होता है। यवर्ण के मूर्ति-पूजन में दो आवरण होते हैं। तृतीय आवरण में चक्र, शङ्ख, गदा, हल, शार्ङ्ग, मुसल, खड्ग एवं त्रिशूल का पूजन होता है। णाकार-मूर्तिपूजा में पूर्ववत् दो आवरण होते हैं। तृतीय अष्टदल में अनन्त, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शङ्खपाल एवं कुलिक का पूजन दो आवरणों में होता है।

यकार-मूर्ति के पूजन में प्रथम आवरण में अङ्गपूजन होता है। द्वितीय आवरण में शान्ति आदि चार के साथ वासुदेवादि चार का पूजन होता है। तृतीय आवरण का पूजन पूर्वादि क्रम से दलों में और कोणदलों में दिक्पालों का पूजन होता है। चतुर्थ आवरण में वज्रादि दश आयुधों का पूजन होता है। पञ्चम आवरण में अष्टदल में मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध एवं कल्कि का पूजन होता है। षष्ठ आवरण में इन्द्रादि दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन होता है।

इस प्रकार पूजन सम्पन्न करने के पश्चात् मन्त्र का सोलह लाख जप करने के बाद पूर्ववत् हवन करने वाला साधक जीवन-पर्यन्त इस संसार में सुख-भोग कर शरीरान्त होने पर विष्णु का सायुज्य प्राप्त करता है॥९३-१०१॥

नारायणमन्त्रविधानम्

अथान्यं मुक्तिदं वक्ष्ये नारायणमनुं परम्।
नारायणस्य चरणौ शरणं च ततो वदेत्॥१०२॥
प्रपद्ये तारमुच्चार्य श्रीमन्नारायणाय च।
नमो जिनार्णको मन्त्रो मुन्याद्यं पूर्ववन्मतम्॥१०३॥
षड्दीर्घयुक्तकामेन षडङ्गविधिरस्य तु।
ध्यानपूजाप्रयोगादि पूर्ववत्परिकीर्तितम्॥१०४॥

नारायण का अन्य मन्त्र—अब मैं नारायण के दूसरे मुक्ति-प्रदायक मन्त्र को कहता हूँ। चौबीस अक्षरों का वह मन्त्र है—नारायणस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ॐ श्रीमन्नारायणाय नमः। इस मन्त्र के ऋषि आदि पूर्ववत् कहे गये हैं। छः दीर्घ स्वर-युक्त कामबीज (क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः) से इसकी षडङ्गविधि की जाती है। इसके ध्यान, पूजन, प्रयोग आदि पूर्ववत् कहे गये हैं॥१०२-१०४॥

माधवमन्त्रविधानम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि माधवस्य महामनुम्।
क्षिप्रसिद्धिकरः काश्यां यद्वासौ ध्रुवपूर्वकः॥१०५॥
रमां बिन्दुपदं चोक्त्वा माधवाय नमो नमः।
द्वादशार्णो महामन्त्रः पञ्चाङ्गानि क्रमात्पदैः॥१०६॥
शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरावृतम्।
बद्धाञ्जली रमा वामे वादयन्ती च वल्लकीम्॥१०७॥
नारदस्तुम्बुरुर्दक्षभागे तैरपि संयुतम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेद्वरदानसमुद्यतम्॥१०८॥
पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे मध्ये लक्ष्म्या समावृतम्।
पञ्चाङ्गपूर्वमभ्यर्च्य यजेदष्टदले क्रमात्॥१०९॥
किरणां धूतपापां च यमुनां च सरस्वतीम्।
गङ्गामसीं च वरुणां गण्डकीं च दलाष्टके॥११०॥
विदुरं नारदं भीष्मं दिवोदासार्जुनौ बलिम्।
विभीषणं च प्रह्लादं बाह्ये षोडशपत्रके॥१११॥
मोदं प्रमोदं सुमुखं दुर्मुखं गणनायकम्।
ढुण्ढिराजं विशालाक्षं ढुण्ढिभैरवमीश्वरम्॥११२॥

साम्बादित्यं योगिनीं च दण्डपाणिं विनायकम्।
जैनेन्द्रं च महामायं भूपुरे दिक्पतीनपि ॥११३॥
दन्तलक्षं जपेन्मन्त्रं होमं प्राग्वत्समाचरेत्।
शान्त्यादिगुणसम्पन्नो धनवान् मुक्तिभाग्भवेत् ॥११४॥

माधव-मन्त्र—अब मैं माधव के महामन्त्र को कहता हूँ; यह मन्त्र काशी में शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाला है। बारह अक्षरों का यह महामन्त्र इस प्रकार है—ॐ श्रीं विन्दुमाधवाय नमो नमः। मन्त्र के पाँच पदों से इसका पञ्चाङ्गन्यास किया जाता है। इसका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—वे बिन्दुमाधव शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये हुये हैं, पीत वस्त्र से आवृत हैं, वाम भाग में अञ्जलिबद्ध वीणा-वादन करती हुई रमा एवं दक्षभाग में नारद तथा तुम्बुरु (गन्धर्व) से समन्वित हैं, उनका मुख प्रसन्न है एवं वे वर प्रदान करने के लिये सन्नद्ध हैं।

पूर्वोक्त पीठ के मध्य में लक्ष्मी से समन्वित माधव का पूजन करना चाहिये। प्रथमतः कर्णिका में पञ्चाङ्ग-पूजन करने के उपरान्त अष्टदल के आठ दलों में क्रमशः किरणा, धूतपापा, यमुना, सरस्वती, गंगा, असी, वरुणा एवं गण्डकी का पूजन करने के बाद दलो के बाहर विदुर, नारद, भीष्म, दिवोदास, अर्जुन, बलि, विभीषण एवं प्रह्लाद का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर षोड़शदल कमल के सोलह पत्रों में क्रमशः मोद, प्रमोद, सुमुख, दुर्मुख, गणेश, ढुण्ढ़िराज, विशालाक्ष, ढुण्ढि, भैरव, ईश्वर, साम्बादित्य, योगिनी, दण्डपाणी, विनायक, जैनेन्द्र एवं महामाया का पूजन करने के पश्चात् भूपुर में दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।

इस प्रकार सम्यक् रूप से पूजन करने के उपरान्त मन्त्र का बत्तीस लाख जप सम्पन्न करने के बाद पूर्ववत् हवन करने वाला साधक इस लोक में शान्ति आदि गुणों से सम्पन्न एवं धनवान रहकर शरीरान्त होने पर मोक्ष का अधिकारी होता है॥१०५-११४॥

गोविन्दमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गोविन्दस्य परं मनुम्।
गोविन्दाय नमश्चेति षडर्णो मनुरीरितः ॥११५॥
शौनकोऽस्य मुनिश्छन्दो विराड्गोविन्द ईश्वरः।
षडङ्गं मन्त्रवर्णैः स्यात्सर्वेण व्यापकं चरेत् ॥११६॥
शङ्खचक्रगदापद्मधरं ध्यायेत्किरीटिनम्।
गरुडोपरि संस्थं च सनकाद्यैरुपासितम् ॥११७॥

लक्ष्मीधराभ्यां सहितमुद्यदादित्यकुण्डलम् ।
लोकरक्षाकरं दिव्यं दिव्यमाल्यानुलेपनम् ॥११८॥

पूर्वोदिते यजेत्पीठे वैष्णवेनोक्तवर्त्मना ।
देवमावाह्य मन्त्राङ्गैः प्रथमावृतिरीरिता ॥११९॥

चक्राद्यैश्च द्वितीया स्यात्तृतीया सनकादिभिः ।
सनकः स्यात्ततोऽप्यग्रे सनन्दनसनातनौ ॥१२०॥

सनत्कुमारश्च पराशरो व्यासश्च नारदः ।
शौनकोऽष्टम एव स्याच्चतुर्थी लोकपालकैः ॥१२१॥

तदायुधैः पञ्चमी स्यादेवं पूजा समीरिता ।

गोविन्द-मन्त्र—अब मैं गोविन्द के श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ; छः अक्षरों का वह मन्त्र है—गोविन्दाय नमः। इस षडक्षर मन्त्र के ऋषि शौनक, छन्द विराट् एवं देवता गोविन्द कहे गये हैं। मन्त्र के छः वर्णों से इसका षडङ्गन्यास करने के बाद सम्पूर्ण मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिये।

तदनन्तर हाथों में शंख, चक्र, गदा एवं पद्म तथा शीर्ष पर मुकुट धारण किये हुये, गरुड़ पर विराजमान, सनक आदि मुनियों द्वारा उपासित, लक्ष्मी एवं पृथिवी से समन्वित, सूर्यकिरणों के सदृश कुण्डल धारण किये हुये, अलौकिक माला एवं अनुलेप से मनोहर, समस्त लोक की रक्षा करने वाले गोविन्द का ध्यान करना चाहिये।

तत्पश्चात् पूर्वोक्त पीठ पर वैष्णवमार्ग के अनुसार पूजन करना चाहिये। देव का आवाहन करके यन्त्रमध्य में अर्चन करने के आद प्रथम आवरण में षडङ्ग पूजन किया जाता है। अनन्तर द्वितीय आवरण में अष्टदल के आठ दलों में चक्र, शङ्ख, गदा, पद्म, कौस्तुभ, मुसल, खड्ग एवं वनमाला का पूजन करने के उपरान्त तृतीय आवरण में आठ दलों के आगे सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, पराशर, व्यास, नारद एवं शौनक का पूजन करना चाहिये। इसके बाद चतुर्थ आवरण में भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों का यजन करके पञ्चम आवरण में वज्रादि दश आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार इनका पूजन कहा गया है॥११४-१२१॥

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेद् घृतैः ॥१२२॥

तर्पणं मार्जनं कुर्याद् ब्राह्मणानपि भोजयेत् ।
एवं कृतप्रयोगस्य रोगनाशो भविष्यति ॥१२३॥

कन्यार्थी लाजहोमेन लक्ष्म्यर्थी बिल्वहोमतः ।
वस्त्रार्थी पुष्पहोमेन आरोग्यार्थी तिलैर्हुनेत् ॥१२४॥

रविवारे जले स्थित्वा नाभिमात्रे जपेद् बुधः ।
अष्टोत्तरसहस्राणि ज्वरनाशो भवेद् ध्रुवम् ॥१२५॥

विवाहार्थं जपेन्मासं शशिमण्डलसन्निभम् ।
ध्यायेल्लभेद्रमां कन्यां कुलीनां च कुटुम्बिनीम् ॥१२६॥

सविधि पूजन करने के उपरान्त गोविन्द-मन्त्र का एक लाख जप करने के बाद घृत से कृत जप का दशांश (दश हजार) हवन सम्पन्न करके यथाविधि तर्पण एवं मार्जन करने के पश्चात् ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार सिद्ध मन्त्र से प्रयोग करने पर रोगों का नाश होता है।

विवाहार्थ कन्या-प्राप्ति की कामना वाले को धान के लावा से, सम्पत्ति की कामना वाले को बिल्वफल से, वस्त्र चाहने वाले को पुष्प से एवं आरोग्य की कामना वाले को तिल से हवन करना चाहिये।

विद्वान् साधक यदि रविवार के दिन नाभि-पर्यन्त जल में स्थिर खड़ा होकर मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करता है तो निश्चित ही ज्वर का विनाश हो जाता है।

विवाह की कामना से यदि एक मास तक चन्द्रमण्डल-समान कन्या का ध्यान करते हुये साधक द्वारा इस मन्त्र का जप किया जाता है तो वह साधक अत्यन्त सुन्दर, कुलीन एवं कुटुम्बों वाली कन्या को प्राप्त करता है॥१२२-१२६॥

विष्णुमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि विष्णुमन्त्रं महाद्भुतम् ।
विष्णवे नम इत्येष मन्त्रः पञ्चाक्षरो मतः ॥१२७॥

नारदोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्री विष्णुरीश्वरः ।
पञ्चवर्णैः समस्तेन षडङ्गविधिरीरितः ॥१२८॥

शङ्खचक्रगदापद्मधरं लक्ष्मीसमावृतम् ।
पीताम्बरं घनश्यामं ध्यायेत्तं भूषणान्वितम् ॥१२९॥

विष्णु-मन्त्र—अब मैं विष्णु के अत्यन्त अद्भुत मन्त्र को कहता हूँ; पाँच अक्षरों का वह मन्त्र है—विष्णवे नमः। इस पञ्चाक्षर मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री एवं देवता विष्णु कहे गये हैं। मन्त्र के पाँच वर्णों से पाँच अङ्गों में न्यास करके सम्पूर्ण मन्त्र से व्यापक न्यास करने से इसका षडङ्गन्यास सम्पन्न होता है। इस मन्त्र की उपासना-हेतु शंख, चक्र, गदा एवं पद्मधारी, लक्ष्मी से समन्वित, पीत वस्त्रधारी, मेघ-सदृश श्याम वर्ण वाले तथा आभूषणों से सुसज्जित विष्णु का ध्यान करना चाहिये॥१२७-१२९॥

पूर्वोक्ते च यजेत्पीठे षट्कोणाष्टदलान्विते।
बलिं विभीषणं भीष्मं प्रह्लादं नारदार्जुनौ ॥१३०॥

षड्दले चाष्टपत्रे तु विदिक्षु सनकादिकान्।
एवं शीलं सुशीलं च जयं च विजयं दिशि।
भूपुरे दिक्पतीनिष्ट्वा तदस्त्राणि ततो बहिः ॥१३१॥

पञ्चलक्षं जपेन्मन्त्रं त्रिमध्वक्तैस्तिलैर्हुनेत्।
तर्पणैर्मार्जनैर्विप्रभोजनैराशु सिद्ध्यति ॥१३२॥

अनेन लक्षपद्मानि शान्तिकामः समर्चयेत्।
न कदाचिद्दरिद्रः स्याद्दूर्वाभिः स्यादरोगता ॥१३३॥

रक्तैर्हयारिकुसुमै राजानं वशमानयेत्।
चम्पकैः स्त्रियमाप्नोति मालत्यापि सुखी भवेत् ॥१३४॥

तुलसीमञ्जरीभिस्तु सर्वकामानवाप्नुयात्।
केतक्या जायते कामो ह्यमरो जायते नरः।
पारिजातैस्तु सौन्दर्यं नातः परतरो मनुः ॥१३५॥

पूर्वोक्त षट्कोण, षड्दल, अष्टदल एवं भूपुर से समन्वित यन्त्रपीठ पर इनका अर्चन करना चाहिये। षट्कोण में षडङ्ग-पूजन करने के बाद छः दलों में बलि, विभीषण, भीष्म, प्रह्लाद, नारद और अर्जुन का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् अष्टदल के कोणस्थ पत्रों में सनक, सनन्दन, सनातन एवं सनत्कुमार का तथा दिक्पत्रों में शील, सुशील, जय एवं विजय का पूजन करना चाहिये। इसके बाद भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों का यजन करने के बाद उनके वज्रादि दश आयुधों का भी पूजन करना चाहिये।

इस प्रकार सविधि पूजन के पश्चात् उक्त मन्त्र का पाँच लाख जप सम्पन्न करने के उपरान्त त्रिमधु-सिक्त तिलों से हवन करके तर्पण, मार्जन करने के बाद ब्राह्मण-भोजन कराने से शीघ्र ही मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

शान्ति की कामना वाले को इस मन्त्र द्वारा एक लाख कमलों से हवन करना चाहिये; ऐसा करने वाला साधक कभी भी दरिद्र नहीं होता। दूर्वा के हवन से आरोग्य-लाभ होता है। लाल कनैल के पुष्पों द्वारा हवन करके राजा को वशीभूत किया जाता है। चम्पापुष्पों के हवन से स्त्री-प्राप्ति होती है। मालती-पुष्पों के हवन से सुख प्राप्त होता है। तुलसीमञ्जरी द्वारा हवन करने से समस्त मनोरथों की प्राप्ति होती है। केतकी-पुष्पों के हवन से काम-प्राप्ति के साथ-साथ मनुष्य अमरत्व प्राप्त करता है। पारिजात-

पुष्पों के हवन से सौन्दर्य-प्राप्ति होती है। इस प्रकार इस मन्त्र से श्रेष्ठ कोई दूसरा मन्त्र नहीं है॥१३०-१३५॥

मधुसूदनमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मधुसूदनसन्मनुम्।
तारो नमो भगवते ङेऽन्तश्च मधुसूदनः॥१३६॥
त्रयोदशाक्षरो मन्त्रो मुनिर्ब्रह्मा समीरितः।
छन्दोऽनुष्टुब्देवता तु भगवान् मधुसूदनः॥१३७॥
पदैर्मन्त्रस्य सर्वेण पञ्चाङ्गविधिरीरितः।
शेषतल्पप्रसुप्तं तु लक्ष्मीसंवाहिताङ्घ्रिकम्॥१३८॥
नाभिपद्मस्थितविधिं शङ्खचक्रगदाधरम्।
पीताम्बरं घनश्यामं मधुकैटभमारकम्॥१३९॥

मधुसूदन-मन्त्र—अब मैं मधुसूदन के मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। तेरह अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमो भगवते मधुसूदनाय। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता भगवान् मधुसूदन कहे गये हैं। मन्त्र के चारो पदों एवं सम्पूर्ण मन्त्र से इसका पञ्चाङ्गन्यास कहा गया है। इनका ध्यान इस प्रकार कहा गया है—

वे भगवान् मधुसूदन शेषशय्या पर शयन कर रहे हैं, लक्ष्मी उनके पैर दबा रही हैं, उनके नाभि से निःसृत कमल पर ब्रह्मा विराजमान हैं, वे शंख, चक्र एवं गदा धारण किये हुये हैं, पीत वस्त्र धारण किये हैं, उनका वर्ण मेघ-सदृश श्याम है, वे मधु एवं कैटभ-नामक राक्षसों का हनन करने वाले हैं॥१३६-१३९॥

कर्णिकायां यजेद्विष्णुं बहिरष्टदलेऽर्चयेत्।
योगनिद्रां महामायां कालरात्रिं च कालिकाम्॥१४०॥
महारात्रिं मोहरात्रिं महाविद्यां च मोहिनीम्।
एवं सम्पूज्य देवेशं जपेल्लक्षचतुष्टयम्॥१४१॥
पद्मैर्हुनेत्त्रिमधुराप्लुतैस्तस्य दशांशतः।
तर्पणं मार्जनं कुर्यान्मन्त्रसिद्धिः प्रजायते॥१४२॥
आम्रपुष्पैर्गोघृताक्तैर्हुत्वा भोगमवाप्नुयात्।
पलाशकुसुमैर्हुत्वा शत्रूणां स्तम्भयेद्बलम्॥१४३॥
अथार्कैः शोकनाशः स्यात्सिन्दूरैर्वश्यता भवेत्।
मालत्या चातुला लक्ष्मीरन्यत्पूर्ववदेव तु॥१४४॥

कर्णिका में विष्णु (मधुसूदन) का पूजन करने के बाद उसके बाहर अष्टदल में

योगनिद्रा, महामाया, कालरात्रि, कालिका, महारात्रि, मोहरात्रि, मोहविद्या और मोहिनी का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार देवेश का पूजन करने के पश्चात् मन्त्र का चार लाख जप करना चाहिये।

इसके बाद त्रिमधु-सिक्त कमलों से कृत जप का दशांश (चालीस हजार) हवन करने के पश्चात् तर्पण एवं मार्जन करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

गोघृत-सिक्त आम्रमञ्जरी के हवन से भोग की प्राप्ति होती है। पलाशपुष्पों के हवन से शत्रुसेना का स्तम्भन होता है। अर्क (अकवन)-पुष्पों के हवन से शोक का नाश होता है। सिन्दूर के हवन से वशीकरण होता है। मालती-पुष्पों के हवन से अतुल लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। अन्य समस्त प्रयोग पूर्ववत् ही होते हैं।।१४०-१४४।।

त्रिविक्रममन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं त्रैविक्रमं परम्।
तारं नमो भगवते व्याहृतित्रितयं वदेत् ।।१४५।।
व्यापकाय पदं पश्चान्ङेऽन्तं चापि त्रिविक्रमम् ।।१४६।।
विंशत्यर्णो महामन्त्रो गतराज्यप्रदायकः।
पदपञ्चकसर्वेण षडङ्गविधिरीरितः ।।१४७।।
मुनयो बालखिल्याः स्युश्छन्दो गायत्रमीरितम्।
देवता विश्वरूपोऽस्य त्रिविक्रम उदाहृतः ।।१४८।।
दक्षांघ्रिव्याप्तपातालं वामांघ्रिव्याप्तभूतलम्।
दक्षिणं पुनरुत्थाप्य स्वर्गव्याप्तकरं हरिम् ।।१४९।।
बलिदत्तैः कुशतिलैस्तोयैः सम्प्रस्रवत्करम्।
अभयं वामहस्तेन कुर्वन्तं च सुरेश्वरम्।
गङ्गौघधौतपादाब्जं ध्यायेद् ब्रह्मादिकैः स्तुतम् ।।१५०।।

त्रिविक्रम-मन्त्र—अब मैं त्रिविक्रम के श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ। नष्ट राज्य को प्रदान करने वाला बीस अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमो भगवते भूर्भुवःस्वः व्यापकाय त्रिविक्रमाय। मन्त्र के पाँच पदों एवं सम्पूर्ण मन्त्र से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है। इस मन्त्र के ऋषि बालखिल्य (ब्रह्मा के रोम से उत्पन्न साठ हजार ऋषि), छन्द गायत्री एवं देवता विश्वरूप त्रिविक्रम कहे गये हैं।

दाँयें पैर से पाताल एवं बाँयें पैर से भूतल को व्याप्त करने के बाद पुनः दाहिने पैर को उठाकर स्वर्ग को व्याप्त करने वाले, हाथों से टपक रहे बलि द्वारा प्रदत्त कुश-तिल जल वाले, बाँयें हाथ से अभय प्रदान करते हुये, गंगा द्वारा प्रक्षालित चरणकमल

वाले, ब्रह्मा आदि द्वारा स्तुत देवताओं के अधिपति हरि का ध्यान करना चाहिये॥१४५-१५०॥

वैष्णवे च यजेत्पीठे दलेष्वष्टसु च क्रमात्।
बलिं विधिं च प्रह्लादं कश्यपं चादितिं शिवम्।
लक्ष्मीं भुवं भूपुरे तु दिगीशानायुधानि च॥१५१॥
विंशल्लक्षं जपेन्मन्त्रं तिलतण्डुलसर्षपैः।
त्रिमध्वक्तैर्हुनेत्पश्चात्तर्पणाद्यं च कारयेत्॥१५२॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री लभते वाञ्छितं फलम्॥१५३॥

वैष्णव पीठ पर देव का पूजन करने के बाद अष्टदल पर क्रमशः बलि, ब्रह्मा, प्रह्लाद, कश्यप, अदिति, शिव, लक्ष्मी एवं वसुधा का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर भूपुर में दिगीश्वरों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार पूजन करने के पश्चात् मन्त्र का बीस लाख जप पूर्ण करने के बाद त्रिमधु-सिक्त तिल, चावल एवं सरसो से हवन करके तर्पण आदि करना चाहिये। इस प्रकार सिद्ध किये गये मन्त्र से मन्त्रज्ञ साधक अभीप्सित फल प्राप्त करता है॥१५१-१५३॥

वामनमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वामनस्य मनुं परम्।
तारो नमो भगवते बलिसर्वस्वहारिणे॥१५४॥
अमुकं देहि ममाभीष्टमनेकं च वामन।
मायां रमां समुच्चार्य मन्त्रो द्वात्रिंशदर्णकः॥१५५॥
कामो मुनिरनुष्टुप् च छन्दो देवस्तु वामनः।
सप्ताष्टार्कत्रिभूचन्द्रैः षडङ्गविधिरीरितः॥१५६॥
प्रगृह्णन्तं बलिं चार्थान् हर्षेण ददतं बलिम्।
पूर्णकामावुभौ ध्यायेदिति प्रीतिसमन्वितौ॥१५७॥
पूर्वोक्तमर्चनन्तत्र कोटिमात्रं जपेन्मनुम्।
लक्षं हुनेद्बिल्वफलैर्मधुरत्रयसंयुतैः॥१५८॥
तर्पणं मार्जनं कृत्वा तथा ब्राह्मणभोजनम्।
तद्दशांशं च मन्त्रस्य सिद्धिः स्यात्पापनाशिका॥१५९॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री ध्यायन्देवं जपेन्मनुम्।
साध्ये ददतमिष्टार्थं ध्यात्वा वर्णमितं जपेत्।
भावयेद्वाञ्छितं स्वार्थं स दद्यान्नात्र संशयः॥१६०॥

अहोरात्रं जपेद्वापि स देवादिर्यदा भवेत्।
प्रातस्तदा स्वयं मन्त्रं साधकाय प्रयच्छति ॥१६१॥
दद्यादभीष्टं ललिताप्यन्यदेवस्य का कथा।

वामन-मन्त्र—अब मैं वामन के श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ। बत्तीस अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमो भगवते बलिसर्वस्वहारिणे अमुकं देहि ममाभीष्टमनेकं वामन ह्रीं श्रीं। इस मन्त्र के ऋषि काम, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता वामन कहे गये हैं। मन्त्र के क्रमशः सात, आठ, बारह, तीन, एक एवं एक वर्णों से इसका षडङ्ग-न्यास कहा गया है।

बलि के सर्वस्व को ग्रहण करते हुये एवं प्रसन्नता-पूर्वक बलि को प्रदान करते वे दोनों (बलि एवं वामन) अत्यन्त प्रेम-पूर्वक अपने-अपने मनोरथ को प्राप्त किये—इस प्रकार का ध्यान करना चाहिये।

पूर्वोक्त विधि से वैष्णवपीठ पर अर्चन करने के उपरान्त मन्त्र का एक करोड़ जप पूर्ण करने के पश्चात् त्रिमधु-सिक्त बिल्वफलों से एक लाख आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करना चाहिये। इसके बाद हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन एवं मार्जन का दशांश ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। ऐसा करने से पापों का नाश करने वाली मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है।

इस प्रकार सिद्ध मन्त्र वाले साधक को देव का ध्यान करके सिद्ध मन्त्र का जप करना चाहिये। अभीष्ट प्रदान करते हुये देव का ध्यान करके मन्त्र का बत्तीस बार जप करने से वे देव साधक को उसका अभीष्ट मनोरथ प्रदान करते हैं; इसमें कोई सन्देह नहीं है। अथवा वह साधक स्वयं को देवस्वरूप मानकर यदि दिन-रात इस मन्त्र का जप करता है तो वे देव प्रातःकाल स्वयं ही उस साधक को मन्त्र प्रदान करते हैं; साथ ही उसके मनोरम अभीष्ट को भी प्रदान करते हैं; फिर अन्य किसी देवता से क्या मतलब है॥१५४-१६१॥

श्रीधरमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि श्रीधरस्य मनुं परम्।
रमां शक्तिं कामबीजं श्रीधराय ततो वदेत् ॥१६२॥
त्रैलोक्यमोहनायेति नमोऽन्तः षोडशाक्षरः।
ऋषिर्ब्रह्मा भवेच्छन्दो गायत्रं श्रीधरस्सुरः ॥१६३॥
श्रीबीजेन षडङ्गानि कुर्यात्षड्दीर्घसंयुजा।
दुग्धाब्धौ च सिते द्वीपे सर्वर्त्तुफलितद्रुमे ॥१६४॥
तत्र कल्पद्रुमाधस्तात्पक्षीन्द्ररचितासने।
शङ्खचक्रगदापद्मपाणिं चामीकरद्युतिम् ॥१६५॥

किरीटिनं कुण्डलिनं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्।
हृदि लक्ष्मीधरं ध्यायेच्छ्रीधरं पुरुषार्थदम्॥१६६॥

श्रीधर-मन्त्र—अब मैं श्रीधर के श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ। सोलह अक्षरों का वह मन्त्र है—श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता श्रीधर होते हैं। छः दीर्घ स्वरों से समन्वित श्रीबीज से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् अपने हृदय में इस प्रकार लक्ष्मीधर का ध्यान करना चाहिये—वे भगवान् श्रीधर क्षीरसमुद्र में अवस्थित समस्त ऋतुओं में फल देने वाले वृक्षों से समन्वित श्वेत द्वीप पर कल्पद्रुम के नीचे गरुड़ द्वारा रचित आसन पर विराजमान हैं, हाथों में शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये हुये हैं, सुवर्ण-सदृश कान्ति वाले वे किरीट एवं कुण्ड़ल धारण किये हुये हैं, उनके वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न है, वे धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप पुरुषार्थ प्रदान करने वाले हैं॥१६२-१६५॥

यजेच्च वैष्णवे पीठे कर्णिकायां सुरेश्वरम्।
षडङ्गानि यजेत्तत्र देवाङ्गेषु ततो यजेत्॥१६७॥

वक्षःस्थले दक्षभागे श्रीवत्सायेति पूजयेत्।
वामे च कौस्तुभायेति ग्रीवायां पूजयेत्ततः॥१६८॥

नमोऽन्तं वनमालायै मुकुटायेति संयजेत्।
भाले च कर्णिकायां च पक्षिराजाय वै नमः॥१६९॥

नमः पङ्कजनाभाय गरुडायेति पूजयेत्।
पुरुषोत्तमकं लक्ष्मीनिवासं तदनन्तरम्॥१७०॥

सकलञ्च जगन्नाथं जगत्क्षोभणमेव च।
सर्वस्त्रीहृदयोन्मादं मदोन्मादकमेव च॥१७१॥

सर्वसौभाग्यदं सर्वकामदं च प्रपूजयेत्।
तदुत्सङ्गगतां देवीं पूजयेच्छ्रीं श्रियै नमः॥१७२॥

लोकेश्वरांश्च वज्रादीन् भूपुरे परिपूजयेत्।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं घृतैर्हुनेत्॥१७३॥

तर्पणादि ततः कुर्यात्पूर्ववत्साधकोत्तमः।
ततः सिद्धमनुर्मन्त्री काम्यकर्म समाचरेत्॥१७४॥

गन्धैश्च शतपुष्पैश्च होमो लक्ष्मीकरः परः।
वराहोक्तान् प्रयोगांश्च विदध्यादत्र साधकः।
भजते श्रीधरं यस्तु स च लोकद्वये सुखी॥१७५॥

उक्त प्रकार से ध्यान करने के पश्चात् वैष्णव पीठ पर सुरेश्वर का पूजन करने के बाद कर्णिका में षडङ्ग पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् देवता के अङ्गों में इस प्रकार पूजन करना चाहिये—वक्ष:स्थल के दाहिनी ओर 'श्रीवत्साय नम:' से श्रीवत्स का, बाँयीं ओर 'कौस्तुभाय नम:' से कौस्तुभ का, ग्रीवा में 'वनमालायै नम:' से वनमाला का, ललाट पर 'मुकुटाय नम:' से मुकुट का, कर्णिका में 'पक्षिराजाय नम: पङ्कजनाभाय गरुडाय नम:' से गरुड़ का पूजन करने के बाद लक्ष्मी के निवास-स्वरूप, सम्पूर्ण जगत् के स्वामी, लोकों को क्षुब्ध करने वाले, समस्त स्त्रियों के हृदय को उन्मत्त करने वाले, मद को भी उन्मत्त करने वाले, समस्त सौभाग्य को देने वाले एवं समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाले भगवान् पुरुषोत्तम का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर 'श्रीं श्रियै नम:' मन्त्र से उन पुरुषोत्तम के अङ्क में विराजमान देवी का पूजन करना चाहिये।

इसके बाद भूपुर में दिगीश्वरों एवं उनके आयुधों का पूजन करने के अनन्तर मन्त्र का एक लाख की संख्या में जप पूर्ण करके घृत से कृत जप का दशांश (दश हजार) हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् श्रेष्ठ साधक को पूर्ववत् तर्पण आदि करना चाहिये। इस प्रकार सिद्ध मन्त्र से मन्त्रज्ञ साधक को काम्य कर्मों का साधन करना चाहिये। लक्ष्मी-प्राप्ति के लिये चन्दनाक्त गुलाब से हवन करना चाहिये। इस मन्त्र से साधक को वराह मन्त्रोक्त प्रयोगों का भी साधन करना चाहिये। जो साधक श्रीधर की उपासना करता है, वह इहलोक और परलोक—दोनों में सुखी होता है॥१६७-१७५॥

हृषीकेशमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि हृषीकेशस्य सन्मनुम्।
कामबीजं हृषीकेशो ङेहृदन्तो गजाक्षरः ॥१७६॥

छन्दोऽनुष्टुबृषिर्ब्रह्मा हृषीकेशश्च देवता।
षड्दीर्घयुक्तकामेन षडङ्गविधिरीरितिः ॥१७७॥

शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं संस्मरेद्विभुम्।
गरुडोपरि संविष्टं शुभ्रवर्णं सुभूषणम् ॥१७८॥

श्रीधरोक्ते यजेत्पीठे ह्यङ्गाद्यावरणान्वितम्।
अष्टलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेत्पुनः।
आज्याक्तै कमलैः पूर्णैस्तर्पणादि ततश्चरेत् ॥१७९॥

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान् पूर्ववच्चरेत्।
विजयायाः प्रसूनैश्च तर्पणं सर्वकामदम् ॥१८०॥

हृषीकेश-मन्त्र—अब मैं हृषीकेश के उत्तम मन्त्र को कहता हूँ। आठ अक्षरों का वह मन्त्र है—क्लीं हृषीकेशाय नम:। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता हृषीकेश कहे गये हैं। दीर्घ स्वर-समन्वित छ: कामबीजों (क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्ल:) से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है। इनका ध्यन इस प्रकार करना चाहिये—सुन्दर आभूषणों से विभूषित शुभ्र वर्ण वाले वे भगवान् हृषीकेश शंख, चक्र, गदा एवं पद्म-धारी हैं तथा गरुड़ के ऊपर सम्यक् रूप से विराजमान हैं।

श्रीधर-पूजन के प्रसङ्ग में कथित पीठ पर अङ्ग-आवरण आदि से समन्वित इनका पूजन करने के उपरान्त मन्त्र का आठ लाख जप पूर्ण करने के बाद गोघृत-सिक्त कमलपुष्पों से कृत जप का दशांश (अस्सी हजार) हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् तर्पण आदि करना चाहिये। इस प्रकार से सिद्ध मन्त्र द्वारा मन्त्रज्ञ साधक को पूर्ववत् प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये। विजया (भाङ्ग) के पुष्पों से किया गया तर्पण समस्त कामनाओं को देने वाला होता है॥१७६-१८०॥

अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये श्लोकरूपं महाफलम्।
यज्जपादेव सिध्यन्ति साधकाभीष्टकोटय: ॥१८१॥

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घा: ॥१८२॥

अर्जुनोऽस्य मुनि: प्रोक्तोऽनुष्टुप् छन्दश्च देवता।
हृषीकेशोऽखिलं सर्वं ज्ञेयं वै पूर्वमन्त्रवत् ॥१८३॥

षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गविधिरीरित:।
प्रलयाब्धौ शेषतल्पे लक्ष्मीसंवाहितांघ्रिकम् ॥१८४॥

नाभिपुष्करसंस्थेन धात्रा स्तुतमरिन्दमम्।
पद्मं कौमोदकीं हस्तैर्दधतं दीप्ततेजसम् ॥१८५॥

पीताम्बरधरं श्याममर्धोन्मीलितलोचनम्।
ध्यात्वार्चयेच्छ्रीधरोक्तपीठे तद्वज्जपादिकम् ॥१८६॥

प्रयोगांश्च विजानीयात्पद्मनाभार्चनं त्विति ॥१८७॥

अब मैं महान् फल प्रदान करने वाले श्लोकरूप दूसरे मन्त्र को कहता हूँ; जिसके जपमात्र से ही साधक के करोड़ों अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं। मन्त्र है—स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च, रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घा:। श्लोकरूप इस मन्त्र के ऋषि अर्जुन, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता हृषीकेश कहे गये हैं। इस मन्त्र के समस्त विधान पूर्व मन्त्र के समान ही होते हैं। क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लं क्ल: से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है।

प्रलयसमुद्र में शेषशय्या पर लक्ष्मी द्वारा दबाये जा रहे पैरों वाले, नाभि से निकले हुये कमल पर विराजमान ब्रह्मा द्वारा स्तुत, शत्रुओं का दमन करने वाले, हाथों में पद्म एवं कौमोदकी गदा धारण किये हुये, दीप्त तेज वाले, पीताम्बर धारण करने वाले, श्याम वर्ण वाले, अधमुँदी आँखों वाले देव का ध्यान करके श्रीधरोक्त पीठ पर तत्प्रकार से ही अर्चन, जप, प्रयोग आदि करना चाहिये। यही पद्मनाभ के अर्चन की विधि कही गई है॥१८१-१८७॥

दामोदरमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दामोदरमनुं परम्।
राधादामोदरायेति कामबीजेन सम्पुटः।
नवाक्षरो महामन्त्रो भोगभाजां सुसिद्धिदः॥१८८॥
कामदेवो मुनिश्छन्दो गायत्रं देवता मतः।
राधादामोदरः साक्षाद् भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥१८९॥
पीताम्बरधरं श्यामं नानालङ्कारभूषितम्।
वामोत्सङ्गगतां राधां चालिङ्गन्तं मुदान्वितम्॥१९०॥
उद्याने संस्मरेद्देवं नानापुष्पलतायुतम्।

दामोदर-मन्त्र—अब मैं दामोदर-मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। नव अक्षरों का मन्त्र है—क्लीं राधादामोदराय क्लीं। यह महामन्त्र भोग की कामना वालों को सुन्दर सिद्धि प्रदान करने वाला है। इस मन्त्र के ऋषि कामदेव, छन्द गायत्री एवं देवता भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाले साक्षात् राधादामोदर है।

राधादामोदर का इस प्रकार स्मरण करना चाहिये—बहुविध पुष्पों एवं लताओं से व्याप्त उद्यान में श्याम वर्ण वाले, पीत वस्त्रधारी, अनेक अलंकारों से विभूषित भगवान् दामोदर प्रसन्नता-पूर्वक अपने बाँयीं ओर विराजमान राधा का आलिङ्गन कर रहे हैं॥१८८-१९०॥

षडङ्गं कामबीजेन यजेद्देवं सशक्तिकम्॥१९१॥
कर्णिकायां केशरेषु गौर्याद्या मातृका यजेत्।
ब्रह्मादिकान् पद्ममध्ये पत्राग्रे तु ह्रियं रतिम्॥१९२॥
पञ्चकामान् वसन्तं च तद्बाह्ये भूपुरेऽर्चयेत्।
दिगीशांश्चापि वज्रादीनेवं पूजा समीरिता॥१९३॥
नवलक्षं जपेन्मन्त्रं तण्डुलं सघृतं हुनेत्।
तर्पणं मार्जनं कृत्वा दम्पत्योर्भोजनं चरेत्॥१९४॥

एकलक्षादिपञ्चान्तं कार्यलाघवगौरवात् ।
पुरश्चरणवत्कुर्याज्जपाद्यं कार्यसिद्धये ॥१९५॥
चतुर्ष्वपि युगेष्वेतत्समाद्भुतफलो न हि ।

कामबीज से षडङ्गन्यास करने के पश्चात् कमलकर्णिका में शक्ति (राधा)-सहित दामोदर का अर्चन करना चाहिये। इसके बाद केशरों में गौरी आदि आठ मातृकाओं का यजन करने के पश्चात् पद्ममध्य में ब्रह्मा का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् पत्राग्रों में ह्री, रति, पञ्चकाम एवं वसन्त का पूजन करने के बाद अष्टदल से बाहर भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों एवं उनके उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।

इस प्रकार सम्यक् रूप से यजन करने के उपरान्त उक्त मन्त्र का नव लाख जप पूर्ण करने के बाद घृत-सहित चावल से हवन करना चाहिये। अनन्तर तर्पण एवं मार्जन करके ब्राह्मण-दम्पति को भोजन कराना चाहिये। कार्य की सिद्धि के लिये उसकी लघुता-गुरुता के अनुसार एक लाख से पाँच लाख तक मन्त्रजप करके शेष समस्त क्रियायें पुरश्चरण के समान ही करनी चाहिये। चारो युगों में इस मन्त्र के समान अद्भुत फलप्रद दूसरा कोई मन्त्र नहीं है॥१९१-१९५॥

सङ्कर्षणमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सङ्कर्षणमनुं परम् ॥१९६॥
कामबीजं समुचार्य ङेऽन्तं त्रैलोक्यमोहनम् ।
ततश्चाप्रतिरूपाय पराय च वदेत्पदम् ॥१९७॥
सङ्कर्षणात्मने हृच्च पञ्चविंशाक्षरो मनुः ।
त्रैमुनिस्तु मुनिश्छन्दो मितं सङ्कर्षणः सुरः ॥१९८॥
षड्भिः पदैः षडङ्गानि तथाङ्गुष्ठादिषु न्यसेत् ।
अङ्कुशं दक्षिणे हस्ते वामेनाभयमेव च ॥१९९॥
मेघश्यामं पीतवासो नानाभरणसंयुतम् ।
नारदादियुतं ध्यायेद्वाणीलक्ष्म्यौ च पार्श्वयोः ॥२००॥
सुवर्णमय्ये विपिने स्थितं कल्पद्रुमावृतैः ।

सङ्कर्षण-मन्त्र—अब मैं संकर्षण-मन्त्र को कहता हूँ। पच्चीस अक्षरों का सङ्कर्षण-मन्त्र इस प्रकार है—क्लीं त्रैलोक्यमोहनाय अप्रतिरूपाय पराय सङ्कर्षणात्मने नमः। इस सङ्कर्षण-मन्त्र के ऋषि त्रैमुनि, छन्द मित एवं देवता संकर्षण कहे गये हैं। मन्त्र के छः पदों से षडङ्गन्यास एवं अंगुष्ठादि में करन्यास भी करना चाहिये। इसके बाद दाहिने हाथ में अंकुश एवं बाँयें हाथ में अभय धारण किये हुये, मेघ के समान

श्याम वर्ण वाले, पीत वर्ण का वस्त्र धारण किये हुये, अनेक आभूषणों से समन्वित, नारद आदि मुनियों से युक्त, दोनों पार्श्वों में वाणी एवं लक्ष्मी से सुशोभित सङ्कर्षण का कल्पवृक्ष से घिरे अग्रभाग में सुवर्ण वाले उपवन में ध्यान करना चाहिये॥१९६-२००॥

यजेच्च वैष्णवे पीठे नवलक्षं जपेन्मनुम् ॥२०१॥

हुनेत्तिलैस्त्रिमधुराप्लुतैः स्यात्तर्पणादिकम् ॥२०२॥

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री दूर्वाखण्डायुतं हुनेत् ।
समस्तरोगनाशस्तु लक्ष्मीः पद्माक्षहोमतः ॥२०३॥

आकर्षणं बिल्वफलैस्ताम्बूलैः स्याद्वशीकृतिः ।
दीर्घायुष्यं गोघृतेन महिषेणापि मन्मथः ॥२०४॥

पुत्रजीवकबीजानां घृताक्तानां च होमतः ।
वन्ध्यापि लभते पुत्रं होमसङ्ख्यायुतादिकम् ॥२०५॥

उक्त प्रकार से ध्यान करते हुये वैष्णव पीठ पर उनका यजन करने के पश्चात् पुरश्चरण-हेतु मन्त्र का नव लाख जप पूर्ण करने के बाद त्रिमधु-सिक्त तिलों से हवन सम्पन्न करके तर्पण आदि करना चाहिये।

मन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार सिद्ध मन्त्र द्वारा दूर्वाखण्ड़ों से दस हजार हवन करके समस्त रोगों को नष्ट कर देता है। लक्ष्मी-प्राप्ति के लिये इस मन्त्र से कमलगट्टों द्वारा हवन करना चाहिये। आकर्षण के लिये बेल के फल से एवं वशीकरण के लिये पान के पत्तों से हवन करना चाहिये। दीर्घायु की प्राप्ति के लिये गोघृत से एवं काम-प्राप्ति के लिये भैंस के घी से हवन करना चाहिये। घृत-सिक्त जायफल के हवन से वन्ध्या स्त्री भी पुत्रवती हो जाती है। उक्त समस्त प्रयोगों में हवनसंख्या न्यूनतम दस हजार होती है॥२०१-२०५॥

वासुदेवमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वासुदेवमनुं परम् ।
तारो नमो भगवते वासुदेवाय संस्मृतः ॥२०६॥

द्वादशार्णस्तु गायत्री छन्दश्चास्य प्रजापतिः ।
मुनिर्देवो वासुदेवः पञ्चाङ्गविधिरीरितः ॥२०७॥

पदैः समस्तैस्तु तथा द्वादशाङ्गं ततो न्यसेत् ।
स्तनयोर्हृदये पृष्ठे बाह्वोरूर्वोश्च जानुनोः ।
पादयोस्तु मनोर्वर्णान्न्यसेद्बिन्दून्नमोऽन्तकान् ॥२०८॥

मन्त्रं सम्पूर्णमेवं तु यथास्थाने न्यसेद् बुधः।
त्रिशस्तारत्रिपुटितमूलेन व्यापकं चरेत्॥२०९॥

वासुदेव-मन्त्र—अब मैं वासुदेव के श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ। बारह अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। इस मन्त्र के ऋषि प्रजापति, छन्द गायत्री एवं देवता वासुदेव कहे गये हैं। मन्त्र के चार पदों एवं सम्पूर्ण मन्त्र से इसका पञ्चाङ्ग न्यास का गया है। उक्त प्रकार से पञ्चाङ्गन्यास करने के पश्चात् प्रत्येक मन्त्राक्षरों को अनुस्वार-युक्त करके उनके आगे 'नम:' का संयोजन कर दोनों स्तन, हृदय, पृष्ठ, दोनों भुजा, दोनों जाँघ, दोनों घुटना एवं दोनों पैर में न्यस्त करते हुये द्वादशांग न्यास करना चाहिये। इस प्रकार सम्पूर्ण मन्त्र का यथास्थान न्यास करने के पश्चात् तीन तार से तीन वार पुटित मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिये॥२०६-२०९॥

मन्त्रार्णैस्त्रिविधं न्यासं न्यसेन्मन्त्री ततः परम्।
कपोलकर्णदृक्कण्ठदोर्हृज्जठरनाभिषु ॥२१०॥

लिङ्गजान्वंघ्रिषु प्रोक्तः सृष्टिन्यासस्तु मन्त्रिभिः।
हृदादिकोऽयं शीर्षान्तः स्थितिन्यास उदाहृतः॥२११॥

पादावारभ्य शीर्षान्तो न्यासः संहारसञ्ज्ञकः।
एष क्रमो यतीनां तु व्यस्ततो ब्रह्मचारिणाम्॥२१२॥

संहारसृष्टिस्थितथो गृहस्थानां प्रकीर्तिताः।
संहृतां दोषसंहारः सृष्टौ च शुभसृष्टयः।
स्थितौ च शान्तिविन्यासः स स्यात्कार्यस्त्रिधा बुधैः॥२१३॥

इसके बाद मन्त्रज्ञ साधक को मन्त्रवर्णों से तीन प्रकार का न्यास (सृष्टि, स्थिति, संहार) करना चाहिये। सृष्टिन्यास में मन्त्र के बारह वर्णों का क्रमशः शिर, कपोल, कर्ण, नेत्र, कण्ठ, भुजा, हृदय, जठर, नाभि, लिङ्ग, जानु (घुटना) एवं पैर में न्यास किया जाता है। मन्त्रवर्णों का हृदय से आरम्भ कर पाद-पर्यन्त किया गया न्यास स्थितिन्यास कहलाता है एवं पाद से आरम्भ कर शीर्ष-पर्यन्त किया गया न्यास संहारन्यास होता है। तीनों न्यासों का यह क्रम यतियों (संन्यासियों) के लिये कहा गया है। ब्रह्मचारियों को उक्त के विपरीतक्रम (संहार, स्थिति, सृष्टि) से मन्त्रवर्णों का न्यास करना चाहिये। गृहस्थों को संहार, सृष्टि एवं स्थितिक्रम से यह त्रिविध न्यास करना कहा गया है। संहारन्यास को करने से दोष की समाप्ति होती है, सृष्टिन्यास से कल्याणमयी सृष्टि होती है एवं स्थितिन्यास से शान्ति की प्राप्ति होती है। इस प्रकार इन तीनों न्यासों से तीन प्रकार के कार्य होते हैं॥२१०-२१३॥

जीवतत्त्वात्मने प्रोच्य पुरुषाय नमश्च के।
प्राणतत्त्वात्मने भाले सर्वगाय नमो न्यसेत्।
बुद्धितत्त्वात्मनेऽच्युताय नमो नेत्रयोर्न्यसेत् ॥२१४॥

चित्ततत्त्वात्मने वासुदेवाय च नमो मुखे।
कर्णे हृत्पद्मतत्त्वाय वदेत्सङ्कर्षणाय च ॥२१५॥

नमो न्यसेदथो दक्षभुजे सूर्यकलात्मने।
सूर्यमण्डलतत्त्वाय प्रद्युम्नाय ततो न्यसेत्।
ततो न्यसेद्वामबाहौ तत्षोडशकलात्मने ॥२१६॥

चन्द्रमण्डलतत्तत्त्वानिरुद्धाय हृदि न्यसेत्।
न्यसेत्ततश्च हृदये मध्यदेशे कलात्मने।
अग्निमण्डलतत्त्वाय ङेऽन्तो नारायणो मतः ॥२१७॥

कुक्षौ न्यस्येद्वासुदेवं तत्त्वञ्च ब्रह्मणे नमः।
सङ्कर्षणाख्यतत्त्वाय लिङ्गे स्याद्विष्णवे नमः ॥२१८॥

ततः प्रद्युम्नतत्त्वाय नृसिंहाय नमो न्यसेत्।
दक्षपादे च वामेऽनिरुद्धतत्त्वात्मने न्यसेत् ॥२१९॥

वाराहाय नमश्चेति तत्त्वन्यास उदाहृतः।
मूर्तिपञ्जरनामानं केशवादिकमाचरेत् ॥२२०॥

इसके बाद इस प्रकार तत्त्वन्यास करना चाहिये—हृदय में 'जीवतत्त्वात्मने पुरुषाय नमः' से जीवतत्त्व का, ललाट में 'प्राणतत्त्वात्मने सर्वगाय नमः' से प्राणतत्त्व का, दोनों नेत्रों में 'बुद्धितत्त्वात्मने अच्युताय नमः' से बुद्धितत्त्व का, मुख में 'चित्ततत्त्वात्मने वासुदेवाय नमः' से चित्ततत्त्व का, कानों में 'हृत्पद्मतत्त्वाय सङ्कर्षणाय नमः' से हृत्पद्मतत्त्व का, दाहिनी भुजा में 'सूर्यकलात्मने सूर्यमण्डलतत्त्वाय प्रद्युम्नाय नमः' से सूर्यतत्त्व का, बाँयीं भुजा में 'षोड़शकलात्मने चन्द्रमण्डलतत्त्वाय अनिरुद्धाय नमः' से चन्द्रतत्त्व का, हृदय में 'अग्निमण्डलतत्त्वाय नारायणाय नमः' से अग्नितत्त्व का, कुक्षि में 'वासुदेवतत्त्वाय ब्रह्मणे नमः' से वासुदेवतत्त्व का, लिङ्ग में 'संकर्षणतत्त्वाय विष्णवे नमः' से सङ्कर्षणतत्त्व का, दक्षपाद में 'प्रद्युम्नतत्त्वाय नृसिंहाय नमः' से प्रद्युम्नतत्त्व का एवं वाम पाद में 'अनिरुद्धतत्त्वाय वराहाय नमः' से अनिरुद्धतत्त्व का न्यास करना चाहिये। इसके बाद केशव आदि नामों से मूर्तिपञ्जर न्यास करना चाहिये॥२१४-२२०॥

न्यासं ततो वासुदेवं ध्यायेत्तद्ध्यानमुच्यते।
दुग्धाम्भोधौ सितद्वीपे दिव्ययोषाविराजिते॥२२१॥
तत्रास्तेऽसौ महारम्ये सर्वर्त्तुद्रुमसङ्कुले।
तत्र कल्पद्रुमाधस्ताद्रत्नमञ्चे तु पङ्कजम्॥२२२॥
स्वर्णाभं चिन्तयेत्तत्र वासुदेवं स्मिताननम्।
चन्द्रकान्तिं शङ्खचक्रगदापद्मलसत्करम्॥२२३॥
श्रीवत्साङ्गदकेयूरमुकुटं चारुकुण्डलम्।
सकौस्तुभं पीतवस्त्रं धृतग्रैवेयकं कणम्॥२२४॥
सनकाद्यैः सिद्धविद्याधरगन्धर्वसेवितम्।
यजेन्नारायणे पीठे मूर्तिं मूलेन कल्पयेत्॥२२५॥

उक्त प्रकार से न्यास करने के पश्चात् वासुदेव का ध्यान करना चाहिये, जो इस प्रकार किया जाता है—क्षीरसमुद्र में दिव्य रमणियों से सुशोभित, समस्त ऋतुओं में पल्लवित एवं पुष्पित होने वाले घने वृक्षों से रमणीय श्वेतद्वीप पर इनका निवास है; वहाँ पर कल्पवृक्ष के नीचे रत्न-निर्मित मञ्च पर बने स्वर्णाभ कमल पर विहसित मुख वाले, चन्द्रमा-सदृश कान्ति से समन्वित, शंख चक्र गदा एवं पद्म से सुशोभित हाथों वाले, कौस्तुभ-सहित श्रीवत्स अङ्गद (बाहुभूषण) केयूर (बाजूबन्द) मुकुट मनोहर कुण्ड़ल पीत वस्त्र एवं हार धारण किये हुये, सनक-सनन्दन आदि सिद्धविद्याधरों एवं गन्धर्वों से सेवित वासुदेव का चिन्तन (ध्यन) करना चाहिये। इस प्रकार ध्यान करने के उपरान्त नारायणपीठ मूल मन्त्र से वासुदेव की मूर्ति कल्पित कर उसका पूजन करना चाहिये॥२२१-२.२५॥

पूर्वमङ्गानि सम्पूज्य वासुदेवादिहेतयः।
दिग्विदिक्षु च सम्पूज्यास्ततो द्वादशमूर्तयः।
केशवाद्याः समभ्यर्च्य लोकेशा आयुधैः सह।
एवं सम्पूज्य विधिवज्जपेद् द्वादशलक्षकम्।
तत्सहस्रं च कमलैर्जुहुयान्मधुरप्लुतैः॥२२६॥
तदभावे तिलैः शुद्धैर्जुहुयादाज्यसम्प्लुतैः।
तर्पणादि ततः कृत्वा प्रयोगानाचरेत्तथा।
क्षीरवृक्षसमिद्भिश्च होमः स्यात्पापमुक्तये॥२२७॥
दुग्धकाष्ठैः शमीमिश्रैः सहस्राण्ययुतानि च।

आज्येन हविषो होमाच्चित्तशुद्धिः प्रजायते।
पायसेन तिलैः शुद्धैः समिदाज्यैः सशालिभिः।
पृथगष्टसहस्राणि हुत्वाभीष्टमवाप्नुयात्।
नारायणोक्तान्निखिलान् प्रयोगानाचरेत्ततः॥२२८॥

प्रथमतः अङ्ग-पूजन करने के पश्चात् दिशाओं एवं कोणों में वासुदेव के आयुधों का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर केशव आदि बारह मूर्तियों का पूजन करने के बाद भूपुर में दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करने के उपरान्त मन्त्र का विधि-पूर्वक बारह लाख की संख्या में जप करना चाहिये। पुनः मधुरात्त कमलों से बारह हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करना चाहिये। निर्धारित संख्या में कमल उपलब्ध न होने पर शुद्ध गोघृत से संसिक्त तिलों से हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण आदि करके प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये।

पापों से विमुक्ति के लिये क्षीरवृक्ष (दूध वाले वृक्ष) की समिधा से एक हजार अथवा शमी-मिश्रित दूध वाली लकड़ी से दस हजार आहुतियों द्वारा हवन करना चाहिये। आज्य-मिश्रित हविष्य से हवन करने पर चित्त की शुद्धि होती है। पायस, शुद्ध तिल अथवा आज्य-मिश्रित चावल से अलग-अलग आठ हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करने से अभीष्ट-प्राप्ति होती है। नारायणमन्त्र में कथित समस्त प्रयोगों का इस मन्त्र से साधन करना चाहिये॥२२६-२२८॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वासुदेवमनुं परम्।
तारं मायाद्वयं लक्ष्मीद्वयं लक्ष्मीपदं वदेत्॥२२९॥

वासुदेवाय हृदयं शक्रवर्णः स्मृतो मनुः।
ऋषिः प्रजापतिश्छन्दो गायत्री बीजकं ध्रुवः॥२३०॥

देवो लक्ष्मीर्वासुदेवः शक्तिर्देवी प्रकीर्त्तिता।
द्विद्विद्वीषुद्विभिर्वर्णैस्ताराद्यैरङ्गकल्पनम्॥२३१॥

उद्यत्सौदामिनीकान्तिं नानाभूषणभूषितम्।

लक्ष्म्यालिङ्गनतश्चैकीभूतं चाङ्कगतां हि ताम्॥२३२॥

पुस्तकं दर्पणं पद्मं रत्नकुम्भं रमां करैः।
दधतीं शङ्खचक्राब्जगदाहस्तं गदाधरम्॥२३३॥

द्वादशाक्षरवत्पूजा शक्रलक्षं जपो मतः।
दशांशं पङ्कजैर्होमो मधुरत्रयसंयुतैः॥२३४॥

पायसेन कृतो होमो लक्ष्मीवश्यप्रदो भवेत्।
मधुराक्तैस्तिलैर्हुत्वा सर्वकार्याणि साधयेत्॥२३५॥

वासुदेव का अन्य मन्त्र—अब मैं वासुदेव के परम मन्त्र को कहता हूँ। चौदह अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं लक्ष्मीवासुदेवाय नमः। इस मन्त्र के ऋषि प्रजापति, छन्द गायत्री, देवता लक्ष्मीवासुदेव, बीज ॐ एवं शक्ति देवी कही गई हैं। मन्त्र के दो, दो, दो, पाँच एवं दो वर्णों के आदि में ॐ का संयोजन करके प्रथमतः इसका पञ्चाङ्गन्यास किया जाता है।

चमकती हुई विजली के समान कान्ति वाले अनेक आभूषणों से विभूषित, लक्ष्मी के आलिङ्गन से उनके साथ एकाकारता को प्राप्त तथा अङ्क में अवस्थित एवं पुस्तक, दर्पण, पद्म तथा रत्नघट को धारण की हुई उस लक्ष्मी को देखते हुये, अपने हाथों में शंख, चक्र, कमल एवं गदा धारण किये हुये गदाधर का ध्यान करना चाहिये।

इनका पूजन द्वादशाक्षर मन्त्र के समान करके चौदह लाख मन्त्रजप कहा गया है। जप के उपरान्त त्रिमधु-सिक्त कमलों से कृत जप का दशांश (एक लाख चालीस हजार) आहुतियाँ विसर्जित करते हुये हवन करना चाहिये।

पायस की आहुतियाँ प्रदान करते हुये किया गया हवन लक्ष्मी को वशीभूत करने वाला होता है। मधु-सिक्त तिलों का हवन करके समस्त कार्यों को सिद्ध किया जा सकता है॥२२९-२३५॥

प्रद्युम्नमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रद्युम्नमनुद्भुतम्।
क्लीं प्रद्युम्नाय हृदयं मनुः सप्ताक्षरो मतः॥२३६॥
कामो मुनिर्विराट् छन्दः प्रद्युम्नश्चास्य देवता।
नियोगः समरे जेतुं कामयुद्धे तथा स्त्रियाः॥२३७॥
ध्यायेन्मधुवने देवं सर्वर्तुकुसुमावृते।
आलिङ्गितं प्रभावत्या नानारूपं सुभूषितम्॥२३८॥
शरचापधरं कान्तं कान्ताभिरपि वीक्षितम्।
गन्धर्वैरभितो गीतं प्रसन्नमुखपङ्कजम्॥२३९॥

प्रद्युम्न-मन्त्र—अब मैं प्रद्युम्न के अद्भुत मन्त्र को कहता हूँ। सात अक्षरों का वह मन्त्र है—क्लीं प्रद्युम्नाय नमः। इस मन्त्र के ऋषि कामदेव, छन्द विराट् एवं देवता प्रद्युम्न कहे गये हैं। युद्ध में विजय-प्राप्ति एवं काम-युद्ध में स्त्रियों के विजय-हेतु इसका विनियोग किया जाता है।

सभी ऋतुओं के पुष्पों से घिरे मधुवन में प्रभावती द्वारा आलिङ्गित एवं अनेकविध आभूषणों से भूषित, हाथों में बाण एवं धनुष धारण किये हुये, मनोहर, कान्ताओं द्वारा देखे जाते हुये, अपने चारो ओर गन्धर्वों द्वारा गीत गाये जाते हुये, प्रसन्न मुखकमल वाले देव प्रद्युम्न का ध्यान करना चाहिये।।२३६-२४०।।

यजेत्पूर्वोदिते कामपीठे मन्त्रायुतं जपेत् ।
शरत्काले वसन्ते वा दिनानामेकविंशतिम् ।।२४०।।

आद्यन्तयोः पूजनं स्याद्भोजयेद्दम्पतीयुगम् ।
एवं सिध्यति मन्त्रोऽयं सर्वाभीष्टप्रदायकः ।।२४१।।

सहस्रादिककोट्यन्तं होमः कार्यो वशो भवेत् ।
यक्षिण्यो वशगाश्चैव वश्यः स्याद्योगिनीगणः ।।२४२।।

राजिकाभिः स्त्रियो वश्याः सर्पाः स्युर्गारुडीदलैः ।
विप्राः पलाशकुसुमैः सेवन्तीभिर्नृपास्तथा ।।२४३।।

वैश्याश्च चम्पकैः शूद्राः पुष्पैः सहचरोद्भवैः ।
तुरुष्का यान्ति दासत्वं जयन्त्याः कुसुमैर्हुनेत् ।।२४४।।

पूर्वोक्त काम-पीठ पर देव प्रद्युम्न का पूजन करने के पश्चात् उक्त मन्त्र का दस हजार जप करना चाहिये। शरद अथवा वसन्त ऋतु में इक्कीस दिनों तक जप के आरम्भ एवं अन्त में पूजन करके स्त्री-पुरुष के दो जोड़ों को भोजन कराने से समस्त अभीष्ट-प्रदायक यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

एक हजार से लेकर एक करोड़ तक हवन करने से अभीष्ट कार्य साधक के वशीभूत हो जाता है। इससे यक्षिणियाँ एवं योगिनियाँ भी वशीभूत होती हैं। राई के हवन से स्त्रियाँ वशीभूत होती हैं। गरुड की आकृति वाले दलों के हवन से सर्प वशीभूत होते हैं। पलाशपुष्पों के हवन से ब्राह्मण एवं सेवन्ती-पुष्पों के हवन से राजा वशीभूत होते हैं। चम्पा के हवन से वैश्य, सहचरोद्भव पुष्पों के हवन से शूद्र और जयन्ती-पुष्पों के हवन से तुर्क लोग साधक के दास हो जाते हैं।।२४०-२४४।।

अनिरुद्धमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चानिरुद्धमनुं तथा ।
बाणरुद्धानिरुद्धाय मनोऽन्यस्मिन्मनोरथे ।
उषाहृदयरुद्धाय कामरूपाय ते नमः ।।२४५।।

वात्स्यायनो मुनिश्छन्दोऽनुष्टुब्देवोऽनिरुद्धकः ।
स्मरेदुषागृहे तं च चित्रलेखादिसंयुते ।।२४६।।

पर्यङ्के सुखमासीनं नानालङ्कारभूषितम् ।
आलिङ्गितप्रियोषं च स्त्रीकौतुकरमान्वितम् ॥२४७॥

नमोऽन्तैः षट्पदैः कामबीजाद्यैः स्यात्षडङ्गकम् ।
कामपीठे यजेद्देवं वर्णलक्षं जपेन्मनुम् ॥२४८॥

घृताक्तैः कामकुसुमैरभावे चूतसम्भवैः ।
जुहुयान्मन्त्रराजस्य सिद्धितोऽस्य जगद्वशम् ॥२४९॥

अयं लौकिकमार्गेण साधको निशि होमयेत् ।
अष्टोत्तरसहस्रं तु तदा कुलवतो नृपाः ।
दासीभूताः साधकस्य जपेदृतुमतीं लभेत् ॥२५०॥

अष्टोत्तरसहस्रं तु भूतप्रेतपिशाचकाः ।
प्रत्यक्षीभूय कार्याणि कुर्वते दासवच्चिरम् ॥२५१॥

किञ्चिद्भक्ष्यन्तु तेभ्यश्च दद्यात्ते सर्वकारकाः ।

अनिरुद्ध-मन्त्र—अब मैं अनिरुद्ध के मन्त्र को कहता हूँ। श्लोकरूप वह मन्त्र है—बाणरुद्धानिरुद्धाय मनोऽन्यस्मिन्मनोरथे। उषाहृदयरुद्धाय कामरूपाय ते नमः। इस मन्त्र के ऋषि वात्स्यायन, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता अनिरुद्ध कहे गये हैं। चित्रलेखा आदि से समन्वित (बाणपुत्री) उषा के भवन में पलंग पर सुख-पूर्वक बैठे हुये, अनेकविध अलंकारों से विभूषित, अपनी प्रिया उषा का आलिङ्गन करते हुये, स्त्रीकौतुक-रूपी लक्ष्मी से समन्वित अनिरुद्ध का स्मरण करना चाहिये। इसके बाद मन्त्र के छः पदों के पूर्व 'क्लीं' और अन्त में 'नमः' लगाकर षडङ्गन्यास करना चाहिये।

कामपीठ पर देव अनिरुद्ध का अर्चन करने के पश्चात् मन्त्र का वर्णलक्ष अर्थात् बत्तीस लाख जप पूर्ण करने के बाद घृत-सिक्त कामपुष्पों (अशोकपुष्पों) अथवा उनके अभाव में आम्रमञ्जरियों के द्वारा हवन करना चाहिये। इस मन्त्रराज के सिद्ध हो जाने पर सम्पूर्ण जगत् साधक के वशीभूत हो जाता है।

लौकिक मार्ग का आश्रयण करते हुये साधक यदि इस मन्त्र द्वारा रात्रि में एक हजार आठ बार हवन करता है तो कुलीन राजागण उसके वशीभूत हो जाते हैं। इसके जप से साधक को दासी-स्वरूपा ऋतुमती स्त्रियों की प्राप्ति होती है। इस मन्त्र के एक हजार आठ जप करने से भूत-प्रेत-पिशाच प्रत्यक्ष होकर बहुत दिनों तक दास के समान साधक का कार्य करते हैं। साधक यदि उन्हें कुछ भक्ष्य प्रदान करता है तो वे समस्त कार्य करने वाले होते हैं॥२४५-२५१॥

अथ वक्ष्ये महामन्त्रं सौख्यदं पौरुषोत्तमम्।
मायारमातारकामबीजं हृत्पुरुषोत्तम ॥२५२॥
आद्यानिरुद्धलक्ष्मीति निवाससकलेति च।
जगत्क्षोभण सर्वस्त्रीहृदयेति विदारण ॥२५३॥
ङेऽन्तं मनोन्मादकरं सुरासुरपदं वदेत्।
मनुजसुन्दरीत्युक्त्वा मनोन्मथमनांसि च ॥२५४॥
तापयद्वितयं प्रोच्य द्विर्द्विर्दापय शोषय।
द्विर्मारय स्तम्भय द्विर्द्विर्नाशयपदं वदेत् ॥२५५॥
आकर्षयद्वयं प्रोच्य द्विरावेशय संवदेत्।
परमोक्त्वा च सुरभे सौभाग्यकर सर्व च ॥२५६॥
कामप्रदेति चोच्चार्य चालक्ष्मीं हनयुग्मकम्।
चक्रेण गदया चेति खड्गेनेति समुच्चरेत् ॥२५७॥
सर्वबाणैर्भिन्धिभिन्धि पाशेन त्रासयद्वयम्।
बन्धबन्धेत्यङ्कुशेन द्विस्त्रासय कुरुद्वयम् ॥२५८॥
किन्तिष्ठसीति चोच्चार्य तावद्यावत्समीप्सितम्।
मे सिद्धं भवति क्लीं हुं फट् नमो ह्रीं रमां वदेत् ॥२५९॥
कामङ्कामं कुशुभ्रांशुद्विवर्णोऽयं मनुर्मतः।

पौरुषोत्तम मन्त्र—अब मैं सुखदायक पौरुषोत्तम महामन्त्र को कहता हूँ। दो सौ सत्रह अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमः पुरुषोत्तम अप्रतिमरूप लक्ष्मीनिवास सकलजगत्क्षोभण सर्वस्त्रीहृदयविदारण त्रिभुवनमदोन्मादकराय सुरासुरमनुजसुन्दरीजनमनांसि तापय तापय दापय दापय शोषय शोषय मारय मारय स्तम्भय स्तम्भय मोहय मोहय नाशय नाशय आकर्षयाकर्षय आवेशयावेशय परमसुरभे सौभाग्यकर सर्वकामप्रद अलक्ष्मीं हन हन चक्रेण गदया खड्गेन सर्वबाणैः भिन्धि भिन्धि पाशेन त्रासय त्रासय बन्ध बन्ध अङ्कुशेन त्रासय त्रासय कुरु कुरु किं तिष्ठसि तावत् यावत् समीप्सितं मे सिद्धं भवति क्लीं हुं फट् नमः ह्रीं श्रीं क्लीं क्लीं॥२५२-२५९॥

भेदानस्य प्रवक्ष्यामि कामनावर्णभेदतः ॥२६०॥
आदौ मायां तथान्ते च सप्तबीजानि वर्जयेत्।
ज्ञानदीक्षी च संन्यासी यस्तु केवलवैष्णवः ॥२६१॥

मोहनार्थन्तु देवानां त्यजेदावरणद्वयम्।
स्तम्भयद्वितयं ब्रूयात्तथा सम्मोहयद्वयम्॥२६२॥

निष्कामो ह्रीं रमादौ तु न ब्रूयात्परमस्य च।
पूर्वं समस्तशब्दं च योजयेद् द्विधरेति च॥२६३॥

अनिष्टकरणार्थन्तु शत्रोर्नाम प्रयोजयेत्।
स्थाने लक्ष्म्या इति प्रोच्य भेदाश्चत्वार एव हि॥२६४॥

जैमिनिर्मुनिरेतेषां छन्दश्चामितमीरितम्।
त्रैलोक्यमोहनो नाम देवता पुरुषोत्तमः॥२६५॥

अब कामना एवं वर्णभेद से इस मन्त्र के भेदों को कहता हूँ। केवल वैष्णव संन्यासी को ज्ञानज्योति की प्राप्ति के लिये इस मन्त्र के आरम्भ का ह्रीं और एवं अन्त के सात बीजों का त्याग करके जप करना चाहिये। देवताओं के मोहन के लिये आवरणद्वय का त्याग करके 'स्तम्भय स्तम्भय मोहय मोहय' जोड़ कर जप करना चाहिये। निष्काम साधक को जप के आरम्भ में 'ह्रीं श्रीं' का उच्चारण करना चाहिये; लेकिन अन्त में इनका उच्चारण नहीं करना चाहिये। 'समस्त' शब्द के पूर्व 'लं लं' का योग करना चाहिये। किसी का अनिष्ट करने के लिये 'लक्ष्मी' के स्थान पर शत्रु का नाम रखना चाहिये। इस प्रकार इस मन्त्र के चार भेद होते हैं। इन चारो मन्त्रों के ऋषि जैमिनि, छन्द अमित एवं देवता त्रैलोक्यमोहन पुरुषोत्तम कहे गये हैं॥२६०-२६५॥

ॐक्लींपूर्वाणि हुंफट् च नमोऽन्तानि प्रविन्यसेत्।
षडङ्गेषु पदान्यत्र वदेच्च पुरुषोत्तम॥२६६॥

त्रिभुवनोन्मादकर हृदये परिकीर्तितम्।
सकलजगत्क्षोभणेति लक्ष्मीदयितशीर्षके॥२६७॥

शिखायां स्यान्मन्मथोत्तमाङ्गज कामदीपन।
कवचं स्यात्परमसुभगसर्वपदं वदेत्॥२६८॥

सौभाग्यकराप्रतिमरूप केशव संस्मरेत्।
अत्रैव कवचान्ते तु न्यसेदस्त्रं सुरासुर॥२६९॥

सुन्दरीं मनुजेत्युक्त्वा हृदयेति विदारण।
सर्वप्रहरणेत्युक्त्वा धर सर्वमनांसि वा॥२७०॥

हनद्वयं च हृदयं धनान्याकर्षयद्वयम्।
महानन्तेति चास्यान्ते नेत्रे मं फट् च कीर्त्यते॥२७१॥

भुवनेश्वर सर्वज्ञ वदेज्जनमनांसि च।
हनयुग्मं दारयद्विर्मे विद्यां वशमानय ॥२७२॥
नेत्रमन्त्रः समाख्यातस्तथाङ्गुष्ठादिषु न्यसेत्।
कनिष्ठयोर्नेत्रमनुमस्त्रं तु करपृष्ठयोः ॥२७३॥

इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ क्लीं पुरुषोत्तम त्रिभुवनोन्मादकर हृदयाय नमः, ॐ क्लीं सकलजगत्क्षोभण लक्ष्मीदयिते नमः शिरसे स्वाहा, ॐ क्लीं मन्मथोत्तमाङ्गज कामंदीपनाय नमः शिखायै वषट्, ॐ क्लीं परमसुभगसर्वसौभाग्यकर अप्रतिमरूपकेशवाय नमः कवचाय हुम्, ॐ क्लीं सुरासुर-सुन्दरीमनुजहृदयविदारण सर्वप्रहरणधरसर्वमनांसि हन हन नमः धनान्याकर्षयाकर्षय महानन्ताय नमः नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ क्लीं भुवनेश्वर सर्वज्ञ जनमनांसि हन हन दारय दारय मे विद्यां वशमानय अस्त्राय फट्।

इसके बाद इसी प्रकार करन्यास भी करना चाहिये। नेत्रमन्त्र से अँगूठे में और कनिष्ठा में न्यास करना चाहिये। अस्त्रमन्त्र से करतल-करपृष्ठ में न्यास करना चाहिये॥२६६-२७३॥

तत्त्वन्यासं ततः कुर्याद्वासुदेवस्य भूतिदम्।
न्यसेत्कराङ्गुलिषु च कामबीजानि शक्तिकाः ॥२७४॥
द्रां द्राविणीं तथा कामं क्षोभिणीं द्रीं च मन्मथाम्।
वशीकरां क्लीं कन्दर्पं क्लीं बीजं मकरध्वजम् ॥२७५॥
आकर्षिणीं चाथ मीनकेतुं सम्मोहिनीं च सः।
कामबीजप्रपुटितं मातृकान्यासमाचरेत् ॥२७६॥

इसके बाद वासुदेव की विभूति प्रदान करने वाले तत्त्वन्यास को करना चाहिये। करांगुलियों में कामबीज के साथ शक्ति का न्यास करना चाहिये। द्राविणी का बीज द्रां, क्षोभिणी का बीज क्लीं एवं मन्मथ का बीज द्रीं है। इसी प्रकार वशीकरा, कन्दर्प, मकरध्वज, आकर्षिणी, मीनकेतु एवं सम्मोहिनी का बीजमन्त्र भी क्लीं ही है। इसके बाद कामबीज-पुटित मातृकान्यास करना चाहिये॥२७४-२७६॥

पूर्वोक्तकाममन्त्रार्णैः स्थितिन्यासं समाचरेत्।
विन्यसेन्मातृकान्यासं पूर्वोक्तं च ततश्चरेत् ॥२७७॥
ततः श्रीकरविष्णूक्ततत्त्वन्यासं समाचरेत्।
संहाराख्यं च सृष्ट्याख्यं स्थानेष्वेतेषु च क्रमात् ॥२७८॥

पार्श्वद्वये नाभिलिङ्गगुदेषूरुद्वये तथा ।
जानुनोर्गुल्फयोः सर्वाङ्गुलिष्विति ततः क्रमात् ॥२७९॥
ततश्च वासुदेवोक्तमन्त्रन्यासान् समाचरेत् ।
संहारसृष्टिस्थित्याख्यांस्तथा नारायणोदितम् ॥२८०॥
मूर्तिपञ्जरविन्यासं गायत्रीन्यासमाचरेत्।
प्रतिवर्णं प्रकुर्वीत तां गायत्रीमथो शृणु ।
सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि जपाद्विष्णुप्रसादतः ॥२८१॥
त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे स्मराय धीमहि ।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥२८२॥
शीर्षे भाले नेत्रयोश्च दक्षदोर्मूलमध्ययोः ।
मणिबन्धाङ्गुलीमूले चाङ्गुल्यग्रे प्रविन्यसेत् ॥२८३॥
एवं दक्षोरुमूले च जानुगुल्फाङ्गुलीतले ।
अङ्गुल्यग्रे तथा वामे भुजमूलादिके न्यसेत् ॥२८४॥

पूर्वोक्त काममन्त्र के वर्णों से स्थितिन्यास करना चाहिये। इसके बाद पूर्वोक्त मातृकान्यास करना चाहिये। तदनन्तर श्रीकर विष्णु में कथित तत्त्वन्यास करना चाहिये। शरीर के दोनों पार्श्व, नाभि, लिङ्ग, गुदा, ऊरुद्वय, जानुओं, गुल्फों एवं समस्त अंगुलियों में क्रमशः संहार एवं सृष्टिन्यास करना चाहिये। इसके बाद वासुदेव मन्त्रोक्त मन्त्रन्यास करने के पश्चात् नारायण मन्त्रोक्त संहार, सृष्टि एवं स्थितिन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् मूर्तिपञ्जर-न्यास करने के उपरान्त विष्णुगायत्री के प्रत्येक वर्ण का न्यास करना चाहिये। जिसका जप करने पर विष्णु की कृपा से समस्त कार्य सिद्ध होते हैं, वह विष्णुगायत्री इस प्रकार है—त्रैलोक्यमाहनाय विद्महे स्मराय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।

गायत्री-वर्णन्यास मस्तक, ललाट, दोनों नेत्र, दक्ष बाहुमूल, दक्ष कूर्पर, मणिबन्ध, अङ्गुलिमूल और अङ्गुलि के अग्रभाग में करना चाहिये। इसी प्रकार दक्ष ऊरुमूल, जानु, गुल्फ, अङ्गुलितल एवं अङ्गुल्यग्र में न्यास करने के बाद वाम भुजमूल से वाम पादांगुल्यग्र तक भी न्यास करना चाहिये।।२७७-२८४।।

ततः पुनश्च पूर्वोक्तषडङ्गद्वादशाङ्गकान् ।
न्यासान् कुर्यात्तथा कामबाणन्यासमतः परम् ॥२८५॥
श्रीं स्वं श्रियै नमश्चोक्त्वा वामोरौ तु प्रविन्यसेत् ।
स्वां लक्ष्म्यै च नमः के स्वीं सरस्वत्यै नमो मुखे ॥२८६॥

स्वूं रत्यै च नमः कण्ठे स्वें प्रीत्यै लिङ्गके नमः ।
ककुदि स्वैं नमः कीर्त्यै स्वौं कान्त्यै च नमो हृदि ॥२८७॥

स्वं तुष्ट्यै च नमो नाभौ स्वः पुष्ट्यै च नमोऽङ्गके ।
ततश्च मूलमन्त्रेण प्राग्वद्व्यापकमाचरेत् ॥२८८॥

तत्पश्चात् पुनः पूर्वोक्त षडङ्ग एवं द्वादशाङ्ग न्यास करने के बाद कामबाण-न्यास करना चाहिये। श्रीं स्वं श्रियै नमः से वाम उरू में, स्वां लक्ष्म्यै नमः से मस्तक में, स्वीं सरस्वत्यै नमः से मुख में, स्वूं रत्यै नमः से कण्ठ में, स्वें प्रीत्यै नमः से लिङ्ग में, स्वैं कीर्त्यै नमः से ककुद में, स्वौं कान्त्यै नमः से हृदय में, स्वं तुष्ट्यै नमः से नाभि में एवं स्वः पुष्ट्यै नमः से सर्वाङ्ग में न्यास करने के उपरान्त सम्पूर्ण मूल मन्त्र से पूर्ववत् व्यापक न्यास करना चाहिये॥२८५-२८८॥

आयुधानि यथास्थानं तत्त्वमुद्रादिकं न्यसेत् ।
कामबीजैर्न्यसेत्पश्चाच्छ्रीवत्सं कौस्तुभं तथा ॥२८९॥

वनमालां ततः पश्चादृष्यादिन्यासमाचरेत् ।
ऊर्ध्वाङ्गुष्ठौ त्वथाश्लिष्टौ मूर्तिमूर्द्धनि योजयेत् ॥२९०॥

त्रैलोक्यमोहनाख्योऽयं मन्त्रस्तं मूर्ध्नि धारयेत् ।
एवं न्यस्य शरीरादौ ध्यायेच्छ्रीपुरुषोत्तमम् ॥२९१॥

उदयार्कसहस्राभं गरुडोपरि संस्थितम् ।
सर्वाङ्गसुन्दरं सौम्यं सर्वाभरणभूषितम् ॥२९२॥

सुरासुरनुतं शश्वत्स्त्रीभिश्चैव समावृतम् ।
चक्रं शङ्खं धनुः खड्गं गदां मुसलमङ्कुशम् ॥२९३॥

पाशं च बिभ्रतं दोर्भिर्वामाङ्गस्थितया श्रिया ।
सर्वभूषाढ्यया पद्मकरयालिङ्गितं स्मरेत् ॥२९४॥

अनन्तर यथास्थान आयुधों का न्यास करने के बाद कामबीज से तत्त्व-मुद्रा आदि का न्यास करना चाहिये। इसके बाद श्रीवत्स, कौस्तुभ एवं वनमाला का न्यास करना चाहिये। इसके बाद बाणन्यास करने के बाद मुट्ठी बाँधकर सीधे अंगूठों से मूर्धा में मूर्तिन्यास करना चाहिये और इस त्रैलोक्यमोहन-नामक मन्त्र को मूर्धा में धारण करना चाहिये। शरीर में इस प्रकार न्यास करने के उपरान्त श्रीपुरुषोत्तम का ध्यान करना चाहिये।

उदित हजारों सूर्य के सदृश दीप्तिमान, गरुड़ के ऊपर विराजित, सर्वाङ्ग-सुन्दर, सौम्य, समस्त आभूषणों से विभूषित, देवताओं एवं दानवों द्वारा स्तुत, अनवरत स्त्रियों द्वारा आवृत, अपने आठ हाथों में क्रमशः चक्र शंख धनुष खड्ग गदा मुसल अंकुश

एवं पाश धारण किये हुये, वामाङ्ग में विराजमान समस्त अलंकारों से सुशोभित लक्ष्मी द्वारा आलिङ्गित श्रीपुरुषोत्तम का स्मरण करना चाहिये॥२८९-२९४॥

पीठमध्ये तु देवस्य गरुडं परिपूजयेत् ।
पक्षिराजाय स्वाहेति तस्य पूजामनुर्मतः ॥२९५॥

ततो देवं समावाह्य दद्यात्पुष्पाञ्जलिं ततः ।
तद्वामोरौ पूजनीया मन्त्रिणा श्रीः श्रियै नमः ॥२९६॥

देवाग्रादिचतुर्दिक्षु कोणेषु पुरतस्तथा ।
क्रमादभ्यर्च्चयेदङ्गषट्कं स्यात्प्रथमावृतिः ॥२९७॥

तृतीयावरणे लक्ष्मीवाग्रतिप्रीतिकीर्तयः ।
कान्तिस्तुष्टिश्च पुष्टिश्च पूज्या अथ चतुर्थके ।
इन्द्राद्यांश्चापि वज्रादीन् पञ्चमे चेति पूजनम् ॥२९९॥

ततः पुष्पाञ्जलिं दद्यात्तत्तन्न्यासोक्तनामभिः ।
आदौ क्लीमत्र त्रैलोक्यमोहनाय ततो वदेत् ॥३००॥

ततो लज्जारमाकामबीजाद्यैः पञ्चनामभिः ।
नमोऽन्तैः पञ्च पुष्पाणामञ्जलींश्च समर्पयेत् ॥३०१॥

पुरुषोत्तमहृषीकेशौ विष्णुश्रीधररामकाः ।
पञ्च नामानीति चात्र पुरुषोत्तपूजने ॥३०२॥

पीठमध्य में 'पक्षिराजाय स्वाहा' मन्त्र से देव के गरुड़ का पूजन करने के उपरान्त देव का आवाहन करके पुष्पाञ्जलि प्रदान करने के बाद मन्त्रज्ञ साधक द्वारा देव के वाम ऊरु पर 'श्रीं श्रियै नम:' मन्त्र से लक्ष्मी का पूजन करना चाहिये। देवता के आगे से चारो दिशाओं में, कोणों में और आगे क्रमश: पूजन करने के पश्चात् प्रथम आवरण षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। द्वितीय आवरण में चक्रादि आठ आयुधों का पूजन किया जाता है। तृतीय आवरण में लक्ष्मी, सरस्वती, रति, प्रीति, कीर्ति, कान्ति, तुष्टि और पुष्टि का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् चतुर्थ आवरण में इन्द्रादि दस दिक्पालों का एवं पञ्चम आवरण में दिक्पालों के वज्रादि दस आयुधों का पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर न्यास में उक्त तत्तत् नामों से उनके मन्त्रोच्चारण में नामों के पूर्व 'क्लीं त्रैलोक्यमोहनाय' लगाकर पुष्पांञ्जलि प्रदान करना चाहिये। इसके बाद आदि में 'ह्रीं श्रीं क्लीं' इन तीन बीजों को युक्त करके अन्त में 'नम:' लगे पुरुषोत्तम, हृषीकेश, विष्णु, श्रीधर एवं राम—इन पाँच नामों से पुष्पांञ्जलि प्रदान करना चाहिये। पुरुषोत्तम के पूजन में यही पाँच नाम प्रयुक्त होते हैं॥२९५-३०२॥

चतुर्लक्षं जपेन्मंत्रं हुनेदर्कसहस्रकम्।
बिल्वैर्वा कमलैः पश्चात्तर्पणाद्यैर्भवेन्मनुः ॥३०३॥

सिद्धः प्रयोगान् कुर्वीतायुतं प्रातर्जपेन्मनुम्।
समस्ताधौ प्रजुहुयादष्टोत्तरसहस्रकम् ॥३०४॥

सम्यग्ज्योतिष्मतीतैलेनारोगो बुद्धिमान् भवेत्।
समूलकाण्डां शिरसि दद्यादञ्जलिनीं तु यः।
अष्टाधिकशतं जप्त्वा सर्वलोकप्रियो भवेत् ॥३०५॥

अश्वमारप्रसूनैश्च सम्पूज्य पुरुषोत्तमम्।
अष्टाधिकसहस्रं तु कुमुदैर्जुहुयात्ततः।
राजानो वशगाः सर्वे मासमात्रान्न संशयः ॥३०६॥

मालतीपुष्पहोमेन तद्वद्वैश्यान्नयेद्वशम्।
पलाशपुष्पहोमेन प्राग्वद्विप्राश्च वश्यकाः ॥३०७॥

उक्त प्रकार से पूजन करने के पश्चात् मन्त्र का चार लाख की संख्या में जप करके बिल्वफल अथवा कमलपुष्पों से बारह हजार हवन करने के बाद तर्पण-मार्जन आदि करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। मन्त्र सिद्ध होने पर प्रयोगों का साधन करना चाहिये।

समस्त प्रकार की पीड़ा की शान्ति हेतु प्रातःकाल दस हजार मन्त्रजप करने के बाद एक हजार आठ आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करना चाहिये। अभिमन्त्रित ज्योतिष्मती तैल के प्रयोग से साधक निरोग एवं बुद्धिमान होता है। जड़-सहित काण्ड से जो शिर पर जलाञ्जलि देकर एक सौ आठ बार मन्त्रजप करता है, वह सर्वलोकप्रिय होता है। कनैल के पुष्पों से पुरुषोत्तम का पूजन करके कुमुदों द्वारा एक हजार आठ बार हवन करने से एक मास में ही सभी राजा होता के वशीभूत हो जाते हैं; इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार मालती-पुष्पों के हवन से वैश्य को वशीभूत किया जाता है। पलाश-पुष्पों के हवन से पूर्ववत् ब्राह्मण वशीभूत होते हैं॥३०३-३०७॥

अभिवाञ्छति यां योषां तस्या नामायुतं मनुम्।
जपेत्पक्षं प्रतिदिनं चाष्टाधिकसहस्रकम्।
दिनादौ सा वशीभूयाद्दास्यस्मीत्यादिवादिनी ॥३०८॥

चौरापहृतवित्तस्तु साष्टाधिकसहस्रकम्।
अश्वत्थोत्थसमिद्भिस्तु हुनेत्पक्षत्रयं यमी ॥३०९॥

अथवा कटुतैलेन त्रिपक्षान्तं क्रमाद्धुनेत्।

अथवार्णसहस्रं तु प्रजपेन्मनुमन्वहम् ।
चौरो याति धनं दत्त्वा प्रणम्य स्वगृहं प्रति ॥३१०॥
सहस्रजप्तं मनुना त्वमुना मनुजास्थि च ।
निखातं शत्रुसदने शत्रुमुच्चाटयेद् ध्रुवम् ॥३११॥
राजिकाष्टशतं जप्त्वा निखाता शत्रुमन्दिरे ।
क्रूरवारे च लग्नेऽपि शत्रुमुच्चाटयेद् ध्रुवम् ॥३१२॥
हयारिकुसुमं चापि पक्षयोरुभयोरपि ।
शुक्लं रक्तं केशयुक्तं रिपुमुच्चाटयेद् ध्रुवम् ॥३१३॥

एक पक्ष (पन्द्रह दिन)-पर्यन्त अभीप्सित स्त्री के नाम-सहित ग्यारह हजार आठ बार मन्त्र का प्रतिदिन जो जप करता है, तो सोलहवें दिन प्रातःकाल वह स्त्री उस जापक के समक्ष उपस्थित होकर 'मैं आपकी दासी हूँ' ऐसा कहती हुई उसके वशीभूत हो जाती है।

चोर द्वारा धन का हरण करने पर तीन पक्ष (पैंतालीस दिन)-पर्यन्त प्रतिदिन पीपल की समिधाओं से एक हजार आठ आहुतियों द्वारा अथवा कटुतैल (सरसो-तैल) द्वारा हवन करने पर अथवा प्रतिदिन वर्णसहस्र मन्त्रजप करने से चोर उसका धन उसे वापस देकर प्रणाम करके अपने घर चला जाता है।

इस मन्त्र के एक हजार जप से अभिमन्त्रित मनुष्य की अस्थि (हड्डी) को शत्रु के घर में गाड़ देने से उस शत्रु का निश्चित ही उच्चाटन होता है। मन्त्र के आठ सौ जप से अभिमन्त्रित राई को क्रूर वार (मंगल अथवा शनिवार) और क्रूर लग्न में शत्रु के घर में गाड़ने से निश्चित ही शत्रु का उच्चाटन हो जाता है। महीने के दोनों पक्षों में लाल या उजले कनैल के फूलों को अभिमन्त्रित करके केश-सहित शत्रु के घर में गाड़ने से उसका उच्चाटन हो जाता है॥३०८-३१३॥

षण्मासं जुहुयाद्रात्रौ कलिद्रुमसमिद्वरैः ।
रिपुर्निधनमायाति साष्टाधिकसहस्रतः ॥३१४॥
मासषट्कं हुनेदर्कसमिद्भिश्च सहस्रकम् ।
यद्वा ज्योतिष्मतीतैलं हुनेदष्टसहस्रकम् ॥३१५॥
शत्रुर्मरणमाप्नोति सर्वो मासचतुष्टयात् ।
मन्त्री विविक्ते भूदेशे जपहोमार्चने रतः ॥३१६॥
अङ्कोलाज्यं सहस्रं तु हुनेन्मासत्रयावधि ।
ततः पूर्वाच्च मध्याह्ने पावकाच्चन्द्रसन्निभा ॥३१७॥

प्रादुर्भवेच्च गुटिका यस्तामभ्यर्च्य धारयेत्।
अनेनैवाथ शिरसि स भवेत्खेचरः सदा॥३१८॥
अदृश्यः सिद्धसङ्घैश्च तथा स्वर्णादिधातुकृत्।

कलिद्रुम (बहेड़ा) की समिधाओं से छः मास-पर्यन्त प्रतिरात्रि एक हजार आठ बार हवन करने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है। अर्क (अकवन)-समिधाओं से छः मास-पर्यन्त प्रतिदिन एक हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करने से अथवा एक हजार आठ बार ज्योतिष्मती के तेल से हवन करने से अथवा सबको मिलाकर चार मास तक हवन करने से शत्रु मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

मन्त्रज्ञ साधक जन-रहित भूभाग पर जप, होम एवं अर्चन में संलग्न होकर तीन मास-पर्यन्त प्रतिदिन गोघृत-समन्वित अंकोल (पिश्ता) की समिधा से एक हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करता है, तो उस अग्नि से मध्याह्न में पूर्व दिशा से चन्द्रमा के समान धवल गुटिका प्रादुर्भूत होती है, जिसका पूजन करके शिर पर धारण करने से वह साधक सदा-सर्वदा के लिये आकाशचारी (आकाश में गमन करने की शक्ति से सम्पन्न) हो जाता है। वह साधक सिद्धों द्वारा भी अदृश्य होता है तथा स्वर्ण आदि धातुओं को बनाने में समर्थ हो जाता है॥३१४-३१८॥

आज्याक्ताभिश्च दूर्वाभिर्होमो भयविनाशकः॥३१९॥
यस्य नामयुतं मन्त्रं जपेदयुतसङ्ख्यया।
शमयेदापदस्तस्य नात्र कार्या विचारणा॥३२०॥
इमं मन्त्रं जपेद्भूयः समस्तैश्वर्यवान् भवेत्।
अयं मनुवरो गोप्यो न देयः पापिने क्वचित्॥३२१॥

गोघृत-सिक्त दूर्वा से किया गया हवन भय का विनाश करने वाला होता है। मन्त्र के साथ जिस व्यक्ति के नाम को संयुक्त कर मन्त्र का दस हजार जप किया जाता है, उसकी समस्त आपत्तियों का शमन हो जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये।

इस मन्त्र के बार-बार जप से साधक सभी ऐश्वर्यों से युक्त होता है। इस श्रेष्ठ मन्त्र को अत्यन्त गुप्त रखना चाहिये; कभी भी पापियों को इसे प्रदान नहीं करना चाहिये॥३१९-३२१॥

श्रीपुरुषोत्तममन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं श्रीपुरुषोत्तमम्।
तारं मारं रमां ङेऽन्तं वदेच्च पुरुषोत्तमम्॥३२२॥
हुं फट् स्वाहेति मन्त्रोऽयं विश्ववर्णः प्रकीर्तितः।
ब्रह्मा मुनिश्च गायत्री छन्दोऽसौ पुरुषोत्तमः॥३२३॥

देवता कीर्तितश्चास्य नियोगोऽभीष्टसिद्धये।
भूभूभूषड्द्विद्विवर्णैः षडङ्गविधिरीरितः ॥३२४॥
संस्मरेत्सरमं विष्णुं रक्तवर्णं चतुर्भुजम्।
शङ्खचक्रोत्पलगदाधारिणं पुरुषोत्तमम् ॥३२५॥
पूर्वोदिते यजेत्पीठे प्राग्वदङ्गानि चार्चयेत्।
वासुदेवादीनि दिक्षु शक्तीर्वै कोणगा यजेत् ॥३२६॥
नारायणोक्तशङ्खादीन् पार्षदान् कुमुदादिकान्।
दिगीशांश्च तदस्त्राणि प्राग्वत्षड्वर्णपूजनम् ॥३२७॥
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं सहस्रं पङ्कजैर्हुनेत्।
तर्पणादि ततः कृत्वा मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥३२८॥
ततः प्रयोगानखिलान् पूर्वमन्त्रोदितांश्चरेत्।

श्रीपुरुषोत्तम-मन्त्र—अब मैं श्रीपुरुषोत्तम-मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। चौदह अक्षरों का वह मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ क्लीं श्रीं श्रीपुरुषोत्तमाय हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता पुरुषोत्तम कहे गये हैं। अभीष्ट-सिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है। मन्त्र के एक, एक, एक, छः, दो, दो वर्णों से इसकी षडङ्गविधि कही गई है।

ध्यान-हेतु रक्त वर्ण वाले, चार भुजाओं में शंख चक्र कमल एवं गदा धारण किये हुये रमा (लक्ष्मी)-सहित पुरुषोत्तम विष्णु का स्मरण करना चाहिये।

पूर्वोक्त पीठ पर देव पुरुषोत्तम का अर्चन करने के बाद पूर्ववत् अङ्गों का भी पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् पीठ की चार दिशाओं में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध का तथा पीठ के आग्नेयादि कोणों में उनकी शक्तियों (शान्ति, श्री, सरस्वती, रति) का पूजन करना चाहिये। इसके बाद नारायणोक्त शंख आदि आयुधों तथा कुमुदादि पार्षदों का पूजन करके भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।

इसके बाद मन्त्र का चौदह लाख जप करने के उपरान्त कमलपुष्पों से एक हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करने के बाद तर्पण आदि करने से मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है। मन्त्र सिद्ध हो जाने पर पूर्व मन्त्रोक्त समस्त प्रयोगों का इस मन्त्र से भी साधन करना चाहिये।।३२२-३२८।।

अधोक्षजमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रमाधोक्षजं वरम्।
रमा तारं ह्रियं कामं हृद् ङेऽन्तः स्यादधोक्षजः ॥३२९॥

दशार्णोऽयं मुनिर्ब्रह्मा पंक्तिश्छन्दः समीरितम्।
साधकानां कामदायी देवता स्यादधोक्षजः ॥३३०॥

षड्भिः पदैः षडङ्गानि ध्यायेद्देवमनन्यधीः।
शङ्खचक्रगदापद्मपाणिं पीताम्बरावृतम् ॥३३१॥

मेघश्यामं सुरुचिरं गरुडासनसंस्थितम्।
वासुकिप्रमुखैर्नागैः सेवितं रमया युतम् ॥३३२॥

यजेच्च वैष्णवे पीठे षडङ्गानि प्रपूजयेत्।
सनकादीन्नारदं च जयं च विजयं तथा ॥३३३॥

अग्रतश्चापि पक्षीन्द्रं तद्बाह्येऽष्टदले यजेत्।
नागाष्टकं दिगीशांश्च भूपुरे हेतिसंयुतान् ॥३३४॥

पञ्चलक्षं जपेन्मन्त्रं तिलाज्यैरयुतं हुनेत्।
तर्पणादि ततः कृत्वा सहस्रं भोजयेद् द्विजान् ॥३३५॥

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री दशधा मन्त्रितं जलम्।
विषार्ताय च सर्पादिदष्टकाय प्रदापयेत् ॥३३६॥

तत्कालं निर्विषोऽसौ स्यात्सेवते तज्जलं यदि।
कुष्ठादिकगदैर्युक्तो मुच्यते नात्र संशयः ॥३३७॥

अधोक्षज-मन्त्र—अब मैं श्रेष्ठ अधोक्षज-मन्त्र को कहता हूँ। दस अक्षरों का वह मन्त्र है—श्रीं ॐ ह्रीं क्लीं नमोऽधोक्षजाय। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द पंक्ति एवं देवता साधक की कामना पूर्ण करने वाले अधोक्षज कहे गये हैं। मन्त्र के छः पदों से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है (श्रीं हृदयाय नमः, ॐ शिरसे स्वाहा, ह्रीं शिखायै वषट्, क्लीं कवचाय हुम्, नमः नेत्रत्रयाय वौषट्, अधोक्षजाय अस्त्राय फट्)।

इसके बाद एकाग्र मन से देव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—वे भगवान् अधोक्षज हाथों में शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये हुये हैं; पीत वस्त्र से आवृत हैं; उनका वर्ण मेघ-सदृश श्याम है; वे अत्यन्त रुचिर गरुड़ासन पर विराजमान हैं वासुकी आदि प्रमुख नागों द्वारा सेवित हैं एवं लक्ष्मी से युक्त हैं।

उक्त प्रकार से ध्यान करने के पश्चात् वैष्णव पीठ पर उनका यजन करने के बाद षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। इसके बाद सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नारद; जय और विजय का पूजन करने के बाद देव के अग्रभाग में गरुड़ का पूजन करना चाहिये। पुनः उसके बाहर अष्टदल में आठ नागों का पूजन करने के पश्चात् भूपुर में दस दिगीशों और उनके दस आयुधों का पूजन करना चाहिये।

उक्त प्रकार से पूजन सम्पन्न करने के बाद मन्त्र का पाँच लाख जप करके गोघृत

एवं तिल से दश हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करना चाहिये। तदनन्तर तर्पण आदि करने के बाद एक हजार ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये।

इस प्रकार सिद्ध मन्त्र वाला साधक मन्त्र के दस जप से अभिमन्त्रित जल को सर्प आदि द्वारा काटने से विषार्त्त व्यक्ति को यदि देता है तो उसका सेवन करते ही वह व्यक्ति विष-रहित हो जाता है। उस जल के पान से कुष्ठ आदि रोगों से युक्त व्यक्ति भी रोगमुक्त हो जाता है; इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये।।३२९-३३७।।

नृसिंहमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नृसिंहमनुमद्भुतम्।
तारं लक्ष्मीं च हल्लेखां जयलक्ष्मीप्रियाय च।
नित्यप्रमुदितेत्युक्त्वा चेतसे प्रवदेत्ततः ।।३३८।।

लक्ष्मीश्रितार्धदेहाय रमां लज्जां नमो नमः।
त्रिरामवर्णो मन्त्रोऽयं मुनिर्ब्रह्मा समीरितः।
छन्दोऽतिजगती देवो नृहरिः शक्तिरद्रिजा ।।३३९।।

रमाबीजं षडङ्गानि श्रीबीजेन प्रकल्पयेत् ।।३४०।।

क्षीराब्धौ संस्मरेद्देवमग्रे च वसुवेष्टितम्।
रुद्रैश्च दक्षिणे भागे शङ्खचक्रगदाम्बुजान्।
हस्तैर्दधानं सर्पस्य फणाचित्रविराजितम् ।।३४१।।

पीताम्बरधरं त्र्यक्षं नीलकण्ठं रमान्वितम्।
वर्षाहतुल्यसाहस्रं जपोऽस्य परिकीर्तितः ।।३४२।।

मध्वक्तैर्मल्लिकापुष्पैर्होमयेत्तद्दशांशतः।
तर्पणादि ततः कुर्यादङ्गैः स्यात्प्रथमावृतिः ।।३४३।।

भास्वती भास्करी चिन्ता द्युतिरुन्मीलिनी रमा।
कान्ती रुचिश्चाष्टपत्रे भूपुरे दिव्यहेतयः ।।३४४।।

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत्ततः।
मल्लिकाकुसुमैर्होमश्चायुतं त्विष्टदायकः ।।३४५।।

अन्यानपि प्रयोगांश्च कुर्यादष्टार्णकोदितान् ।।३४६।।

नृसिंह-मन्त्र—अब मैं नृसिंह के अद्भुत मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। तैंतीस अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ श्रीं ह्रीं जयलक्ष्मीप्रियाय नित्यप्रमुदितचेतसे लक्ष्मीश्रितार्धदेहाय श्रीं ह्रीं नमो नमः। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द अतिजगती, देवता नृसिंह, शक्ति अद्रिजा एवं बीज श्रीं कहा गया है। श्रीबीज से इसका षडङ्ग-न्यास करना चाहिये।

तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—क्षीरसमुद्र में वे देव अग्रभाग में अष्टवसु एवं दाहिने रुद्रों से घिरे हैं; हाथों में शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये हुये हैं; सर्प के अद्भुत फण पर विराजमान हैं; पीत वस्त्र धारण किये हुये हैं; उनकी तीन आँखें हैं; कण्ठ नीला है एवं वे रमा से अन्वित हैं।

तीन लाख पैंसठ हजार इसका जप कहा गया है। नियतसंख्यक जप करने के उपरान्त मधु-सिक्त मल्लिका-पुष्पों से कृत जप का दशांश (छत्तीस हजार पाँच सौ) हवन करना चाहिये। तदनन्तर तर्पण-मार्जन आदि करने के बाद प्रथम आवरण में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। द्वितीय आवरण में अष्टदल में भास्वती, भास्करी, चिन्ता, द्युति, उन्मीलनी, रमा, कान्ति एवं रुचि का पूजन करना चाहिये। तृतीय आवरण में भूपुर में इन्द्रादि दिगीशों का पूजन करने के पश्चात् चतुर्थ आवरण में दिगीश्वरों के आगे उनके वज्रादि आयुधों का पूजन किया जाता है।

इस प्रकार सिद्ध किये गये मन्त्र से मन्त्रज्ञ साधक को प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये। मल्लिकापुष्पों की दस हजार आहुतियों द्वारा किया गया हवन इष्ट-प्रदायक होता है। इस मन्त्र से अष्टाक्षर मन्त्र में कथित अन्य प्रयोगों का भी साधन करना चाहिये॥३३८-३४६॥

अभयप्रदनृसिंहमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नृसिंहमभयप्रदम्।
तारो नमो भगवते नरसिंहाय हृद्वदे॥३४७॥
तेजस्तेजस आभाष्याथाविराविर्भवेति च।
वज्रनख वज्रदंष्ट्र ततः कर्माशयान् वदेत्॥३४८॥
रोधयद्वितयं पश्चात्तमो ग्रसयुगं वदेत्।
स्वाहां तथाभयं चात्मनि भूयिष्ठा ध्रुवं वदेत्॥३४९॥
नृसिंहबीजमथ च द्विषष्ट्यर्णो मनुर्मतः।
शुकदेवो मुनिः प्रोक्तोऽमितं छन्दश्च देवता॥३५०॥
अभयाख्यो नारसिंहो ध्यानपूजादिकं भवेत्।
दशावतारनृहरेस्तुल्यं लक्षमितो जपः॥३५१॥

अभयप्रद नृसिंह-मन्त्र—अब मैं नृसिंह के अभय प्रदान करने वाले मन्त्र को कहता हूँ। बासठ अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमो भगवते नृसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रोधय रोधय तमो ग्रस ग्रस स्वाहा अभयमात्मानि भूयिष्ठाः ॐ क्ष्रौम्। इस मन्त्र के ऋषि शुकदेव, छन्द अमित एवं देवता अभयनृसिंह कहे गये हैं। दशावतार में कथित नृसिंह के समान ही इसका ध्यान-पूजन

आदि होता है। पुरश्चरण-हेतु इस मन्त्र का एक लाख की संख्या में जप किया जाता है॥३४७-३५१॥

जनार्दनमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि जनार्दनमनुं परम्।
जं जनार्दनाय नमो मन्त्रश्चाष्टाक्षरो मतः।
ब्रह्मा ऋषिरनुष्टुप् च च्छन्दो देवो जनार्दनः॥३५२॥
जम्पूर्वकैर्नमोऽन्तैश्च पञ्चार्णैरङ्गपञ्चकम्।
वराभये चक्रगदे दधतं पीतवाससम्॥३५३॥
आलिङ्गितञ्च रमया नारदाद्यैरभिष्टुतम्।
अस्य पूजाप्रयोगादि जपहोमादिकं भवेत्॥३५४॥
नारायणाष्टार्णवच्च विशेषात् पितृतोषकृत्।
तत्पुत्रस्य च लोकोऽस्ति पौरुषोऽयं मनूत्तमः।
तथा संसेविते मुक्तिराजन्मब्रह्मचारिभिः॥३५५॥

जनार्दन-मन्त्र—अब मैं जनार्दन के श्रेष्ठ मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। वह अष्टाक्षर मन्त्र है—जं जनार्दनाय नमः। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता जनार्दन कहे गये हैं। आदि में 'जं' एवं अन्त में 'नमः' का संयोजन करके 'जनार्दनाय' के पाँच अक्षरों से इसका पञ्चाङ्गन्यास किया जाता है।

इसका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—भगवान् जनार्दन अपने चार हाथों में वर, अभय, चक्र एवं गदा धारण किये हुये हैं; उनका वस्त्र पीत वर्ण का है; रमा द्वारा वे आलिङ्गित हैं एवं चारो ओर से नारद आदि द्वारा उनकी स्तुति की जा रही है।

इनका पूजन, जप, होम, प्रयोग आदि नारायण के अष्टाक्षर मन्त्र के समान किया जाता है। यह मन्त्र विशेषतया पितरों को सन्तोष प्रदान करने वाला है; क्योंकि पितरों के पुत्रों का ही यह पौरुष लोक है। आजन्म ब्रह्मचारियों को इस उत्तम मन्त्र की उपासना से मुक्ति प्राप्त होती है॥३५२-३५५॥

उपेन्द्रमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गतराज्यप्रदायकम्।
उपेन्द्रमन्त्रं प्रणवमुमुपेन्द्राय हृन्नमः॥३५६॥
दशाक्षरो मनुश्चास्य मुनिः कश्यप उच्यते।
पंक्तिश्छन्द उपेन्द्रस्तु देवो बीजं तथा स्मृतम्॥३५७॥
पृथक्पदैः समस्तेन षडङ्गविधिरीरितः।
ध्यानपूजाप्रयोगाद्यं बलिवामनवद्भवेत्॥३५८॥

उपेन्द्र-मन्त्र—अब मैं दूसरे द्वारा हस्तगत किये गये राज्य को पुनः प्रदान करने वाले उपेन्द्र-मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। दस अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ उं उपेन्द्राय नमो नमः। इस मन्त्र के ऋषि कश्यप, छन्द पंक्ति, देवता उपेन्द्र एवं बीज उं कहा गया है। मन्त्र के पृथक्-पृथक् पाँच पदों एवं सम्पूर्ण मन्त्र से इसकी षडङ्गविधि कही गई है। इसके ध्यान, पूजन, प्रयोग आदि बलिवामन मन्त्र के समान होते हैं॥३५६-३५८॥

हरिमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि हरिमन्त्रमभीष्टदम्।
हरये नम इत्येष मन्त्रः पञ्चाक्षरो मतः॥३५९॥
समस्तपापौघवनदहने वडवानलः।
श्रीबीजाद्यस्तु दारिद्र्ये सर्वनाशाय पक्षिराट्॥३६०॥
लज्जाबीजादिकश्चायं भुक्तिमुक्तिप्रदायकः।
ऐंसमन्वितमन्त्रोऽयं द्रुतं विद्याप्रदायकः॥३६१॥
स एव प्रणवाद्यः स्यादज्ञानेन्धनपावकः।
जपन्कामादिकं तत्र मोहयेद्धनिनां गणान्॥३६२॥
वाग्बीजपूर्वकं जप्त्वा वाक्सिद्धिं समवाप्नुयात्।
हूङ्कारपूर्वकं जप्त्वा समरे विजयी भवेत्॥३६३॥
तारपूर्वं जपित्वा तं द्रुतं प्राप्नोति वाञ्छितम्।
कामपूर्वं च जपतो वंशः कश्यपवद्भवेत्॥३६४॥

हरि-मन्त्र—अब मैं अभीष्ट प्रदान करने वाले हरि-मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। वह पञ्चाक्षर मन्त्र है—हरये नमः। यह मन्त्र समस्त पापसमूह-रूपी वन को जलाने में वड़वानल के समान है। आदि में श्रीबीज का संयोजन करने से (श्रीं हरये नमः) यह मन्त्र गरुड़ के समान दरिद्रता का विनाशक हो जाता है। आदि में लज्जाबीज का संयोजन करने पर यह मन्त्र (ह्रीं हरये नमः) भोग एवं मोक्ष प्रदान करता है। आदि में वाग्बीज 'ऐं' से समन्वित यह मन्त्र (ऐं हरये नमः) अविलम्ब विद्या-प्रदायक हो जाता है। आदि में प्रणव (ॐ) से समन्वित यही मन्त्र (ॐ हरये नमः) अज्ञान-रूपी ईन्धन के लिये अग्नि-सदृश हो जाता है। आदि में कामबीज का संयोजन करके (क्लीं हरये नमः) जप करने पर यह मन्त्र धनिकों के समूह को मोहित कर देता है। इस मन्त्र के आदि में वाग्बीज का संयोजन कर जप करने से वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। आदि में 'हूं' को संयोजित करके इस मन्त्र (हूं हरये नमः) का जप करने वाला साधक युद्ध में विजय प्राप्त करता है। 'ॐ हरये नमः' का जप करने वाले को शीघ्र अभीष्ट-लाभ

होता है। 'क्लीं हरये नमः' के जप करने वाले साधक का वंश कश्यप के समान होता है।।३५९-३६४।।

सर्वेषामेव छन्दस्तु गायत्री नारदो मुनिः।
हरिर्देवस्त्वाद्यपदं बीजशक्ती मनोर्मते ।।३६५।।

हकाराद्यैः पञ्चवर्णैरखिलेन षडङ्गकम्।
मेघश्यामं सुनयनं काकपक्षविराजितम् ।।३६६।।

राधिकादिप्रियायुक्तं पर्यटन्तं वने वने।
विचित्रपरिधिं वंशीं दधतं वामदक्षयोः ।।३६७।।

अथ कृष्णोक्तवत्पूजा जपो लक्षाष्टको मतः।
होमः पञ्चामृतेनाथ प्रयोगोऽस्य निगद्यते ।।३६८।।

यस्मिन् कार्ये तु यो मन्त्रो गदितः कार्यगौरवात्।
एकायुतादिपञ्चान्तं पुरश्चरणवज्जपेत् ।।३६९।।

उक्त समस्त मन्त्रों के ऋषि नारद, छन्द गायत्री, देवता हरि, मन्त्र का आदि पद बीज एवं नमः शक्ति कहे गये हैं। मन्त्र के अलग-अलग हकारादि पाँच अक्षरों एवं सम्पूर्ण मन्त्र से इसका षडङ्ग-न्यास किया जाता है। इनका ध्यान इस प्रकार कहा गया है—वे हरि मेघ-समान श्याम वर्ण वाले हैं, उनके नेत्र सुन्दर हैं, काकपक्ष (दोनों कनपटियों के लम्बे बाल) से सुशोभित हैं, राधा आदि प्रेयसियों से समन्वित वे वन-वन में भ्रमण करते रहते हैं, बाँयें एवं दाहिने हाथ से वे विचित्र परिधि वाली वंशी को धारण किये हुये हैं।

इस प्रकार ध्यान के उपरान्त कृष्णमन्त्र-पठित विधि के अनुरूप ही इनका पूजन आदि करना चाहिये। पुरश्चरण-हेतु इस मन्त्र का आठ लाख जप कहा गया है। जप के पश्चात् पञ्चामृत से हवन किया जाता है।

अब इसका प्रयोग कहा जा रहा है। जिस कार्य के लिये जो मन्त्र कहा गया है, उस कार्य की गुरुता-लघुता के अनुसार पुरश्चरण के समान दस हजार से पचास हजार तक मन्त्रजप करना चाहिये।।३६५-३६९।।

कृष्णमन्त्रकथनम्

अथ वक्ष्येऽयोनिजस्य कृष्णस्य मनुमद्भुतम्।
कामो गोवल्लभो ङेऽन्तो मोहिताखिलयोषितम् ।।३७०।।
भूषितं नूपुराद्यैश्च श्यामलं पञ्चवार्षिकम्।
काकपक्षधरं नानाकेलिकौतुककारकम् ।।३७१।।

कर्णिकायां यजेद्देवं दलमध्ये यजेदिमान् ।
वासुदेवं रुक्मिणीं च तथा सङ्कर्षणाभिधम् ॥३७२॥
सत्यभामां च प्रद्युम्नं लक्ष्मणामनिरुद्धकम् ।
जाम्बवतीं च तद्बाह्ये भूपुरे दिक्पतीनथ ॥३७३॥
तदायुधानि च ततो जपेल्लक्षाष्टकं मनुम् ।
ब्रह्मवृक्षसमिद्भिश्च हुनेदष्टसहस्रकम् ॥३७४॥
तर्पणादि ततः कृत्वा मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ।
विदधीत प्रयोगांश्च पूर्वान् कृष्णमनूदितान् ॥३७५॥
मूर्तीनां मनवश्चैते मया प्रोक्ताः सुसिद्धिदाः ।
उक्ताः केचिच्च तन्त्रेषु वक्तव्यं किमतः परम् ॥३७६॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते 'चतुर्विंशति-मूर्तिमनुकथनं' नाम सप्तविंशः प्रकाशः ॥२७॥

●

अयोनिज कृष्ण-मन्त्र—अब मैं अयोनिज कृष्ण के अद्भुत मन्त्र को कहता हूँ। छः अक्षरों का वह मन्त्र है—क्लीं गोवल्लभाय। इनका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—वे समस्त स्त्रियों को मोहित करने वाले हैं, नूपुर आदि आभूषणों से भूषित हैं, श्याम वर्ण वाले हैं, पञ्चवर्षीय हैं, काकपक्षधारी हैं अर्थात् उनकी दोनों कनपटियों पर बालों के गुच्छ लटक रहे हैं, अनेक प्रकार के आमोद-प्रमोद एवं क्रीड़ा करने वाले हैं। उक्त प्रकार से ध्यान करने के उपरान्त कमलकर्णिका में देव का पूजन करने के बाद अष्टदलों के मध्य में वासुदेव, रुक्मिणी, सङ्कर्षण, सत्यभामा, प्रद्युम्न, लक्ष्मणा, अनिरुद्ध एवं जाम्बवन्ती का यजन करना चाहिये। पुनः उसके बाहर भूपुर में इन्द्रादि दस दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इसके बाद उक्त मन्त्र का आठ लाख जप करके पलाश की समिधाओं से आठ हजार हवन करना चाहिये। तदनन्तर तर्पण आदि करने से मन्त्रसिद्धि होती है। मन्त्रसिद्धि हो जाने पर पूर्वकथित कृष्णमन्त्र में उक्त प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये।

इस प्रकार सुन्दर सिद्धि प्रदान करने वाले विष्णुमूर्तियों के ये मन्त्र मेरे द्वारा कहे गये। इनमें से कतिपय मन्त्र तन्त्रों में भी कहे गये हैं; अब इसके बाद क्या कहना चाहिये॥३७०-३७६॥

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिवप्रणीत 'चतुर्विंशति-मूर्तिमनुकथन'-नामक सप्तविंश प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।

●

अष्टाविंशतितमः प्रकाशः

(विष्णुप्रियमन्त्रकथनम्)

श्रीदेव्युवाच

श्रीविष्णोरवतारा ये स्थिता युगचतुष्टये ।
तन्मन्त्राञ्छ्रोतुमिच्छामि भुक्तिमुक्तिप्रदायकान् ॥१॥

श्रीदेवी ने कहा—चारो युगों में श्रीविष्णु के जो अवतार हुये हैं, उन अवतरित स्वरूपों के भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाले मन्त्रों को मैं सुनना चाहती हूँ॥१॥

शिव उवाच

सम्यक्पृष्टं त्वया देवि शृण्वादौ मन्त्रमद्भुतम् ।
मम विष्णोः प्रियतमं मन्त्रं हरिहरात्मकम् ॥२॥

श्रीशिव ने कहा—हे देवि! तुमने बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है। इस क्रम में सर्वप्रथम अद्भुत मन्त्र का श्रवण करो। हरि एवं हर-स्वरूप यह मन्त्र मुझे एवं विष्णु को अतिशय प्रिय है॥२॥

विष्णुप्रीतिकरमन्त्रकथनम्

प्रणवं चापि हल्लेखा हौंबीजं शङ्करेति च ।
नारायणाय च नमो हौंह्रीं ॐ षोडशाक्षरः ॥३॥
ऋषिर्नारायणश्छन्दोऽनुष्टुब्भरिहरः सुरः ।
षड्दीर्घयुङ्मायया च षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥४॥
शूलं चक्रं पाञ्चजन्यमभयं दधतं करैः ।
स्वस्वरूपार्धनीलार्धदेहं हरिहरं भजे ॥५॥
नवशक्त्यभिधे पीठे पूर्वमङ्गानि संयजेत् ।
लक्ष्मीनारायणं भूमिं धराख्यामम्बिकां तथा ॥६॥
गौराङ्गीं गोमतीं गौरीं गान्धारीं भूपुरे पुनः ।
लोकेशानपि चेन्द्रादीन् वर्णलक्षं जपेन्मनुम् ॥७॥
तिलैश्च तण्डुलैर्होमं तर्पणादि ततश्चरेत् ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री हृदि कृत्वा तु वाञ्छितम् ॥८॥
जपेदष्टाक्षरं शान्तो दिनानामेकविंशतिम् ।
लभते वाञ्छितानर्थान् सद्यः प्रीतिकरो मनुः ॥९॥

विष्णु-प्रीतिकर मन्त्र—सोलह अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ ह्रीं हों शङ्करनारायणाय नमः हों ह्रीं ॐ। हरि एवं हर-स्वरूप इस मन्त्र के ऋषि नारायण, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता हरिहर कहे गये हैं। साथ ही मायाबीज (ह्रीं) के छः दीर्घ स्वरूपों से इस मन्त्र का षडङ्ग न्यास इस प्रकार करना चाहिये—ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रूं शिखायै वषट्, ह्रैं कवचाय हुम्, ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः अस्त्राय फट्।

तत्पश्चात् इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—हाथों में शूल, चक्र, पाञ्चजन्य शंख एवं अभय धारण किये हुये, अपने स्वरूप को दो भागों में विभक्त करके नीले रंग के आधे शरीर से वर्त्तमान हरिहर की मैं आराधना करता हूँ।

उक्त प्रकार से देवता का ध्यान करने के पश्चात् नवशक्ति-नामक पीठ पर सबसे पहले सम्यक् रूप से षडङ्ग-पूजन करने के अनन्तर अष्टदल में लक्ष्मी, नारायण, भूमि, धराम्बिका, गौराङ्गी, गोमती, गौरी एवं गान्धारी का पूजन करने के बाद भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों का भी पूजन करना चाहिये। तदनन्तर उक्त षोडशाक्षर मन्त्र का वर्णलक्ष अर्थात् सोलह लाख जप करना चाहिये। यथासंख्य मन्त्रजप पूर्ण करने के पश्चात् तिल एवं चावल के द्वारा विधि-पूर्वक हवन करने के बाद तर्पण-मार्जन आदि करने से साधक को मन्त्र की सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

इस प्रकार मन्त्र को सिद्ध करने के पश्चात् अपनी अभीष्ट कामना को अपने हृदय में धारण करके शान्तचित्त होकर इक्कीस दिनों तक अष्टाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिये। ऐसा करने वाला साधक अपने अभीष्ट को अवाप्त कर लेता है। यह मन्त्र भगवान् विष्णु के प्रति सद्यः प्रीति उत्पन्न करने वाला कहा गया है।।३-९।।

हयग्रीवमन्त्रकथनम्

अथोच्यते हयग्रीवमन्त्रः सर्वार्थसिद्धिदः ।
सहावुकारसंयुक्तौ बिन्दुना परिशोभितौ ।।१०।।

विप्रसेव्यो बीजमन्त्रो हयग्रीवस्य चादिमः ।
हसावौकारयुक्तौ सबिन्दू क्षत्रियस्य च ।।११।।

हसावेकारसंयुक्तौ सबिन्दू वैश्यजन्मनः ।
त्रिष्टुप्छन्दो मुनिर्ब्रह्मा हयग्रीवोऽस्य देवता ।।१२।।

षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गविधिरीरितः ।
कमलं जपमालां चाभयं शङ्खकमेव च ।।१३।।

श्वेतपद्मस्थितं गौरं श्वेतपद्मानुलेपनम् ।
भक्तप्रियं हयग्रीवं वन्देऽहं दानवान्तकम् ।।१४।।

गायत्रीमस्य वक्ष्येऽहं स रुद्रः संस्कृतो यया।
मन्त्राधिकारी भवति देवमावाहयेत्तया ॥१५॥
वागीश्वराय विद्महे हयग्रीवाय धीमहि।
तन्नो हंसः प्रचोदयात् ॥१६॥

हयग्रीव मन्त्र—अब मैं समस्त कामनाओं की सिद्धि प्रदान करने वाले हयग्रीव-मन्त्र को कहता हूँ। उकार से संयुक्त सकार एवं हकार, जो कि बिन्दु से सुशोभित होता है (स्हुं), वह ब्राह्मणों के द्वारा सेवनीय हयग्रीव का प्रथम बीजमन्त्र होता है। क्षत्रियों के लिये बिन्दु-सहित औकार से समन्वित हकार एवं सकार (ह्सौं) हयग्रीव का बीजमन्त्र होता है। इसी प्रकार बिन्दु-सहित एकार से समन्वित हकार एवं सकार (ह्सें) वैश्यों के द्वारा सेवनीय हयग्रीव का बीजमन्त्र होता है। इस हयग्रीवमन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता हयग्रीव कहे गये हैं। तत्तत् वर्णानुसार दीर्घ स्वरूप वाले छः बीजमन्त्रों द्वारा इसका षडङ्गन्यास कहा गया है।

इनका ध्यान इस प्रकार कहा गया है—हाथों में कमल, जपमाला, अभय एवं शंख धारण करके श्वेत कमल पर विराजमान, श्वेत पद्म का अनुलेप लगाये हुये, गौर वर्ण वाले, दानवों के विनाशक एवं भक्तों के ऊपर प्रसन्न रहने वाले हयग्रीव को मैं प्रणाम करता हूँ।

अब मैं हयग्रीव की गायत्री को कहता हूँ, जिसके द्वारा संस्कृत होकर वह रुद्र (साधक) मन्त्र का अधिकारी होता है। इसी हयग्रीव गायत्री के द्वारा देवता हयग्रीव का आवाहन करना चाहिये। हयग्रीव-गायत्री इस प्रकार है—वागीश्वराय विद्महे हयग्रीवाय धीमहि तन्नो हंसः प्रचोदयात्॥१०-१६॥

यजेद्वाजिहरेः पीठे चाङ्गैः स्यात्प्रथमावृतिः।
प्रज्ञा मेधा स्मृतिर्विद्या श्रीर्वागीशा हयाननः ॥१७॥
विद्याविलासाख्यहयग्रीवो वै मानमर्दनः।
लक्ष्म्यादिभिस्तृतीया स्यात्ताश्च लक्ष्मीः सरस्वती ॥१८॥
रतिः प्रीतिः कीर्तिकान्त्यौ तुष्टिः पुष्टिश्चतुर्थिका।
त्र्यावृत्तः कुमुदाद्यैः स्यात्प्रोक्तास्ते दधिवामने ॥१९॥
पञ्चमी लोकपालैः स्यात्षष्ठी स्याच्च तदायुधैः।
वेदलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयाद् घृतैः ॥२०॥
सुगन्धाद्यैस्तर्पणं स्यान्मार्जनं विप्रभोजनम्।
सिद्धो मन्त्रः प्रयोगार्हो जायते भुक्तिमुक्तिदः ॥२१॥

आवाहन के पश्चात् पूजन के क्रम में हयग्रीवपीठ पर प्रथम आवरण के पूजन में षडङ्ग-पूजन करने के पश्चात् द्वितीय आवरण में अष्टदल में क्रमशः प्रज्ञा, मेधा, स्मृति, विद्या, श्री, वागीशा, अश्वमुख वाले विद्याविलास-नामक हयग्रीव एवं मानमर्दन का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् तृतीय आवरण में अष्टदल में ही लक्ष्मी, सरस्वती, रति, प्रीति, कीर्ति, कान्ति, तुष्टि एवं पुष्टि का पूजन करना चाहिये। इसके बाद दधिवामन-पूजन के प्रसंग में पठित कुमुद आदि आठ का पूजन चतुर्थ आवरण में करना चाहिये। तदनन्तर पञ्चम आवरण में लोकपालों का एवं षष्ठ आवरण में उन लोकपालों के आयुधों का पूजन करना चाहिये।

इस प्रकार सविधि पूजन सम्पन्न करने के उपरान्त उक्त मन्त्र का चार लाख की संख्या में जप करने के पश्चात् घृत से कृत जप का दशांश (चालीस हजार) हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् सुगन्धित जल से तर्पण एवं मार्जन करने के उपरान्त ब्राह्मण-भोजन कराने से उक्त सिद्ध मन्त्र प्रयोग करने के योग्य होकर भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला हो जाता है॥१७-२१॥

शशिमण्डलमध्यस्थं हेमकुण्डलिनं मनुम्।
करं ध्यात्वा न्यसेद्वक्त्रे सभापूज्यः स जायते॥२२॥
अथवा तं करं कुम्भे न्यस्य तज्जलसेचनात्।
प्रातर्हरति लूतादिदौर्भाग्यं पञ्चधा विषम्॥२३॥
योम्भस्त्रिसप्तजपितं प्रभाते प्रत्यहं पिबेत्।
सप्ताहाज्जायते तस्य दिव्या वाणी मनोरमा॥२४॥
चन्द्रमण्डलमध्यस्थलकारे न्यस्य मन्त्रकम्।
पीतं चापि मुखं ध्यात्वा स्तम्भयेत्परभारतीम्॥२५॥
प्रभावद् द्वयमध्यस्थं प्रभाबीजेन संयुतम्।
संलिखेद्दर्भमूलेन भूर्जपत्रे हरिद्रया॥२६॥
यन्त्रं प्रतिष्ठितप्राणं शरावद्वयसम्पुटम्।
वेष्टितं पीतसूत्रेण मूकत्वं कुरुतेऽचिरात्॥२७॥
शृङ्गाटपुरमध्यस्थं रेखाक्रान्तं तु बीजकम्।
ज्वालामालाकुलं ध्यायेत्स्तम्भनं परमं मतम्॥२८॥
वायुमण्डलमध्यस्थं वायुबीजसमन्वितम्।
संहारकमिदं ध्यानं विषादीनां न संशयः॥२९॥
जलमण्डलमध्यस्थं ध्यात्वा चंद्रांशुनिर्मलम्।
आप्यायते करे ह्येतत्सर्वरोगविनाशनम्॥३०॥

शून्यगर्भगतं यन्त्रं हेमगोक्षीरसन्निभम्।
ध्यायेद्धृत्पद्ममध्यस्थं निर्विषीकरणं परम् ॥३१॥
लिखेद्रोचनया भूर्जे मन्त्रं बाहौ विधारयेत्।
महारक्षा भवेदेषा सर्वदोषविनाशकृत् ॥३२॥
बीजं रेफसमायुक्तं मध्यस्थं सहकारयोः।
हकारद्वयमध्यस्थं जप्तं मासन्तु वैरकृत् ॥३३॥

चन्द्रमण्ड़ल के मध्य में अवस्थित स्वर्णकुण्ड़ल से सुशोभित मन्त्र को अपने हाथों में ध्यान करके उसका मुख में न्यास करने वाला साधक सभापूज्य होता है। अथवा उस हाथ में जल लेकर उस जल से प्रात:काल स्नान करने से दुर्भाग्य-कारक लूतादि पाँच प्रकार के विषों का विनाश होता है। जो साधक इस मन्त्र के सत्ताईस जप से अभिमन्त्रित जल का एक सप्ताह तक प्रतिदिन प्रात:काल पान करता है, उसकी वाणी दिव्य एवं मनोरम हो जाती है। चन्द्रमण्डल के मध्य-स्थित लकार में मन्त्र का न्यास करके प्रतिवादी के पीले मुख का ध्यान करने वाला साधक प्रतिवादी की वाणी को स्तम्भित कर देता है।

भोजपत्र पर कुशमूल के द्वारा हल्दी से यन्त्र बनाकर उसके मध्य में प्रोज्ज्वलित 'रं हसूं' लिखकर प्राणप्रतिष्ठित करके दो शरावों (कपटियों) के मध्य में रखकर उसे चारो ओर से पीले धागे से लपेट देने से तत्काल ही वादी मूक (गूंगा) हो जाता है।

नगर के चौराहे पर मध्य में चारो ओर से ज्वालाओं से घिरे बीजमन्त्र का ध्यान करने से प्रतिवादी का स्तम्भन होता है। वायुमण्डल के मध्य में वायुबीज से समन्वित बीजमन्त्र का ध्यान नि:सन्दिग्ध रूप से विष आदि का विनाश करने वाला होता है। जलमण्डल के मध्य में अवस्थित हयग्रीवबीज का ध्यान करके चन्द्रकिरणों के समान स्वच्छ जल से हाथ को प्रक्षालित करने से समस्त रोगों का विनाश होता है। अपने हृदयकमल के मध्य में अवस्थित शून्यगर्भ में प्रतिष्ठित स्वर्ण एवं गोदुग्ध के समान धवल हयग्रीवयन्त्र का ध्यान करने से उत्तम निर्विषीकरण होता है।

इस मन्त्र को गोरोचन से भोजपत्र पर लिखकर बाँह में धारण करने से साधक की सभी प्रकार से रक्षा होती है। यह यन्त्र समस्त दोषों का विनाशक होता है। बीज को रेफ से समन्वित करके सकार एवं हकार अथवा दो हकार के मध्य में रखकर उसका एक मास-पर्यन्त जप करने से वाञ्छित दो व्यक्तियों में परस्पर वैर उत्पन्न हो जाता है॥२२-३३॥

अथान्यं शृणु देवेशि मन्त्रं वाग्बुद्धिकारकम्।
उद्गिरत्प्रणवोद्गीथ सर्ववागीश्वरेश्वर ॥३४॥

सर्ववेद मयाचिन्त्य सर्वं बोधय बोधय।
स्वबीजप्रणवाभ्यां च श्लोकमेनं पुटेदथ ॥३५॥
षट्त्रिंशदक्षरो मन्त्रः स्वाहान्तोऽष्टत्रिवर्णकः।
छन्दोऽनुष्टुम्मुनिर्ब्रह्मा हयग्रीवस्तु देवता ॥३६॥
पञ्चाङ्गानि मनोस्तारमनुपादैर्भवन्ति हि।
हयग्रीवं चतुर्बाहुं पारदाम्भोधरद्युतिम्।
शङ्खारिपाणिमश्वास्यं जानुन्यस्तकरं भजेत् ॥३७॥

वाग्बुद्धिदायक हयग्रीव मन्त्र—हे देवेशि! अब हयग्रीव के वाणी एवं बुद्धि प्रदान करने वाले अन्य मन्त्र का श्रवण करो। छत्तीस अक्षरों का यह मन्त्र इस प्रकार है—ॐ स्हुं उद्गिरत्प्रणवोद्गीथ सर्ववागीश्वरेश्वर सर्ववेद मयाचिन्त्य सर्वं बोधय बोधय स्हुं ॐ। इस के मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' का संयोजन करने पर यही मन्त्र अड़तीस अक्षरों का हो जाता है। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता हयग्रीव कहे गये हैं। इसका पञ्चाङ्ग न्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ हृदयाय नमः, ह्सुं उद्गिरत्प्रणवोद्गीथ शिरसे स्वाहा, सर्ववागीश्वरेश्वर शिखायै वषट्, सर्ववेद मयाचिन्त्य कवचाय हुम्, सर्वं बोधय बोधय अस्त्राय फट्।

पञ्चाङ्गन्यास करने के उपरान्त इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—चार भुजाओं वाले, पारदजल के सदृश दीप्तिमान, ऊपर के दोनों हाथों में शंख एवं गदा धारण किये हुये तथा नीचे के दोनों हाथों को घुटने पर रखे हुये, अश्व के समान मुख वाले हयग्रीव की मैं आराधना करता हूँ॥३४-३७॥

पूर्वपीठे यजेन्मूर्तिं बीजमन्त्रेण कल्पयेत्।
यजेदष्टदले पद्मे देवाग्रादिप्रदक्षिणम् ॥३८॥
चतुर्वेदास्तु सम्पूज्यास्तत्कोणेषु यजेत् क्रमात्।
वेदाङ्गानि स्मृतिं न्यायं सर्वशास्त्राणि चार्चयेत् ॥३९॥
तस्य बाह्ये तु षट्कोणे षडङ्गानि समर्चयेत्।
भूपुरे लोकपालांश्च तदस्त्राणि ततो यजेत् ॥४०॥
षट्त्रिंशल्लक्षकञ्जप्त्वा कुन्दैस्त्रिस्वादुसंयुतैः।
होमयेत्तर्पणाद्यन्तं कृत्वा सिद्धो भवेन्मनुः ॥४१॥
लक्ष्मीकामः प्रजुहुयाद्बिल्वपत्रैस्तथायुतम्।
श्रीकामो जुहुयान्नित्यं कुन्दैस्त्रिमधुरप्लुतैः ॥४२॥
आज्यं ब्राह्मीरसे पक्वं मन्त्रेणानेन साधितम्।
सेवितं विधिना प्रातरतिबुद्धिकरं त्विदम् ॥४३॥

साधितां मन्त्रवर्य्येण वचामनुदिनं सुधीः ।
भक्षयेत्सर्वशास्त्राणां व्याख्याता भवति ध्रुवम् ॥४४॥

पूर्वोक्त पीठ पर बीजमन्त्र के द्वारा देवमूर्ति कल्पित करके उसका पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् कमल के आठ दलों में देव के आगे से आरम्भ कर प्रदक्षिणक्रम से चारो दिशाओं में चारो वेदों का एवं चारो कोणों में क्रमशः वेदाङ्ग, स्मृति, न्याय एवं समस्त शास्त्रों का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर उसके बाहर षट्कोण में षडङ्ग-पूजन करने के उपरान्त भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों का यजन करने के पश्चात् उनके आयुधों का भी यजन करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्र का छत्तीस लाख जप करने के पश्चात् त्रिमधुराक्त कुन्दपुष्पों से कृत जप का दशांश हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण आदि करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। धन की कामना वाले को बिल्वपत्रों से दस हजार हवन करना चाहिये। श्री की कामना वाले को प्रतिदिन त्रिमध्वक्त कुन्दपुष्पों से हवन करना चाहिये।

ब्राह्मी के रस में गोघृत का पाक करने के बाद उसे इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करने से यह बुद्धि को अत्यन्त तीक्ष्ण कर देता है। इस मन्त्र से अभिमन्त्रित वच का प्रतिदिन भक्षण करने वाला साधक निश्चित ही समस्त शास्त्रों का व्याख्याता हो जाता है॥३८-४४॥

धारणाप्रदहयग्रीवमन्त्रः

अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये त्वरितं धारणाप्रदम् ।
ऋग्यजुःसामरूपाय वेदाभरणकर्मणे ॥४५॥
प्रणवो ह्रीं नृवपुषे महाश्वशिरसे नमः ।
हंसादिः सोहमन्तश्च मन्त्रः षट्त्रिंशदक्षरः ।
ऋष्याद्यङ्गविधिध्यानपूजाकाम्यानि पूर्ववत् ॥४६॥

धारणाप्रद हयग्रीवमन्त्र—अब मैं हयग्रीव के सद्यः धारणाप्रद अन्य मन्त्र को कहता हूँ। छत्तीस अक्षरों का वह मन्त्र है—हंसः ऋग्यजुःसामरूपाय वेदाभरणकर्मणे, प्रणवो ह्रीं नृवपुषे महाश्वशिरसे नमः सोहम्। इस मन्त्र के ऋषि आदि, अङ्गन्यास-विधि, ध्यान, पूजा एवं काम्य प्रयोग पूर्व मन्त्र के समान ही होते हैं॥४५-४६॥

तीक्ष्णबुद्धिप्रदहयग्रीवमन्त्रः

अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये तीक्ष्णबुद्धिकरं परम् ।
बिल्वोत्तीर्ण स्वात्मरूप चिन्मयानन्दरूपिणे॥४७॥
तुभ्यं नमो हयग्रीव विद्याराजाय विष्णवे ।
स्वाहा सोहं च हंसादिरष्टत्रिंशाक्षरो मनुः ॥४८॥

तारमन्त्रपदैश्चात्र पञ्चाङ्गविधिरीरितः ।
पुरश्चर्या तु षट्त्रिंशल्लक्षमन्यच्च पूर्ववत् ॥४९॥

तीक्ष्ण बुद्धिप्रद हयग्रीवमन्त्र—अब मैं तीक्ष्ण बुद्धि प्रदान करने वाले अन्य मन्त्र को कहता हूँ। अड़तीस अक्षरों का वह मन्त्र है—हंसः बिल्वोत्तीर्ण स्वात्मरूप चिन्मयानन्दरूपिणे तुभ्यं नमो हयग्रीव विद्याराजाय विष्णवे स्वाहा सोहम्। ॐ एवं मन्त्र के चार पदों से इसका पञ्चाङ्गन्यास कहा गया है। छत्तीस लाख मन्त्रजप से इसका पुरश्चरण होता है। अन्य समस्त क्रियायें पूर्ववत् ही होती हैं॥४७-४९॥

ज्ञानप्रदहयग्रीवमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि परं ज्ञानप्रदं मनुम् ।
स्वबीजं हयशिरसे नमश्चाष्टाक्षरो मनुः ॥५०॥
एकाक्षरोक्तमृष्यादि छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
हस्तैर्दधानं मालां च पुस्तकं वरपङ्कजम् ॥५१॥
कर्पूराभं सौम्यरूपं नानाभूषणभूषितम् ।
एवं ध्यात्वाखिलं कुर्यादेककर्णोक्तवर्त्मना ॥५२॥

ज्ञानप्रद हयग्रीवमन्त्र—अब मैं अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञानप्रद मन्त्र को कहता हूँ। वह अष्टाक्षर मन्त्र है—ह्सुं हयशिरसे नमः। इस मन्त्र के ऋषि आदि पूर्वोक्त एकाक्षर मन्त्र के समान कहे गये हैं एवं छन्द अनुष्टुप् कहा गया है। हाथों में माला, पुस्तक, वर एवं कमल धारण किये हुये, कर्पूर-सदृश आभा वाले, सौम्य स्वरूप वाले, अनेक आभरणों से विभूषित देव का ध्यान करके शेष समस्त कार्य एकाक्षर मन्त्र की विधि के अनुरूप करना चाहिये॥५०-५२॥

भवरोगैकभेषजविष्णुमन्त्रकथनम्

अथ विष्णोः प्रवक्ष्यामि मन्त्रं रोगापहारकम् ।
अच्युतानन्त गोविन्दपदं ङेऽन्तं हृदन्तकम् ।
भवाक्षरो मनुः प्रोक्तो भवरोगैकभेषजम् ॥५३॥
शौनकर्षिर्विराट् छन्दः परमात्मा तु देवता ।
षडङ्गविधिरुक्तोऽस्य द्विरुक्तैर्मनुनामभिः ॥५४॥

भवरूपी रोग-नाशक विष्णुमन्त्र—अब मैं संसाररूपी रोग-हेतु एकमात्र ओषधि-स्वरूप विष्णुमन्त्र को कहता हूँ। ग्यारह अक्षरों का वह मन्त्र है—अच्युतानन्तगोविन्दाय नमः। इस मन्त्र के ऋषि शौनक, छन्द विराट् एवं देवता परमात्मा कहे गये हैं। मन्त्र में उक्त नामों (अच्युत, अनन्त, गोविन्द) की दो आवृत्ति से इसका षडङ्ग न्यास कहा गया है॥५३-५४॥

शङ्खचक्रधरं देवञ्चतुर्बाहुं किरीटिनम्।
सर्वायुधैरुपेतं च गरुडोपरि संस्थितम् ॥५५॥
सनकादिमुनीन्द्रैस्तु सर्वदेवैरुपासितम्।
श्रीभूमिसहितं देवमुद्यदादित्यसन्निभम् ॥५६॥
प्रातरुद्यत्सहस्रांशुमण्डलोपमकुण्डलम्।
सर्वलोकस्य रक्षार्थमनन्तं नित्यमेव हि ॥५७॥
अभयं वरदं देवं धारयन्तं युगान्वितम्।
गोविन्दमनुवत्प्रोक्तं पञ्चावरणसंयुतम्॥५८॥
लक्षमेकञ्जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेद् घृतैः।
तर्पणादि ततः कुर्याद्रोगनाशः प्रजायते ॥५९॥

इनका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—किरीटधारी, गरुड़ पर विराजमान, शंख एवं चक्र धारण किये हुये, चार भुजाओं वाले, समस्त आयुधों से समन्वित वे देव सनक आदि मुनिश्रेष्ठों-सहित समस्त देवताओं द्वारा उपासित हैं। लक्ष्मी-सहित वे देव उदीयमान सूर्य के समान प्रकाशमान हैं। प्रातःकालीन सूर्यमण्ड़ल के सदृश कुण्ड़ल से सुशोभित हैं। समस्त लोकों की रक्षा के लिये अनन्त-स्वरूप वे देव अपने दोनों हाथों में सदा-सर्वदा अभय एवं वर धारण किये हुये हैं।

गोविन्द-मन्त्र के समान पाँच आवरणों से समन्वित इनका पूजन कहा गया है। इनके मन्त्र का एक लाख जप करने के उपरान्त घृत से कृत जप का दशांश (दस हजार) हवन करने के पश्चात् तर्पण आदि करना चाहिये। ऐसा करने से उस साधक के रोगों का विनाश हो जाता है॥५५-५९॥

लाजहोमन्तु कन्यार्थी धनार्थी बिल्वहोमकम्।
वस्त्रार्थी पुष्पहोमं च नैरुज्यार्थी तिलैर्हुनेत् ॥६०॥
रविवारे जले स्थित्वा नाभिमात्रे जपेद् बुधः।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु ज्वरनाशो भविष्यति ॥६१॥
विवाहार्थी जपेन्मासं शशिमण्डलसन्निभम्।
ध्यायेल्लभेच्छुभां कन्यां कुलीनां च कुटुम्बिनीम् ॥६२॥

कन्या-प्राप्ति के इच्छुक साधक को लाजा (धान का लावा) से इस मन्त्र द्वारा हवन करना चाहिये। इसी प्रकार धन चाहने वालों को बिल्वफलों से; वस्त्र चाहने वालों को पुष्पों से एवं आरोग्य की कामना वालों को तिलों से हवन करना चाहिये।

विद्वान् साधक द्वारा रविवार को नाभि-पर्यन्त जल में स्थित होकर (खड़े होकर) इस मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करने से ज्वर का नाश हो जाता है।

विवाह की कामना वाला साधक यदि एक मास-पर्यन्त शशिमण्डल के समान धवल देव का ध्यान करते हुये इस मन्त्र का नित्यप्रति एक हजार आठ बार जप करता है, तो वह कुटुम्बों से समन्वित सत्कुलीन सुन्दर कन्या को प्राप्त करता है॥६०-६२॥

अनन्तस्वरूपविष्णुमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि विष्णोः प्रीतिकरं परम्।
अनन्ताय नमश्चेति षड्वर्णोऽयमुदाहृतः ॥६३॥
व्यासो मुनिश्च गायत्री छन्दोऽनन्तश्च देवता।
नियोगो रोगनाशार्थमन्यद् गोविन्दवद्भवेत् ॥६४॥

अनन्त-स्वरूप विष्णु-मन्त्र—अब मैं विष्णु को प्रसन्न करने वाले श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ। छः अक्षरों का वह मन्त्र है—अनन्ताय नमः। इस मन्त्र के ऋषि व्यास, छन्द गायत्री एवं देवता अनन्त कहे गये हैं। रोगनाश के लिये इसका विनियोग किया जाता है। अनुष्ठान-हेतु इस मन्त्र की अन्य समस्त विधियाँ गोविन्द-मन्त्र के समान होती हैं॥६३-६४॥

व्याससस्वरूपविष्णुमन्त्रः

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि विष्णोः प्रीतिकरं परम्।
वेदव्यासस्य विद्यादिप्रदं पदमिहोच्चरेत् ॥६५॥
वेदव्यासाय हृदयमष्टार्णो मनुरीरितः।
मुनिर्ब्रह्मा तथानुष्टुप्छन्दः सत्यवतीसुतः ॥६६॥
देवो बीजं भवेदाद्यं नमः शक्तिः प्रकीर्तिता।
षड्दीर्घाद्येन बीजेन षडङ्गविधिरीरितः ॥६७॥
व्याख्यामुद्रादक्षहस्तं वामजानुतले स्थितम्।
योगपट्टासनारूढं प्रफुल्लकुसुमद्युतिम् ॥६८॥
दीर्घकण्ठं विशालाक्षं तुन्दिलं मुनिवन्दितम्।
नानाशिष्यैः परिवृतं कृष्णद्वैपायनम्भजे ॥६९॥

व्यास-स्वरूप विष्णुमन्त्र—अब मैं विष्णु को अतिशय प्रसन्न करने वाले तथा विद्या आदि प्रदान करने वाले वेदव्यास के मन्त्र को कहता हूँ। आठ अक्षरों का वह मन्त्र है—व्यां वेदव्यासाय नमः। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द अनुष्टुप्, देवता सत्यवतीपुत्र, व्यां बीज एवं नमः शक्ति कहे गये हैं। बीजमन्त्र के छः दीर्घ स्वरूपों से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है। इनका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

दाहिने हाथ में व्याख्यानमुद्रा धारण करके बाँयें हाथ को घुटने पर रखे हुये,

योगपट्ट-रूपी आसन पर विराजमान, विकसित पुष्प-सदृश कान्ति वाले, लम्बी ग्रीवा वाले, बड़ी-बड़ी आँखों वाले, बड़े पेट वाले, अनेक शिष्यों से चारो ओर से घिरे हुये, मुनियों द्वारा वन्दित कृष्णद्वैपायन को मैं प्रणाम करता हूँ॥६५-६९॥

जपेदष्टसहस्राणि पायसैर्होममाचरेत् ।
पूर्वोक्ते तु यजेत्पीठे पूर्वमङ्गानि पूजयेत् ॥७०॥
प्राच्यादिषु यजेत्पैलं वैशम्पायनजैमिनी ।
सुमन्तुं कोणभागेषु श्रीशुकं लोमहर्षणम् ॥७१॥
उग्रश्रवसमन्यांश्च मुनीन् बाह्ये तु भूपुरे ।
इन्द्रादींश्च तदस्त्राणि पूजा चैवं समीरिता ॥७२॥

इस मन्त्र का आठ हजार जप करने के उपरान्त पायस से हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् पूर्वोक्त पीठ पर पूजन करना चाहिये। पूजन के क्रम में सर्वप्रथम अङ्ग-पूजन करने के अनन्तर अष्टदल में पूर्वादि क्रम से दिशाओं में पैल, वैशम्पायन, जैमिनि एवं सुमन्तु का यजन करने के बाद आग्नेयादि कोणों में शुकदेव, लोमहर्षण, उग्रश्रवा और अन्य मुनियों का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके अस्त्रों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार इनका पूजन कहा गया है।७०॥

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री वर्षमात्रं यदा जपेत् ।
त्रिकालेऽष्टोत्तरशतं कवित्वं शोभनाः प्रजाः ॥७३॥
स्वयमेव पुराणानामर्थः स्फुटति गोपितः ।
व्याख्यानशक्तिं कीर्तिं च लभते सम्पदोन्वयम् ॥७४॥

इस प्रकार से सिद्ध किये गये मन्त्र का जो साधक एक वर्ष तक प्रतिदिन तीनों कालों में एक सौ आठ बार जप करता है, वह कवित्व शक्ति के साथ-साथ सुन्दर सन्ततियों से भी युक्त हो जाता है। वह पुराणों के गूढ़ अर्थ को भी व्यक्त करने में समर्थ हो जाता है। व्याख्यान शक्ति एवं कीर्ति के साथ-साथ सम्पत्तियों की भी उसे प्राप्ति हो जाती है॥७३-७४॥

चिरञ्जीवित्वकारकव्यासमन्त्रः

अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये चिरञ्जीवित्वकारकम् ।
तारं नमः समाभाष्य मन्त्रमेतं ततो वदेत् ॥७५॥
सोहं तारं पुनश्चोक्त्वा मन्त्रश्चेन्द्राक्षरो मतः ।
कहोडोऽस्य मुनिर्देवी गायत्री छन्द ईरितम् ॥७६॥
अपमृत्युहरो व्यासश्चिरञ्जीवी च देवता ।

हं बीजं सश्च शक्तिः स्याद्दीर्घषट्कसमन्वितः ।
हकारस्तु षडङ्गार्थं ध्यानपूजादि पूर्ववत् ॥७७॥
षट् च पञ्चसहस्राणि जपोऽस्य परिकीर्तितः ।
कुष्ठादिकमहारोगनाशार्थं लक्षमेककम् ॥७८॥
जपेन्मन्त्रं प्रत्यहन्तु चाष्टोत्तरशतं जलैः ।
मन्त्रितैः स्नापयेद्दुग्धैर्नीरुक्स्यान्नात्र संशयः ।
स्वल्पमृत्युविनाशश्च पूर्णमायुः प्रजायते ॥७९॥

चिरञ्जीवित्व-कारक व्यास-मन्त्र—अब चिरञ्जीवित्व प्रदान करने वाले व्यास के अन्य मन्त्र को कहता हूँ। चौदह अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमः व्यां वेदव्यासाय नमः सोऽहं ॐ। इस मन्त्र के ऋषि कहोड़, छन्द गायत्री, देवता अपमृत्यु-विनाशक चिरञ्जीवी व्यास, बीज हं एवं शक्ति सः कहे गये हैं। हकार के छः दीर्घ स्वरूपों (हां हीं हूं हैं हौं हः) से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। इसके ध्यान-पूजन आदि पूर्ववत् होते हैं। पुरश्चरण-हेतु इस मन्त्र का पैंसठ हजार जप करना बताया गया है। कुष्ठादि महारोगों के विनाश-हेतु इस मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये।

इस मन्त्र के प्रतिदिन एक सौ आठ जप से अभिमन्त्रित जल और दूध से स्नान कराने पर रोगी निश्चित ही रोगरहित हो जाता है; इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये; साथ ही अपमृत्यु का विनाश होकर उसे पूर्ण आयु की प्राप्ति भी होती है॥७५-७९॥

गरुडगायत्री

अथ विष्णुप्रियान् वक्ष्ये गरुडस्य मनून् परान् ।
तत्र व्रात्या द्विजा ये च सपुत्रा ये च वैष्णवाः ॥८०॥
तेषां संस्कृतये मन्त्रसिद्ध्यै विषविनाशिनीम् ।
सर्पभीतिहरीं वक्ष्ये गायत्रीं सर्वकामदाम् ।
पक्षिराजस्य सर्वेषां नृणामिष्टसुसिद्धये ॥८१॥
सुपर्णाय विद्महे पक्षिराजाय धीमहि ।
तन्नो गरुडः प्रचोदयात् ॥८२॥
चतुर्विंशतिलक्षेण जपेनेयं च सिद्ध्यति ।
ध्यानपूजादिरहिता जपमात्रफलप्रदा ॥८३॥

गरुड़-मन्त्र—अब मैं विष्णु के प्रिय गरुड़ के श्रेष्ठ मन्त्रों को कहता हूँ। यह मन्त्र व्रात्य (यथासमय संस्कार न किये जाने के कारण पतित) ब्राह्मणों एवं सपुत्र वैष्णवों को मन्त्रसिद्धि-हेतु संस्कृत करने वाला है।

विष का विनाश करने वाली, सर्पभय को दूर करने वाली तथा समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाली पक्षिराज गरुड़ की उस गायत्री को मैं कहता हूँ, जो समस्त मनुष्यों को शोभन इष्टसिद्धि प्रदान करने वाली कही गई है। वह गायत्री है— सुपर्णाय विद्महे पक्षिराजाय धीमहि तन्नो गरुडः प्रचोदयात्।

यह गरुड़-गायत्री चौबीस लाख जप करने से सिद्ध होती है। ध्यान-पूजन आदि से रहित यह गायत्री जप करने मात्र से ही फल प्रदान करने वाली है॥८०-८३॥

गरुडमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गरुडस्य परम्मनुम्।
तारो नमो भगवते महागरुड ङेऽन्तकम्॥८४॥
श्रीविष्णुवरवाहेतिनाय त्रैलोक्यमेव च।
पूजिताय वज्रनखवज्रतुण्डपदं वदेत्॥८५॥
वज्रपक्षाय पिङ्गेति शरीराय वदेत्ततः।
एह्येहि महागरुड दुष्टनागान् पदं वदेत्॥८६॥
छिन्धिद्वयं दुष्टविषं द्विश्छिन्धि दुष्टराक्षसान्।
द्विर्भिन्ध्यावेशययुगं बद्धो हुंफड् वसुप्रिया॥८७॥
षण्णवत्यक्षरो मन्त्रो मुनिर्ब्रह्मा प्रकीर्तितः।
गायत्री छन्द उद्दिष्टं देवता गरुडो मतः॥८८॥
हलो बीजानि चोक्तानि स्वरा मन्त्रस्य शक्तयः।
मन्त्रोक्तविषनाशार्थं विनियोगः प्रकीर्तितः॥८९॥
गरुडात्मा वैनतेयस्तार्क्ष्यश्छन्दोमयस्तथा।
कपिलाक्षस्तथा नागगरलान्तकरो मतः॥९०॥
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तैर्नमसापि समन्वितैः।
एतैः षण्नामभिर्न्यासश्चाङ्गुल्यादिर्हृदादिकः॥९१॥

गरुड़ का श्रेष्ठ मन्त्र—अब मैं गरुड़ के श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ। छियानबे अक्षरों का वह मन्त्र इस प्रकार है—ॐ नमो भगवते महागरुडाय श्रीविष्णुवरवाहेतिनाय त्रैलोक्यपूजिताय वज्रनखाय वज्रतुण्डाय वज्रपक्षाय पिङ्गशरीराय एह्येहि महागरुड़ दुष्टनागान् छिन्धि छिन्धि दुष्टविषं छिन्धि छिन्धि दुष्टराक्षसान् भिन्धि भिन्धि आवेशयावेशय बद्धो हुं फट् स्वाहा।

इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता गरुड़, बीज हलो एवं शक्ति मन्त्र के स्वर कहे गये हैं। मन्त्रोक्त विष-विनाश के लिये इसका विनियोग कहा गया है।

गरुडात्मा, वैनतेय, तार्क्ष्य, छन्दोमय, कपिलाक्ष, नागगरलान्तक—इन छः गरुड़-नामों के आरम्भ में प्रणव (ॐ) एवं अन्त में 'नमः' लगाकर बनाये गये मन्त्रों से कराङ्गन्यास करना चाहिये॥८४-९१॥

हिमाद्रिशिखराकारं पूर्णचन्द्रनिभाननम्।
दीर्घबाहुं वृषस्कन्धं नागाभरणभूषितम्॥९२॥
अनन्तो वामकटकं यज्ञसूत्रं तु वासुकिः।
तक्षकः कटिसूत्रं च हारः कर्कोट उच्यते॥९३॥
पद्मश्च दक्षिणे पार्श्वे महापद्मश्च वामतः।
शङ्खपालः शिरोदेशे कुलिकस्तु भुजान्तरे॥९४॥
आजानु काञ्चनाभासं ह्यानाभं तुहिनप्रभम्।
आकण्ठाद्रक्तवर्णं च विष्णुध्वजगतं भजे॥९५॥
अङ्गदिक्पायुधैश्चैव गरुडस्य तु पूजनम्।
मन्त्रार्णसङ्ख्याशततो जपः सप्तगुणो मतः॥९६॥
आज्ञया दर्शनात्तस्य स्थावरं जङ्गमं विषम्।
नाशमायान्ति रोगाश्च विसर्पाद्या न संशयः॥९७॥

इनका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—वे गरुड़ हिमाचल के शिखर-सदृश आकृति वाले, पूर्णचन्द्र-सदृश मुख वाले, लम्बी भुजाओं वाले, वृषभ (बैल) के समान चौड़े कन्धे वाले एवं नागरूपी आभूषणों से विभूषित हैं। वे अनन्त को बाँयें हाथ में कड़ा-स्वरूप, वासुकी को यज्ञोपवीत-स्वरूप, तक्षक को कटिसूत्र-रूप में एवं कर्कोटक को हाररूप में धारण किये हैं। उनके दाहिनी ओर पद्म, बाँयीं ओर महापद्म, शीर्ष पर शङ्खपाल एवं दोनों भुजाओं में कुलिक सुशोभित हैं। उनके शरीर का जानु-पर्यन्त भाग स्वर्णाभ है, नाभि-पर्यन्त भाग तुहिनाभ एवं कण्ठ-पर्यन्त भाग रक्तवर्ण का है। वे विष्णु की ध्वजा में विराजमान हैं। मैं उन्हें नमन करता हूँ।

षडङ्ग-पूजन, दिक्पाल-पूजन एवं आयुध-पूजन से गरुड़ का पूजन सम्पन्न होता है। मन्त्र के प्रत्येक वर्ण पर एक सौ जप को सप्तगुणित करके इसका जप किया जाता है अर्थात् कुल जपसंख्या ९६००×७ = ६७७०० (सड़सठ हजार सात सौ) होती है।

आज्ञा प्राप्त कर उनका दर्शन करने से समस्त स्थावर एवं जंगम विष, रोग एवं इधर-उधर रेंगने वाले जीव-जन्तु विनष्ट हो जाते हैं; इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये॥९२-९७॥

वक्ष्येऽथ गारुडं मन्त्रं क्षिप तारोऽग्निगेहिनी।
पञ्चाक्षरो मनुः पङ्क्तिश्छन्दोऽनन्तो मतो मुनिः॥९८॥

देवता गरुडस्तारो बीजं शक्तिर्वसुप्रिया।
स्वाहान्तो हृदये न्यस्य ज्वलज्वल महामते ॥९९॥
रुद्रचूडानन स्वाहा नत्यन्तं मस्तके न्यसेत्।
गरुडान्ते शिखे स्वाहा शिखाया मनुरीरितः ॥१००॥
सर्वमन्त्रस्तु गरुडप्रभुं जययुगं वदेत्।
द्विः प्रभेदय वित्रासयद्वयं द्विर्विमर्दय ॥१०१॥
स्वाहा सप्तत्रिंशदर्णान्तेऽत्र मन्त्रोऽथ कथ्यते।
उग्ररूपधरेत्युक्त्वा सर्वविषहरेति च ॥१०२॥
भीषयद्वितयं सर्वं दहयुग्मं ततो वदेत्।
भस्मीकुरुकुरु स्वाहा दन्तवर्णो मनुर्मतः ॥१०३॥
अस्तु मन्त्रोप्रतिहतबलाप्रतिहतेति च।
त्रासनान्ते वदेद्धुंफट् स्वाहान्तोऽष्टादशाक्षरः ॥१०४॥
पादे कण्ठे हृदि मुखे मूर्ध्नि वर्णान् क्रमान्न्यसेत्।
तप्तस्वर्णनिभं नागप्रज्ञप्ताङ्गविभूषणम् ॥१०५॥
चञ्च्वग्रप्रचलद्भोगिभोगं मुकुटमण्डितम्।
पक्षोच्चारितसत्साम गानं विषहरं भजे ॥१०६॥

गरुड़ का अन्य मन्त्र—अब मैं गरुड़ का अन्य मन्त्र बतलाता हूँ। पाँच अक्षरों का मन्त्र है—क्षिप ॐ स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि अनन्त, छन्द पंक्ति, देवता गरुड़, बीज ॐ एवं शक्ति स्वाहा हैं। ज्वल ज्वल महामते स्वाहा से हृदय में, रुद्रचूड़ानन स्वाहा नमः से मस्तक में एवं गरुड़शिखे स्वाहा से शिखा में न्यास करना चाहिये।

गरुड़ का सैंतीस अक्षरों का अन्य मन्त्र है—क्षिप गरुड़प्रभु जय जय प्रभेदय प्रभेदय वित्रासय वित्रासय विमर्दय विमर्दय स्वाहा। बत्तीस अक्षरों का अन्य मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—उग्ररूपधरे सर्वविषहरे भीषय भीषय सर्वं दह दह भस्मी कुरु कुरु स्वाहा। अट्ठारह अक्षरों का अन्य मन्त्र इस प्रकार बताया गया है—अप्रतिहतबलाप्रतिहतत्रासन हुं फट् स्वाहा। मन्त्र के वर्णों का क्रमशः पाद, कण्ठ, हृदय, मुख एवं मूर्धा में न्यास करना चाहिये।

तदनन्तर इस प्रकार गरुड़ का ध्यान करना चाहिये—तप्त स्वर्ण के सदृश कान्तिमान, समस्त अंगों में नागों का आभूषण धारण किये हुये, छटपटाते हुये सर्पों को चोंच के अग्रभाग से पकड़े हुये, शीर्ष पर मुकुट से शोभायमान, यक्षों द्वारा सामगान से स्तुत, विष का हरण करने वाले प्रभु गरुड़ को मैं प्रणाम करता हूँ॥९८-१०६॥

पक्षिराजाय स्वाहेति पीठे सप्ताक्षरो मनुः।
पूजयेन्मातृकापद्मे गरुडं वेदविग्रहम् ॥१०७॥

अङ्गान्यादौ कर्णिकायां तत्तन्मन्त्रैश्च पूजयेत्।
अनन्तो वासुकिस्तक्षकाख्यः कर्कोटपद्मकौ ॥१०८॥
महापद्मः शङ्खपालः कुलिकोऽथ दिगीश्वराः।
तदायुधानि भूगेहे पञ्चलक्षं जपेन्मनुम् ॥१०९॥
तिलैर्हुनेत्तर्पणादि कृत्वा सिद्धमनुर्भवेत्।
दर्शनाद्दूरगस्तस्य सर्पो नश्येद्विषद्वयम् ॥११०॥
विष्णुभक्तिपरो भूयो भवेदरिविनाशनः।
इह लोके सुखी दीर्घजीवी भूपतिपूजितः ॥१११॥
परत्र याति वैकुण्ठमिति विष्णुप्रिया मया।
गदिता मनवो देवि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥११२॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते विष्णुप्रियमन्त्रकथनं नामाष्टाविंशः प्रकाशः॥२८॥

•

अष्टदलात्मक कमल पर निर्मित पीठमध्य में 'पक्षिराजाय स्वाहा' इस सप्ताक्षर मन्त्र से वेदमूर्ति गरुड़ का पूजन करने के अनन्तर प्रथमतः कमल की कर्णिका में तत्तत् मन्त्रों से षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। इसके बाद आठ दलों में क्रमशः अनन्त, वासुकी, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शङ्खपाल एवं कुलिक—इन आठ नागों का पूजन करने के उपरान्त भूपुर में दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार पूजन सम्पन्न करने के पश्चात् मन्त्र का पाँच लाख जप करना चाहिये।

तत्पश्चात् तिलों से हवन करने के बाद तर्पण आदि करने पर मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार के मन्त्रसिद्ध साधक को देखकर सर्प दूर भाग जाते हैं एवं स्थावर तथा जंगम दोनों प्रकार के विषों का नाश हो जाता है। पुनः वह मन्त्रसिद्ध साधक विष्णुभक्तिपरायण होकर शत्रु का नाश करने वाला होकर इस लोक में सुखी, दीर्घजीवी एवं राजा द्वारा पूजित होता है; साथ ही शरीरान्त होने पर वैकुण्ठ-गमन करता है। हे देवि! इस प्रकार मेरे द्वारा विष्णु के प्रिय मन्त्रों को कहा गया; अब और क्या सुनना चाहती हो॥१०७-११२॥

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिवप्रणीत 'विष्णुप्रियमन्त्रकथन'-नामक अष्टाविंश प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।

•

एकोनत्रिंशः प्रकाशः

(आयुधमन्त्रकथनम्)

श्रीदेव्युवाच

सुदर्शनाद्यायुधानां सूचिताः पुरुषोत्तम।
मन्त्रास्तान् विधिपूर्वान्मे ब्रूहि यत्साधनाज्जयः ॥१॥

श्रीदेवी ने कहा कि हे पुरुषोत्तम! आपने सुदर्शन आदि आयुधों के बारे में मुझे बतलाया; अब उन आयुधों के मन्त्रों को विधि-पूर्वक मुझसे कहिये, जिसका साधन करने से जय की प्राप्ति हो॥१॥

श्रीशिव उवाच

सर्वेषामायुधानां च नाथः प्रोक्तो महायुधम्।
सुदर्शनं नाम यच्च मया प्राग्विष्णवेऽर्पितम् ॥२॥
अवतारो यदंशस्य कार्तवीर्यार्जुनाभिधः।
यत्सपर्यास्तु लङ्केशः सहस्राब्दं चचार ह ॥३॥

श्रीशिव ने कहा कि विष्णु के सभी आयुधों में सर्वश्रेष्ठ आयुध सुदर्शन है, जिसे मैंने पूर्व में विष्णु को समर्पित किया था। उस सुदर्शन के अंश से ही कार्तवीर्यार्जुन का अवतार हुआ था, जिसकी एक हजार वर्षों तक लंकाधिपति रावण ने उपासना की थी॥२-३॥

सुदर्शनचक्रमन्त्रकथनम्

तस्यादौ प्रोच्यते मन्त्रो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः।
तारः सहस्रार हुंफट् तस्य मन्त्रो नवाक्षरः ॥४॥
अहिर्बुध्न्यो मुनिश्छन्दोऽनुष्टुब्देवः सुदर्शनम्।
चक्रायान्तैराविशुद्धिसुज्वालावकुलैः पृथक् ॥५॥
षडङ्गमनवस्तस्य जातियुक्ता द्विठान्तकाः।
ऐन्द्रं चक्रेण बध्नाति नमश्चक्राग्निगेहिनी ॥६॥
वह्निमुच्चार्य दिग्बन्धं चैवं कुर्याद्दशस्वपि।
दिशासु तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेनात्र स्थलेषु च ॥७॥

तारत्रयं तथा रक्षद्वयं चक्रपदं वदेत्।
फट्स्वाहेति द्वादशार्णो वह्निप्राकारसंज्ञितः ॥८॥
अनेन मनुना ह्यस्य परितोऽग्निमयं बुधः।
प्राकारं परिकल्प्याथ न्यासानन्यान् समाचरेत् ॥९॥
सुंउंरक्ताशनाभं च गुह्ये शिरसि विन्यसेत्।
ईं मध्याननहृद्गुह्यजानुगुल्फतलेषु च॥१०॥
अग्निवर्णान्न्यसेद्वर्णांस्ततो ध्यायेत्सुदर्शनम्।
दक्षाद्यूर्ध्वक्रमादष्टभुजैरायुधधारिणम् ॥११॥
चक्रं शङ्खं गदां पद्मं मुसलं च सरासनम्।
पाशमङ्कुशमादीप्तं भीमदंष्ट्रं रविप्रभम् ॥१२॥

उन आयुधों में से सर्वप्रथम भोग-मोक्ष-प्रदायक सुदर्शन-मन्त्र को मैं कहता हूँ। नव अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ सहस्रार हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि अहिर्बुध्न्य, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता सुदर्शन कहे गये हैं। षडङ्ग न्यास इस प्रकार किया जाता है—आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः, विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा, शुद्धिचक्राय स्वाहा शिखायै वषट्, सुचक्राय स्वाहा कवचाय हुम्, ज्वालाचक्राय स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्, वकुलचक्राय स्वाहा अस्त्राय फट्। तत्पश्चात् तर्जनी एवं अंगूठे के योग से 'चक्राय स्वाहा नमः' मन्त्र द्वारा दसों दिशाओं का दिग्बन्धन करना चाहिये।

तदनन्तर बारह अक्षरों वाले 'ॐ ॐ ॐ रक्ष रक्ष चक्र फट् स्वाहा' इस वह्निप्राकार मन्त्र से अपने चारो ओर अग्निमय प्राकार की कल्पना करने के बाद न्यास आदि अन्य क्रियायें सम्पादित करनी चाहिये। रक्त वर्ण से व्याप्त सुं, उं एवं ईं का क्रमशः गुह्य, शिर, मुख, हृदय, गुह्य, जानु, गुल्फ, एवं पादतल में न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् अग्निवर्ण वर्णों का न्यास करने के उपरान्त दाहिने ऊपर वाले हाथ से आरम्भ कर आठ भुजाओं में क्रमशः चक्र, शंख, गदा, पद्म, मुसल, शरासन, पाश एवं अंकुशरूप दीप्त आयुधों को धारण किये हुये, बड़ी-बड़ी दाँतों वाले, सूर्य-सदृश किरणों वाले सुदर्शन का ध्यान करना चाहिये॥४-१२॥

पूजयेद्वैष्णवे पीठे मूर्तिं मूलेन कल्पयेत्।
कर्णिकायां षडङ्गानि चक्राद्यस्त्राणि केशरे ॥१३॥
हयग्रीवोदिता लक्ष्मीर्दिक्पत्रेषु च संयजेत्।
भूपुरे लोकपालांश्च तदस्त्राणि तदग्रतः ॥१४॥
ध्यानप्राणप्रतिष्ठान्ते पूजान्ते च प्रदर्शयेत्।
त्रिस्थाने चक्रगायत्र्या चक्रमुद्रां च तां शृणु ॥१५॥

सुदर्शनाय विद्महे महाज्वालाय धीमहि ।
तन्नश्चक्रं प्रचोदयात् ॥१६॥
जपेद् द्वादशलक्षं च तत्सहस्रं पृथग्घुनेत् ।
तिलैस्त्रिमधुरोपेतैः सर्षपैर्मधुरान्वितैः ॥१७॥
त्रियुक्तैर्बिल्वपत्रैश्च तथा दुग्धौदनेन च ।
ततश्च केवलाज्येन तर्पणादि ततश्चरेत् ॥१८॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत् क्रमात् ।

वैष्णवपीठ पर मूल मन्त्र से मूर्ति कल्पित करके देव का पूजन करने के उपरान्त कमल-कर्णिका में षडङ्ग-पूजन करने के बाद केशरों में चक्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् अष्टदल में हयग्रीव-मन्त्रोक्त लक्ष्मी आदि आठ देवियों (लक्ष्मी, सरस्वती, रति, प्रीति, कीर्ति, कान्ति, तुष्टि, पुष्टि) का यजन करने के बाद भूपुर में दस दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। फिर उसके बाद ध्यान, प्राणप्रतिष्ठा करने के पश्चात् पूजन करके तीन स्थानों में चक्रगायत्री द्वारा चक्रमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये। चक्रगायत्री इस प्रकार है—सुदर्शनाय विद्महे महाज्वालाय धीमहि तन्नश्चक्रं प्रचोदयात्।

सिद्धि-हेतु इस चक्रगायत्री का बारह लाख की संख्या में जप करने के पश्चात् त्रिमधु-सिक्त तिल, मधु एवं सरसो, त्रिमधु-समन्वित बिल्वपत्र, दूध-भात तथा केवल गोघृत से अलग-अलग बारह-बारह हजार हवन करने के बाद तर्पण आदि करना चाहिये। इस प्रकार सिद्ध किये मन्त्र से साधक को क्रमशः प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये॥१३-१८॥

खातादिशोधितं स्थानं गोमयेनोपलेपयेत् ॥१९॥
हस्तद्वयान्तराले च कुर्याद्याम्योत्तरद्वयम् ।
वृत्तवेष्टितषट्कोणं तद्बाह्ये भूपुरावृतम् ॥२०॥
कर्णिका पीतवर्णा स्याद्रक्ताभं कोणषट्ककम् ।
तदन्तरालं श्यामेन शेषं श्वेतेन पूरयेत् ॥२१॥
कर्णिकायां लिखेत्तारं मन्त्रार्णान् कोणषट्कके ।
आदावुत्तरचक्रे च दक्षिणे च ततो न्यसेत् ॥२२॥
शालिं शालिजलैः पूर्णमेकैकं कलशं न्यसेत् ।
दीक्षाविधिप्रकारेण पीठपूजां समाचरेत् ॥२३॥
सम्यगावाहयेत्तत्र तत्सुदर्शनरूपकम् ।
सम्पूज्य साङ्गावरणमन्यचक्रे ततस्तथा ॥२४॥

चक्रे संस्थापयेद्वह्निं वैष्णवं तद्विधानतः ।
प्रतिद्रव्यं भवेद्धोमः षट्त्रिंशदधिकं शतम् ॥२५॥
आज्यं चापामार्गसमिच्चाक्षता राजिकास्तिलाः ।
हविष्पृथक्पञ्चगव्यं हुनेदाज्यं तु तत्क्रमात् ॥२६॥
प्रतिद्रव्यस्य सम्पातान् कुम्भतोये विनिःक्षिपेत् ।

भूमि को समतल करके उसे गोमय (गोबर) से लिप्त करके उससे दो हाथ दूर दक्षिण एवं उत्तर में वृत्त से वेष्टित दो षट्कोण बनाने के बाद उसे बाहर से भूपुर से घेर देना चाहिये। कर्णिका को पीले रंग के चावलों से, छः कोणों को लाल रंग के चावलों से, मध्यभाग को काले रंग के चावलों से एवं अवशिष्ट भाग को श्वेतवर्ण चावलों से पूरित कर देना चाहिये।

इस प्रकार यन्त्र-निर्माण करने के पश्चात् प्रथमतः उत्तर एवं द्वितीयतः दक्षिण दिशा-स्थित षट्कोण की कर्णिका में ॐ एवं छः कोणों में मन्त्रवर्णों का अंकन करने के बाद दोनों पर धान्य एवं जल से पूर्ण एक-एक कलश स्थापित कर देना चाहिये। तदनन्तर दीक्षा-विधि के अनुसार वहीं पर पीठ-पूजा करने के पश्चात् दक्षिण-स्थित पीठ पर सुदर्शन चक्र का सम्यक् रूप से आवाहन एवं अङ्ग तथा आवरण-सहित पूजन करने के बाद दूसरे चक्र पर विधि-पूर्वक वैष्णवाग्नि को स्थापित करके उसमें क्रमशः गोघृत, अपामार्ग (चिड़चिड़ा) की लकड़ी, अक्षत, राई, तिल, हविष्य, पञ्चगव्य एवं गोघृत से अलग-अलग एक सौ छत्तीस-एक सौ छत्तीस आहुतियों द्वारा हवन करना चाहिये। साथ ही प्रत्येक द्रव्य के सम्पातों को कलशजल में प्रक्षिप्त कर देना चाहिये॥१९-२६॥

होमं समाप्य च ततः प्रक्षाल्यार्घ्यस्य पिण्डिकम् ।
कुम्भोपरि निधायाथ साध्यं समुपवेशयेत् ॥२७॥
स्वस्य दक्षे ततः कुम्भं साध्यस्योपरि च त्रिधा ।
भ्रामयित्वा ततश्चोदङ्मार्जनं कलशं क्षिपेत् ॥२८॥
दूरदेशे ततोऽग्न्यादि दूरदेशे समुत्क्षिपेत् ।
हुतशिष्टान्नेन दद्याद्बलिं च मनुनामुना ॥२९॥
नमो विष्णुगणेभ्यो नः सर्वशान्तिकरे वदेत् ।
भो बलिं प्रतिगृह्णन्तु शान्त्यै हृत्तत्त्ववर्णकः ॥३०॥
विप्रान् सम्भोज्य गुरवे दक्षिणां च प्रकल्पयेत् ।
ज्वरादिरोगसङ्घातान् प्रयोगोऽयं विनाशयेत् ॥३१॥

अपस्माररुजं चैव पिशाचग्रहवैकृतम्।
रक्षोभूतादिपीडां च नाशयेत्स त्वयं विधिः॥३२॥

इस प्रकार हवन समाप्त करने के बाद अर्घ्यपिण्ड़ी को प्रक्षालित करने के उपरान्त उसे कलश पर स्थापित करने के बाद अपने दाहिने साध्य को बैठाकर उसके ऊपर कलश को तीन बार घुमाकर कलशजल से साध्य का मार्जन करने के उपरान्त कलश को अपने स्थान से दूर ले जाकर फेंक देना चाहिये। तत्पश्चात् अग्नि आदि को भी दूर फेंक देना चाहिये।

तदनन्तर हवन से अवशिष्ट अन्न द्वारा छब्बीस अक्षरों वाले इस मन्त्र से बलि प्रदान करना चाहिये—नमो विष्णुगणेभ्यो नः सर्वशान्तिकरेभ्यो बलिं प्रतिगृह्णन्तु शान्त्यै नमः। तत्पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराने के बाद गुरु को दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये। इस प्रकार यह प्रयोग ज्वरादि रोगसमूहों का विनाश कर देता है। यह विधि अपस्मार रोग, पिशाच एवं ग्रहकृत विकृतियों तथा राक्षस-भूतादि द्वारा होने वाली पीड़ा का विनाश करने वाली कही गई है॥२७-३२॥

स्तनजद्रुमसम्भूतैः फलकैः पञ्जरं शतम्।
कृत्वा मन्त्री पञ्चगव्यैः पूजयेत्साध्यमत्र च॥३३॥
निवेशयेच्छुद्धमन्त्रैर्वस्त्रं शुद्धं स्पृशेज्जपेत्।
मन्त्रमग्निं प्रतिष्ठाप्याग्न्यादिकोणेषु मन्त्रवित्।
विप्रवर्यैः कारयेच्च होमं पूर्वोदितं क्रमात्॥३४॥
द्रव्यैस्तांस्तोषयेद्विप्रान् यजमानो गुरुं तथा।
एष योगः सर्वरोगापमृत्युद्रोहनाशकः॥३५॥

बेल की लकड़ी के पटरे पर एक सौ रेखायें खींचकर पञ्चगव्य से उसका पूजन करने के बाद शुद्ध वस्त्र धारण किये हुये साध्य को मन्त्रोच्चार-पूर्वक उस पर बैठाकर उसका स्पर्श करते हुये मन्त्रजप करने के बाद अग्निकोण में मन्त्रोच्चार-पूर्वक अग्नि स्थापित करके ब्राह्मणश्रेष्ठ को पूर्वोक्त द्रव्यों से क्रमशः हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् यजमान द्वारा उन ब्राह्मणों एवं गुरु को दक्षिणा प्रदान करके सन्तुष्ट करना चाहिये। यह योग समस्त रोग, अपमृत्यु एवं वैरभाव का विनाशक होता है॥३३-३५॥

गव्यैः समस्तैः क्षीरेन्दुवल्कलोत्थकषायकैः।
त्रिभिः सम्पूरितैर्जप्तैः कुम्भैः सम्पातसंयुतैः॥३६॥
प्राग्वद्धोमस्तस्य चान्ते ग्रहान् विष्णुं च साधयेत्।
अभिषिञ्चेद्धानुदिने चामयाद्यातुरं तथा॥३७॥

स्वस्थो भवेद् द्रुतं भूतप्रेतराक्षसपीडितः ।
घृतं पक्वं पञ्चगव्यैर्जपिते मनुनामुना ॥३८॥
ग्रहपीडानिरुद्धानां गर्भिणीनां हिताय च ।
मन्त्रं जपेद्दशशतं पञ्चगव्यं स्पृशेत्सुधीः ॥३९॥
पद्मपत्रे ब्रह्मवृक्षपत्रे बिल्वफले तथा ।
संन्यस्य तत्स्वीयगृहे निखनेच्च परस्य वा ।
रक्षा भवति तद्गेहे सम्पद्वृद्धिः प्रजायते ॥४०॥

समस्त गव्य, दूध एवं शक्कर तथा कषैले वृक्ष की छाल को सम्पातयुक्त तीन कलशों में भरकर मन्त्रजप करने के उपरान्त पूर्ववत् हवन करने से साधक ग्रहों के साथ-साथ विष्णु को भी अपने अनुकूल बना लेता है। उक्त कलश के जल से रविवार के दिन अभिषेक करने से रोगों से दुःखी एवं भूत-प्रेत-राक्षसों से पीड़ित व्यक्ति शीघ्र ही स्वस्थ हो जाता है।

पञ्चगव्य द्वारा पाक किया गया घृत इस मन्त्र के जप से अभिमन्त्रित करने के पश्चात् खिलाने पर ग्रहपीड़ा से निरुद्ध गर्भिणियों का कल्याण करने वाला होता है।

विद्वान् साधक पञ्चगव्य को स्पर्श करके एक हजार मन्त्रजप करने के उपरान्त उस पञ्चगव्य को कमलपत्र, पलाशपत्र एवं बेलफल पर रखकर उन्हें अपने अथवा दूसरे के घर में गड्ढा खोदकर यदि गाड़ देता है तो उस घर की सर्वविध रक्षा होने के साथ-साथ उस घर में सम्पत्ति की भी वृद्धि होती है॥३६-४०॥

पलाशं स्तनजं रक्तचन्दनं गुग्गुलुं तथा ।
घुसृणं च हरिद्रां च रोचनं बिल्वराजिके ॥४१॥
अपामार्गांस्तिलान्दूर्वा विष्णुकान्तां तुलस्यपि ।
कृष्णां च तुलसीं प्रोक्तां जवमर्कद्रुमं तथा ॥४२॥
सहदेवीं तथा लक्ष्मीं कुशगोमयसद्वचाः ।
कमलं रोचनां पञ्चगव्ये संक्वाथयेन्मुहुः ॥४३॥
संस्कृतेऽग्नौ तस्य भस्म कुर्यात्तत्सर्वदायकम् ।
जपितं मनुनानेन सम्यक्च शिरसा धृतम् ॥४४॥
सर्वभूतग्रहव्याधिकृत्यादुःखादिवारणम् ।
द्रोहोन्मादरिपुत्राससर्वपापहरं मतम् ।
आपन्नाशकमेतत्स्याद्वश्यदं शिवदं परम् ॥४५॥

पलाश, बेल, रक्तचन्दन, गुग्गुलु, केशर, हल्दी, श्वेत सहिजन, बेल, राई,

अपामार्ग, तिल, दूर्वा, श्वेत एवं श्याम तुलसी, जौं, अकवन, सहदेई, कमल, कुश, गोबर, वच, कुमुद एवं गोरोचन को पञ्चगव्य में पाक करके अच्छी प्रकार क्वाथ बनाकर उस क्वाथ को संस्कृत अग्नि में सर्वदायक भस्म बनाने के पश्चात् उस भस्म को इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके सम्यक् प्रकार से शिर पर धारण करने से समस्त प्रकार के भूत, ग्रह, व्याधि, कृत्या आदि के द्वारा उत्पन्न दु:खों का निवारण होता है। यह भस्म वैर, उन्माद, शत्रुभय एवं समस्त पापों का विनाशक कहा गया है। यह आपदाओं का विनाशक, वश्य-कारक और कल्याण-दायक होता है॥४१-४५॥

फलत्रययुतैः कल्कं पञ्चगव्ये पचेद् घृतम्।
प्रस्थं च कल्कद्रव्याणि मुस्ता शुण्ठी निशा तथा॥४६॥
चित्रकैलाशतावर्य्यो वचा वाळ्या वृषा तथा।
मांस्याह्वा च विडङ्गं च मञ्जिष्ठा कटुरोहिणी॥४७॥
मनुनानेन जपितं वन्ध्यापुत्रप्रदायकम्।
भूतप्रेतपिशाचादिभयघ्नं नात्र संशयः॥४८॥
पञ्चगव्याज्यमेतद्धि गर्भरक्षाकरं परम्।

पञ्चगव्य में पाक करके बनाये गये फलत्रय (आँवला, हर्रे, बहेरा) के कल्क में घृत, मुस्ता, सोंठ, हल्दी, चित्रक, इलायची, शतावरी, वच, अतिबला, वृषा, मांसी, विडङ्ग, मंजीठ एवं कटुरोहिणी को मिलाकर इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके वन्ध्या स्त्री को खिलाने से उसे पुत्र प्राप्त होता है। यह भूत-प्रेत-पिशाच आदि के भयों का विनाश करने वाला होता है; इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये। पञ्चगव्य एवं गोघृत के साथ भक्षण करने पर यह श्रेष्ठ गर्भरक्षक होता है॥४६-४८॥

गुटिकां गुग्गुलोः कृत्वा हुनेदष्टसहस्रकम्॥४९॥
दिवसत्रितयं वापि चतुर्दिवसमेव च।
भवेत्सर्वोपद्रवाणां नाशो मन्त्रगदस्य च॥५०॥
अपामार्गसमिद्भिश्च हुनेदयुतसङ्ख्यया।
भूतज्वरभयव्याधिकृत्यापस्मारनाशनम्॥५१॥
घृताक्तैः कमलैर्हुत्वा श्रीवृद्धिं लभते नरः।
आज्याक्ताभिश्च दूर्वाभिर्होमाद्दीर्घायुराप्नुयात्॥५२॥
पलाशस्य समिद्भिश्च मेधावृद्धिः प्रजायते।
वस्त्रार्थी श्वेतकुमुदैराज्याक्तैर्जुहुयान्नरः॥५३॥
पशूनां वृद्धिमन्विच्छन् हुनेत्सकमलैर्घृतैः।
औदुम्बरसमिद्धोमात्पुत्रलाभो भवेद् ध्रुवम्॥५४॥

अष्टोत्तरसहस्त्रं च हुनेदश्वत्थजैस्तथा।
समिद्वरैर्महारोगमुक्तयेऽयं विधिः स्मृतः ॥५५॥
चक्रमध्ये स्थितं स्वं च चिन्तयन्यो मनुं जपेत्।
एकोऽपि दुर्जयो युद्धे भवत्येव न संशयः ॥५६॥

गुग्गुलु की गोलियाँ बनाकर उन गोलियों से तीन अथवा चार दिनों तक इस मन्त्र द्वारा प्रतिदिन आठ हजार हवन करने से समस्त उपद्रवों के साथ-साथ अभिचारकृत रोगों का भी नाश हो जाता है।

अपामार्ग की समिधा से दस हजार हवन करने पर भूत, ज्वर, भय, व्याधि, कृत्या एवं अपस्मार (मिर्गी) रोग का नाश होता है।

घृत-सिक्त कमलों के द्वारा हवन करने से श्रीवृद्धि होती है। गोघृत-सिक्त दूर्वा द्वारा हवन करने से दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है। पलाश की समिधाओं द्वारा हवन करने से मेधा-वृद्धि होती है।

वस्त्र चाहने वाले मनुष्य को गोघृत-सिक्त श्वेत कुमुद से हवन करना चाहिये। पशुओं की वृद्धि चाहने वाले को घृत-सिक्त कमलों से हवन करना चाहिये। गूलर की समिधाओं द्वारा हवन करने से निश्चित ही पुत्रलाभ होता है।

महारोगों से मुक्ति के लिये पीपल की समिधाओं से एक हजार आठ आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करना चाहिये।

जो साधक अपने-आपको चक्र के मध्य में अवस्थित समझते हुये एक बार भी इस मन्त्र का जप करता है, वह निःसन्दिग्ध रूप से युद्ध में दुर्जेय होता है॥४९-५६॥

कल्पान्ताग्निनिभं चक्रं वैरिणो यस्य मूर्द्धनि।
स्मरेत्सप्तदिनं तस्य ज्वलनप्रतिमो ज्वरः।
भवेत् त्रिंशद्दिनैश्चाथ प्राप्नोति मरणं ध्रुवम् ॥५७॥
सकारं स्वरसंयुक्तं याहीति पदवेष्टितम्।
संस्मरेद्यस्य शीर्षे तु तस्योच्चाटो दशाहतः ॥५८॥
मण्डलान्मरणं याति सान्तं काकनिभं रिपोः।
मूर्ध्नि स्मरेच्च सप्ताहादुच्चाटो वा मृतिर्भवेत् ॥५९॥
शरच्छशा प्रतिभं सुधाधाराभिवर्षिणम्।
सकारं संस्मरेन्मूर्ध्नि स जीवेच्छरदां शतम् ॥६०॥

जो साधक लगातार सात दिन-पर्यन्त अपने शत्रु के मस्तक पर कल्पान्त अग्नि-सदृश इस चक्र को अवस्थित-रूप में चिन्तन करता है, तो वह शत्रु भयंकर ताप वाले ज्वर से ग्रस्त होकर निश्चित ही एक मास में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

जिसके शीर्ष पर स्वर-संयुक्त सकार (सं सां सिं सीं सं सः) से वेष्टित 'याहि' पद के अवस्थित होने का स्मरण किया जाता है, उसका दस दिनों में उच्चाटन हो जाता है।

शत्रु के मस्तक पर काक-सदृश सकारान्त 'याहि' पद का यदि स्मरण किया जाता है, तो वह शत्रु चालीस दिनों के भीतर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है अथवा एक सप्ताह तक उपर्युक्त प्रकार से चिन्तन करने पर उस शत्रु का उच्चाटन हो जाता है।

अमृतधारा की वर्षा करने वाले शरत्कालीन चन्द्रमा की प्रभा वाले सकार का मूर्धा पर चिन्तन करने वाला साधक सौ वर्षों तक जीवित रहता है।।५७-६०।।

षट्कोणं सुलिखेत्कोणषट्के ठं तु समालिखेत्।
कर्णिकायां तथा ठं च शेषमन्त्रार्णकं तथा ।।६१।।
साध्यनाम लिखेन्मध्ये काश्मीरैर्भूर्जपत्रके।
आपन्निवारणं यन्त्रं भूतप्रेतभयापहम् ।।६२।।

भोजपत्र पर केशर की स्याही से सुन्दर षट्कोण बनाकर उसके छः कोणों में 'ठं' लिखने के उपरान्त कर्णिका में 'ठं' के साथ शेष मन्त्रवर्णों को लिखने के बाद मध्य में साध्य का नाम लिखकर बनाया गया यन्त्र आपत्तियों का निवारक होने के साथ-साथ भूत-प्रेत के भय का विनाशक होता है।।६१-६२।।

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि सुदर्शनमहामनुम्।
तारो नमो भगवते महासुदर्शनं वदेत् ।।६३।।
ङेऽन्तं हुंफट् षोडशार्णो मुन्याद्यं पूर्ववन्मतम्।
तथा न्यासश्च पूजायां सर्वरक्षाकरो मनोः ।।६४।।
जपेद् द्वादशलक्षाणि प्रत्येकं क्रमतो हुनेत्।
चतुर्विंशच्छतानीति तिलांश्चापि ससर्षपान् ।।६५।।
बिल्वाज्यपालाशसमित्पायसानीति कीर्तितम्।
अनुरूपजपध्यानान्मन्त्रोऽयं वाञ्छितप्रदः ।।६६।।
लिखेदादौ तु षट्कोणं मध्यकोणेषु तं लिखेत्।
एकैकं सुलिखेद्वर्णं बहिर्भूपुरवेष्टनम् ।।६७।।
सम्पातसाधितं चैतद् गर्भिणीगर्भरक्षकम्।
उन्मादग्रहभूतादीनभिचारांश्च नाशयेत् ।।६८।।

अन्य सुदर्शन-मन्त्र—अब मैं सुदर्शन के अन्य महामन्त्र को कहता हूँ। सोलह अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमो भगवते महासुदर्शनाय हुं फट्। इस षोड़शाक्षर मन्त्र

के ऋषि आदि पूर्ववत् कहे गये हैं। साथ ही न्यास, पूजा आदि सभी रक्षाकर मन्त्र के समान होते हैं।

इस मन्त्र का बारह लाख जप करने के उपरान्त प्रत्येक हवनीय द्रव्यों से चौबीस-चौबीस सौ हवन करना चाहिये। वे हवनीय द्रव्य हैं—तिल, सरसों, बेल, गोघृत, पलाश की समिधा एवं पायस। कार्य के अनुसार किया गया इस मन्त्र का जप एवं ध्यान साधक को अभीष्ट प्रदान करने वाला होता है।

सर्वप्रथम षट्कोण की रचना करके उसके कोणों में एवं मध्य में एक-एक वर्ण को लिखने के पश्चात् उसे बाहर से भूपुर से वेष्टित करके उस भूपुर में मन्त्र के शेष वर्णों को लिखकर यन्त्र-निर्माण करने के बाद हवन के सम्पात घृत द्वारा साधित करने से यह यन्त्र गर्भिणियों के गर्भ की रक्षा करने के साथ-साथ उन्माद, ग्रह, भूत आदि अभिचारों का नाश करने वाला भी होता है॥६३-६८॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मालामन्त्रं सुदर्शनम्।
तारो नमो भगवते महापूर्वपदत्रयम्॥६९॥
ङेऽन्तं सुदर्शनं चक्रं ज्वालं ङेऽन्तं ततो वदेत्।
दीप्तरूपं सर्वनाथ रक्षयुग्मं च मां महा॥७०॥
बलायाग्निवधूं हुंफट् सप्त वेदाक्षरो मनुः।
ध्यानपूजादिकं प्राग्वज्जपो वर्णसहस्रकम्॥७१॥

सुदर्शन मालामन्त्र—अब मैं सुदर्शन-मालामन्त्र को कहता हूँ। सैंतालीस अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमो भगवते महासुदर्शनाय महाचक्राय महाज्वालाय दीप्तरूपाय सर्वनाथ रक्ष रक्ष मां महाबलाय स्वाहा हुं फट्। इस मालामन्त्र का ध्यान-पूजन आदि पूर्ववत् कहा गया है। पुरश्चरण-हेतु वर्णसहस्र अर्थात् सैंतालीस हजार इसका जप करना चाहिये॥६९-७१॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मालामन्त्रं सुदर्शनम्।
ॐ क्लीं सुदर्शनमहाचक्रराज दहद्वयम्॥७२॥
सर्वदुष्टभयं द्विर्द्विः कुरु छिन्धि च भिन्धि च।
विदारयद्वयं प्रोच्य परमन्त्रान् ग्रसद्वयम्॥७३॥
भक्षयद्वितयं प्रोच्य भूतानि त्रासयद्वयम्।
हुंफट् स्वाहेति चक्राय नमो वेदनुगाक्षरः॥७४॥
सुदर्शनमहामन्त्रः संग्रामे विजयप्रदः।
ध्यानपूजादिकं सर्वं ज्ञेयमस्य षडर्णवत्॥७५॥

जपेद्वर्णसहस्राणि ततः सिद्धो भवेन्मनुः ।
जप्त्वादौ चाष्टसाहस्रं रणे गच्छेद् द्रुतं जयी ॥७६॥

अब मैं अन्य सुदर्शन-मालामन्त्र को कहता हूँ। चौहत्तर अक्षरों का वह मालामन्त्र इस प्रकार है—ॐ क्लीं सुदर्शन महाचक्रराज दह दह सर्वदुष्टभयं कुरु कुरु छिन्धि छिन्धि भिन्दि भिन्दि विदारय विदारय परमन्त्रान् ग्रस ग्रस भक्षय भक्षय भूतानि त्रासय त्रासय हुं फट् स्वाहा चक्राय नमः। सुदर्शन का यह श्रेष्ठ मन्त्र युद्ध में विजय प्रदान करने वाला है। इसके ध्यान-पूजन आदि सभी कुछ षडक्षर मन्त्र के समान होते हैं।

वर्णसहस्र अर्थात् चौहत्तर हजार जप से यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। युद्ध-हेतु प्रस्थान करने के पूर्व इस मन्त्र का आठ हजार जप करने वाला व्यक्ति शीघ्र ही युद्ध को जीत लेता है॥७२-७६॥

जयप्रदशङ्खमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शङ्खमन्त्रं जयप्रदम् ।
ॐ क्लीं जलचरायेति स्वाहान्तोऽयं नवार्णकः ॥७७॥
विष्णुहस्तगतं ध्यात्वा यः शङ्खं नित्यमर्चयेत् ।
पूजान्ते प्रजपेन्मन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम् ॥७८॥
पाञ्चजन्येन चैकत्वं ध्यायेज्जपसमापनम् ।
कुर्यादेवं मासषट्कं ततः सिद्धो भवेन्मनुः ॥७९॥
पाञ्चजन्यसमं शङ्खमात्मानं विष्णुमेव च ।
ध्यात्वाऽभिवादयेच्छङ्खं रणे विजयकारकम् ॥८०॥

जयप्रद शंख-मन्त्र—अब मैं जय-प्रद शङ्ख-मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। नव वर्णों का वह मन्त्र है—ॐ क्लीं जलचराय स्वाहा। विष्णु के हाथ में अवस्थित शङ्ख का ध्यान करके जो साधक छः मास-पर्यन्त प्रतिदिन उसका अर्चन करने के पश्चात् इस मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करते हुये पाञ्चजन्य के साथ एकीभूत होने की भावना के साथ जप का समापन करता है, उसे यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

सिद्धमन्त्र-साधक शंख का पाञ्चजन्य-सदृश एवं स्वयं का विष्णु-सदृश ध्यान करते हुये उस शंख को प्रणाम करके यदि युद्ध में प्रस्थान करता है तो उसे विजय की प्राप्ति होती है॥७७-८०॥

खड्गमन्त्रकथनम्

तारो मारः खड्ग तीक्ष्ण भिन्धि भिन्धीति हुं च फट् ।
द्वादशार्णः खड्गमन्त्रो यो जपेद् द्वादशाक्षरम् ॥८१॥

प्रत्यहं पूजयेत्खड्गं कलयेन्मरणं विना।
खड्गसिद्धिस्तस्य भवेन्न कदाचित्पराजयः ॥८२॥
दैवान्निष्कासिते तस्मिन्फलाद्यं छेदयेत्तदा।
पूजयित्वा ततः कोणे स्थापयेत्प्रणमेदपि ॥८३॥

खड्ग-मन्त्र—बारह अक्षरों का खड्ग-मन्त्र है—ॐ क्लीं खड्ग तीक्ष्ण भिन्धि भिन्धि हुं फट्। जो साधक अखण्डित रूप से प्रतिदिन इस द्वादशाक्षर मन्त्र का जप एवं खड्ग का पूजन करता है, उसे खड्ग-सिद्धि प्राप्त हो जाती है और कभी भी उसे पराजय का सामना नहीं करना पड़ता। यदि अचानक वह खड्ग म्यान से बाहर निकल जाय तो उसके फल (धार) में छेद करने के बाद उसका पूजन करके कोण में रख देना चाहिये एवं उसे प्रणाम भी करना चाहिये॥८१-८३॥

धनुर्मन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि धनुर्मन्त्रं नवाक्षरम्।
शार्ङ्गाय सशरायेति हुंफट् जप्यो नवायुतम् ॥८४॥
तिलाज्यहोमात्संसिद्धो मन्त्रः स्यान्नित्यपूजनात्।
ततो धनुषि बाणाढ्ये शार्ङ्गध्यानं समाचरेत्।
अजेयो जायते धन्वी शार्ङ्गमन्त्रं समुच्चरेत् ॥८५॥

धनुष-मन्त्र—अब मैं नव अक्षरों वाले धनुष-मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। मन्त्र है—शार्ङ्गाय सशराय हुं फट्। नित्य पूजन और तिल-गोघृत के हवन से यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इसके बाद बाण चढ़े हुये शार्ङ्ग धनुष का ध्यान करना चाहिये। इस शार्ङ्ग-मन्त्र का उच्चारण करने वाला धनुर्धारी अजेय हो जाता है॥८४-८५॥

गदाकौमोदकीमन्त्रकथनम्

अथ वक्ष्ये गदामन्त्रं तारं कामं समुच्चरेत्।
कौमोदकि महासर्वबले सर्वासुरान्तिके ॥८६॥
प्रसीद हुंफट् स्वाहेति पञ्चविंशार्णको मनुः।
जपेल्लक्षमिमं मन्त्रं पूजयेन्नित्यशो गदाम् ॥८७॥
कौमोदकीं स्मरेत्तत्र द्वन्द्वयुद्धे जयी भवेत्।
साधको वा गजारूढो गदाहस्तो विशेद्रणम् ॥८८॥
स्वयं विष्णुरिति ध्यायंस्तत्काले सर्वशत्रवः।
भयभीताः पलायन्ते चतुरङ्गबला अपि ॥८९॥

गदा-मन्त्र—अब मैं गदा-मन्त्र को कहता हूँ। पच्चीस अक्षरों का वह मन्त्र है—

ॐ क्लीं कौमोदकि महासर्वबले सर्वासुरान्तिके प्रसीद हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये और प्रतिदिन गदा का पूजन करना चाहिये। कौमोदकी का स्मरण करके द्वन्द्वयुद्ध में जाने पर साधक विजयी होता है। अथवा साधक हाथी पर सवार होकर गदा को हाथ में लेकर अपने-आपको विष्णु-स्वरूप ध्यान करते हुये रणक्षेत्र में जब प्रविष्ट होता है तो उसे देखते ही उसके समस्त शत्रु एवं उनकी चतुरंगिणी सेना भाग खड़ी होती है॥८६-८९॥

मुसलमन्त्रनिरूपणम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मुसलस्य मनुं ध्रुवम्।
कामसंवर्त्तकपदं मुसलं पोथयद्वयम्।
हुंफट् स्वाहान्तको मन्त्र ऊनविंशतिवर्णकः॥९०॥
प्रजपेदयुतं मन्त्रं खादिरीः समिधो हुनेत्।
घृताक्ताश्चायुतं मन्त्रसिद्धिस्तस्य प्रजायते॥९१॥
गृहीत्वा मुसलं हस्ते जपेन्मन्त्रं रणे विशेत्।
पलायन्तेऽस्य रिपवो दक्षो रुद्राद्यथा तथा॥९२॥
शत्रोः प्रतिकृतिं चैव कुर्यान्नाम क्रियान्वितम्।
लिखित्वा हृदये तस्य क्रोधान्मुसलधारणम्।
कुर्यादरेर्वा गदादेः स्तम्भः स्यान्नात्र संशयः॥९३॥

मूसल-मन्त्र—अब मैं मूसल-मन्त्र को कहता हूँ। उन्नीस अक्षरों का वह मन्त्र है—कामसंवर्तक मुसल पोथय पोथय हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र का दस हजार जप करने के उपरान्त घृत-सिक्त खैर की समिधा से दस हजार हवन करने पर यह मन्त्र साधक को सिद्ध हो जाता है। तदनन्तर हाथ में मूसल लेकर मन्त्रजप करते हुये युद्ध में प्रवेश करने पर उसे देखते ही शत्रु उसी प्रकार भाग खड़े होते हैं, जैसे कि रुद्र को देखते ही दक्ष भाग खड़े हुये थे। शत्रु की प्रतिमा बनाकर उसके हृदय में क्रियायुक्त उसका नाम लिखकर स्वयं क्रुद्ध होकर अपने को मूसल-धारी मानकर उस पर प्रहार करने से उसका अथवा रोगादि का स्तम्भन हो जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये॥९०-९३॥

अङ्कुशमन्त्रकथनम्

अथाङ्कुशमनुं वक्ष्ये तारं मदनमङ्कुशम्।
कञ्चुद्वयं च वर्म्मास्त्रं स्वाहान्तो विश्ववर्णकः॥९४॥
अङ्कुशस्य मनोश्छन्दो मतिर्गणपतिर्मुनिः।
देवश्चात्राङ्कुशो विष्णुरूपी गजविमर्दकः॥९५॥

भूभूत्रिवेदयुग्माक्षिवर्णैः कुर्यात्षडङ्गकम्।
केवलाङ्कुशपूजात्र जपो लक्षं त्रयोदश ॥९६॥
साध्ये सद्द्रव्यहोमः स्यात्सिद्धमन्त्रो नृपान् रिपून्।
त्रासयेन्नात्र सन्देहो भवन्ति वचनाद्वशे ॥९७॥

अंकुश-मन्त्र—अब मैं अंकुश-मन्त्र को कहता हूँ। तेरह अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ क्लीं अंकुश कञ्चु कञ्चु हुं फट् स्वाहा। इस अंकुशमन्त्र के ऋषि गणपति, छन्द मति एवं देवता विष्णुरूपी गजविमर्दक अंकुश कहे गये हैं। मन्त्र के एक, एक, तीन, चार, दो, दो वर्णों से इसका षडङ्ग-न्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे स्वाहा, अंकुश शिखायै वषट्, कञ्चु कञ्चु कवचाय हुं, हुं फट् नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्।

यहाँ पर मात्र अंकुश का ही पूजन करके मन्त्र का तेरह लाख की संख्या में जप करना चाहिये। तत्पश्चात् शुभ हवनीय द्रव्यों से हवन करने से सिद्ध मन्त्र वाला साधक राजाओं एवं अपने शत्रुओं को भयभीत कर देता है और वे सभी कहने मात्र से ही उसके वशीभूत हो जाते हैं; इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये॥९४-९७॥

पाशमन्त्रकथनम्

अथ प्रवक्ष्ये पाशस्य मन्त्रं तारं मनोभवम्।
पाशं वधयुगं चैवाकर्षयद्वितयं च हुम्।
फट्स्वाहेत्यूनविंशार्णो वरुणो मुनिरुच्यते ॥९८॥
समुद्रश्चामितं छन्दो भूभूषट्सप्तनेत्रकैः।
नेत्रैरङ्गानि तं चैव ध्यायेद्वरुणहस्तगम् ॥९९॥
लक्षत्रयं भवेद्धोमः कैरवाख्यप्रसूनकैः।
सिद्धमन्त्रो हुनेदाज्यं वश्यार्थमयुतं तथा।
मारणाय मधुसिते द्वेषे तैलं ततो गुडम् ॥१००॥

पाश-मन्त्र—अब मैं पाश-मन्त्र को कहता हूँ। उन्नीस अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ क्लीं पाश वध वध आकर्षयाकर्षय हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि वरुण एवं समुद्र, छन्द अमित एवं देवता पाश कहे गये हैं। मन्त्र के एक, एक, छः, सात, दो, दो वर्णों से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे स्वाहा, पाश वध वध शिखायै वषट्, हुं फट् नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्। वरुण के हाथ में स्थित-रूप में इसका ध्यान करना चाहिये। पुरश्चरण-हेतु इस मन्त्र का तीन लाख जप करने के बाद कुमुदपुष्पों द्वारा हवन करना चाहिये। ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

वशीकरण के लिये गोघृत से, मारण के लिये मधु एवं शक्कर से तथा विद्वेषण के लिये तेल और गुड़ से दस हजार आहुतियों द्वारा हवन करना चाहिये॥९८-१००॥

छत्रमन्त्रकथनम्

अथ च्छत्रमनुं वक्ष्ये छं छत्राय नमस्त्विति।
मुनिर्मन्त्रश्च छन्दोऽस्य गायत्री देवता हरः॥१०१॥
छत्ररूपं ध्यानमस्य स्वर्णदण्डं सितप्रभम्।
आरक्तकलशं ध्यायेन्मस्तके स्वे च पूजयेत्॥१०२॥
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं होमः स्याद् घृतपायसैः।
तर्पणाद्यं ततः कुर्याच्छत्रमन्त्रस्य सिद्धये॥१०३॥
साधयित्वा मनुं चैनं गतराज्यो विशेद्रणम्।
एकोऽपि स रिपूञ्जित्वा राज्यं तु लभते द्रुतम्॥१०४॥

छत्र-मन्त्र—अब मैं छत्र का मन्त्र कहता हूँ। छः अक्षरों का वह मन्त्र है—छं छत्राय नमः। इसके ऋषि मन्त्र, छन्द गायत्री एवं देवता हर (महादेव) कहे गये हैं। स्वर्णदण्ड से समन्वित एवं शुभ्र कान्ति वाले छत्र (छाता) के रूप में इसका ध्यान किया जाता है। अपने मस्तक पर रक्तवर्ण कलश का ध्यान करके वहीं पर इसका पूजन किया जाता है। छत्रमन्त्र की सिद्धि के लिये इसका वर्णलक्ष अर्थात् छः लाख जप करने के उपरान्त घृत एवं पायस से हवन करके तर्पण आदि करना चाहिये।

इस मन्त्र की सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात् नष्टराज्य वाला एकाकी राजा रणक्षेत्र में प्रवेश करके अकेले ही शत्रु को पराजित करके निश्चित रूप से अपने राज्य को प्राप्त कर लेता है॥१०१-१०४॥

चामरमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि लोकरूपमनुं परम्।
चामरस्य ग्रहावेशदृष्ट्यादिकनिवारणम्॥१०५॥
शशाङ्ककरसङ्काश क्षीरडिण्डिमपाण्डुर।
प्रोत्सारयाशु दुरितं चामर श्रीं नमोऽस्तु ते॥१०६॥
द्वात्रिंशच्च सहस्राणि जपित्वा सुरभेर्घृतम्।
हुत्वा सिद्धो भवेन्मन्त्रो नित्यं चामरमर्चयेत्॥१०७॥
तेन ग्रहाभिभूता वा दुस्साध्या दीर्घरोगिणः।
सप्ताहमर्चिताः सायं प्रातः स्युर्दोषवर्जिताः॥१०८॥

चामर-मन्त्र—अब मैं लोक-स्वरूप चामर-मन्त्र को कहता करता हूँ। इससे ग्रहावेश, नजर आदि का निवारण होता है। श्लोकरूप मन्त्र है—शशाङ्ककरसङ्काश क्षीरडिण्डिमपाण्डुर। प्रोत्सारयाशु दुरितं चामर श्रीं नमोऽस्तु ते। इस मन्त्र का बत्तीस हजार जप करने के बाद कृत जप का दशांश गाय के घी से हवन करने पर मन्त्र सिद्ध हो जाता है। मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाने पर प्रतिदिन चामर का अर्चन करना चाहिये।

सिद्धमन्त्र साधक द्वारा सात दिनों तक सायं-प्रातः चामर का अर्चन करने से ग्रहाभिभूत अथवा दुःसाध्य रोग से दीर्घ काल से ग्रसित व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है॥१०५-१०८॥

ध्वजमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ध्वजमन्त्रद्वयं प्रिये।
शक्रकेतवे च महावीर्याय श्यामवर्णकम्॥१०९॥
ङेऽन्तं च छत्रराजाय नमो नारायणध्वज।
गरुडासन रक्षद्विरायुधानि रिपून्दह॥११०॥
द्वयं वर्म्मास्त्राग्निजाया द्विपञ्चाशार्णको मनुः।
ध्वजमन्त्रं जपेत्पञ्चसहस्रं सिद्धये हुनेत्॥१११॥
आज्यैः पश्चाल्लिखेद्यन्त्रं स्वसैन्याङ्कैश्च सम्मितम्।
ध्वजं तु पूजयेन्नित्यं शत्रुभीतिनिवारणम्॥११२॥

ध्वज-मन्त्र—हे प्रिये! अब मैं ध्वज-मन्त्रद्वय को कहता हूँ। बावन अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ शक्रकेतवे महावीर्याय श्यामवर्णाय छत्रराजाय नमो नारायणध्वज गरुड़ासन रक्ष रक्ष आयुधानि रिपून् दह दह हुं फट् स्वाहा। सिद्धि के लिये इस ध्वजमन्त्र का पाँच हजार जप करके आज्य (गोघृत) से हवन करना चाहिये।

तत्पश्चात् अपनी सेना के चिह्न से समन्वित ध्वजयन्त्र का निर्माण करके शत्रुभय के निवारण-हेतु प्रतिदिन ध्वज का पूजन करना चाहिये॥१०९-११२॥

पताकामन्त्रकथनम्

अथ वक्ष्ये पताकाया मन्त्रं तारं रमात्रयम्।
हिरण्यकशिपोर्युद्धे पूतने दैवतासुरे॥११३॥
रणारपतिकालेति नेति मृत्युपदं वदेत्।
कालहंत्रिर्दहद्वन्द्वं रिपून् सर्वान् पताकिके॥११४॥
हुं फट् स्वाहेति मन्त्रोऽत्र चैनं पञ्चायुतं जपेत्।
ततस्त्रिमधुरैर्होमादिकैः सिद्धो भवेन्मनुः॥११५॥

बीजवर्णं पताकायां लिखेदङ्गक्रमेण तु।
स्थितप्राणां च तां दृष्ट्वा रिपुर्याति दिशो दश ॥११६॥

पताका-मन्त्र—अब मैं पताका-मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ श्रीं श्रीं श्रीं हिरण्यकशिपोर्युद्धे पूतने दैवतासुरे रणारपतिकालेन मृत्युकालहन्त्रि दह दह रिपून् सर्वान् पताकिके हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र का पचास हजार जप करने के वाद मधुरत्रय से हवन करने पर मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

पताका के छः बीजवर्णों (ॐ श्रीं श्रीं श्रीं हुं फट्) को शत्रु के छः अङ्गों (हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्र) में लिखकर उसमें प्राण का सञ्चार करने के बाद साधक द्वारा उसे देखते ही शत्रु दसों दिशाओं में भाग खड़े होते हैं॥११३-११६॥

शूलमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शूलमन्त्रं ध्रुवं वदेत्।
त्रिशूलाय नमश्चेति मन्त्रः सप्ताक्षरो मतः ॥११७॥
उष्णिक् छन्दो वामदेवो मुनिर्देवः पिनाकधृक्।
शिवहस्तगतं ध्यायेच्छूलं लक्षत्रयं जपेत्।
होमस्तु बिल्वपत्रैः स्यात्सिद्धो मन्त्रस्त्वयं भवेत् ॥११८॥

शूल-मन्त्र—अब मैं शूल-मन्त्र को कहता हूँ। सात अक्षरों का मन्त्र है—ॐ त्रिशूलाय नमः। इस मन्त्र के ऋषि वामदेव, छन्द उष्णिक् एवं देवता पिनाकधारी शिव हैं। शिव के हाथ में विद्यमान शूल का ध्यान करते हुये मन्त्र का तीन लाख जप करने के बाद बेलपत्रों से हवन करने पर यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है॥११७-११८॥

क्षुरिकामन्त्रकथनम्

ॐ क्लीं सर्वायुधायैव पिनाकिनिर्मिते वदेत्।
शूलाकृष्टे चण्डिवृते सर्वदुष्टनिबर्हिणि ॥११९॥
सर्वसत्त्वाङ्गभूते च देवताप्रतिपादिते।
क्षुरिके रक्ष मां नित्यं सर्वाशुभविनाशिनि ॥१२०॥
शान्तिपक्षे द्वयं द्वेधा हृत्सप्तत्यक्षरो मनुः।
जप्त्वा वर्णसहस्रं च सिद्धः शत्रुनिवारणः ॥१२१॥

क्षुरिका-मन्त्र—सत्तर अक्षरों का क्षुरिका मन्त्र इस प्रकार है—ॐ क्लीं सर्वायुधाय पिनाकिनिर्मिते शूलाकृष्टे चण्डिवृते सर्वदुष्टनिवर्हिणि सर्वसत्त्वाङ्गभूते देवताप्रतिपादिते क्षुरिके रक्ष मां नित्ये सर्वाशुभविनाशिनि शान्तिपक्षे द्वयं द्वेधा नमः। इस

मन्त्र का वर्णसहस्र अर्थात् सत्तर हजार जप करने से सिद्ध यह मन्त्र शत्रु का निवारण करता है॥११९-१२१॥

कटारमन्त्रकथनम्

अथ वक्ष्ये कटारस्य मनुं श्लोकस्वरूपकम्।
शस्त्रिणामेव सर्वेषां योऽस्ति रक्षाकरः परः ॥१२२॥
रक्षाङ्गानि गजान् रक्ष रक्ष वाजिधनानि च।
मम देहं सदा रक्ष कटारक नमोऽस्तु ते ॥१२३॥
जपेद्वर्णसहस्राणि तिलाज्यैर्होममाचरेत्।
स्थापयेत्सिद्धमन्त्रस्तु ततः स्थाने कटारकम्।
तत्र सम्पूजयेत्तच्च नाग्निचौरादिजं भयम् ॥१२४॥

कटार-मन्त्र—अब मैं कटार के श्लोकरूप मन्त्र को कहता हूँ। अड़तालीस अक्षरों का वह मन्त्र है—शस्त्रिणामेव सर्वेषां योऽस्ति रक्षाकरः परः, रक्षाङ्गानि गजान् रक्ष रक्ष वाजिधनानि च, मम देहं सदा रक्ष कबरक नमोऽस्तु ते। वर्णसहस्र अर्थात् अड़तालीस हजार जप करके कृत जप का दशांश तिल एवं गोघृत से हवन करने पर यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। मन्त्रसिद्धि के पश्चात् कटार को यथास्थान स्थापित करके वहीं पर उसका पूजन करने से अग्नि एवं चोरों का भय नहीं रह जाता॥१२२-१२४॥

जयप्रदकन्तमन्त्रकथनम्

अथ वक्ष्ये श्लोकरूपं कन्तमन्त्रं जयप्रदम्।
प्रापयानय शत्रूंस्त्वमनया देवमायया।
गृहाण जीवनं तेषां मम सैन्यं च रक्ष माम् ॥१२५॥
प्राग्वज्जपादिना सिद्धः प्रयोगार्हो मनुर्भवेत्।
कुर्यादष्टाङ्गुलन्यासान् धातुजान्नखजानपि।
दिगष्टके रणे यात्वा रिपूणां कदनं भवेत् ॥१२६॥

जयप्रद कन्त-मन्त्र—अब मैं जय प्रदान करने वाले श्लोकरूप कन्त-मन्त्र को कहता हूँ। वह इस प्रकार है—प्रापयानय शत्रूंस्त्वमनया देवमायया, गृहाण जीवनं तेषां मम सैन्यं च रक्ष माम्।

पूर्ववत् जप आदि करने से यह मन्त्र सिद्ध होकर प्रयोग के योग्य हो जाता है। अष्टाङ्गुल (दोनों हाथों के अंगूठों को छोड़कर चार-चार अंगुलियों में) न्यास, अष्ट धातुन्यास एवं अष्ट नखन्यास करने के बाद आठो दिशाओं में युद्ध में गमन करने पर उसके शत्रुओं का विनाश हो जाता है॥१२५-१२६॥

वर्म(कवच)मन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वर्मार्णं वर्मसम्पुटम्।
वर्म्मञ्छर्मप्रद त्वं मां रक्ष रक्ष समन्ततः ॥१२७॥
अष्टादशाक्षरो मन्त्रो जप्यस्तावत्सहस्रकम्।
आज्यैस्तावद्धुनेत्सिद्धस्तत्सम्पातेन संस्कृतम् ॥१२८॥
संग्रामे कवचं धृत्वा रिपून्हत्वा प्रयात्यसौ।
तत्रैव स्वीयवर्षाणामङ्कयन्त्रं क्षितिप्रदम् ॥१२९॥

कवच-मन्त्र—अब मैं कवच-मन्त्र को कहता हूँ। अट्ठारह अक्षरों का वह मन्त्र इस प्रकार है—वर्मन् छर्मप्रद त्वं मां रक्ष रक्ष समन्ततः वर्म। वर्णसहस्र अर्थात् अट्ठारह हजार जप करके कृत जप का दशांश गोघृत से हवन करने पर यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

हवन के सम्पात घृत से संस्कृत कवच को धारण करके युद्ध में गमन करने पर शत्रुओं का वध करके साधक सकुशल वापस आ जाता है। इसी प्रकार अपनी आयु की वर्ष-संख्या से अङ्क-यन्त्र बनाकर धारण करने से यह यन्त्र भूमि-प्रदायक होता है॥१२७-१२९॥

दण्डगायत्रीमन्त्रकथनम्

अथातो दण्डगायत्रीं वक्ष्येऽहं हितकाम्यया।
नानादण्डविनिर्मुक्तो जपाद्यस्याः प्रजायते।
जपमात्रेण संसिद्धिर्हुनेच्च घृतपायसैः ॥१३०॥
ब्रह्मोद्भवाय विद्महे स्वर्णरूपाय धीमहि।
तन्नो दण्डः प्रचोदयात् ॥१३१॥
सहस्रायुतमारभ्य कार्यलाघवगौरवात्।
कोट्यन्तं प्रजपेन्मन्त्री सर्वदण्डैर्विमुच्यते ॥१३२॥

दण्डगायत्री मन्त्र—अब मैं लोक-हित की कामना से दण्डगायत्री को कहता हूँ, जिसके जप से अनेक प्रकार के दण्डों से मुक्ति प्राप्त होती है। जपमात्र से ही यह दण्डगायत्री सिद्ध हो जाती है। घृत और पायस से इसका हवन करना चाहिये। वह दण्डगायत्री है—ब्रह्मोद्भवाय विद्महे स्वर्णरूपाय धीमहि तन्नो दण्डः प्रचोदयात्।

कार्य की लघुता-गुरुता के अनुरूप दस हजार से आरम्भ कर एक करोड़ तक जप करने वाला मन्त्रज्ञ साधक समस्त प्रकार के दण्डों से मुक्त हो जाता है॥१३०-१३२॥

परशुमन्त्रकथनम्

ॐ क्लीं रामायुधायेति श्रीं पं परशवे नमः।
तिथ्यक्षरोऽयं परशोर्मन्त्रः संग्रामसिद्धिदः ॥१३३॥
इत्यायुधानां मनवः समाख्याताः सुरेश्वरि।
गोपिता बहुतन्त्रेषु किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१३४॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते
आयुधमन्त्रकथनं नामैकोनत्रिंशः प्रकाशः ॥२९॥

●

परशु-मन्त्र—ॐ क्लीं रामायुधाय श्रीं पं परशवे नमः—पन्द्रह अक्षरों का यह परशु-मन्त्र युद्ध में विजय प्रदान करने वाला है।

हे सुरेश्वरि! इस प्रकार अनेक तन्त्रों में गुप्त रूप से अवस्थित आयुध-मन्त्रों को मैंने तुमसे सम्यक् रूप से कहा; अब और क्या सुनना चाहती हो॥१३३-१३४॥

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र
में शिवप्रणीत 'आयुधमन्त्रकथन'-नामक
एकोनत्रिंश प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।

●

त्रिंशत्तमः प्रकाशः

(विष्णुशक्तिमन्त्रकथनम्)

श्रीदेव्युवाच

शक्तिं विना न देवोऽस्ति शक्तिश्चापि पतिं विना।
न चास्तीति पुरा प्रोक्तमत्र शक्तीर्वदाधुना॥१॥

श्रीदेवी ने कहा—शक्ति के विना न तो देवता रहते हैं और न ही पति के विना शक्ति रहती है—ऐसा आपने पूर्व में कहा है; इसलिये इस समय आप शक्तियों को मुझसे कहें॥१॥

श्रीशिव उवाच

लक्ष्मीरुक्ता विष्णुशक्तिरन्या अपि वदामि ते।
यतिभिः केवलो देवः सेव्यो नान्यैस्तथा त्रिभिः॥२॥
शक्तिश्च केवला सेव्या वाममार्गरतैर्द्विजैः।
यतस्तु धर्मपतितो वाममार्गी पुमान् मतः॥३॥
ये हरिं वाममार्गेण पूजयन्त्यद्विजातयः।
तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च तदन्ते त्वं मनुं शृणु॥४॥

श्री शिव ने कहा—लक्ष्मी विष्णु की शक्ति कही गई हैं। अन्य शक्तियों के सम्बन्ध में भी मैं तुमसे कहूँगा। मात्र संन्यासियों के द्वारा ही केवल देवता उपास्य होते हैं; अन्य तीनों (ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी) के द्वारा नहीं अर्थात् ब्रह्मचारियों, गृहस्थों एवं वानप्रस्थियों को शक्ति-सहित देवता की ही उपासना करनी चाहिये। उन्हें न तो केवल देवता की उपासना करनी चहिये और न ही केवल शक्ति की। वहीं वाममार्गी द्विजों द्वारा केवल शक्ति ही उपास्य होती है; क्योंकि वे वाममार्गी पुरुष धर्मभ्रष्ट कहे गये हैं।

द्विज-भिन्न जो लोग वाममार्ग का आश्रयण कर विष्णु की उपासना करते हैं, उन्हें भोग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं; अतः उनके मन्त्र को तुम श्रवण करो॥२-४॥

चित्रेश्वरीमन्त्रः

आद्याक्षरं च सकलं कूटं मायान्वितं वदेत्।
वदयुग्मं च चित्रेशे वाग्बीजं दहनाङ्गना॥५॥
द्वादशार्णो मनुः प्रोक्तो मुनिर्ब्रह्मा समीरितः।
चित्रेश्वरी देवता स्याच्छन्दो गायत्रमुच्यते॥६॥

षड्दीर्घयुक्तकूटेन षडङ्गविधिरीरितः ।
नीलोत्पलदलश्यामां मदाघूर्णितलोचनाम् ॥७॥
नानालङ्करणोपेतां रक्तवस्त्रोपशोभिताम् ।
क्रीडन्तीं हरिणा सार्धं स्थगितां च वने वने ॥८॥
एवं ध्यात्वा ततो मन्त्री कुर्यात्पूजां यथाविधि ।
नोपास्या जातु चिद्विप्रैर्वाममार्गप्रभावतः ॥९॥

चित्रेश्वरी-मन्त्र—चित्रेश्वरी का बारह अक्षरों का मन्त्र है—क्लीं वद वद चित्रेश्वरि ऐं स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता चित्रेश्वरी कही गई हैं। छः दीर्घ कूट (क्लां, क्लीं, क्लूं, क्लैं, क्लौं, क्लः) से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है। तत्पश्चात् नीलकमल-पत्र के सदृश श्याम वर्ण वाली, मद से चलायमान नेत्रों वाली, एक जंगल से दूसरे जंगल में अवस्थित होकर हरि के साथ क्रीड़ा करती हुई देवी का ध्यान करके मन्त्रज्ञ साधक को उनकी यथाविधि पूजा करनी चाहिये। वाममार्ग से प्रभावित होने के कारण कभी भी द्विजों को इनकी उपासना नहीं करनी चाहिये॥५-९॥

कुलजाख्यविष्णुशक्तिमन्त्रः

अथ विष्णोः प्रवक्ष्यामि कुलजां शक्तिमुत्तमाम् ।
सेव्या कौलिकमार्गेण तदधीनस्तदा हरिः ॥१०॥
वाग्बीजं कुलजे वह्नौ सरस्वत्यनलाङ्गना ।
एकादशाक्षरो मन्त्रो मुनिः स्याद्वामकेश्वरः ॥११॥
त्रिष्टुप्छन्दस्तु कुलजा देवता परिकीर्तिता ।
पञ्चाङ्गं स्यात्पञ्चपदैरङ्गुष्ठादिषु विन्यसेत् ॥१२॥
गौराङ्गी नीलवसना नानालङ्कारभूषिता ।
क्रीडन्ती हरिणा सार्धं महावटसमाश्रिता ॥१३॥
पूजादिकं चरेदस्या उग्रतारासमो जपः ।
अत्रैकादशलक्षाणि सुरा मांसं च होमयेत् ।
भगपूजां विशेषेण कुर्याद्वीरांश्च भोजयेत् ॥१४॥
एकान्ते यो वटाधस्ताल्लिङ्गं योनौ प्रवेश्य च ।
लक्षमात्रं जपेद्यस्तु त्रिकालज्ञः स जायते ॥१५॥
पञ्चमासं पूजयित्वा वटाधस्ताच्च तां निशि ।
षण्मासं नियतं देवीं वाग्बुद्धिस्तस्य जायते ॥१६॥

सन्ध्याद्वये चार्धरात्रे यो वर्षैकं प्रपूजयेत्।
कुलजां पञ्चमैः स स्याद्धनधान्यसमन्वितः।
राजमान्यो महातेजाः पूज्यते सकलैर्जनैः ॥१७॥

कुलजा-मन्त्र—अब मैं विष्णु की उत्तम शक्ति कुलजा को कहता हूँ, जिनकी कौलिक मार्ग से उपासना करने पर साक्षात् विष्णु भी कौलों के अधीन हो जाते हैं। ग्यारह अक्षरों का कुलजा का मन्त्र इस प्रकार है—ऐं कुलजे ऐं सरस्वति स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि वामकेश्वर, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता कुलजा कही गई हैं। मन्त्र के पाँच पदों से अंगुष्ठादि में पञ्चाङ्गन्यास करने के पश्चात् गौरवर्ण अंगों वाली, नीले वस्त्र धारण की हुई, बहुविध अलंकारों से विभूषित, विशाल वटवृक्ष का आश्रयण कर विष्णु के साथ क्रीड़ा करती हुई देवी कुलजा का ध्यान करके उग्रतारा के समान ही इनका पूजन आदि करना चाहिये।

पूजन आदि के उपरान्त कुलजामन्त्र का ग्यारह लाख जप करने के पश्चात् मद्य एवं मांस से हवन करना चाहिये। विशेषतया भगपूजन करने के बाद वीरों को भोजन कराना चाहिये।

जो साधक पाँच मास तक वटवृक्ष के नीचे एकान्त में इस देवी का पूजन करके भग में लिङ्ग को प्रविष्ट कराकर मन्त्र का एक लाख की संख्या में जप करता है, वह तीनों कालों का ज्ञाता हो जाता है। छः मास-पर्यन्त उक्त प्रकार से ही पूजन एवं जप करने वाले साधक को वाणी एवं बुद्धि प्राप्त होती है।

जो साधक एक वर्ष तक प्रतिदिन दोनों सन्ध्याओं एवं अर्धरात्रि में पञ्च मकार से देवी कुलजा का पूजन करता है, वह धन-धान्य से समन्वित होने के साथ-साथ राजा द्वारा प्रशंसित, महान् तेजस्वी एवं समस्त लोगों द्वारा पूजनीय होता है॥१०-१७॥

गोपालसुन्दरीमन्त्रविधिः

अथ मार्गद्वयोपास्यां वक्ष्ये गोपालसुन्दरीम्।
मायाश्रीकामबीजानि कृष्णायेति पदं वदेत् ॥१८॥
एकोनविंशकं वर्णं रुद्रदेवस्वरौ तथा।
पञ्चमं च ततो बीजमेभिः सप्तमकूटकम् ॥१९॥
गोविन्दाय पदं पश्चाच्चित्रैश्वर्यादिकूटकम्।
गोपीजनवल्लभाय ततश्च कमलत्रयम् ॥२०॥
कूटरूपं समुच्चार्य वदेद्वै हंसवाहिनीम्।
त्रयोविंशाक्षरो मन्त्रो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥२१॥

मुनिर्विधाता दक्षे तु वामे चानन्दभैरवः ।
छन्दस्तु देवी गायत्री देवो गोपालसुन्दरी ॥२२॥
त्रित्रिवेदाब्धिवेदाब्धिवर्णैः कूटविहीनकैः ।
षडङ्गविधिरुद्दिष्टो मन्त्रवर्णान्न्यसेत्तनौ ॥२३॥

गोपालसुन्दरी-मन्त्र—अब दोनों मार्गों द्वारा उपास्य गोपालसुन्दरी-मन्त्र को कहता हूँ। भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला तेईस अक्षरों का वह मन्त्र है—ह्रीं श्रीं क्लीं कृष्णाय कएईलह्रीं गोविन्दाय हसकहलह्रीं गोपीजनवल्लभाय सकलह्रीं स्वाहा। इसमें कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं एवं सकलह्रीं को कूट-स्वरूप एक-एक अक्षर मानने से यह मन्त्र तेईस अक्षरों का होता है।

दक्षिण मार्ग में इस मन्त्र के ऋषि विधाता एवं वाम मार्ग में आनन्दभैरव, छन्द देवी गायत्री तथा देवता गोपालसुन्दरी कही गई हैं।

तीनों कूटों को छोड़कर मन्त्र के बीस वर्णों में से क्रमशः तीन, तीन, चार, चार, चार एवं दो वर्णों से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ह्रीं श्रीं क्लीं हृदयाय नमः, कृष्णाय शिरसे स्वाहा, गोविन्दाय शिखायै वषट्, गोपीजन कवचाय हुम्, वल्लभाय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्॥१८-२३॥

कूटत्रयविहीनांश्च विंशत्यङ्गेषु विन्यसेत् ।
मूर्ध्नि भाले भ्रुवोरक्ष्णोः कर्णयोर्नासयोर्मुखे ॥२४॥
चिबुके च गले बाह्वोर्हृदये जठरे तथा ।
नाभौ लिङ्गे गुदे सक्थ्नोर्जानुनोर्जङ्घयोरपि ॥२५॥
गुल्फयोः पादयोः सृष्टिन्यासोऽयं परिकीर्तितः ।
हृदयाद्यो भुजान्तश्च न्यासोऽयं स्थितिसञ्ज्ञकः ॥२६॥
पादादिमस्तकान्तश्च संहारः परिकीर्तितः ।
एवं न्यासत्रयं कृत्वा पुनः सृष्टिस्थितिं चरेत् ॥२७॥

सृष्टि, स्थिति और संहारन्यास का विवेचन करते हुये कहते हैं कि शिर, ललाट, दोनों भौं, दोनों नेत्र, दोनों कर्ण, दोनों नासिका, मुख, चिबुक, कण्ठ, दोनों भुजा, हृदय, उदर, नाभि, लिङ्ग, गुदा, कमर, जानु, जङ्घा, गुल्फ एवं पैरों में तीनों कूटों से रहित मन्त्र के बीस वर्णों का न्यास करना चाहिये। इसे ही सृष्टिन्यास कहा गया है। हृदय से भुजा तक किया गया न्यास स्थितिन्यास एवं पैरों से मस्तक-पर्यन्त किया गया न्यास संहारन्यास कहा गया है। इस प्रकार तीनों न्यासों को करने के पश्चात् पुनः सृष्टिन्यास करना चाहिये।

(सृष्टिन्यास—ह्रीं नमः मूर्ध्नि, श्रीं नमः ललाटे, क्लीं नमः भ्रुवोः, कृं नमः नेत्रयोः, ष्णां नमः कर्णयोः, यं नमः नसोः, गों नमः मुखे, विं नमः चिबुके, न्दां नमः कण्ठे, यं नमः बाहुमूले, गों नमः हृदि, वीं नमः उदरे, जं नमः नाभौ, नं नमः लिङ्गे, वं नमः गुदे, ल्लं नमः कट्यां, भां नमः जान्वोः, यं नमः जङ्घयोः, स्वां नम गुल्फयोः, हां नमः पादयोः।

स्थितिन्यास—ह्रीं नमः हृदि, श्रीं नमः उदरे, क्लीं नमः नाभौ, कृं नमः लिङ्गे, ष्णां नमः आधारे, यं नमः कट्यां, गों नमः जान्वोः, विं नमः जङ्घयोः, न्दां नमः गुल्फयोः, यं नमः पादयोः, गों नमः मूर्ध्नि, पीं नमः ललाटे, जं नमः भ्रुवोः, नं नमः नेत्रयोः, वं नमः कर्णयोः, ल्लं नमः नसोः, भां नमः मुखे, यं नमः चिबुके, स्वां नमः कण्ठे, हां नमः बाहुमूले।

संहारन्यास—ह्रीं नमः पादयोः, श्रीं नमः गुल्फयोः, क्लीं नमः जङ्घयोः, कृं नमः जान्वोः, ष्णं नमः कट्यां, यं नमः गुदे, गों नमः लिङ्गे, विं नमः नाभौ, न्दां नमः उदरे, यं नमः हृदि, गों नमः बाहुमूले, पीं नमः कण्ठे, जं नमः चिबुके, नं नमः मुखे, वं नमः नसोः, ल्लं नमः कर्णयोः, भां नमः नेत्रयोः, यं नमः भ्रुवोः, स्वां नमः ललाटे, हां नमः मूर्ध्नि)॥२४-२७॥

ततश्च करशुद्ध्याख्यं न्यासं कुर्वीत तं शृणु।
ह्रीं श्रीपूर्वं अं च आं च स्वरौ न्यस्येत्क्रमेण तु॥२८॥
मध्यानामाकनिष्ठासु पुनस्तानेव विन्यसेत्।
मायां रमां तथा ह्रीं च कामबीजं हकारयुक्॥२९॥
ह्रौं च चक्रासनायेति हृदुक्त्वा जङ्घयोर्न्यसेत्।
मायां लक्ष्मीं समुच्चार्य हसयुक्तानि चोच्चरेत्॥३०॥
वाक्कामौ सौं च बीजानि सर्वमन्त्रासनाय च।
नमोऽन्तः शक्रवर्णोऽयं विन्यसेज्जानुनोस्तथा॥३१॥
लज्जा लक्ष्मीं समुचार्य साध्यसिद्धासनाय च।
नमः प्रोच्य न्यसेल्लिङ्गे रुद्रवर्णोऽयमीरितः॥३२॥

इसके बाद करशुद्धि न्यास करना चाहिये, जो इस प्रकार किया जाता है—ह्रीं श्रीं अं मध्यमाभ्यां नमः, ह्रीं श्रीं आं अनामिकाभ्यां नमः, ह्रीं श्रीं सौः कनिष्ठाभ्यां नमः, ह्रीं श्रीं अं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ह्रीं श्रीं आं तर्जनीभ्यां नमः, ह्रीं श्रीं सौ करतलकर-पृष्ठाभ्यां नमः।

तदनन्तर इस प्रकार रुद्रवर्णन्यास करना चाहिये—ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं सौः देव्यासनाय नमः पादयोः, ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं सौः चक्रासनाय नमः जङ्घयोः, ह्रीं श्रीं ह्रीं

क्लीं सौः सर्वमन्त्रासनाय नमः जान्वोः, ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं व्लें साध्यसिद्धासनाय नमः लिङ्गे॥२८-३२॥

ततो वाग्देवतान्यासं कुर्यात्तस्य मनुं शृणु।
मेघवर्णं वदेन्ङेऽन्तं सबिन्दुं षण्मितस्वरम्॥३३॥
आद्यं बीजं षोडशार्णं बीजयुक्तं ततो वदेत्।
तदेव बीजं वशिनीदेवतायै नमस्तथा॥३४॥
सप्तविंशतिवर्णोऽयं मन्त्रः शिरसि विन्यसेत्।
कवर्गं बिन्दुसंयुक्तं कामं कामेश्वरीं तथा॥३५॥
वाग्देवतायै हृदयं न्यसेद्भाले घनार्णकम्।
चवर्गं बिन्दुसंयुक्तं दशरामेषुवर्णकान्।
बिन्दुतुर्यान् स्वरोपेतान् षष्ठं बीजमुदाहृतम्॥३६॥
नोदिनीवाग्देवतायै नमः षोडशवर्णकम्।
भ्रूमध्ये विन्यसेन्मन्त्रं टवर्गं बिन्दुसंयुतम्॥३७॥
द्वितीयपञ्चमौ षष्ठस्वरबिन्दुसमन्वितौ।
विमलावाग्देवतायै नमश्चेति गले न्यसेत्॥३८॥
तवर्गं बिन्दुसंयुक्तं त्रिसप्तमनुवर्णकान्।
बिन्दुतुर्यस्वरोपेतान् बीजं प्रोक्तं तथारुणा॥३९॥
वाग्देवतायै च नमो न्यसेद्धृदि नृपार्णकम्।
पवर्गबिन्दुसंयुक्तमाद्यमन्त्यं च पञ्चमम्॥४०॥
तृतीयं च द्वितीयं च षष्ठबिन्दुसमन्वितम्।
जयन्तीवाग्देवतायै नमोऽयं नृपवर्णकः॥४१॥
यवर्गं बिन्दुसंयुक्तमीशागत्र्यक्षिवर्णकम्।
बिन्दुषष्ठस्वरोपेतं कूटकान्तमुदाहृतम्॥४२॥
सर्वैश्वर्य्यै च वाग्देवतायै हृत्षोडशाक्षरः।
मूलाधारे न्यसेदेनं सवर्गं बिन्दुसंयुतम्॥४३॥
क्षीबीजं कौलिनीवाग्देवतायै च हृदन्तकम्।
न्यसेदूर्वादिपादान्तं न्यासं वाग्देवताभिधम्॥४४॥
ततो मन्त्रस्थितं कूटत्रयं काम्यं हृदि न्यसेत्।
कूटत्रयद्विरावृत्त्या षडङ्गं पुनराचरेत्॥४५॥
कमलावसुधायुक्तं ध्यायेच्छ्रीचक्रगं हरिम्।

रुद्रवर्णन्यास करने के पश्चात् इस प्रकार वाग्देवता-न्यास करना चाहिये—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लं लृं एं ऐं ओं औं अं अः ब्लूं वशिनीवाग्देवतायै नमः शिरसि, कं खं गं घं ङं क्ल्हीं कामेश्वरीवाग्देवतायै नमः ललाटे, चं छं जं झं ञं न्व्लीं मोहिनीवाग्देवतायै नमः भ्रूमध्ये, टं ठं डं ढं णं य्लूं विमलावाग्देवतायै नमः कण्ठे, तं थं दं धं नं ज्म्रीं अरुणावाग्देवतायै नमः हृदि, पं फं बं भं मं ह्स्ल्व्यूं जयिनीवाग्देवतायै नमः नाभौ, यं रं लं वं झ्म्युं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नमः मूलाधारे, शं षं सं हं लं क्षं क्ष्म्रीं कौलिनीवाग्देवतायै नमः ऊर्वादिपादान्तम्।

तत्पश्चात् मन्त्र में विद्यमान तीनों कूटों से मस्तक, मुख एवं हृदय में इस प्रकार काम्य न्यास करना चाहिये—कृष्णाय नमः मूर्ध्नि, गोविन्दाय नमः मुखे, गोपीजनवल्लभाय नमः हृदि।

पुनः तीनों कूटों की दो आवृत्ति से इस प्रकार षडङ्ग न्यास करना चाहिये—कृष्णाय हृदयाय नमः, गोविन्दाय शिरसे स्वाहा, गोपीजनवल्लभाय शिखायै वषट्, कृष्णाय कवचाय हुम्, गोविन्दाय नेत्रत्रयाय वौषट्, गोपीजनवल्लभाय अस्त्राय फट्।

इसके बाद श्रीचक्र में विराजमान कमला एवं वसुधा से समन्वित विष्णु का ध्यान करना चाहिये॥३३-४५॥

क्षीराम्भोधौ सितद्वीपे वने कल्पद्रुमादिभिः ॥४६॥
व्याप्ते तस्मिन् स्वर्णमयं चिन्तयेद्रत्नमण्डपम् ।
मण्डपे तत्र श्रीपीठे स्थितं कृष्णं विभावयेत् ॥४७॥
पद्ममष्टदलं शङ्खं बाणान् वंशीं च दक्षिणैः ।
भुजैर्दधानं वामैस्तु चापं पाशं तथाङ्कुशम् ॥४८॥
विपञ्चीं च महारत्ननानाभरणभूषितम् ।
पीताम्बरधरं गोपीसमूहैः परितो वृतम् ॥४९॥
आदावष्टदले पद्मे कर्णिकायां षडङ्गकम् ।
पूर्वादिकदले वासुदेवं शान्तिं क्रमाद्यजेत् ॥५०॥
सङ्कर्षणं श्रियं प्रद्युम्नाख्यं चापि सरस्वतीम् ।
अनिरुद्धं रतिं पत्राग्रेष्वर्च्या अष्टनायिकाः ॥५१॥
रुक्मिणी सत्यभामा च कालिन्दी जाम्बवन्तिका ।
मित्रविन्दा लक्ष्मणा च सत्या नाग्नजिती तथा ॥५२॥
तद्बाह्येऽष्टदले पूज्यास्तदग्रे निधयो नव ।
महापद्मश्च पद्मश्च शङ्खो मकरकच्छपौ ॥५३॥

मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव।
योगिन्यस्तु रहस्याख्यास्तदग्रेऽष्टदलेऽर्चयेत् ॥५४॥
यक्षिणी चापि कामेशी कामिनी मादिनी बलात्।
जयिनी चैव सर्वेशी कौलिनीत्यष्टशक्तयः ॥५५॥

ऐसी भावना करनी चाहिये कि क्षीरसमुद्र के मध्य कल्पवृक्षों से घिरे श्वेतद्वीप पर स्वर्णमय रत्नमण्डप में विद्यमान श्रीपीठ पर श्रीकृष्ण विराजमान हैं। वे अपने दाहिने चार हाथों में क्रमशः अष्टदल कमल, शंख, बाण एवं वंशी तथा बाँयें चार हाथों में चाप, पाश, अंकुश एवं विपञ्ची (वीणा) धारण किये हुये हैं। वे सर्वश्रेष्ठ रत्न-जटित बहुविध आभूषणों से विभूषित हैं। पीत वस्त्र धारण किये हुये वे श्रीकृष्ण चारो ओर से गोपियों द्वारा घिरे हुये हैं।
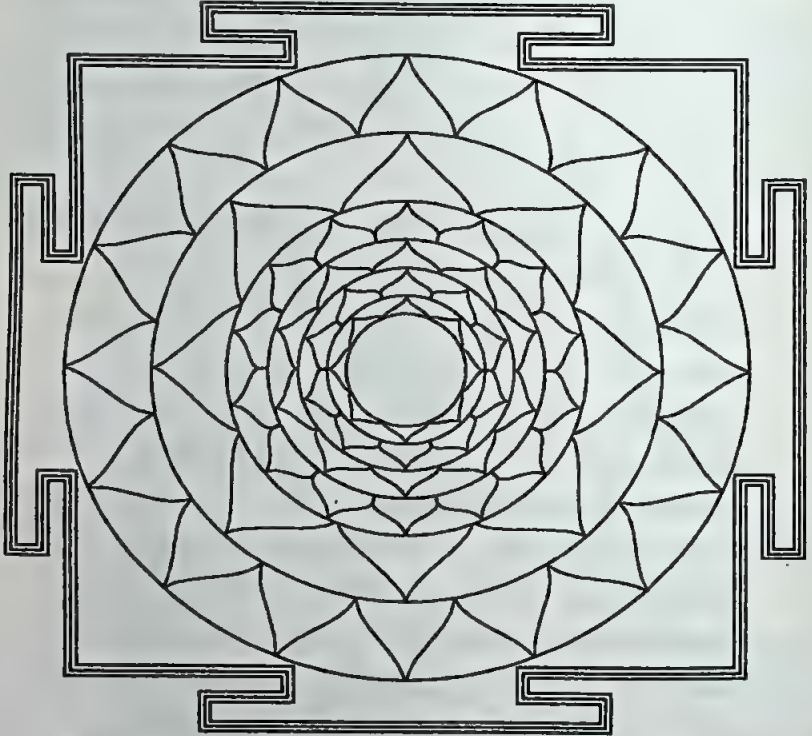
उक्त प्रकार से ध्यान करने के उपरान्त सर्वप्रथम अष्टदल कमल की कर्णिका में षड़ङ्ग-पूजन करने के पश्चात् अष्टदल कमल के पूर्वादि दिशा-स्थित दलों में क्रमशः वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध का तथा आग्नेयादि कोण-स्थित दलों में क्रमशः शान्ति, श्री, सरस्वती एवं रति का तत्तत् नाममन्त्रों से पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर पद्मपत्रों के अग्रभाग में पूर्वादि क्रम से रुक्मिणी, सत्यभामा, कालिन्दी, जाम्बवती, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा, सत्या एवं नाग्नजिती—इन आठ नायिकाओं का क्रमशः पूजन करना चाहिये।

फिर अष्टदल के बहिर्भाग में पूर्वादिक्रम से और मध्य में महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील एवं खर्व—इन नव निधियों का पूजन करना चाहिये।

उसके आगे अष्टदल के अग्रभाग में यक्षिणी, कामेशी, कामिनी, मादिनी, वला, जयिनी, सर्वेशी एवं कौलिनी—इन आठ रहस्यमयी योगिनियों का अर्चन करना चाहिये॥४६-५५॥

ततो दशदले पूज्या निर्गभाख्यास्तु योगिनीः ।
सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वैश्वर्यफलप्रदा ॥५६॥
सर्वज्ञानमयी पश्चात्सर्वज्ञानविनाशिनी ।
सर्वाधारस्वरूपा च सर्वपापहरापरा ॥५७॥
सर्वानन्दमयी पश्चात्सर्वरक्षास्वरूपिणी ।
सर्वेप्सितार्थफलदा पश्चिमादिविलोमगाः ॥५८॥
तदग्रिमे दशदले पूजयेत्कुलयोगिनीः ।
सर्वसिद्धिप्रदा त्वाद्या सर्वसम्पत्प्रदापरा ॥५९॥
सर्वप्रियङ्करी चैव सर्वमङ्गलकारिणी ।
सर्वकामप्रदा पश्चात्सर्वदुःखविमोचिनी ॥६०॥
सर्वमृत्युप्रशमनी सर्वविघ्नविनाशिनी ।
सर्वाङ्गसुन्दरी चैव सर्वसौभाग्यदायिनी ॥६१॥

तदनन्तर दस दलों में पश्चिमादि विलोमक्रम से सर्वज्ञा, सर्वशक्ति, सर्वैश्वर्यफलप्रदा, सर्वज्ञानमयी, सर्वज्ञानविनाशिनी, सर्वाधारस्वरूपा, सर्वपापहरा, सर्वानन्दमयी, सर्वरक्षास्वरूपिणी एवं सर्वेप्सितार्थफलदा—इन दश निगर्भ योगिनियों का पूजन करना चाहिये।

पुनः उसके बाहर दश दलों में सर्वसिद्धिप्रदा, सर्वसम्पत्प्रदा, सर्वप्रियङ्करी, सर्वमंगलकारिणी, सर्वकामप्रदा, सर्वदुःखविमोचिनी, सर्वमृत्युप्रशमनी, सर्वविघ्नविनाशिनी, सर्वाङ्गसुन्दरी एवं सर्वसौभाग्यदायिनी—इन दस कुलयोगिनियों का पूजन करना चाहिये॥५६-६१॥

अग्रे चतुर्दशारे तु योगिनीः साम्प्रदायिकाः ।
पश्चिमादि विलोमेन पूजयेत्क्रमतस्तु ताः ॥६२॥

सर्वसंक्षोभिणीं चैव सर्वविद्राविणीं तथा।
सर्वाकर्षिणिकां प्रोक्तां सर्वाह्लादकरां तथा ॥६३॥
सर्वसम्मोहिनीं चैव सर्वस्तम्भनकारिणीम्।
सर्वजृम्भणिकां प्रोक्तां ततः सर्ववशङ्करीम् ॥६४॥
सर्वरञ्जनिकां चैव सर्वोन्मादनिकां तथा।
सर्वार्थसाधिनीं चैव सर्वसम्पत्तिरूपिणीम् ॥६५॥
सर्वमन्त्रमयीं चापि सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करीम्।

तत्पश्चात् आगे चौदह दलों में पश्चिमादि विलोमक्रम से चौदह सम्प्रदाययोगिनियों का पूजन करना चाहिये। वे चौदह सम्प्रदाययोगिनियाँ इस प्रकार हैं—सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्वाह्लादिनी, सर्वसम्मोहिनी, सर्वस्तम्भिनी, सर्वजृम्भिणी, सर्ववशङ्करी, सर्वरञ्जिनी, सर्वोन्मादिनी, सर्वार्थसाधिनी, सर्वसम्पत्तिरूपिणी, सर्वमन्त्रमयी एवं सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी॥६२-६५॥

ततोऽष्टारे पुरा प्रोक्ता योगिनीः परिपूजयेत् ॥६६॥
पूर्वादिष्वनुलोमेन बन्धूककुसुमप्रभाः।
अनङ्गकुसुमा त्वाद्या द्वितीयानङ्गमेखला ॥६७॥
अनङ्गमदना तद्वदनङ्गमदनातुरा।
अनङ्गलेखा चानङ्गवेगानङ्गाकुशा तथा ॥६८॥
अनङ्गमालिनी त्वष्टौ पाशाङ्कुशलसत्कराः।

तदनन्तर अष्टदल में पूर्वादि अनुलोमक्रम से बन्धूकपुष्प-सदृश दीप्तिमती पूर्वोक्त आठ योगिनियों का पूजन करना चाहिये। वे आठ योगिनियाँ इस प्रकार हैं—अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमेखला, अनङ्गमदना, अनङ्गमदनातुरा, अनङ्गलेखा, अनङ्गवेगा, अनङ्गाकुशा एवं अनङ्गमालिनी। ये सभी अपने-अपने हाथों में पाश एवं अंकुश धारण कर सुशोभित हैं॥६६-६८॥

तदग्रे षोडशारे तु पश्चिमादिविलोमतः ॥६९॥
कामाकर्षिणिका पूर्वं बुद्ध्याकर्षिणिकापरा।
अहङ्काराकर्षिणी च शब्दाकर्षिणिका तथा ॥७०॥
स्पर्शाकर्षिणिका तद्वद्रूपाकर्षिणिका भवेत्।
रसाकर्षिणिका प्रोक्ता गन्धाकर्षिणिका मता ॥७१॥
चित्ताकर्षिणिका चापि धैर्याकर्षिणिका मता।
नामाकर्षिणिका चैव बीजाकर्षिणिका तथा ॥७२॥

अमृताकर्षिणी चापि स्मृत्याकर्षिणिका मता।
शरीराकर्षिणी पश्चादात्माकर्षिणिका तथा ॥७३॥

पुन: उसके बाहर षोड़श दल में पश्चिमादि विलोमक्रम से सोलह गुप्तयोगिनियों का पूजन करना चाहिये। वे हैं—कामाकर्षिणी, बुद्ध्याकर्षिणी, अहङ्काराकर्षिणी, शब्दाकर्षिणी, स्पर्शाकर्षिणी, रूपाकर्षिणी, रसाकर्षिणी, गन्धाकर्षिणी, चित्ताकर्षिणी, धैर्याकर्षिणी, नामाकर्षिणी, बीजाकर्षिणी, अमृताकर्षिणी, स्मृत्याकर्षिणी, शरीराकर्षिणी एवं आत्माकर्षिणी॥६९-७३॥

तदग्रेऽष्टदले पूज्या योगिन्य: प्रकटा इह।
क्षोभणद्रावणाकर्षमनोन्मादमहाङ्कुशा: ॥७४॥
खेचरीं बीजसञ्ज्ञां च योन्याख्यामूर्ध्वतो यजेत्।
तद्वच्चाध: समभ्यर्च्य तद्बहिर्भूपुरे यजेत् ॥७५॥
ब्राह्म्याद्यष्टौ तद्बहिश्च प्राग्वच्चागारभूपुरे।
द्वारे द्वयं प्रागणिमा महिमा लघिमेशिता ॥७६॥
वशिता गुरुता भुक्ति: प्राकाम्यं प्राप्तिरेव च।
रससिद्धिश्च दशमी सपर्य्यैवं समीरिता ॥७७॥

उसके आगे अष्टदल में ऊपर की ओर प्रकटयोगिनियों का पूजन करना चाहिये। वे हैं—सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्ववशङ्करी, सर्वोन्मादिनी, सर्वमहांकुशा, सर्वखेचरी एवं सर्वबीजा। इसी प्रकार नीचे भी सम्यक् रूप से पूजन करने के उपरान्त उसके बाहर भूपुर में पूर्वादि दिशाक्रम से ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं का पूजन करना चाहिये। वे अष्टमातृकायें इस प्रकार हैं—ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा एवं महालक्ष्मी।

पुन: उसके बाहर भूपुर के साथ-साथ दोनों द्वारों पर पूर्वादि दिशाक्रम से इन दस का पूजन करना चाहिये—अणिमा, महिमा, लघिमा, ईशिता, वशिता, गुरुता, भुक्ति, प्राकाम्य, प्राप्ति एवं रससिद्धि। इस प्रकार से यह श्रीहरि का पूजन कहा गया है॥७४-७७॥

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्पायसेन वै।
तर्पणादि तत: कुर्यान्मन्त्रसिद्ध: प्रजायते ॥७८॥
नवलक्षं जपेत्तां तु रुद्ररूपो नरो भवेत्।
करवीरजपुष्पैश्च होमान् मोहयते जगत् ॥७९॥
चन्द्रकुङ्कुमकस्तूरीहोमात्कामाधिको भवेत्।
चम्पकै: पाटलैर्बिल्वैर्वशमानयते चिरात् ॥८०॥

करञ्जफलहोमेन भूतप्रेतादयो वशाः ।
बिल्वैः स्यादतुला लक्ष्मीरिक्षुखण्डैस्तथा वशाः ॥८१॥
लाजहोमो राज्यदायी मधुनोपद्रवक्षयः ।
निशि स्वर्णफलैर्होमो रिपुसेनाविनाशकृत् ॥८२॥
दध्याज्यदुग्धमधुभिः कृताद्धोमादवाप्नुयात् ।
आरोग्यं सम्पदं कामं धनं शर्करया सुखम् ॥८३॥
कमलैर्धनसम्पत्तिर्दाडिमै राजवश्यता ।
क्षत्रियो मातुलुङ्गैश्च वैश्यो नारङ्गजैः फलैः ॥८४॥
शूद्रः कूष्माण्डसम्भूतैर्वश्याः स्युरचिराद् ध्रुवम् ।

उपर्युक्त विधि के अनुसार पूजन करने के उपरान्त मन्त्र का एक लाख जप करने के बाद कृत जप का दशांश पायस से हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण आदि करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इस मन्त्र का नव लाख की संख्या में जप करने से मनुष्य साक्षात् रुद्र-स्वरूप हो जाता है।

करवीर (कनैल) के पुष्पों द्वारा हवन करने से साधक सम्पूर्ण संसार को मोहित करने में समर्थ हो जाता है। कर्पूर, कुङ्कुम एवं कस्तूरी से हवन करने वाला साधक कामदेव से भी अधिक रूपवान हो जाता है। चम्पक एवं पाटलपुष्प तथा बिल्वफल के हवन से साधक को शीघ्र ही वशीभूत करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

करञ्जफलों द्वारा हवन करने से भूत-प्रेत आदि वशीभूत होते हैं। बेलफल के हवन से अपार धन प्राप्त होता है। ईखखण्डों के हवन से वशीकरण होता है। लाजा (धान का लावा) से किया गया हवन राज्य प्रदान करने वाला होता है। मधु के हवन से उपद्रवों का विनाश होता है। रात्रि में स्वर्णफल (धत्तूरफल ?) से किया गया हवन शत्रुओं को विनष्ट करने वाला होता है। दधि के हवन से आरोग्य-लाभ होता है। गोघृत के हवन से सम्पत्ति-लाभ होता है। दुग्ध द्वारा हवन करने से कामना-सिद्धि होती है। मधु के हवन से धन-प्राप्ति होती है। शक्कर के हवन से सुख प्राप्त होता है। कमल के हवन से धन-सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

दाड़िम (अनार) के हवन से राजा वशीभूत होते हैं। मातुलुङ्ग के हवन से क्षत्रिय, नारङ्गी के हवन से वैश्य एवं कोहड़े के हवन से शूद्र शीघ्र ही वशीभूत हो जाते हैं॥७८-८४॥

पनसानां लक्षहोमाद्वश्याः स्युश्चक्रवर्तिनः ॥८५॥
द्राक्षाफलैरिष्टसिद्धी रम्भाभिर्मन्त्रिणो वशाः ।
नारिकेरैस्तु पाण्डित्यं तिलैः सर्वेष्टसिद्धयः ॥८६॥

गुग्गुलैर्दुःखनाशः स्यात्सर्वेष्टं शर्करागुडैः ।
पायसैर्धनधान्यादि बन्धूकैः प्राणिनो वशाः ॥८७॥
पक्वचूतफलैर्होमाद्रक्तमात्राद्धरा वशा ।
लवणै राजिकायुक्तैर्होमाद्दुष्टविनाशनम् ॥८८॥
कर्पूरहोमाल्लभते वाक्पतित्वं नरोऽचिरात् ।
घृतहोमादीप्सिताप्तिः शक्तिः स्यात्तिलतण्डुलैः ॥८९॥

कटहल के फलों से एक लाख आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करने पर चक्रवर्त्ती राजा वशीभूत होते हैं। द्राक्षाफल (मुनक्का) के हवन से इष्टसिद्धि होती है। केले के हवन से मन्त्री वशीभूत होते हैं। नारियल के हवन से पाण्डित्य की प्राप्ति होती है। तिल के हवन से समस्त मनोरथ पूर्ण होते हैं।

गुग्गुलु के हवन से दुःखों का नाश होता है। शक्कर और गुड़ के हवन से समस्त अभीष्ट सिद्ध होते हैं। पायस के हवन से धन-धान्य आदि प्राप्त होते हैं। बन्धूकपुष्पों के हवन से सभी प्राणी वशीभूत होते हैं। पके हुये आम्रफल के हवन से अभीप्सित पृथ्वी वशीभूत होती है। राई और नमक के हवन से दुष्टों का विनाश होता है। कपूर के हवन से मनुष्य को थोड़े ही दिनों में वाक्पतित्व प्राप्त होता है। घी के हवन से अभीष्ट-प्राप्ति होती है एवं तिल-चावल के हवन से शक्ति प्राप्त होती है॥८५-८९॥

अथान्यां सम्प्रवक्ष्यामि वाममार्गफलप्रदाम् ।
कृष्णस्य शक्तिं सुमुखीं द्विजानां नाधिकारिता ॥९०॥
उच्छिष्टचाण्डालिनि सुमुखि देवि महापिशा ।
चिनि ह्रीं ठश्च ठः ठश्च द्वाविंशत्यक्षरो मनुः ॥९१॥
भैरवोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्री सुमुखी सुरी ।
मुनिरामद्विषट्चन्द्रबन्ध्ववर्णैरङ्गकल्पनम् ॥९२॥
ततश्च सुमुखीं ध्यायेत्पुष्पहारविभूषिताम् ।
रक्ताम्बरां रक्तवर्णां रक्तपुष्पानुलेपनाम् ॥९३॥
नृकपालं च खड्गं च कराभ्यां दधतीं नवाम् ।
शवासनां पीनकुचां देवीं श्रीसुमुखीं भजे ॥९४॥

वाममार्ग-फलप्रदा उच्छिष्टचाण्डालिनी-मन्त्र—अब मैं वाममार्ग का आश्रयण करने पर फल प्रदान करने वाली कृष्ण की सुमुखी शक्ति को कहता हूँ। इसकी उपासना में द्विजों का अधिकार नहीं होता। बाईस अक्षरों का इनका मन्त्र है—उच्छिष्टचाण्डालिनि सुमुखि देवि महापिशाचिनि ह्रीं ठः ठः ठः। इस मन्त्र के ऋषि भैरव,

छन्द गायत्री एवं देवता सुमुखी कही गई हैं। मन्त्र के सात, तीन, दो, छः, एक एवं तीन अक्षरों से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये, जो इस प्रकार होता है— उच्छिष्टचाण्डालिनि हृदयाय नमः, सुमुखि शिरसे स्वाहा, देवि शिखायै वषट्, महापिशाचिनि कवचाय हुम्, ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, ठः ठः ठः अस्त्राय फट्।

तत्पश्चात् सुमुखी का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—पुष्पों के हार से विभूषित, रक्त वस्त्र धारण की हुई, रक्त वर्ण वाली, रक्त पुष्पों का अनुलेप लगाई हुई, दोनों हाथों में नरकपाल एवं खड्ग धारण की हुई, नूतन शवरूपी आसन पर विराजमान, स्थूल स्तनों वाली देवी सुमुखी की मैं उपासना करता हूँ।।९०-९४।।

कालीपीठे यजेद्देवीं पञ्चकोणाढ्यकर्णिके ।
अष्टपत्रे षोडशारे वृत्तभूपुरशोभिते ।।९५।।
मूलेन मूर्तिं सङ्कल्प्य पाद्यादीनि प्रकल्पयेत् ।
चन्द्रां चन्द्राननां चारुमुखीं चामीकरप्रभाम् ।।९६।।
चतुरां पञ्चकोणेषु केशरेष्वङ्गदेवताः ।
ब्राह्म्याद्या अष्टपत्रेषु षोडशारे कलादिकाः ।।९७।।
कला कलांनिधिः काली कमला च क्रिया कृपा ।
कुला कुलीना कल्याणी कुमारी कलभाषिणी ।।९८।।
कराली च करालास्या कान्ता कामप्रदा कुजा ।
भक्तोच्छिष्टोऽयुतं जप्त्वा जायते सम्पदां पदम् ।।९९।।
उच्छिष्टेनैव भक्तेन बलिं दद्यान्निरन्तरम् ।

पञ्चकोण से सुशोभित कर्णिका वाले अष्टदल, षोडश दल, वृत्त एवं भूपुर-युक्त कालीपीठ पर देवी का पूजन करना चाहिये। उक्त पीठ पर मूल मन्त्र से मूर्ति कल्पित करके पाद्यादि द्वारा पञ्चकोण में क्रमशः चन्द्रा, चन्द्रानना, चारुमुखी, चामीकरप्रभा एवं चतुरा का पूजन करने के बाद केशर में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये।

तत्पश्चात् अष्टदल में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करने के बाद षोड़श पत्र में कलादि षोड़श शक्तियों का पूजन करना चाहिये। ये शक्तियाँ हैं— कला, कलानिधि, काली, कमला, क्रिया, कृपा, कुला, कुलीना, कल्याणी, कुमारी, कलभाषिणी, कराली, करालास्या, कान्ता, कामप्रदा एवं कुजा। इन सोलह देवियों का पूजन करने के उपरान्त भात खाकर जूठे मुख मन्त्र का दस हजार जप करने से श्रेष्ठ सम्पदा प्राप्त होती है। प्रतिदिन जूठे भात की ही बलि प्रदान करनी चाहिये।।९५-९९।।
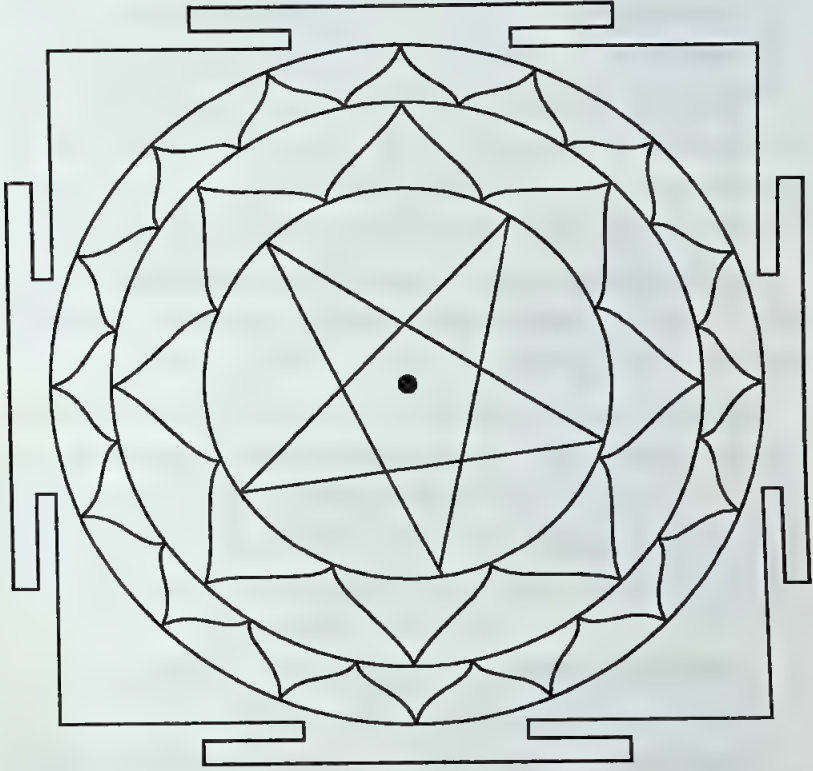
गव्याज्याक्तैः प्रजुहुयाल्लक्षं सिद्धार्थतण्डुलैः ॥१००॥
भवन्ति वशगास्तस्य राजानो राजमन्त्रिणः ।
शास्त्राणि वशगानि स्युर्होमं मार्जारमांसतः ॥१०१॥
धनर्द्धिश्छागमांसेन विद्याप्राप्तिस्तु पायसैः ।
मधुपायससंयुक्तस्त्रीरजोयुक्तवाससा ॥१०२॥
होममाचरतः पुंसो जनता वशवर्त्तिनी ।
मधुसर्पिर्युतैर्नागवल्लीपत्रैर्महाश्रियः ॥१०३॥
सद्योनिहतमार्जारमांसेन मधुसर्पिषा ।
युक्तेनान्त्यजकोणाद्यैर्हुतैराकर्षति स्त्रियः ॥१०४॥
मध्वाक्तशशमांसेन तत्फलं विद्यया सह ।
उन्मत्ततरुजैर्दीप्तचिताग्नौ जुहुयाच्छदैः ॥१०५॥
कोकिलाकाकमांसेन मारयेदचिरादरीन् ।

वायसोलूकयोः पत्रैर्होमाद्विद्वेषयेदरीन् ।
गर्भपातः सगर्भाया उलूकच्छदहोमतः ॥१०६॥

गो-दुग्ध एवं गोघृत-सिक्त सरसों एवं चावल द्वारा एक लाख हवन करने से राजा एवं राजमन्त्री साधक के वशीभूत हो जाते हैं। मार्जार (बिलाव) के मांस से हवन करने पर समस्त शास्त्र साधक के वशीभूत हो जाते हैं। इसी प्रकार धन-वृद्धि के लिये बकरे के मांस से और विद्या-प्राप्ति के लिये पायस से हवन करना चाहिये।

मधु, पायस एवं रजस्वला स्त्री के रज से समन्वित वस्त्र से हवन करने पर जनता साधक के वशीभूत हो जाती है। मधु एवं गोघृत-युक्त पान के पत्तों से हवन करने पर प्रभूत धन की प्राप्ति होती है।

मधु एवं घृत-युक्त सद्यः मारे गये मार्जार के मांस से हवन करने पर अन्त्यज स्त्रियों का आकर्षण होता है। मधु-सिक्त खरगोश के मांस से हवन करने पर विद्या-प्राप्ति होती है। धतूर की छाल से प्रज्वलित चिताग्नि में कोयल एवं कौवे के मांस से हवन करने पर थोड़े ही दिनों में शत्रु की मृत्यु हो जाती है। कौवे एवं उल्लू के पंखों से हवन करने पर शत्रुओं में परस्पर विद्वेष (झगड़ा) हो जाता है। उल्लू के पंखों से हवन करने पर गर्भवती का गर्भ गिर जाता है॥१००-१०६॥

आज्याक्तैर्बिल्वपत्रैर्वा मासमेकं सहस्रकम् ।
प्रत्यहं जुहुयात्तेन वन्ध्यापि लभते सुतम् ।
सौभाग्यार्थं दुर्भगाया बन्धूककुसुमैर्हुनेत् ॥१०७॥

चतुष्पथे बलिं दत्त्वा जपतश्चाष्टकायुतम् ।
उच्छिष्टस्य च सा देवी प्रत्यक्षा जायतेऽचिरात् ॥१०८॥

यत्र नोक्ता होमसङ्ख्या मन्त्रोक्तां तत्र निर्दिशेत् ।
वाममार्गेण सुमुखी क्षिप्रं कामविधायिनी ॥१०९॥

भोजनान्ते तदोच्छिष्टैर्जाप्या सा स्वेष्टसिद्धये ।
न क्षिप्रफलदा देवी सुमुखी सुदृढापरा ॥११०॥

आज्याक्त बेलपत्रों से एक महीने तक प्रतिदिन एक हजार हवन करने से वन्ध्या स्त्री भी पुत्रवती हो जाती है। दुर्भगा को सौभाग्य-प्राप्ति के लिये बन्धूकपुष्पों से हवन करना चाहिये। जूठे मुख साधक द्वारा चौराहे पर बलि प्रदान करके मन्त्र का अस्सी हजार जप करने पर थोड़े ही दिनों में वह उच्छिष्टचाण्डालिनी देवी उसके समक्ष प्रत्यक्ष हो जाती है।

प्रयोगों में जहाँ पर हवन-संख्या का निर्देश नहीं किया गया है, वहाँ पर मन्त्रोक्त

होमसंख्या का ग्रहण करना चाहिये। वाममार्ग का आश्रयण करने पर सुमुखी शीघ्र मनोरथ पूर्ण करने वाली होती है। इष्टसिद्धि के लिये भोजन के अन्त में जूठे मुख सुमुखी का मन्त्रजप करना चाहिये। दूसरे किसी विधान से अर्चन करने पर सुमुखी शीघ्र फलप्रदा नहीं होती॥१०७-११०॥

कृष्णप्रियैकजटामन्त्रविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वाममार्गेण सिद्धिदाम्।
कृष्णप्रियामेकजटां ह्रींत्रींहुंफट् च हृन्मनुः॥१११॥
अस्य न्यासादि मुन्यादि तारापञ्चाक्षरीसमम्।
पूजा चात्र पुरश्चर्या प्रोक्ता लक्षचतुष्टयम्।
तद्वत्प्रयोगकरणं कृष्णाशक्तिरियम्परा॥११२॥

कृष्णप्रिया एकजटा-मन्त्र—अब मैं वाममार्ग से सिद्धि प्रदान करने वाली कृष्णप्रिया एकजटा के मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ह्रीं त्रीं हुं फट् नमः। इस मन्त्र के ऋषि, न्यास, पूजा आदि तारापञ्चाक्षरी मन्त्र के समान होते हैं। चार लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है। तारापञ्चाक्षरी के समान ही इसके प्रयोग भी होते हैं। यह कृष्ण की परा शक्ति है।१११-११२॥

अथ वक्ष्ये चैकजटामन्त्रं सव्यवशीकरम्।
तारो लज्जा नमो भेति गवत्येकजटे मम।
पुष्पं प्रतीक्षस्व स्वाहा द्वाविंशत्यक्षरो मनुः॥११३॥
ऋषिः पतञ्जलिश्छन्दो गायत्र्येकजटा सुरी।
षडङ्गविधिरुद्दिष्टो दीर्घषड्युक्तमायया।
ध्यानपूजाप्रयोगादि सर्वं पूर्वोक्तवद्भवेत्॥११४॥

वाममार्गी एकजटा मन्त्र—अब मैं वाममार्ग से एकजटा के वशीकरण मन्त्र को कहता हूँ। बाईस अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ ह्रीं नमो भगवति एकजटे मम पुष्पं प्रतीक्षस्व स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि पतञ्जलि, छन्द गायत्री एवं देवी एकजटा कही गई हैं। छः दीर्घ मायाबीज (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः) से इसकी षडङ्ग-विधि कही गई है। इसका ध्यान, पूजन, प्रयोग आदि सब कुछ पूर्वोक्त मन्त्र के समान होते हैं॥११३-११४॥

एकवीराख्यकृष्णशक्तिमन्त्रः

अथ तत्रैकवीरायाः कृष्णाशक्तेर्मनुं शृणु।
या तु भार्गवरामेण कार्तवीर्यवधाय च।
कृत्वा स्वं शाबरं रूपं वाममार्गेण सेविता॥११५॥

तेन तन्त्रान्तरे प्रोक्ता सेवारीतिर्मया सुराः।
जरासन्धभयात्कृष्णो यदा सिन्धुं समाश्रितः ॥११६॥
तदा रामेण निर्दिष्टा श्रीकृष्णस्य जयैषिणः।
तामावाह्य स कृष्णोऽपि भोगेन पर्यतोषयत् ॥११७॥
आरे सुदर्शिता नार्या तस्मात्सा रेणुकाभवत्।
सम्भोगे तु जपेन्मन्त्री यथा सन्तोषयेत्स्त्रियम् ॥११८॥
सन्तुष्यते तदा देवी रेणुका वरदा भवेत्।
प्रणवः कमला माया क्रोमैं पञ्चाक्षरो मनुः ॥११९॥
भैरवोऽस्य मुनिः पङ्क्तिश्छन्दो देवी च रेणुका।
पञ्चवर्णैः समस्तेन षडङ्गविधिरीरितः ॥१२०॥

कृष्णशक्ति एकवीरा का मन्त्र—अब कृष्णशक्ति एकवीरा का मन्त्र सुनो, कार्तवीर्य के वध के लिये शाबर-रूप धारण कर वाममार्ग से जिसका भृगुपुत्र परशुराम ने सेवन किया था। इसीलिये उसकी पद्धति को देवताओं के लिये मैंने दूसरे तन्त्रों में कहा है।

जब जरासन्ध के भय से कृष्ण ने समुद्र का आश्रय ग्रहण कर लिया था तब जय की कामना से कृष्ण ने परशुराम के द्वारा बताये गये मन्त्र की उपासना की थी। उसका आवाहन करके कृष्ण ने भोगों से उसे सन्तुष्ट किया था। कोण में रेणु से सुन्दर नारी-स्वरूप दिखलाई देने के कारण ही वह रेणुका कहलाई।

जिस प्रकार स्त्री सन्तुष्ट हो, उस प्रकार से सम्भोग के समय साधक को मन्त्रजप करना चाहिये। इससे सन्तुष्ट होकर देवी रेणुका वरदा होती हैं। जप-हेतु पाँच अक्षरों का मन्त्र है—ॐ श्रीं ह्रीं क्रों ऐं। इस पञ्चाक्षर मन्त्र के ऋषि भैरव, छन्द पंक्ति एवं देवी रेणुका कही गई हैं। मन्त्र के पाँच बीजों से पञ्चाङ्गन्यास एवं सम्पूर्ण मन्त्र से अस्त्रन्यास; इस प्रकार इसका षडङ्गन्यास कहा गया है॥११५-१२०॥

हेमाद्रिसानावुद्याने नानाद्रुममनोहरे।
रत्नमण्डपमध्यस्थवेदिकायां स्थितां स्मरेत् ॥१२१॥
गुञ्जाहारां कर्णयुग्मे मयूरच्छदभूषिताम्।
कोदण्डबाणौ करयोर्नववल्कलधारिणीम् ॥१२२॥
शोणपुष्पी नूपुरा च मल्लिकाकलिकाभराम्।

हिमालय के शिखर की समतल भूमि पर विद्यमान अनेक वृक्षों से मनोहर वाटिका में रत्नमण्डप के मध्य में स्थित वेदी पर विराजमान देवी का स्मरण करना चाहिये।

वे गुञ्जा (घुंघची) का हार धारण की हुई हैं एवं उनके दोनों कान मयूरपंख से आभूषित हैं। दोनों हाथों में वे धनुष और बाण धारण की हुई हैं। वल्कलधारिणी वे शोण (सिन्दूर) एवं नूपुर धारण की हुई हैं। वे मल्लिका की सुगन्धित कलियों से विभूषित हैं॥१२१-१२२॥

यजेदष्टदले पद्मे कर्णिकायां षडङ्गकम् ॥१२३॥
हुङ्कारी खेचरी चण्डा छेदनी क्षेपणी तथा।
स्त्री तुङ्कारी क्षेमकारी तदग्रे भूपुरे यजेत् ॥१२४॥
दिक्पतींश्च तदस्त्राणि पञ्चलक्षं जपेन्मनुम्।
बिल्वकाष्ठैधिते वह्नौ हुनेद्बिल्वफलैस्तथा ॥१२५॥
तर्पणाद्यैः सिद्धमन्त्रः प्रयोगानाचरेत्ततः।
मल्लीपुष्पैर्हुतो वश्यमिक्षुदण्डैर्धनाप्तये ॥१२६॥
पञ्चगव्यैर्धनानि स्युरशोककुसुमैः सुताः।
इन्दीवरैः कृतो होमो नृपपत्नीवशङ्करः।
अन्नादिरत्नैः सकलं मधूकैर्वाञ्छितं भवेत् ॥१२७॥

अष्टदल कमल की कर्णिका में षडङ्ग-पूजन करने के उपरान्त अष्टदल में हुंकारी, खेचरी, चण्डा, छेदनी, क्षेपणी, स्त्री, तुङ्कारी एवं क्षेमकारी का पूजन करना चाहिये। पुनः उसके आगे भूपुर में दश दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।

इस प्रकार पूजन करने के पश्चात् मन्त्र का पाँच लाख जप करने के अनन्तर बेल की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में बेलफलों से हवन करना चाहिये। तदनन्तर तर्पण आदि करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

मन्त्रसिद्धि के पश्चात् प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये। वशीकरण के लिये मल्लिकापुष्पों से एवं धन-प्राप्ति के लिये ईखखण्डों से हवन करना चाहिये। पञ्चगव्य द्वारा हवन करने से धन एवं अशोकपुष्पों द्वारा हवन करने से पुत्र की प्राप्ति होती है। इन्दीवर (कमल) के हवन से रानियाँ वशीभूत होती हैं। महुआ के हवन से अन्न-रत्न आदि सभी इच्छित वस्तुयें प्राप्त होती हैं॥१२३-१२७॥

कृष्णशक्तिमन्त्रविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कृष्णस्यातीववल्लभाम्।
षोडशस्त्रीसहस्राणां यत्प्रभावात्प्रभुर्भवेत् ॥१२८॥
तारो ह्रीं योगिनी द्वेधा योगेश्वरियुगं वदेत् ॥१२९॥
योगे भयङ्करीत्युक्त्वा सकलस्थावरेति च।
जङ्गमस्य मुखं प्रोच्य हृदयम्मम चोच्चरेत् ॥१३०॥

वशमाकर्षयद्वन्द्वं स्वाहान्तः खशरार्णकः ।
पितामहो मुनिः प्रोक्तश्छन्दोऽतिजगती मता ॥१३१॥
हरेः प्राणसमा शैलपुत्री देवी स्वयंवरा ।
ॐ ह्रां जगत्त्रयवश्यमोहिन्यै हृदयाय हृत् ॥१३२॥
त्रैलोक्यवश्यमोहिन्यै तारमायादिकं शिरः ।
उरङ्गवश्यमोहिन्यै ॐ ह्रैमाद्यं शिखा भवेत् ॥१३३॥
ॐ ह्रैं सर्वराजवश्यमोहिन्यै कवचं मतम् ।
ॐ ह्रौं सर्वस्त्रीपुरुषमोहिन्यै चेति नेत्रकम् ॥१३४॥
प्रणवो ह्रः सर्ववश्यमोहिन्यै चास्त्रमीरितम् ।
ततश्च मूलमन्त्रेण सर्वाङ्गे व्यापकं चरेत् ॥१३५॥

कृष्णशक्ति-मन्त्रविधि—अव मैं कृष्ण की अतिप्रिया सोलह हजार स्त्रियों के मन्त्र को कहता हूँ, जिसके प्रभाव से कृष्ण उनके स्वामी हुये थे। इक्यावन अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ ह्रीं योगिनि योगिनि योगेश्वरि योगेश्वरि योगे भयङ्करि सकलस्थावरजङ्गमस्य मुखं हृदयं मम वशमाकर्षय आकर्षय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द अतिजगती एवं देवी शिव की प्राणप्रिया स्वयंवरा शैलपुत्री हैं।

इसका षडङ्ग-न्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ ह्रां जगत्त्रयवश्यमोहिन्यै हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं त्रैलोक्यवश्यमोहिन्यै शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रूं उरङ्गवश्यमोहिन्यै शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं सर्वराजवश्यमोहिन्यै कवचाय हुम्, ॐ ह्रौं सर्वस्त्रीपुरुषमोहिन्यै नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः सर्ववश्यमोहिन्यै अस्त्राय फट्। इसके बाद मूल मन्त्र से समस्त अङ्गों में व्यापक न्यास करना चाहिये॥१२८-१३५॥

संसारसागरे कृष्णं क्रीडन्तं वीक्ष्य शङ्करः ।
तत्तत्सुखेच्छया कृष्णारूपं जग्राह मोहनम् ॥१३६॥
आनन्दकाननं ध्यायंस्तद्दृष्ट्वा गिरिजाभवत् ।
मोहिता स्वस्वरूपञ्च कृत्वाष्टगुणसुन्दरम् ॥१३७॥
तस्मिन्नवसरे विष्णुमयः पीताम्बरं दधत् ।
जगौ मङ्गलगीतानि यावत्स्यान्मैथुनालयः ॥१३८॥
मृतः कामो मङ्गलैस्तैः पूर्णश्चित्ते तयोरभूत् ।
दैव्यै मधूकजां माला नागहारं हरोऽर्पयत् ॥१३९॥
विष्णुर्योगकरस्तत्र तयोर्जातः पुरोहितः ।
तस्मै देवी वरं प्रादात्तेन जाता हरिप्रिया ॥१४०॥

एवं ध्यात्वा त्रिवेदाङ्गकोणं यन्त्रं समुद्धरेत्।
अष्टदशदिग्भूपालदन्ताष्टकृतिसम्मितैः ॥१४१॥
दलैः पद्मानि कुर्वीत बाह्यवृत्तत्रयं पुनः।
भूपुरं वर्त्तुलं कार्यं पूजायन्त्रमितीरितम्।
शेषा स्वयंवरा पूज्या त्रिकोणाभ्यन्तरे ततः।
तद्बाह्ये चतुरस्त्रस्य दिक्षु मेधां यजेत्ततः ॥१४२॥
विद्यां लक्ष्मीं महालक्ष्मीं षट्कोणेऽङ्गानि संयजेत्।
द्विद्विस्वरानष्टदले शक्रादीन् दिग्दले पुनः ॥१४३॥
तदायुधानि तद्बाह्ये दिग्दले षोडशारके।
ताराद्येन नमोऽन्तेन श्रीबीजेन यजेच्छ्रियम् ॥१४४॥
पाशं मायामङ्कुशं च शिवायै नम इत्यपि।
अष्टाक्षरेण मनुना रदपत्रे शिवां यजेत् ॥१४५॥
रमां मायां च मदनं त्रिपुरायै नमस्तथा।
नवाक्षरेण त्रिपुरां चतुष्षष्टिदलेऽर्चयेत् ॥१४६॥
वृत्तत्रये महालक्ष्मीं भवानीं पुष्पसायकम्।
चतुरस्त्रे चतुर्द्वारि विघ्नक्षेत्रेशभैरवान्।
योगिनीं पूजयेदित्थं नवावरणपूजनम् ॥१४७॥
जपेल्लक्षचतुष्कं च पायसाज्जुहुयात्तथा।
एवं यो भजते देवीं वश्यास्तस्यामिता जनाः ॥१४८॥

संसार-रूपी समुद्र में क्रीड़ा-रत कृष्ण को देखकर भगवान् शिव ने तत्तत् सुख-प्राप्ति की कामना से कृष्ण का मोहन-रूप धारण किय। इसके बाद उनके द्वारा आनन्दकानन का ध्यान करते ही उसने उन्हें देखकर गिरिजा का स्वरूप धारण कर लिया और वह गिरिजा अपने स्वरूप को आठगुणा सुन्दर बनाकर कृष्ण-रूपधारी शिव पर मोहित हो गई। उस समय विष्णुमय शिव ने पीताम्बर धारण किया। मंगलगीत गाये जाने लगे। फलस्वरूप दोनों में मैथुन की इच्छा जागृत हुई और उन मंगलगीतों को सुनकर मृत काम उन दोनों के चित्त में पूर्णतया सजीव हो उठा और देवी के लिये महुये के पुष्पों की माला तथा शिव के लिये नागों का हार समर्पित किया। वहाँ पर दोनों का संयोग कराने वाले विष्णु पुरोहित बने। प्रसन्न देवी ने उन्हें वर प्रदान किया; जिससे वे हरिप्रिया बनीं।

इस प्रकार ध्यान करके त्रिकोण, चतुष्कोण, षट्कोण, अष्टदल, दशदल, द्वादशदल, षोड़शदल, द्वात्रिंशत् दल, चतुःषष्टि दल, तीन वृत्त एवं भूपुर से युक्त

पूजन-यन्त्र का निर्माण करके त्रिकोण-मध्य में स्वयंवरा का पूजन करने के बाद उसके बाहर चतुरस्त्र में मेधा, विद्या, लक्ष्मी एवं महालक्ष्मी का पूजन करना चाहिये।
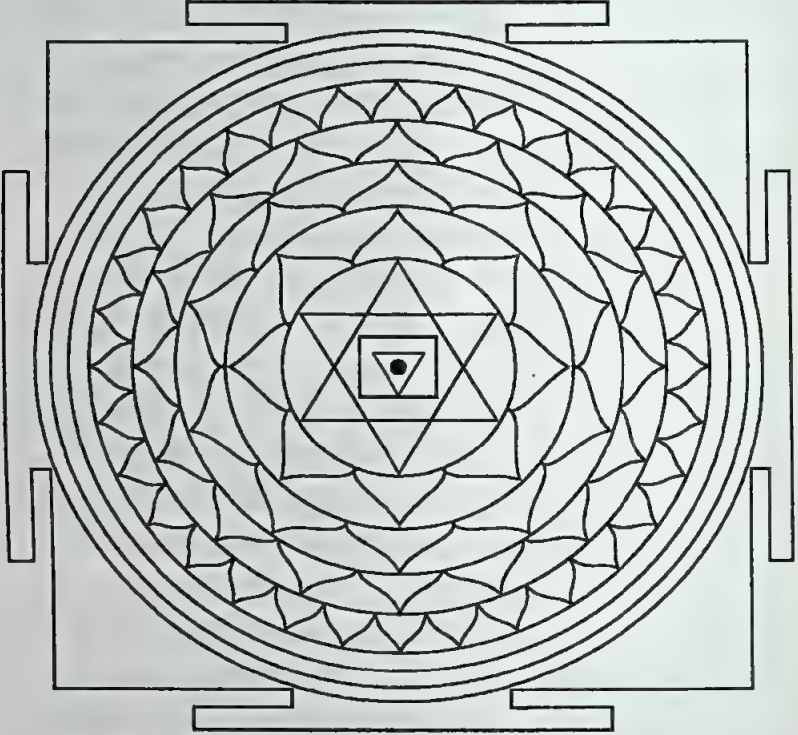
षट्कोण में सम्यक् रूप से षडङ्ग-पूजन करने के उपरान्त अष्टदल में दो-दो स्वरों का पूजन करना चाहिये। इसके बाद दश दलों में दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।

तत्पश्चात् षोडश दल में 'ॐ श्रीं नमः' मन्त्र से रमा (लक्ष्मी) का पूजन करने के बाद बत्तीस दल कमल में 'आं ह्रीं क्रों शिवायै नमः' मन्त्र से शिवा का पूजन करना चाहिये एवं चौंसठ दल में 'श्रीं ह्रीं क्लीं त्रिपुरायै नमः' मन्त्र से त्रिपुरा का पूजन करना चाहिये। तीनों वृत्तों में क्रमशः महालक्ष्मी, भवानी और कामेश्वरी का पूजन करने के बाद भूपुर के चारो द्वारों पर गणेश, क्षेत्रपाल, भैरव एवं योगिनियों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार यह पूजन नौ आवर्णों में पूर्ण होता है। सविधि पूजन के उपरान्त पुरश्चरण के लिये मन्त्र का चार लाख जप पूर्ण करने के बाद पायस से हवन करना चाहिये। जो साधक इस प्रकार देवी की उपासना करता है, असीमित लोग उसके वशीभूत हो जाते हैं।।१३६-१४८।।

लाजैस्त्रिमधुरोपेतैर्जुहुयादयुतं तु यः।
लभते वाञ्छितां कन्यां धनमानसमन्विताम् ॥१४९॥
सर्वोपास्या त्वियं देवी सिद्धा मार्गद्वयेऽपि च।
लक्ष्मीभेदास्तु ये पूर्वं प्रोक्तास्तु विष्णुसाधने।
दक्षमार्गेण संसिद्धा वामे नैते प्रकीर्तिताः ॥१५०॥
त्यज्यते दक्षिणो मार्गो यतः पापक्षयो भवेत्।
सिद्धिर्मध्ये यदा मृत्युस्तदा जन्मान्तरे भवेत् ॥१५१॥
न भजेद्वाममार्गन्तु यतोऽनिष्टो दुरत्ययः।
तन्मार्गिणां महापापं पापात्मानोऽत्र ये स्थिताः ॥१५२॥
एवं ते वैष्णवो मन्त्रो मया सम्यगुदीरितः।
यस्मिन्भुक्तिश्च मुक्तिश्च किं वक्तव्यमतः परम् ॥१५३॥

इति श्रीमहामायामाहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते विष्णु-शक्तिमनुकथनं नाम त्रिंशः प्रकाशः ॥३०॥

●

जो साधक त्रिमधु-सिक्त धान के लावा से दस हजार आहुतियों द्वारा हवन करता है, वह धन एवं सम्मान से समन्वित अभीप्सित कन्या को (पत्नी-रूप में) प्राप्त करता है।

यह देवी सबों के लिये उपास्य हैं एवं दोनों (वाम एवं दक्षिण) मार्गों से सिद्ध होने वाली हैं। पूर्व में लक्ष्मी के जिन भेदों को बतलाया गया है, वे दक्षिणमार्ग से सिद्ध होती हैं; वाममार्ग से नहीं। क्योंकि दक्षिणमार्ग का त्याग करने पर पापों का क्षय हो जाता है। सिद्धि-प्राप्ति के मध्य में यदि साधक की मृत्यु हो जाती है तो उसे दूसरे जन्म में सिद्धि की प्राप्ति होती है।

वाममार्ग का आश्रयण नहीं करना चाहिये; क्योंकि ऐसा करने से अनतिक्रमणीय अनिष्ट होता है। वाममार्ग का अवलम्बन करने वालों को महापाप लगता है और जो उसका अवलम्ब ग्रहण करते हैं, वे पापात्मा होते हैं।

इस प्रकार विष्णु-मन्त्रों को मैंने तुमसे सम्यक् रूप से वर्णित किया, जिनके द्वारा भोग एवं मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है। अब इसके बाद और क्या कहूँ॥१४९-१५३॥

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिवप्रणीत 'विष्णुशक्तिमन्त्रकथन'-नामक त्रिंश प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।

●

एकत्रिंशत्तमः प्रकाशः

(शिवमन्त्रकथनम्)

श्रीदेव्युवाच

श्रुता गाणेश्वराः सौरा वैष्णवा मनवो मया।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि तव मन्त्रान् ससिद्धिदान् ॥१॥

श्रीदेवी ने कहा—मेरे द्वारा गणेश-सम्बन्धी, सूर्य-सम्बन्धी एवं विष्णु-सम्बन्धी मन्त्रों का श्रवण किया गया; अब इस समय मैं सम्यक् सिद्धि प्रदान करने वाले आपके मन्त्रों को सुनना चाहती हूँ॥१॥

श्रीमहादेव उवाच

कथयिष्यामि ते देवि शैवान् मन्त्रान् महाद्भुतान्।
यान्साधयित्वा भोगांस्तु भुक्त्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥२॥

श्रीशिव ने कहा—हे देवि! मैं तुमसे अत्यन्त अद्भुत शिव-सम्बन्धी मन्त्रों को कहता हूँ; जिनका साधन करके मनुष्य इस संसार में सभी भोगों को भोग कर अन्त में मोक्ष प्राप्त करते हैं॥२॥

षडक्षरशिवमन्त्रविधिकथनम्

नमः शिवायेति मन्त्रः पञ्चार्णस्तारपूर्वकः।
षडक्षरोऽयं विप्राणां भुक्तिमुक्तिप्रसाधकः ॥३॥
वामदेवो मुनिश्छन्दः पङ्क्तिर्देवः सदाशिवः।
षडर्णैस्तु षडङ्गानि पञ्चार्णैरङ्गपञ्चकम् ॥४॥
तर्जन्योर्विन्यसेन्नं तत्पुरुषाय नमस्त्विति ॥५॥
मध्यमानामिकयोर्विन्यसेच्च कनिष्ठयोः।
शिं प्रोच्य सद्योजाताय नमोऽथानामयोर्न्यसेत्।
वामुक्त्वा वामदेवाय नमोऽथाङ्गुष्ठयोर्न्यसेत् ॥६॥
यमीशानाय हृदये चैवमेव मुखे न्यसेत्।
हृदये पादयोर्गुह्ये न्यासोऽयं स्यात्तृतीयकः ॥७॥
प्राग्याम्यवारुणोदीचीमध्ये चक्रेषु पञ्चसु।
एवमेव न्यसेत्प्रोक्तो न्यासोऽयं पञ्चमोऽघहृत् ॥८॥

ॐ सर्वशक्तिधाम्ने हृदयाय च नमो वदेत्।
नमुक्त्वा नित्यतृप्तेति शक्तिधाम्ने शिरो भवेत् ॥९॥
ममित्युक्त्वानादिबोधशक्तिधाम्ने शिखा भवेत्।
शिमनन्तशक्तिधाम्ने कवचाय नमस्त्विति ॥१०॥
वामनन्तशक्तिधाम्ने नमो नेत्रत्रयाय च।
यमनन्तशक्तिधाम्ने वदेदस्त्राय फट् तथा ॥११॥

'नमः शिवाय' यह पाँच अक्षरों वाला मन्त्र आदि में 'ॐ' का संयोजन करने से छः अक्षरों वाला हो जाता है। यह षडक्षर मन्त्र ब्राह्मणों के भोग एवं मोक्ष का साधक है। इस षडक्षर मन्त्र के ऋषि वामदेव, छन्द पंक्ति और देवता सदाशिव हैं। मन्त्र के छः वर्णों से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। पञ्चाक्षर मन्त्र की स्थिति में उसके पाँच वर्णों से पञ्चाङ्गन्यास किया जाता है, जो कि प्रथम न्यास होता है।

'नं तत्पुरुषाय नमः' से दोनों तर्जनियों में, 'मं अघोराय नमः' से दोनों मध्यमाओं में, 'शिं सद्योजाताय नमः' से दोनों अनामिकाओं में, 'वां वामदेवाय नमः' से दोनों कनिष्ठा में एवं 'यं ईशानाय नमः' से दोनों अङ्गुष्ठ में न्यास करना चाहिये। यह द्वितीय न्यास होता है। इसी प्रकार अन्त में 'नमः' से संयुक्त मन्त्र के पाँच अक्षरों का क्रमशः हृदय, मुख, हृदय, दोनों पैर एवं गुह्य में किया गया न्यास तृतीय न्यास होता है।

इसी प्रकार अपने से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और मध्य में नमः-संयुक्त मन्त्राक्षरों का न्यास किया जाता है, जो चतुर्थ न्यास होता है। इसी प्रकार स्वाधिष्ठानादि पाँच चक्रों में पञ्चम न्यास किया जाता है, जो पापहारक होता है। षष्ठ न्यास इस प्रकार किया जाता है—ॐ सर्वशक्तिधाम्ने हृदयाय नमः, नं नित्यतृप्तशक्तिधाम्ने शिरसे स्वाहा, मं अनादिबोधशक्तिधाम्ने शिखायै वषट्, शिं अनन्तशक्तिधाम्ने कवचाय हुम्, वां अनन्तशक्तिधाम्ने नेत्रत्रयाय वौषट्, यं अनन्तशक्तिधाम्ने अस्त्राय फट्॥३-११॥

षोढा न्यासं ततः कुर्यान्मन्त्रार्णैर्बिन्दुसंयुतैः।
हृदि वक्त्रे दक्षिणांसे वामांसे दक्षिणोरुके ॥१२॥
वामोरौ प्रथमश्चायं कण्ठे नाभौ च दक्षिणे।
पार्श्वे च वामपार्श्वे च पृष्ठे हृदि द्वितीयकः ॥१३॥
मूर्ध्नि वक्त्रे दक्षनेत्रे वामनेत्रे तथैव च।
दक्षनासापुटे वामनसि प्रोक्तस्तृतीयकः ॥१४॥
दक्षदोर्मूलके मध्ये मणिबन्धेऽङ्गुलीतले।
मध्येऽङ्गुलीनामग्रे च चतुर्थः परिकीर्तितः ॥१५॥

एवमेव प्रकर्तव्यो वामदोर्मूलकादिषु।
दक्षोरुमूले मध्ये च गुल्फे चाङ्गुलिमूलके ॥१६॥
अङ्गुल्यग्रे च वामोरावेवमेव न्यसेद्बुधः।
पञ्चमोऽयं भवेन्न्यासो मूर्ध्नि वक्त्रे हृदि न्यसेत् ॥१७॥
उदरे वापि दक्षोरुमूलादिचरणान्तकम्।
वामोरुमूलपादाग्रपर्यन्तः षष्ठकस्त्वयम् ॥१८॥
ततो हृदि मुखे कण्ठे न्यसेद्बाहुद्वये तथा।
पुनर्वक्त्रांसहृत्पादद्वयोरुजठरे न्यसेत् ॥१९॥
पुनर्मूर्ध्नि च भाले च जठरे चांसयोर्हृदि।
एवं द्वादशधा न्यस्य वामेन पङ्कजं चरेत् ॥२०॥
नमोऽस्तु स्थानभूताय ज्योतिर्लिङ्गामृतात्मने।
चतुर्मूर्तिवपुःस्थाय भसिताङ्गाय शम्भवे ॥२१॥

षोढ़ा न्यास—तदनन्तर बिन्दु-संयुक्त मन्त्रवर्णों से षोढ़ा न्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ नमः हृदये, नं नमः मुखे, मं नमः दक्षिणांसे, शिं नमः वामांसे, वां नमः दक्षोरौ, यं नमः वामोरौ। यह प्रथम न्यास होता है। इसी प्रकार कण्ठ, नाभि, दक्ष पार्श्व, वाम पार्श्व, पृष्ठ एवं हृदय में द्वितीय न्यास; मूर्धा, मुख, दक्ष नेत्र, वाम नेत्र, दक्ष नासापुट एवं वाम नासापुट में तृतीय न्यास; दक्ष बाहुमूल, दक्ष कूर्पर, दक्ष मणिबन्ध, दक्ष अङ्गुलिमूल, दक्ष अङ्गुलिमध्य एवं दक्ष अङ्गुल्यग्र में चतुर्थ न्यास; वाम बाहुमूल, वाम कूर्पर, वाम मणिबन्ध, वाम अङ्गुलिमूल, वाम अङ्गुलिमध्य एवं वाम अङ्गुल्यग्र में पञ्चम न्यास; दक्ष ऊरुमूल, दक्ष जानु, दक्ष गुल्फ, दक्ष अङ्गुलिमूल, दक्ष अङ्गुलिमध्य एवं दक्ष अङ्गुल्यग्र में षष्ठ न्यास; वाम ऊरुमूल, वाम जानु, वाम गुल्फ, वाम अङ्गुलिमूल, वाम अङ्गुलिमध्य एवं वाम अङ्गुल्यग्र में सप्तम न्यास; मूर्धा, मुख, हृदय, उदर, दक्ष ऊरुमूल से पाद-पर्यन्त एवं वाम ऊरुमूल से पाद-पर्यन्त अष्टम न्यास; हृदय, मुख, कण्ठ, दक्ष-वाम भुजा एवं मुख में नवम न्यास; मुख, स्कन्धद्वय, हृदय, पादद्वय, ऊरुद्वय एवं जठर में दशम न्यास; मूर्धा, ललाट, जठर, दक्ष-वाम स्कन्ध एवं हृदय में एकादश न्यास होता है। इस प्रकार बारह न्यासों को करने के बाद समस्त न्यासों को अपने बाँयें हाथ से प्रभु के करकमलों में समर्पित करते हुये इस प्रकार उनकी स्तुति करनी चाहिये—तत्तत् स्थान पर ज्योतिर्लिङ्ग एवं अमृतलिङ्ग के रूप में अवस्थित, चार मुख वाले शरीर में विद्यमान, भस्म-भूषित अङ्ग वाले शम्भु के लिये नमस्कार है॥१२-२१॥

ततो ध्यायेत्तु गोक्षीररजताद्रिसमप्रभम्।
चारुचन्द्रकलाराजज्जटामुकुटमण्डितम् ॥२२॥
पञ्चवक्त्रधरं शम्भुं प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनम्।
शार्दूलचर्मवसनं रत्नाभरणभूषितम् ॥२३॥
दक्षोर्ध्वहस्ते टङ्कं च वरं च दधतं करैः।
वामोर्ध्वहस्ते हरिणं दधानमभयं परे ॥२४॥
सुप्रसन्नमुखाम्भोजं निविष्टं कुशविष्टरे।
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैः स्तुतं कृष्णं सुरासुरैः ॥२५॥
विश्वाद्यं विश्ववपुषं भवभीतिहरं भवम्।
ध्यात्वाऽर्चयेत्ततः पीठे षोडशैरुपचारकैः ॥२६॥
नवैताः शम्भुपीठस्य शक्तयः परिकीर्तिताः।
वामा ज्येष्ठा ततो रौद्री काली कलविकर्णिका ॥२७॥
ततो बलविकर्णा च बलप्रमथनी तथा।
सर्वभूतदमन्याख्या ततः प्रोक्ता मनोन्मनी ॥२८॥

इसके बाद भगवान् शिव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—गोदुग्ध एवं चाँदी के पर्वत के समान उनकी कान्ति है, वे मनोहर चन्द्रकला से सुशोभित जटा एवं मुकुट से अलंकृत हैं, उनके आनन्ददायक पाँच मुख हैं, उनके प्रत्येक मुख पर तीन-तीन नेत्र हैं, वे मृगचर्म का वस्त्र धारण किये हैं एवं रत्नाभूषणों से विभूषित हैं, वे अपने दाहिने ऊपर वाले हाथों में टङ्क (कुल्हाड़ी) एवं वर तथा बाँये ऊपर वाले हाथों में हरिण एवं अभय धारण किये हुये हैं, उनका मुखकमल अत्यन्त प्रसन्न है, वे कुशों के आसन पर आसीन हैं, ब्रह्मा विष्णु महेश आदि देवताओं तथा असुरों द्वारा स्तुत हैं, वे विश्व के आदि, विश्वरूपी शरीर वाले, संसार के भय का हरण करने वाले एवं कल्याण-स्वरूप हैं। इस प्रकार ध्यान करने के पश्चात् षोड़श उपचारों द्वारा शम्भु-पीठ पर उनका पूजन करना चाहिये। वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकर्णिका, बलविकर्णा, बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी एवं मनोन्मनी—ये नव शम्भुपीठ की शक्तियाँ कही गई हैं॥२२-२८॥

तारो नमो भगवते संकलेति पदं वदेत्।
गुणात्मशक्तियुक्ताय योगपीठात्मने नमः ॥२९॥
योगपीठस्य पूजायां मन्त्रो रसकरार्णवान्।
आवाह्य देवं सम्पूज्य पुष्पान्तैरुपचारकैः ॥३०॥

ततश्चाष्टदले पूज्यः दिक्पत्रेषु शिवाग्रतः ।
तत्पुरुषो ह्यघोरश्च सद्योजातस्ततः परम् ॥३१॥
वामदेवस्तथेशानो मध्यकोणेषु संयजेत् ।
निवृत्तिं च प्रतिष्ठां च विद्यां शान्तिं तु मध्यतः ॥३२॥
शान्त्यतीता तथा बाह्येऽष्टदले केशरेषु च ।
अग्नीशासुरवायव्यमध्ये सर्वत्र केशरे ॥३३॥
षडङ्गान्वयपत्रेषु देवाग्रात्तु प्रदक्षिणम् ।
अनन्तसूक्तं च शिवं महोक्षं चैकनेत्रकम् ।
एकरुण्डं त्रिमूर्तिं च श्रीकण्ठं च शिखण्डिनम् ॥३४॥
रक्तपीतासितारक्तकृष्णरक्ताञ्जनासितान् ।
किरीटार्पितबालेन्दून् पद्मस्थांश्चारुभूषणान्॥३५॥
त्रिनेत्रान् प्रतिवक्त्रेषु चापहस्तान् मनोरमान् ।

योगपीठ-पूजन के लिये छब्बीस अक्षरों का मन्त्र है—ॐ नमो भगवते सकलगुणात्मशक्तियुक्ताय योगपीठात्मने नमः। पीठ पर देवता का आवाहन करने के बाद पुष्पान्त उपचारों से उनका पूजन करना चाहिये अर्थात् पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, गन्ध एवं पुष्प से पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर अष्टदल के दिक्पत्रों (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर) में क्रमशः तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात एवं वामदेव का तथा मध्य में ईशान का पूजन करना चाहिये। इसके बाद अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य एवं ईशान कोण-स्थित पत्रों में निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या एवं शान्ति का तथा मध्य में शान्त्यतीता का पूजन करना चाहिये।

अष्टदल के बाहर, केशरों में, अग्नि-ईशान-नैर्ऋत्य-वायव्य कोण ण्वं मध्य सब जगह षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। पुनः देवता के आगे से प्रदक्षिणक्रम से अष्टपत्रों में अनन्तसूक्त, शिव, महोक्ष, एकनेत्र, एकरुण्ड़, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ एवं शिखण्डि का पूजन करना चाहिये। ये सभी क्रमशः रक्त, पीत, असित, रक्त, कृष्ण, रक्त, अञ्जन एवं कृष्ण वर्ण वाले हैं। बाल चन्द्रभा का वे मुकुट धारण किये हैं। सभी कमल पर विराजमान हैं, मनोहर आभूषण वाले हैं। प्रत्येक के मुख में तीन नेत्र हैं और उनके मनोरम हाथों में धनुष है॥२९-३५॥

उमां चण्डेश्वरं नन्दिमहाकालौ महेश्वरम् ॥३६॥
वृषभं भृङ्गिरीटिं च स्कन्दं तद्बाह्यपङ्कजे ।
उत्तरदलमालभ्य बीजनीलाहतान् सितान् ॥३७॥

चित्रं निशाकराभं च पीतनीलान्यजेत्क्रमात्।
तद्बाह्ये चतुरस्रे च यजेदिन्द्रादिदिक्पतीन् ॥३८॥
अनन्तं च विधातारमीशं नैर्ऋत्यपार्श्वतः।
तत्पार्श्वे तद्वाहनानि बाह्येऽस्त्राणि प्रपूजयेत् ॥३९॥

अष्टदल के पत्राग्र में उमा, चण्डेश्वर, नन्दी, महाकाल, महेश्वर, वृषभ, भृङ्गिरीट एवं स्कन्द का पूजन करना चाहिये। इनका वर्ण क्रमशः नील, हरित्, श्वेत, कर्बुर, कृष्ण, पीत एवं नील है। तत्पश्चात् उसके बाहर भूपुर की आठ दिशाओं में इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान का; ईशान के पार्श्व में ब्रह्मा का एवं नैर्ऋत्य के पार्श्व में अनन्त का पूजन करना चाहिये। पश्चात् उन दिक्पालों के पार्श्व में उनके वाहनों का और बाहर उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये॥३६-३९॥

लक्षषट्कं जपेन्मन्त्रं निमयस्थो जितेन्द्रियः।
तत्सहस्रं प्रजुहुयात्तिलैः शुद्धैर्घृतप्लुतैः ॥४०॥
पायसैः क्षीरवृक्षोत्थसमिद्भिर्वाथ होमयेत्।
तावत्सङ्ख्यातिलैः शुभ्रैस्तर्पयेच्च तथासितैः ॥४१॥
मार्जयेत्तद्दशांशेन भोजयेच्छिवतत्परान्।
एवं संसाधितो मन्त्रः सर्वान् कामान् प्रयच्छति ॥४२॥

इस प्रकार पूजन के पश्चात् साधक को नियम-पूर्वक जितेन्द्रिय रहकर मन्त्र का छः लाख की संख्या में जप करने के उपरान्त घृत-सिक्त शुद्ध तिलों से छः हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करना चाहिये। अथवा पायस, क्षीरवृक्ष की समिधा एवं श्वेत तिलों से छः हजार हवन करने के पश्चात् कृत जप का दशांश काले तिलों से तर्पण करना चाहिये। तदनन्तर कृत जप का दशांश मार्जन और मार्जन का दशांश ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार से सिद्ध किया गया मन्त्र सभी मनोरथों को प्रदान करने वाला होता है॥४०-४२॥

पर्वते लक्षमेकन्तु महानद्यां द्विलक्षकम्।
तीर्थे त्रिलक्षं सञ्जप्य हुनेद्दूर्वाङ्कुरैस्तिलैः।
तद्दशांशेन पूर्णायुर्नीरोगः साधको भवेत् ॥४३॥
अश्वत्थवृक्षं संस्पृश्य जपेल्लक्षद्वयं शनैः।
आम्रैर्हुनेत्तद्दशांशैर्दीर्घायुश्च युवा भवेत् ॥४४॥
आदित्यसम्मुखो भूत्वा जपेल्लक्षमनन्यधीः।
अर्कैरष्टशतं नित्यं हुनेद्रोगैर्विमुच्यते ॥४५॥

समस्तव्याधिनाशार्थं पालाशसमिधां हुनेत् ।
अयुतं रोगहीनः स्यादथ पूर्वोदितैर्यजेत् ॥४६॥
शान्त्यष्टकं च जुहुयादुपतिष्ठेत भास्करम् ।
नित्यं तस्य महारोगा नाशं यान्ति न संशयः ॥४७॥

मन्त्र का पर्वत पर एक लाख, महानदी-तट पर दो लाख एवं तीर्थ में तीन लाख जप करने के बाद कृत जप का दशांश (साठ हजार) दूर्वाङ्कुर एवं तिल से हवन करने वाला साधक निरोग रहते हुये पूर्ण आयु वाला होता है।

शनिवार के दिन पीपल के वृक्ष को स्पर्श करके मन्त्र का दो लाख जप करने के बाद आम्रफलों से कृत जप का दशांश (बीस हजार) हवन करने वाला साधक दीर्घायु एवं युवा होता है।

सूर्य की ओर मुख करके एकाग्र मन से मन्त्र का एक लाख जप करके अकवन के टुकड़ों से प्रतिदिन एक सौ आठ आहुतियों द्वारा हवन करने वाला साधक समस्त रोगों से मुक्त हो जाता है। सभी व्याधियों की समाप्ति के लिये पलाश की समिधाओं से दस हजार हवन एवं पूर्वोक्त प्रकार से पूजन करना चाहिये। प्रतिदिन सूर्य के समक्ष शान्त्यष्टक से हवन करने वाले साधक के भयंकर रोग नष्ट हो जाते हैं; इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये।।४३-४७।।

नवतोयेन सम्पूर्णं घटं संस्पृश्य सञ्जपेत् ।
अयुतं तज्जलैः स्नानं रोगाणामौषधं स्मृतम् ॥४८॥
अष्टाविंशं जपित्वा तमश्नीयात्प्रत्यहं नरः ।
हुनेच्चारुपलाशैश्च तावदारोग्यमाप्नुयात् ॥४९॥
पिबेदष्टोत्तरशतं जपित्वा योऽर्कसन्निधौ ।
औदरैरामयैः सर्वैर्मासेनैकेन मुच्यते ॥५०॥
एकादशेन भुञ्जीयादन्नं चैवाभिमन्त्रितम् ।
भक्ष्यं चोष्यं तथा पेयं विषमप्यमृतं भवेत् ॥५१॥
चन्द्रसूर्यग्रहे पूर्वमुपोष्य विधिना शुचिः ।
यावद् ग्रहणमोक्षस्तु तावन्नद्यां समाहितः ॥५२॥
जपेत्समुद्रगामिन्यां विमोक्षे ग्रहणस्य तु ।
अष्टोत्तरसहस्रेण पिबेद् ब्राह्मीरसं ततः ॥५३॥
ऐहिकीं लभते मेधां सर्वश्रुतिवहां शुभाम् ।
सारस्वती भवेद्देवी तस्य वागतिमानुषी ॥५४॥

शुद्ध जल से परिपूर्ण कलश का स्पर्श करके मन्त्र का दस हजार जप करने के उपरान्त उस जल से स्नान करना सभी रोगों का औषध कहा गया है। जो मनुष्य प्रतिदिन इस मन्त्र के अट्ठाईस जप से अभिमन्त्रित जल का पान करके सुन्दर पलाशखण्ड़ों से हवन करता है, वह आरोग्य-लाभ प्राप्त करता है। जो मनुष्य एक मास-पर्यन्त प्रतिदिन सूर्य के समक्ष मन्त्र के एक सौ आठ जप से अभिमन्त्रित जल का पान करता है, वह उदर-सम्बन्धी समस्त रोगों से मुक्त हो जाता है। मन्त्र के ग्यारह जप से अभिमन्त्रित अन्न, भक्ष्य, चोष्य एवं पेय विषाक्त होने पर भी अमृत के समान हो जाते हैं।

सूर्य तथा चन्द्रग्रहण के पूर्व उपवास करके विधिवत् पवित्र होकर ग्रहण से मोक्ष-पर्यन्त समुद्रगामिनी नदी के जल में खड़े होकर मन्त्रजप करना चहिये; ग्रहण की समाप्ति के बाद मन्त्र के एक हजार आठ जप से अभिमन्त्रित ब्राह्मीरस का पान करने से साधक को इस लोक में श्रुत समस्त विषयों को धारण करने वाली मेधा प्राप्त होती है एवं उसकी सरस्वती-सम्बन्धी वाणी अतिमानुषी (दैवी) हो जाती है।।४८-५४।।

ग्रहाणां चैव पीडासु जप्त्वायुतमथो हुनेत् ।
तिलाज्यैरष्टसाहस्रं ग्रहपीडा विनश्यति ।।५५।।
दुःस्वप्नदर्शने स्नात्वा जपेच्चैवायुतं नरः ।
घृतेनाष्टशतं हुत्वा दुःस्वप्नफलनाशनम् ।।५६।।
चन्द्रसूर्यग्रहे लिङ्गं समभ्यर्च्यायुतं जपेत् ।
यत्किञ्चित्प्रार्थयेत्तस्य निकटेन तदाप्नुयात् ।।५७।।
गजानां तुरगाणां वा गवां वा व्याधिसम्भवे ।
समिद्भिर्जुहुयान्मासमयुतं व्याधिशान्तये ।।५८।।
जप्त्वाऽन्ते शस्त्रबाधायां जुहुयादयुतं शुचिः ।
पलाशस्य समिद्भिस्तु तस्य शान्तिर्भविष्यति ।।५९।।
आत्मवादिकसन्ध्यायामेतदेव समाचरेत् ।
प्रध्वंसयति तच्छक्तिं शत्रुस्तस्य मरिष्यति ।।६०।।

ग्रहकृत पीड़ा होने पर मन्त्र का दस हजार जप करके गोघृत-सिक्त तिलों से एक हजार आठ आहुतियों द्वारा हवन करने से ग्रहपीड़ा की समाप्ति हो जाती है।

अनिष्ट स्वप्न देखने पर स्नान करके मन्त्र का दस हजार जप करने के बाद घृत की आहुति प्रदान करते हुये एक सौ आठ बार हवन करने से उस दुःस्वप्न का फल नष्ट हो जाता है।

चन्द्र तथा सूर्यग्रहण के समय सम्यक् रूप से लिङ्गार्चन करके मन्त्र का दस हजार जप करने के उपरान्त साधक उस लिङ्ग के समीप जो भी याचना करता है, उसे प्राप्त कर लेता है।

हाथियों, घोड़ों अथवा गायों के रोग-ग्रसित होने पर उनकी रोगशान्ति के लिये एक मास-पर्यन्त समिधाओं से प्रतिदिन दस हजार हवन करना चाहिये। शस्त्र-बाधा होने पर दस हजार मन्त्रजप के बाद पलाश की समिधाओं से दस हजार हवन करने से उसकी शान्ति हो जाती है।

अपने प्राण संकट में होने पर भी इस प्रकार का अर्चन करने से शत्रु की शक्ति नष्ट हो जाती है और वह शत्रु मृत्यु को प्राप्त हो जाता है॥५५-६०॥

विद्वेषणार्थं जुहुयाद्विभीतसमिधाष्टकम् ।
परापकारः पापाय श्रृणु तत्पापनाशनम् ॥६१॥
मां ध्यात्वैकाग्रचित्तेन चाभिषिञ्चेत्समन्ततः ।
अष्टोत्तरशतं जप्तैस्तोयैः पापं लयं व्रजेत् ।
सन्ध्योपासनविच्छेदे सहस्रैकं जपेत्तथा ॥६२॥
विड्वराहैश्च चाण्डालैर्मार्जारैः कुक्कुटैरपि ।
स्पृष्टमन्नं न भुञ्जीत तत्र चाष्टशतं जपेत् ॥६३॥
ब्रह्महत्याविशुद्ध्यर्थं जपेल्लक्षायुतं नरः ।
योनिजेषु तदर्धं स्यात्तदर्धं भूपयोनिके ॥६४॥
सहस्रपञ्चकं क्षुद्रपापेषु जप ईरितः ।

दो व्यक्तियों में विद्वेषण कराने के लिये विभीत (बहेड़ा) की आठ समिधाओं से हवन करना चाहिये। दूसरों का अपकार करने से पाप लगता है, उस पाप से मुक्ति के उपाय का श्रवण करो।

एकाग्र चित्त से मेरा ध्यान करके मन्त्र के एक सौ आठ जप से अभिमन्त्रित जल से चारो ओर से अभिषेक करने पर पापों का नाश हो जाता है। सन्ध्योपासन के विच्छेद होने पर मन्त्र का एक हजार जप करना चाहिये।

विट (चूहा), वराह (शूकर), चाण्डाल, मार्जार (बिलाव) एवं कुक्कुट (मुर्गा) से स्पृष्ट अन्न का भक्षण नहीं करना चाहिये; अपितु उस अन्न की शुद्धि के लिये मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये।

ब्रह्महत्या से शुद्धि के लिये मन्त्र का एक करोड़ जप करना चाहिये। योनिज (सगोत्रीय) की हत्या से शुद्धि के लिये पचास लाख एवं भूपयोनि (क्षत्रिय) की हत्या

से शुद्धि के लिये पच्चीस लाख मन्त्रजप करना चाहिये। क्षुद्र (छोटे-मोटे) पापों की समाप्ति-हेतु मन्त्र का पाँच हजार जप करना चाहिये।।६१-६४।।

जितेन्द्रियो जपेल्लक्षपञ्चकं शिवदृङ्मना: ।।६५।।
ब्राह्मणो वान्यकुलजो वायुपञ्चकजिद्भवेत् ।
निगृहीतेन्द्रिय: पञ्चलक्षं जप्त्वेन्द्रियं जयेत् ।।६६।।
पञ्चविंशलक्षजपात्तत्त्वानां विजयी भवेत् ।
मध्यरात्रेऽयुतं जप्त्वा निकटे ब्रह्मसिद्धिभाक् ।।६७।।
जपेद्वने शिवमना निर्वाते ध्वनिवर्जिते ।
मध्यरात्रे विवश्यश्च तद्वशो भवति ध्रुवम् ।।६८।।
शिवमभ्यर्च्य साहस्रजपो नित्यं रमाप्रद: ।
सहस्रद्वयजापेन महारोगै: प्रमुच्यते ।।६९।।
सहस्रत्रयजापेन दीर्घमायुर्लभेत ना ।
चतुस्सहस्रजापेन वाञ्छितानि समाप्नुयात् ।।७०।।
तिलै: शुद्धैर्घृताज्याक्तै: प्रत्यहं त्रिसहस्रकम् ।
मासं हुत्वा विनश्येत्तु रोगस्तस्य न सम्भवेत् ।।७१।।

मन में शिव का ध्यान करके जितेन्द्रिय ब्राह्मण अथवा अन्य कुल में भी उत्पन्न साधक यदि इस मन्त्र का पाँच लाख जप करता है तो वह पाँच वायुओं (प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान) को जीत लेता है। अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रित करके मन्त्र का पाँच लाख जप करने वाला साधक जितेन्द्रिय हो जाता है। मन्त्र का पच्चीस लाख जप करने वाला साधक तत्त्वों पर विजय प्राप्त कर लेता है। अर्धरात्रि में शिव के निकट स्थित होकर मन्त्र का दस हजार जप करने वाले साधक को ब्रह्मसिद्धि प्राप्त हो जाती है।

अर्धरात्रि में नि:शब्द शान्त वन में जाकर शिव के ध्यान में तल्लीन होकर दस हजार मन्त्रजप करने से वशीभूत न होने वाला व्यक्ति भी निश्चित ही साधक के वशीभूत हो जाता है।

प्रतिदिन शिवार्चन करके मन्त्र का एक हजार जप करने से लक्ष्मी प्राप्त होती है। इसी प्रकार मन्त्र के दो हजार जप से महारोगों से मुक्ति मिलती है, तीन हजार जप करने से मनुष्य को दीर्घायु की प्राप्ति होती है तथा चार हजार जप से अभीष्ट-प्राप्ति होती है।

एक मास-पर्यन्त प्रतिदिन गोघृत-सिक्त शुद्ध तिलों से तीन हजार आहुतियाँ प्रदान

करते हुये हवन करने वाले साधक के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं और पुनः उसे किसी प्रकार के रोग नहीं होते॥६५-७१॥

अयं षडक्षरो मन्त्रः षोढा स्यादक्षरात्मकः।
लक्षमेकं पुरश्चर्या मुनयोऽमी प्रकीर्तिताः॥७२॥
ब्रह्मा च गौतमोऽत्रिश्च विश्वामित्रस्तथाङ्गिराः।
भरद्वाजोऽथ छन्दांसि पङ्क्तिगायत्र्यनुष्टुभः॥७३॥
त्रिष्टुप् च बृहती चेति विराट् चैवात्र देवताः।
परब्रह्मेन्द्रविष्णू च विधात्र्यश्विगुहाः क्रमात्॥७४॥
ज्योतिर्वर्णः कुङ्कुमाभो मेचको धूम्रवर्णकः।
पीतोऽरुणः क्रमाद्वर्णा देवतानां प्रकीर्तिताः॥७५॥
क्रमान्नियोगो मोक्षार्थं गतराज्याप्तये श्रिये।
ऐश्वर्याय च विद्यायै निजपापक्षयाय च॥७६॥

छः अक्षरों वाला यह षडक्षर मन्त्र छः प्रकार का है। एक लाख जप से इनका पुरश्चरण होता है। ब्रह्मा, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, अङ्गिरा एवं भरद्वाज इनके ऋषि कहे गये हैं। इनके छन्द क्रमशः पंक्ति, गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, बृहती एवं विराट् कहे गये हैं। परब्रह्म, इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, अश्विनीकुमार एवं गुह (कार्तिकेय) क्रमशः इनके देवता कहे गये हैं। इनका वर्ण क्रमशः सुनहला, कुंकुम-सदृश, मेचक (श्याम), धूम-सदृश, पीला एवं रक्त है। क्रमशः मोक्ष-प्राप्ति, नष्ट राज्य-प्राप्ति, लक्ष्मी-प्राप्ति, ऐश्वर्य-प्राप्ति, विद्या-प्राप्ति एवं अपने पाप के क्षय-हेतु इनका विनियोग किया जाता है॥७२-७६॥

लज्जयाद्यन्तयोर्युक्तः पञ्चार्णः सप्तवर्णकः।
षडर्णश्चाष्टवर्णः स्यादेवं मन्त्रद्वयं भवेत्॥७७॥
वामदेवो मुनिः पङ्क्तिश्छन्दो देव उमापतिः।
तारषड्दीर्घमायाद्यैः स्यान्मन्त्रार्णैः षडङ्गकम्॥७८॥
बन्धूककुसुमारक्तं चन्द्रार्धकृतशेखरम्।
शूलं कपालमभयं वरं च दधतं करैः॥७९॥
वामोरुसंस्थितां देवीं श्लिष्यन्तं वामबाहुना।
स्मेरवक्त्रं त्रिनयनं सर्वाभरणभूषितम्॥८०॥
एवं ध्यात्वा यजेत्पीठे पूर्वोक्ते नवशक्तिके।

आदि और अन्त में लज्जाबीज (ह्रीं) लगाने से पञ्चाक्षर मन्त्र (नमः शिवाय) सात

अक्षरों वाला (ह्रीं नम: शिवाय ह्रीं) हो जाता है। वहीं षडक्षर मन्त्र (ॐ नम: शिवाय) आदि एवं अन्त में 'ह्रीं' लगाने से अष्टाक्षर (ह्रीं ॐ नम: शिवाय ह्रीं) हो जाता है। इस प्रकार ये दो मन्त्र होते हैं। इन दोनों मन्त्रों के ऋषि वामदेव, छन्द पंक्ति एवं देव उमापति कहे गये हैं। आदि में ॐ एवं छ: दीर्घ स्वर-समन्वित मायाबीज (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्र:) लगाकर मन्त्रवर्णों से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है।

तदनन्तर बन्धूकपुष्प-सदृश रक्त वर्ण वाले, अर्धचन्द्र को शीर्ष पर धारण करने वाले, हाथों में शूल कपाल अभय एवं वर धारण किये हुये, बाँयीं जंघा पर विराजमान देवी को बाँयें हाथ से आश्लिष्ट किये हुये, विहसित मुख एवं तीन नेत्रों वाले, समस्त आभरणों से भूषित भगवान् शिव का ध्यान करके नव शक्तियों से समन्वित पूर्वोक्त पीठ पर उनका यजन करना चाहिये॥७७-८०॥

आदौ पञ्चदले पद्मे केशरेष्वङ्गषट्ककम् ॥८१॥
मध्ये प्राग्दक्षिणे दिव्ये पश्चात्पत्रेऽर्हणीयका: ।
हृल्लेखा गगनायुक्ता चतुर्थी तु कुलालिका ॥८२॥
महोच्छुष्मा क्रमादेता: पञ्चभूतसमप्रभा: ।
पाशाङ्कुशवराभीतिधारिण्योऽमितभूषणा: ॥८३॥
तद्बाह्येऽष्टदले चैव वृषभाद्यष्टदेवता: ।
सम्यग्ध्यात्वा क्रमादर्च्या देवाग्रादिप्रदक्षिणम् ॥८४॥
हिमालयाभं वृषभं तीक्ष्णास्यं तं त्रिलोचनम् ।
सर्वाभरणसन्दीप्तं साक्षाच्छन्द:स्वरूपिणम् ॥८५॥
कपालशूलविलसत्करं कालघनप्रभम् ।
क्षेत्रपालं त्रिनयनं दिगम्बरमथार्चयेत् ॥८६॥
शूलटङ्काक्षवलयकमण्डलुलसत्करम् ।
रक्ताकारं त्रिनयनं चण्डीशं परिपूजयेत् ॥८७॥
शङ्खचक्रवराभीतिकरां मरकतप्रभाम् ।
दुर्गां प्रपूजयेत्सौम्यां त्रिनेत्रां रत्नभूषणाम् ॥८८॥
पाशाङ्कुशवराभीतिधारिणं कुङ्कुमप्रभम् ।
विघ्ननाशकमभ्यर्चेच्चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ॥८९॥
श्यामं रक्तोत्पलाकारं वामाङ्कन्यस्तसत्करम् ।
त्रिनेत्रं रक्तवस्त्राढ्यं सेनापतिमथार्चयेत्[१] ॥९०॥

---

१. मूल में वृषभ आदि आठ देवताओं का पूजन विहित है, जबकि ध्यान-हेतु स्वरूप केवल छ: देवों का ही निरूपित किया गया है।

तद्बाह्येऽष्टदले पूज्या ब्राह्म्याद्याश्चाष्टमातरः ।
तद्बहिश्चतुरस्त्राणि त्रीणि तद्वीथिकाद्वये ।।९१।।
इन्द्रादीन् दशदिक्पालांस्तदस्त्राणि बहिर्यजेत् ।

सर्वप्रथम पञ्चपत्रात्मक पद्म के केशरों में एवं मध्य में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् पाँच दलों में पूर्वादिक्रम से पञ्चभूत-सदृश आभा वाली हृल्लेखा, गगना, युक्ता, कुलालिका एवं महोच्छुष्मा का क्रमशः पूजन करना चाहिये। असीमित आभूषणों से सुशोभित ये सभी अपने हाथों में पाश, अंकुश, वर एवं अभय धारण की हुई हैं।

तदनन्तर उसके बाहर अष्टदल में देव के आगे से प्रदक्षिणक्रम से वृषभ आदि आठ देवताओं का सम्यक् रूप से ध्यान करते हुये उनका पूजन करना चाहिये।

हिमालय-सदृश विशालकाय, तीक्ष्ण मुख वाले एवं तीन नेत्रों वाले, समस्त आभरणों से प्रकाशमान एवं साक्षात् वेदस्वरूप वृषभ का यजन करना चाहिये।

दिगम्बर, तीन नेत्रों वाले, कपाल एवं शूल से शोभायमान हाथों वाले अत्यन्त कृष्ण वर्ण वाले क्षेत्रपाल का पूजन करना चाहिये।

रक्तवर्ण आकृति वाले, तीन नेत्रों से समन्वित तथा शूल, टङ्क (कुल्हाड़ी), अक्षमाला एवं कमण्डलु से सुशोभित हाथ वाले चण्डीश का पूजन करना चाहिये।

शंख, चक्र, वर एवं अभय धारण की हुई, मरकत (पन्ना) के समान कान्ति वाली, सौम्य स्वरूप वाली, तीन नेत्रों वाली रत्नाभूषणों से भूषित दुर्गा का पूजन करना चाहिये।

पाश अंकुश वर एवं अभय धारण करने वाले, कुंकुम-सदृश कान्ति वाले, शीर्ष पर अर्धचन्द्र धारण किये हुये विघ्ननाशक (गणेश) का अर्चन करना चाहिये।

श्याम वर्ण वाले, रक्तकमल-सदृश आकृति वाले, बाँयीं गोद में हाथ रखे हुये, तीन नेत्रों वाले, रक्त वस्त्र से सुशोभित सेनापति (कार्तिकेय) का अर्चन करना चाहिये।

अष्टदेवों के पूजन के अनन्तर उसके बाहर अष्टदल में ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं का पूजन करने के उपरान्त तीन रेखाओं से समन्वित दो वीथियों वाले चतुरस्त्र की प्रथम वीथि में इन्द्रादि दस दिक्पालों का एवं द्वितीय वीथि में उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये।।८१-९१।।

मनुलक्षं जपेन्मन्त्रं तत्सहस्त्रं यथाविधि ।।९२।।
जुहुयान्मधुरासिक्तैरारग्वधसमिद्वरैः ।
तर्पणं मार्जनं प्राग्वद्विप्रसन्तर्पणं तथा ।।९३।।

एवं सिद्धमनुः कुर्यात्प्रयोगाद्यञ्च पूर्ववत्।
एतत्संसाधनात्सम्पत्सन्ततिः सम्प्रजायते ॥९४॥

उक्त प्रकार से सविधि पूजन करने के बाद मन्त्र का चौदह लाख जप करके मधुराक्त आरग्वध (अमलतास) की श्रेष्ठ समिधाओं से यथाविधि चौदह हजार हवन करना चाहिये। इसके बाद पूर्ववत् तर्पण, मार्जन एवं विप्र-भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार के सिद्ध मन्त्र से पूर्ववत् प्रयोगों का साधन करना चाहिये। सम्यक् रूप से इसकी साधना करने पर सम्पत्ति और सन्तति की प्राप्ति होती है॥९२-९४॥

हौमित्यैकाक्षरो मन्त्रः प्रोक्तः प्रासादसञ्ज्ञकः।
वामदेवो मुनिश्छन्दः पङ्क्तिर्देवः सदाशिवः ॥९५॥
हंबीजं शक्तिरौकारः सर्वाभीष्टे नियोजनम्।
षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गविधिरीरितः ॥९६॥

एकाक्षर मन्त्र 'हौं' को प्रासादमन्त्र कहा गया है। इस एकाक्षर मन्त्र के ऋषि वामदेव, छन्द पंक्ति, देवता सदाशिव, बीज 'हं' एवं शक्ति 'औं' कहा गया है। समस्त अभीष्ट की प्राप्ति के लिये इसका विनियोग किया जाता है। छः दीर्घ स्वरयुक्त बीज (हां हीं हूं हैं हौं हः) से इसकी षडङ्गविधि कही गई है॥९५-९६॥॥

पञ्चब्रह्मविधानाख्यं न्यासं शृण्वन्तु देवताः।
यस्मिन् कृते तु पञ्चत्वे जाते पञ्चमुखो भवेत् ॥९७॥
आदौ तु पञ्चमन्त्रेण मस्तके स्वे मुनिं न्यसेत्।
मुनिश्छन्दो देवतास्तु ध्यानपूर्वं हृदि न्यसेत्।
अयन्तु प्रथमो न्यासो देवताप्रीतिकारकः ॥९८॥
ईश्वरः सर्वविद्यानामीश्वरोऽस्य मनोर्मुनिः।
स एव देवो भूपङ्क्त्यनुष्टप्छन्दांसि चिन्तयेत् ॥९९॥
शक्तिं डमरुकाभीतिवरान् संदधतं करैः।
ईशानं त्रीक्षणं शुद्धं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥१००॥
मनोस्तत्पुरुषायेति मुनिस्तत्पुरुषः स्मृतः।
आपो देव्योऽस्य गायत्री छन्दो ध्यानं निरूप्यते ॥१०१॥
परश्वधवराभीति दधानं विद्युदुज्ज्वलम्।
चतुर्मुखं तत्पुरुषं त्रिनेत्रं वृषगामिनम् ॥१०२॥
अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो मनोरग्निर्मुनिर्मतः।
अनुष्टुप्छन्द आख्यातं देव आपः प्रकीर्तिताः ॥१०३॥

मालां दण्डं पाससृणी डमरुं खट्वकाङ्गकम् ।
खड्गं कपालं हस्तैश्च दधतं त्रीक्षणं भजे ॥१०४॥
अञ्जनाभं चतुर्वक्त्रं वामदेवं त्रिलोचनम् ।
वराभयाक्षवलयकुठारं दधतं करैः ॥१०५॥
सद्योजातं प्रपद्यामि मन्त्रस्य तु हरो मुनिः ।
अञ्जनाभं चतुर्वक्त्रं भीमदन्तं भयापहम् ।
नानाभीमगणैर्युक्तमघोरं चिन्तयेद्धृदि ॥१०६॥
वामदेवायेति मनोर्वामदेवो मुनिः स्मृतः ।
विकृतिश्छन्द उद्दिष्टं भर्गो देवः प्रकीर्तितः ॥१०७॥

पञ्चब्रह्म-न्यास—हे देवताओं! अब आप पञ्चब्रह्म-न्यास-विधान का श्रवण करें, जिसके करने से पञ्चत्व प्राप्त होने पर अर्थात् शरीरान्त होने पर मनुष्य पञ्चमुख हो जाता है। प्रथमतः पञ्चमन्त्र के द्वारा अपने मस्तक पर मुनि का न्यास करना चाहिये। इसके बाद ध्यान-पूर्वक मुनि, छन्द एवं देवता को अपने हृदय में न्यस्त करना चाहिये। देवता में प्रीति उत्पन्न करने वाला यह प्रथम न्यास होता है।

'ईश्वरः सर्वविद्यानाम्' इस मन्त्र के ऋषि ईश्वर, छन्द भूपंक्ति एवं अनुष्टुप् तथा देवता ईश्वर हैं। हाथों में शक्ति, ड़मरु, अभय एवं वर धारण किये हुये; तीन नेत्रों वाले; अत्यन्त पवित्र एवं नागों का यज्ञोपवीत धारण किये हुये ईशान का ध्यान करना चाहिये।

'तत्पुरुषाय' मन्त्र के ऋषि तत्पुरुष, छन्द गायत्री और देवता आप कहे गये हैं। तत्पुरुष का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—परशु, वर एवं अभय धारण किये हुये, विद्युत् के समान उज्ज्वल, चार मुख एवं तीन नेत्र वाले तत्पुरुष वृष से गमन करने वाले हैं।

'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो' मन्त्र के ऋषि अग्नि, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता आप कहे गये हैं। अघोर का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—आठ हाथों में माला, दण्ड, पाश, सृणि (अंकुश), ड़मरु, खड्ग एवं कपाल धारण किये हुये तीन नेत्रों वाले अघोर को मैं प्रणाम करता हूँ।

वामदेव का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—अञ्जन-सदृश कान्ति वाले, चार मुख एवं तीन नेत्रों वाले, हाथों में वर अभय अक्षमाला एवं कुठार धारण किये हुये वामदेव को मैं प्रणाम करता हूँ।

'सद्योजातं प्रपद्यामि' मन्त्र के ऋषि हर (शिव) कहे गये हैं। अञ्जन-सदृश आभा

वाले, चार मुख वाले, भयंकर दाँतों वाले, भय को दूर करने वाले, अनेक बलिष्ठ गणों से युक्त अघोर का अपने हृदय में चिन्तन करना चाहिये। 'वामदेवाय' मन्त्र के ऋषि वामदेव, छन्द विकृति एवं देवता भर्ग कहे गये हैं॥९७-१०७॥

अथ द्वितीयं वक्ष्यामि न्यासं सर्वार्थसिद्धिदम्।
त्रैं श्रीं ह्रीं च तथाहं क्षैं हुं हौं च श्रीत्रयं वदेत्॥१०८॥
पराबीजद्वयं प्रोच्य सर्वज्ञाय हृदीरितम्।
अमृततेजोज्वालेति मालिने च पदं ततः॥१०९॥
तृप्ताय ब्रह्मशिरसे शिरोमन्त्र उदीरितः।
ज्वलितशिखिशिखायानादिबोधाय तच्छ्रिये॥११०॥
वज्राय वज्रहस्ताय स्वतन्त्राय तनुच्छिदे।
सौंचौंसौमिति सम्भाष्य मुनयेऽलुप्तशक्तये॥१११॥
नेत्रत्रयायेति मन्त्रो नेत्रस्यैव प्रकीर्तितः।
श्रीं परशुं च ङेऽन्तं हुं फट् तथानन्तशक्तये॥११२॥
अस्त्रमुक्तं षडङ्गानि कुर्यादेवं समाहितः।

अब सर्वार्थसिद्धि प्रदान करने वाले दूसरे न्यास को कहता हूँ। यह इस प्रकार होता है—त्रैं श्रीं ह्रीं हं क्षैं हुं हौं श्रीं श्रीं श्रीं सौः सौः 'सर्वज्ञाय हृदयाय नमः, अमृततेजोज्वालामालिने तृप्ताय ब्रह्मशिरसे शिरसे स्वाहा, ज्वलितशिखि शिखायानादिबोधाय शिखायै वषट्, वज्राय वज्रहस्ताय स्वतन्त्राय कवचाय हुम्, सौं औं सौं मुनयेऽलुप्तशक्तये नेत्रत्रयाय वौषट्, श्रीं परशवे हुं फट् अनन्तशक्तये अस्त्राय फट्। इस प्रकार समाहितचित्त होकर षडङ्ग न्यास करना चाहिये॥१०८-११२॥

पूर्वदक्षिणपश्चाशासौम्यमध्येषु पञ्चसु।
मुखेषु विन्यसेदीशानादीन् पञ्च हि च क्रमात्॥११३॥
तृतीयोऽथ तथेशानादिकानङ्गुष्ठकादिके।
न्यसेत्तिर्यक्छिरोवक्त्रहृदयांघ्रिषु पञ्चमः॥११४॥
पञ्चब्रह्ममनोर्न्यासानेवं कृत्वा ततः परम्।
अष्टत्रिंशत्कलान्यासं कुर्यात्तेजोऽभिवृद्धये॥११५॥
ईशानादिकलाः पञ्च ह्यङ्गुष्ठादिषु विन्यसेत्।
प्रणवाद्यं मन्त्रपदं कला ङेऽन्ता नमोऽन्तकाः॥११६॥
ईशानः सर्वविद्यानां शशिनी प्रथमा कला।
ईश्वरः सर्वभूतानामङ्गदाख्या ततः परम्॥११७॥

ब्रह्माधिपत्याद्यर्णानां त्रिदशानां तथेष्टदा।
शिवो मेत्रास्तु मारीची चतुर्थी कथिता कला॥११८॥
सदाशिवों तथैतस्य पञ्चमी चांशुमालिनी।

तत्पश्चात् पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर एवं मध्य—इन पाँचों मुखों में क्रमशः ईशान आदि पाँच देवों का न्यास करना चाहिये। यह तृतीय न्यास होता है। इसके बाद ईशान आदि का अङ्गुष्ठ आदि पाँचों अंगुलियों में न्यास करने के बाद पुनः उन्हीं का शिर, मुख, हृदय, दक्ष पाद और वाम पाद में न्यास करना चाहिये। यह पञ्चम न्यास होता है। इस प्रकार पञ्चब्रह्म मन्त्रों से न्यास करने के बाद तेजोऽभिवृद्धि के लिये अड़तीस कला का न्यास करना चाहिये। 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' मन्त्र की कला शशिनी है; इसका अंगूठे में न्यास करना चाहिये। 'ईश्वरः सर्वभूतानाम्' मन्त्र की कला अङ्गदा है; इसका तर्जनी में न्यास करना चाहिये। 'ब्रह्माधिपति' आदि मन्त्र की कला इष्टदा है; इसका मध्यमा में न्यास करना चाहिये। 'शिवो मेऽस्तु' मन्त्र की कला मारीची है; इसका अनामिका में न्यास करना चाहिये। 'सदाशिवोम्' मन्त्र की कला अंशुमालिनी है; इसका कनिष्ठा में न्यास करना चाहिये॥११३-११८॥

तत्पुरुषाय विद्महे शान्तिं पूर्वमुखे न्यसेत्॥११९॥
महादेवाय धीमहि विद्याख्यां पश्चिमे मुखे।
तन्नो रुद्रः प्रतिष्ठाख्यां याम्यास्ते त्वष्टमीं न्यसेत्॥१२०॥
प्रचोदयान्नित्यविद्यां नवमीमुदगानने।
अघोरेभ्यस्तामसीं तु दशमीं हृदि विन्यसेत्॥१२१॥
ग्रीवायामथ घोरेभ्यो मोहामेकादशीं न्यसेत्।
दक्षिणांसे घोररूपां विन्यसेद् द्वादशीं कलाम्॥१२२॥
घोरतरेभ्यो वामांसे निद्राख्यां तु त्रयोदशीम्।
सर्वेभ्यो नाभिमध्ये तु व्याचिताख्यां चतुर्दशीम्॥१२३॥
कुक्षौ तु सर्वसर्वेभ्यो भूतिः पञ्चदशी भवेत्।
नमस्ते अस्तु पृष्ठे तु सुधाख्या षोडशी कला॥१२४॥
वक्षःस्थले रुद्ररूपेभ्यः कला सप्तदशी मता।
वामदेवाय विरजां गुह्ये त्वष्टादशीं न्यसेत्॥१२५॥

इस प्रकार पाँच कलाओं का न्यास करने के पश्चात् 'तत्पुरुषाय विद्महे' की शान्ति कला का पूर्वमुख में न्यास करना चाहिये। 'महादेवाय धीमहि' की विद्या कला का पश्चिममुख में न्यास करना चहिये। 'तन्नो रुद्रः' की प्रतिष्ठा कला का दक्षिणमुख में

न्यास करना चाहिये। 'प्रचोदयात्' की नित्यविद्या-नाम्नी नवमी कला का उत्तरमुख में न्यास करना चाहिये।

इसके बाद 'अघोरेभ्यः' की तामसी-नाम्नी दशवीं कला का हृदय में न्यास करना चाहिये। 'घोरेभ्यः' की मोहा-नाम्नी ग्यारहवीं कला का ग्रीवा में न्यास करना चाहिये। घोररूपा बारहवीं कला का दक्षिण अंस (स्कन्ध) में न्यास करना चाहिये। 'घोरतरेभ्यः' की निद्रा-नाम्नी तेरहवीं कला का वाम अंस में न्यास करना चाहिये। 'सर्वेभ्यः' की व्याधिता-नाम्नी चौदहवीं कला का नाभिमध्य में न्यास करना चाहिये।

'सर्वसर्वेभ्यः' की भूति-नाम्नी पन्द्रहवीं कला का कुक्षि में न्यास करना चाहिये। 'नमस्तेऽस्तु' की सुधा-नाम्नी सोलहवीं कला का पृष्ठ में न्यास करना चाहिये। 'रुद्ररूपेभ्यः' की कला-नाम्नी सत्रहवीं कला का वक्षःस्थल में न्यास करना चाहिये। 'वामदेवाय' की विरजा-नाम्नी अट्ठारहवीं कला का गुह्यस्थान में न्यास करना चाहिये॥११९-१२५॥

वामदेवाय निरजां दक्षां दक्षांसके न्यसेत्।
श्रेष्ठाय नम इत्युक्त्वा वामांसे तु रतिं न्यसेत्॥१२६॥
रुद्राय नम इत्युक्त्वा दक्षोरौ पालिनीं न्यसेत्।
कालाय नमो द्वाविंशसंज्ञां वामोरुके न्यसेत्॥१२७॥
त्रयोविंशी कलेत्युक्त्वा कलाख्यां दक्षजानुनि।
न्यसेच्छ्रियं विकर्णाय नमो वामे च जानुनि॥१२८॥
बलेत्युक्त्वा बुद्धिनाम्नीं दक्षजङ्घागतां स्मरेत्।
न्यसेज्ज्ञानां विकर्णाय नमो वामे च जङ्घके॥१२९॥
हृदि रात्रिं सप्तविंशीं बलाय नम इत्यपि।
कट्यां बलप्रमथनाय नमो गुह्यके न्यसेत्॥१३०॥

'ॐ वामदेवाय निरजा' कहकर दक्षा-नाम्नी उन्नीसवीं कला का दक्ष अंस में न्यास करना चाहिये। 'ॐ श्रेष्ठाय नमः' कहकर रति-नाम्नी बीसवीं कला का वाम अंस में न्यास करना चाहिये। 'ॐ रुद्राय नमः' कहकर पालिनी-नाम्नी इक्कीसवीं कला का दक्ष ऊरु में न्यास करना चाहिये। 'ॐ कलाय नमः' कहकर संज्ञा-नाम्नी बाईसवीं कला का वाम ऊरु में न्यास करना चाहिये। 'ॐ कलायै नमः' कहकर कला-नाम्नी तेईसवीं कला का दक्ष जानु में न्यास करना चाहिये। 'ॐ विकर्णाय नमः' कहकर श्री-नाम्नी चौबीसवीं कला का वाम जानु में न्यास करना चाहिये। 'ॐ बलाय नमः' कहकर बुद्धि-नाम्नी पच्चीसवीं कला का दक्ष जंघा में न्यास करना चाहिये। 'ॐ विकर्णाय नमः' कहकर ज्ञाना-नाम्नी छब्बीसवीं कला का वाम जङ्घा में न्यास करना चाहिये। 'ॐ

बलाय नमः' कहकर रात्रि-नाम्नी सत्ताईसवीं कला का हृदय में न्यास करना चाहिये। 'ॐ कट्यां बलप्रमथनाय नमः' कहकर अट्ठाईसवीं कला का गुह्यस्थान में न्यास करना चाहिये॥१२६-१३०॥

सर्वभूतदमनाय मोहिनीं दक्षपार्श्वके।
वामपार्श्वे मनोन्मनाय नमश्चोभयं न्यसेत्॥१३१॥
सद्योजातं प्रपद्यामि सिद्धिं पादतले त्ववाक्।
ऋद्धिं चोदक्पादतले सद्योजाताय वै नमः॥१३२॥
भवे श्रुतिं त्रयस्त्रिंशीं दक्षहस्ततले न्यसेत्।
वामहस्ततले लक्ष्मीं चतुस्त्रिंशत्कलां न्यसेत्॥१३३॥
पञ्चत्रिंशीं नासिकायां मेधां नाभिभवे न्यसेत्।
षट्त्रिंशीं मूर्द्धनि क्षान्तिं विन्यसेच्च भुजे रमाम्॥१३४॥
सप्तत्रिंशीं भवेत्युक्त्वा शुद्धां न्यस्येदर्वाग्भुजे।
उद्भवाय नमः प्रोच्य तिर्यग्वामभुजे न्यसेत्॥१३५॥
ततश्च मूलमनुना पुटान् सव्ये च मन्त्रकान्।
सद्योजातादिकान्न्यस्य व्यापकन्यासमाचरेत्॥१३६॥
सदाशिवात्मकं ध्यात्वा स्वात्मानं सर्वदैवतैः।
अवस्थितं शिवोऽहं च ध्यात्वान्तः पूजनं चरेत्॥१३७॥

'ॐ सर्वभूतदमनाय नमः' कहकर मोहिनी-नाम्नी उन्तीसवीं कला का दक्ष पार्श्व में न्यास करना चाहिये। 'ॐ मनोन्मनाय नमः' कहकर उभया-नाम्नी तीसवीं कला का वाम पार्श्व में न्यास करना चाहिये। 'ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि नमः' कहकर सिद्धि-नाम्नी इकतीसवीं कला का दक्ष पादतल में न्यास करना चाहिये। 'ॐ सद्योजाताय वै नमः' कहकर ऋद्धि-नाम्नी बत्तीसवीं कला का वाम पादतल में न्यास करना चाहिये। 'ॐ भवे नमः' कहकर श्रुति-नाम्नी तैंतीसवीं कला का दक्ष हस्ततल में न्यास करना चाहिये। 'ॐ भवे नमः' कहकर लक्ष्मी-नाम्नी चौंतीसवीं कला का वाम हस्ततल में न्यास करना चाहिये। 'ॐ नाभिभवे नमः' कहकर मेधा-नाम्नी पैंतीसवीं कला का नासिका में न्यास करना चाहिये। 'ॐ भवस्य' कहकर क्षान्ति-नाम्नी छत्तीसवीं कला का मूर्धा में एवं रमा का भुजा में न्यास करना चाहिये। 'ॐ भवाय नमः' कहकर शुद्धा-नाम्नी सैंतीसवीं कला का दक्ष भुजा में न्यास करना चाहिये। 'ॐ उद्भवाय नतः' कहकर तिर्यक्-नाम्नी अड़तीसवीं कला का वाम भुजा में न्यास करना चाहिये। इसके बाद सद्योजातादि पाँच ऋचाओं के पहले 'ॐ नमः शिवाय' लगाकर व्यापक न्यास करना चाहिये।

तदनन्तर स्वयं को सदाशिवात्मक समझते हुये स्वयं में ही समस्त देवों को अवस्थित मानकर अपने भीतर 'शिवोऽहं' का ध्यान करते हुये पूजन करना चाहिये॥१३१-१३७॥

ततश्चावाह्य पूजायामीशानाद्यैश्च पञ्चभिः ।
प्रथमावरणं ज्ञेयं द्वितीयं स्यात्षडङ्गकैः ॥१३८॥
अनन्ताद्यैस्तृतीयं स्याच्चतुर्थं स्यादुमादिभिः ।
इन्द्राद्यैः पञ्चमं चापि वज्राद्यैः षष्ठकं मतम् ॥१३९॥

इसके बाद प्रथम आवरण में ईशानादि पाँचों देवों का आवाहन करके पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् द्वितीय आवरण में षडङ्ग पूजन-करने के बाद तृतीय आवरण में अनन्त आदि का, चतुर्थ आवरण में उमा आदि का, पञ्चम आवरण में इन्द्रादि दिक्पालों का एवं षष्ठ आवरण में उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये॥१३८-१३९॥

पूजनयन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का होता है—

पूजन यन्त्र
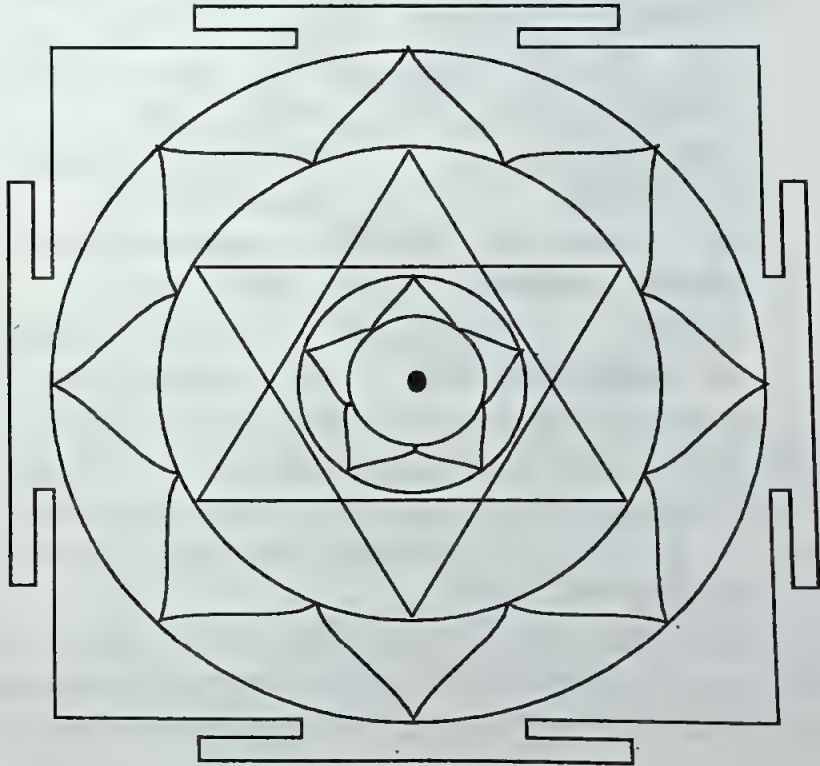
लक्षद्वयं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः ।
पञ्चविंशतिसाहस्रसम्मितैः करवीरजैः ॥१४०॥
जपापुष्पैस्तु पद्मैर्वा जुहुयात्तर्पणादिकम् ।
कृत्वा संसिद्धमन्त्रस्तु कुर्यात्काम्यानि पूर्ववत् ॥१४१॥

हविष्य-भक्षण करते हुये जितेन्द्रिय रहकर मन्त्र का दो लाख जप करने के उपरान्त कनैल, अड़हुल अथवा कमलपुष्पों से पच्चीस हजार हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण आदि करके सिद्ध मन्त्र से पूर्ववत् काम्य प्रयोगों का साधन करना चाहिये॥१४०-१४१॥

तारमायाधराबीजपूर्वः पञ्चाक्षरो मनुः ।
अष्टवर्णो भवेदस्य वामदेवो मुनिर्मतः ।
देवः सदाशिवः प्रोक्तः पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतम् ॥१४२॥
मायाप्रसादबीजाभ्यां भेदिताभ्यां च षट्स्वरैः ।
षड्भिस्तथा मन्त्रवर्णैः षडङ्गानि सजातिभिः ॥१४३॥
ध्यायेत्ततश्च सिन्दूरारुणं शम्भुं त्रिलोचनम् ।
टङ्कं मृगं तथा देवीं चालिङ्गन्तं वरप्रदम् ॥१४४॥
हस्तैश्चतुर्भिरारक्तपद्मं च दधतीं करैः ।
पीनवृत्तघनोत्तुङ्गस्तनीं वामाङ्कसंस्थिताम् ॥१४५॥
रक्तपद्मसमासीनं रक्तस्रग्गन्धलेपनम् ।
एवं ध्यात्वा च पञ्चार्णपीठे तद्वद्यजेद्धरम् ॥१४६॥
अष्टलक्षं जपेन्मन्त्रं तत्सहस्रं तथा हुनेत् ।
घृताप्लुतैः पायसान्नैस्तर्पणादि ततश्चरेत् ॥१४७॥
एवं सिद्धमनुः कुर्यात्प्रयोगान् हि षडर्णवत् ॥१४८॥

अष्टाक्षर मन्त्र—पञ्चाक्षर मन्त्र (नमः शिवाय) के पूर्व 'ॐ ह्रीं ग्लौं' इन तीन बीजों का संयोजन करने से यह मन्त्र आठ अक्षरों (ॐ ह्रीं ग्लौं नमः शिवाय) का हो जाता है। इस अष्टाक्षर मन्त्र के ऋषि वामदेव, छन्द पंक्ति एवं देवता सदाशिव कहे गये हैं। छः स्वरों से भेदित माया एवं प्रासादबीजों तथा जातियुक्त छः मन्त्रवर्णों से इसका षडङ्ग न्यास किया जाता है।

इसके बाद सिन्दूर-सदृश अरुण वर्ण वाले, तीन नेत्रों वाले, तीन हाथों में टङ्क मृग एवं वर धारण करके चौथे हाथ से वामाङ्क में अवस्थित हाथ में रक्तकमल धारण की हुई स्थूल गोल उन्नत स्तनों वाली देवी का आलिङ्गन किये हुये—इस प्रकार चार

हाथों वाले, रक्तकमल पर आसीन, रक्त माला धारण किये हुये एवं रक्त गन्ध का आलेप लगाये हुये शम्भु का ध्यान करना चाहिये।

इस प्रकार ध्यान करके पञ्चाक्षर मन्त्र के पूर्वोक्त पीठ पर उसी प्रकार शिव का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्र का आठ लाख जप करने के उपरान्त घृत-सिक्त पायसान्न से आठ हजार हवन करना चाहिये। तदनन्तर तर्पण आदि करना चाहिये। इस प्रकार सिद्ध मन्त्र से षडक्षर मन्त्र के समान प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये॥१४२-१४८॥

ॐ जूं स इति मन्त्रस्य प्रोक्तो मृत्युञ्जयाभिधः।
ऋषिः कहोडो देव्यादिगायत्री छन्द ईरितम् ॥१४९॥
मृत्युञ्जयो महादेवो देवता परिकीर्तितः।
षड्दीर्घयुक्तभृगुणा षडङ्गानि समाचरेत् ॥१५०॥
स्मरेत्पद्मद्वयस्थं च चन्द्रार्काग्नित्रिलोचनम्।
हस्तेषु ज्ञानमुद्रां च पाशरुद्राक्षमालिके ॥१५१॥
कर्पूराभं शीर्षचन्द्रं करोद्घामृतधारया।
अर्धाङ्गं बहुभूषाढ्यं कान्ताभिश्च विमोहितम् ॥१५२॥
एवं सम्पूजयेत्पीठे मूर्तिं मूलेन कल्पयेत्।
अङ्गेन्द्राद्यैस्तदस्त्रैश्च त्रिरावरणपूजनम् ॥१५३॥

पूजन यन्त्र
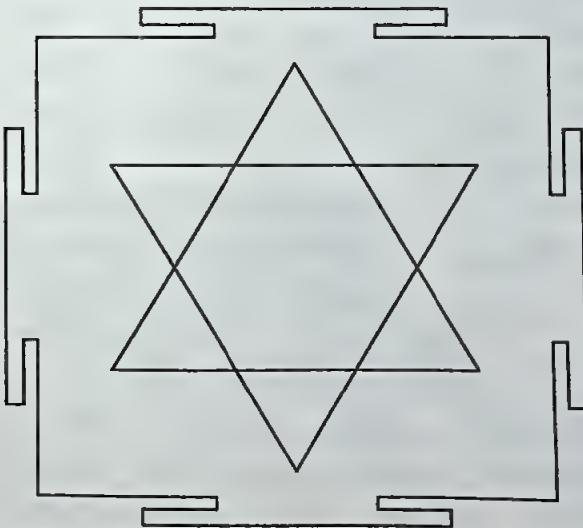
त्र्यक्षर मृत्युञ्जय-मन्त्र—'ॐ जूं सः' यह मृत्युञ्जय मन्त्र कहा गया है। इस मन्त्र के ऋषि कहोड, छन्द गायत्री एवं देवता मृत्युञ्जय महादेव कहे गये हैं। छः दीर्घ स्वर-समन्वित भृगु (जां जीं जूं जैं जौं जः) से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् दो कमलों पर अवस्थित, चन्द्र-सूर्य एवं अग्निरूप तीन नेत्रों वाले, हाथों में क्रमशः ज्ञानमुद्रा पाश एवं रुद्राक्ष की माला धारण किये हुये, कर्पूर के समान धवल कान्ति वाले, शीर्ष पर चन्द्र को धारण किये हुये, हाथ से अमृत की धारा प्रवाहित करते हुये, अर्धाङ्ग में अनेक आभूषणों से सुशोभित एवं कान्ताओं से विमोहित मृत्युञ्जय का ध्यान करना चाहिये।

इस प्रकार ध्यान करते हुये मूल मन्त्र से पीठ पर मूर्ति कल्पित करके उनका पूजन करना चाहिये। इनका पूजन तीन आवरणों में सम्पन्न होता है, प्रथम आवरण में अङ्ग-पूजन, द्वितीय आवरण में इन्द्रादि लोकपाल-पूजन एवं तृतीय आवरण में लोकपालों के अस्त्रों का पूजन॥१४९-१५३॥

जपेत्रिलक्षं जुहुयादमृतां खण्डकैः प्लुताम्।
शुद्धदुग्धेन च ततस्तर्पणादि समाचरेत्।
एवं संसिद्धमन्त्रस्तु प्रयोगान्वै चरेदथ॥१५४॥
सुधाफलैः सुधाखण्डैर्मन्त्री मासं सहस्रकम्।
आराधिताग्नौ जुहुयाद्विधिवद्विजितेन्द्रियः॥१५५॥
सन्तुष्टः शङ्करस्तस्य सुधाप्लावितविग्रहः।
आयुरारोग्यसम्पत्तियशःपुत्रान् विवर्धयेत्॥१५६॥
सुधावटौ बिल्वदूर्वाः पयः सर्पिः पयो हविः।
इत्युक्तैः सप्तभिर्द्रव्यैर्जुहुयात्सप्त वासरान्॥१५७॥
अष्टोत्तरसहस्रं तु नित्यं सप्ताधिकान् द्विजान्।
भोजयेन्मधुराक्तैश्च सर्वरोगैः प्रमुच्यते॥१५८॥
होमाद्यं पूर्ववद्दद्याद्विप्रेभ्योऽधिकदक्षिणाम्।
आरण्यैः पशुभिर्गोभिर्हस्तिभिर्वाजिभिस्तथा।
गुरुं सम्प्रीणयेत्पश्चाद्धनाद्यैर्देवताधिया॥१५९॥
अनेन विधिना सद्यः कृत्याद्रोहज्वरादिभिः।
विमुक्तः सुचिरं जीवेत्साधिकं शरदां शतम्॥१६०॥
अभिचारज्वरे तीव्रे घोरोन्मादे शिरोगदे।
असाध्यरोगे सञ्जाते तथा चैव महाभये।
होमोऽयं शान्तिदः प्रोक्तः सर्वसम्पत्प्रदायकः॥१६१॥

द्रव्यैरेतैः प्रजुहुयात् त्रिजन्मा च यथाविधि।
भोजयेन्मधुरैर्भोज्यैर्ब्राह्मणान् वेदपारगान्॥१६२॥
दीर्घमायुरवाप्नोति काश्मरीबकुलोद्भवैः।
समिद्वरैः कृतो होमः सर्वमृत्युगदापहः॥१६३॥
सिद्धान्नैर्विहितो होमो महाज्वरविनाशनः।
अपामार्गसमिद्धोमः सर्वामयविनाशनः॥१६४॥

सविधि पूजन के पश्चात् मन्त्र का तीन लाख जप पूर्ण करने के बाद शुद्ध गोदुग्ध से प्लुत गुरुचखण्डों से हवन करके तर्पण-मार्जन आदि करना चाहिये। तदनन्तर इस प्रकार सम्यक् रूप से सिद्ध किये गये मन्त्र से प्रयोगों का साधन करना चाहिये।

जितेन्द्रिय साधक द्वारा एक मास-पर्यन्त पूजित अग्नि में गुरुच के फलों अथवा टुकड़ों से प्रतिदिन एक हजार आहुतियों द्वारा विधि-पूर्वक हवन करने से अमृत से आप्लावित शरीर वाले भगवान् शङ्कर उस साधक से सन्तुष्ट होकर उसके आयु, आरोग्य, सम्पत्ति, यश, पुत्र की वृद्धि करते हैं।

गुरुच, वट, बेल, दूब, दूध, गोघृत एवं हवि—इन सात द्रव्यों से सात दिनों तक प्रतिदिन अलग-अलग एक हजार आठ आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करने के पश्चात् प्रतिदिन सात से अधिक ब्राह्मणों को सुमधुर भोजन कराने से समस्त रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है।

हवन के समय ब्राह्मणों को प्रभूत दक्षिणा प्रदान करते हुये गुरु में देवताबुद्धि रखते हुये उन्हें जंगल में विचरण करने वाले पशुओं, गौवों, हाथियों एवं घोड़ों के साथ-साथ प्रभूत धन आदि प्रदान करके प्रसन्न करना चाहिये। इस विधि का अवलम्ब ग्रहण करने वाला साधक तत्क्षण ही कृत्या, द्रोह, ज्वर आदि से मुक्त होकर सौ से अधिक वर्षों तक जीवित रहता है।

यह हवन अभिचार-जनित तीव्र पीड़ा में, भयंकर उन्माद की अवस्था में, भयंकर शिरोरोग में, असाध्य रोग होने की स्थिति में एवं घोर भय उपस्थित होने पर शान्ति प्रदान करने वाला एवं समस्त सम्पत्तियों को देने वाला कहा गया है।

उपर्युक्त'द्रव्यों से विधि-पूर्वक हवन करके वेदज्ञ ब्राह्मणों को सुमधुर भोज्य पदार्थों का भोजन कराने वाला त्रिजन्मा (ब्राह्मण) दीर्घायु प्राप्त करता है। काश्मरी और बकुल की समिधाओं द्वारा किया गया हवन समस्त मृत्यु-दायक रोगों का विनाशक होता है। सिद्धान्नों के हवन से महाज्वर का विनाश होता है। अपामार्ग की समिधाओं के हवन से सभी रोगों का विनाश होता है॥१५४-१६४॥

दक्षिणामूर्तिमन्त्रविधिकथनम्

अथातो दक्षिणामूर्तिमन्त्रं वक्ष्याम्यभीष्टदम्।
ॐङ्कारमायाबीजाभ्यां पुटं षट्त्रिंशदक्षरम् ॥१६५॥
दक्षिणामूर्तये तुभ्यं वटमूलनिवासिने।
ध्यानैकनिरताङ्गाय नमो रुद्राय शम्भवे ॥१३६॥
मुनिः शुक्लः समुद्दिष्टोऽनुष्टुप् छन्दः प्रकीर्तितम्।
देवता जगतामादिर्दक्षिणामूर्तिरव्ययः ॥१६७॥
प्रणवो बीजमित्युक्तं हृल्लेखा शक्तिरीरिता।
विनियोगः समुद्दिष्टः पुरुषार्थचतुष्टये ॥१६८॥
आदौ तु मूलमन्त्रेण करशुद्धिं समाचरेत्।
रसनेत्राष्टकवसुबाणवह्निमितैः क्रमात् ॥१६९॥
तत्रैव तु च मन्त्रार्णैस्तारमायादिकैः पुनः।
षड्दीर्घैस्तारमायान्तैः षडङ्गानि समाचरेत् ॥१७०॥
मूर्ध्नि भाले दक्षनेत्रे वामे चैव तु कर्णयोः ॥१७१॥
दक्षगण्डे वामगण्डे नासिकायां कटौ तथा।
लिङ्गे दक्षोरुमूले च जानुमूले च गुल्फके ॥१७२॥
पादाङ्गुलीनां मूले च जानुमध्ये च गुह्यके।
पाण्यङ्गुलीनां मूले च न्यसेत्स्थानचतुष्टये।
एवं वामोरुमध्यादौ कुर्यान्न्यासोऽयमीरितः ॥१७३॥

दक्षिणामूर्ति-मन्त्र—अब मैं दक्षिणामूर्ति के अभीष्ट-दायक मन्त्र को कहता हूँ। ॐ एवं मायाबीज (ह्रीं) से सम्पुटित छत्तीस अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ ह्रीं दक्षिणामूर्त्तये तुभ्यं वटमूलनिवासिने, ध्यानैकनिरताङ्गाय नमो रुद्राय शम्भवे ॐ ह्रीं।

इस मन्त्र के ऋषि शुक्ल, छन्द अनुष्टुप्, देवता जगत् के आदिभूत अव्यय दक्षिणामूर्ति, बीज ॐ एवं शक्ति ह्रीं कहे गये हैं। पुरुषार्थचतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति के लिये इसका विनियोग कहा गया है।

सर्वप्रथम मूल मन्त्र से करशुद्धि करने के उपरान्त मन्त्र के छः, दो, आठ, आठ, पाँच एवं तीन वर्णों के आदि एवं अन्त में छः दीर्घ स्वर-समन्वित 'ॐ ह्रीं' (ॐ ह्रां, ॐ ह्रीं, ॐ ह्रूं, ॐ ह्रैं, ॐ ह्रौं, ॐ ह्रः) का योग करके इसका षडङ्ग-न्यास करना चाहिये।

तदनन्तर मन्त्र के बत्तीस वर्णों का शरीर के बत्तीस अङ्गों में क्रमशः इस प्रकार

न्यास करना चाहिये—दं नमः मूर्ध्नि, क्षिं नमः भाले, णां नमः दक्षनेत्रे, मूं नमः वामनेत्रे, र्तं नमः दक्षकर्णे, यें नमः वामकर्णे, तुं नमः दक्षकपोले, भ्यं नमः वामकपोले, वं नमः दक्षनासापुटे, टं नमः वामनासापुटे, मूं नमः कट्यां, लं नमः लिङ्गे, निं नमः दक्षोरुमूले, वां नमः वामोरुमूले, सिं नमः जानुमूले, ध्यां नमः दक्षगुल्फे, नैं नमः वामगुल्फे, कं नमः जानुमध्ये, निं नमः गुह्ये, रं नमः दक्षकराङ्गुल्यग्रे, तां नमः दक्षमणिबन्धे, ज्ञां नमः दक्षकूर्परे, यं नमः दक्षबाहुमूले, नं नमः वामकराङ्गुल्यग्रे, मों नमः वाममणिबन्धे, रुं नमः वामकूर्परे, द्रां नमः वामबाहुमूले, यं नमः दक्षोरौ, शं नमः वामोरौ, म्भं नमः नाभौ, वें नमः हृदये॥१६५-१७३॥

हिमाचलतले रम्ये सिद्धकिन्नरगुह्यकैः।
नानाद्रुमैः पुष्पफलपत्रोपेतैर्विराजिते ॥१७४॥
शिलाविवरनिर्गच्छन्निर्झरैः शीतलानिले।
नानाभृङ्गैः पक्षिगणैर्विधुरीकृतसम्मुखे।
शुकादिमुनिभिर्युक्ते वटं तत्र विचिन्तयेत् ॥१७५॥
गारुत्मतमयैः पत्रैः पद्मरागमयैः फलैः।
नवरत्नमयाकल्पैस्तोरणाद्यैरलंकृतम् ॥१७६॥
तस्य मूले स्वर्णभूमौ रत्नसिंहासने शुभे।
आसीनममिताकल्पं शरच्चन्द्रनिभाननम् ॥१७७॥
रजताद्रिप्रतीकाशं मुनिदेवगणैः स्तुतम्।
जटामुकुटिनं वीरासनं नासावलोकनम् ॥१७८॥
त्रिनेत्रं सुप्रसन्नास्यं निविष्टं शुभपङ्कजे।
दक्षिणोर्ध्वकरे टङ्कं व्याख्यामुद्रामधः करे ॥१७९॥
वामोर्ध्वहस्ते हरिणं वामजानुन्यधःकरम्।

तदनन्तर सिद्धों, किन्नरों एवं गुह्यकों से सेवित; पुष्पों, फलों एवं पत्रों से सुशोभित अनेक वृक्षों से समन्वित; प्रस्तरगुफाओं से निकलते जल के कारण शीतल पवन से युक्त; अनेक भँवरों, पक्षियों से युक्त चन्द्रपर्वत के समक्ष; शुक आदि मुनियों से युक्त हिमाचल-तल पर विद्यमान स्वर्णमय पत्रों, पद्मरागमय फलों एवं नवरत्नमय तोरणों आदि से अलंकृत वटवृक्ष के नीचे स्वर्णमयी भूमि पर विद्यमान रत्न-निर्मित सुन्दर सिंहासन पर सदा-सर्वदा से विराजमान, शरत्कालीन चन्द्र-सदृश मुख वाले, चाँदी के पर्वत-सदृश दीप्तिमान, मुनियों एवं देवताओं द्वारा स्तुत, जटा-रूप मुकुट वाले, वीरासन वाले, नासाग्र दृष्टि वाले, तीन नेत्रों वाले, अतिशय प्रसन्न मुख वाले, सुन्दर कमल पर विराजमान, दाहिने ऊपर वाले हाथ में टङ्क एवं नीचे वाले हाथ में

व्याख्यामुद्रा तथा बाँयें ऊपर वाले हाथ में हरिण धारण किये और बाँयें निचले हाथ को घुटने पर रखे हुये दक्षिणामूर्ति का ध्यान करना चाहिये॥१७४-१७९॥

प्राक्प्रोक्ते पूजयेत्पीठे प्रथमे तु दले यजेत् ॥१८०॥
केशरेषु षडङ्गानि देवाग्रादिप्रदक्षिणम् ।
पूजयेदष्टपत्रेषु पूजयेद् वृषभादिकान् ॥१८१॥
वीथीद्वये च लोकेशांस्तदस्त्राणि च पूजयेत् ।
पुरश्चरणसिद्ध्यर्थं प्रजपेदयुताष्टकम् ॥१८२॥
जुहुयात्तद्दशांशेन तिलैः क्षीरपरिप्लुतैः ।
पायसेनाथ वा देवाः केवलेन घृतेन वा ।
तर्पणादि ततः कुर्यात्प्रयोगार्हो भवेन्मनुः ॥१८३॥
मासमेकञ्च भिक्षाशी सहस्रं चाष्टकं जपेत् ।
मन्त्रं प्रतिदिनं मन्त्री विद्वत्त्वं लभते ध्रुवम् ॥१८४॥
मूलमन्त्रेण पुटितां मातृकां मनुवित्तमः ।
जलं स्पृष्ट्वा त्रिधा जप्त्वा पिबेदब्दाद्भवेद् ध्रुवम् ।
अखिलानां च शास्त्राणां व्याख्याता च महाकविः ॥१८५॥
रोमपिप्पलिकाब्राह्मीवचासर्ज्जरसैर्घृतैः ।
सुगन्धद्रव्यसंयुक्तैर्नन्दिकेश्वरकल्पितैः ॥१८६॥
तत्कल्कसहितैर्ब्राह्मीरसे पक्वं च गोघृतम् ।
अनेन मन्त्रवर्येण जीवितं त्वयुतावधि ॥१८७॥
तत्र संसेवितं कीर्तिकविताश्रीधृतिप्रदम् ।
कान्तिरक्षायुष्यदं च गदितं सर्वसिद्धिकृत् ॥१८८॥

तत्पश्चात् पूर्वोक्त पीठ पर उनका पूजन करना चाहिये। केशरों में षडङ्ग-पूजन करने के बाद अष्टपत्रों में देव के आगे से प्रारम्भ कर प्रदक्षिणक्रम से वृषभ, नन्दी, महाकाल, गणेश, भृङ्गी, स्कन्द, उमा एवं चण्डेश्वर का पूजन करना चाहिये। इसके बाद भूपुर की दो वीथियों में से प्रथम वीथी में इन्द्रादि दश दिक्पालों का और दूसरी वीथी में उनके वज्रादि दश आयुधों का पूजन करना चाहिये।

इसके बाद पुरश्चरण की सिद्धि के लिये मन्त्र का अस्सी हजार जप करने के बाद क्षीराक्त तिलों से, पायस से अथवा केवल घृत से कृत जप का दशांश (आठ हजार) हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् तर्पण आदि करने से मन्त्र प्रयोग करने के योग्य हो जाता है।

एक मास-पर्यन्त भिक्षान्न का भोजन करता हुआ मन्त्रज्ञ साधक यदि प्रतिदिन मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करता है तो उसे निश्चय ही विद्वत्ता का लाभ होता है अर्थात् वह विद्वान् हो जाता है।

जल को स्पर्श करके मूल मन्त्र से पुटित मातृकावर्णों के तीन जप से अभिमन्त्रित जल का पान करने वाला मन्त्रज्ञ साधक निश्चित ही एक वर्ष के भीतर समस्त शास्त्रों का व्याख्याता होने के साथ-साथ महाकवि भी हो जाता है।

रोम, पिप्पली, ब्राह्मी, वच, सर्जरस, घृत में सुगन्धित द्रव्य मिलाकर नन्दिकेश्वर द्वारा निर्दिष्ट विधि से सबका कल्क बनाकर उस कल्क एवं ब्राह्मी-रस में गोघृत का पाक करके उसे इस श्रेष्ठ मन्त्र के दस हजार जप से अभिमन्त्रित करने के बाद सेवन करने से कीर्ति, कविता, श्री, धृति, कान्ति, रक्षा एवं आयुष्य की प्राप्ति होती है। यह घृत समस्त सिद्धियों को देने वाला कहा गया है।।१८०-१८८।।

अथो विभेदाद् द्वाविंशद्वर्णो मन्त्रो निगद्यते।
तारो नमो भगवते दक्षिणामूर्तये वदेत्।।१८९।।
मह्यं मेधां प्रयच्छेति स्वाहान्तोऽथ द्वितीयकः।
मेधास्थाने पठेत्प्रज्ञां फलं नामानुसारतः।।१९०।।
मेधा कण्ठेन सामर्थ्यं प्रज्ञा प्रोक्ता तु या स्मृतिः।
बीजद्वयाल्पितो मन्त्रः सिद्ध्यते वाममार्गिणाम्।।१९१।।
ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो गायत्रं छन्द ईरितम्।
देवता श्रीमहादेवो दक्षिणामूर्तिसञ्ज्ञकः।।१९२।।
प्रणवः प्रोच्यते बीजं स्वाहा शक्तिरिति स्मृता।
मेधापदं कीलकं स्यात्पुरुषार्थे नियोजनम्।।१९३।।
ताररुद्धैः स्वरैर्दीर्घैः षड्भिरङ्गानि कल्पयेत्।
शिरोरुमध्यवक्त्रेषु हृदि नाभौ च गुह्यके।।१९४।।
जान्वोश्चरणयोर्न्यस्येत्पदान्यष्टौ मनोः क्रमात्।
वर्णन्यासमथो मूर्ध्नि भालेक्षणोः श्रोत्रयोर्नसोः।
ओष्ठे दन्ते च जिह्वायां चिबुकाग्रेंसयोर्गले।।१९५।।
बाहूरोनाभिगुह्येषु गुदोर्वोर्जानुजङ्घयोः।
पादपाण्योश्च सर्वाङ्गे ततो देवं विचिन्तयेत्।।१९६।।

दक्षिणामूर्ति का द्वाविंशाक्षर मन्त्र—इस मन्त्र के अलग-अलग भेदों के कारण अब बाईस अक्षरों वाले मन्त्र को कहा जा रहा है। वह मन्त्र है—ॐ नमो

भगवते दक्षिणामूर्तये मह्यं मेधां प्रयच्छ स्वाहा। इसी मन्त्र में 'मेधा' के स्थान पर 'प्रज्ञा' रखने से दूसरा मन्त्र हो जाता है। नामानुरूप ही इन मन्त्रों का फल प्राप्त होता है। कण्ठ के सामर्थ्य को मेधा कहा जाता है एवं स्मृति का नाम प्रज्ञा है। दोनों बीजों से रहित मन्त्र वाममार्गियों को सिद्ध होता है।

इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता दक्षिणामूर्ति-संज्ञक महादेव कहे गये हैं। प्रणव (ॐ) को इसका बीज, 'स्वाहा' को शक्ति एवं 'मेधा' को कीलक कहा गया है। पुरुषार्थ-चतुष्टय की सिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है।

प्रणव से रुद्ध दीर्घ स्वरों (ॐ आं, ॐ ईं, ॐ ऊँ, ॐ ऐं, ॐ औं, ॐ अः) से हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र एवं अस्त्र में इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। इसके बाद शिर, ऊरुमध्य, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य, जानु एवं दोनों पैरों में मन्त्र के आठ पदों का न्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् मूर्धा, ललाट, दोनों आँख, दोनों कान, दोनों नासाछिद्र, ओष्ठ, दाँत, जीभ, चिबुक के अग्रभाग, दोनों कंधा, गला, बाहु, ऊरु, नाभि, गुह्य, गुदा, ऊरु, जानु, जङ्घा, पाद, हाथ एवं सर्वाङ्ग में मन्त्रवर्णों का न्यास करना चाहिये। इसके बाद देवता का ध्यान करना चाहिये॥१८९-१९६॥

शङ्करन्तु शरच्चन्द्रनिभमम्भोजमध्यगम्।
गङ्गाधरं शरच्चन्द्रकरोल्लसितशेखरम्॥१९७॥
प्रसन्नवदनाम्भोजं त्रिनेत्रं सुस्मिताननम्।
दिव्याम्बरधरं देवं गन्धमाल्यैरलंकृतम्॥१९८॥
नानारत्नमयाकल्पमनुकल्पविभूषितम्।
मुक्ताक्षमालां दक्षोर्ध्वे ज्ञानमुद्रामधः करे॥१९९॥
वामोर्ध्वे च सुधाकुम्भं पुस्तकं तदधःकरे।
दधानं चिन्तयेद्देवं मुनिवृन्दनिषेवितम्॥२००॥

कल्याण करने वाले, शरत्कालीन चन्द्रमा के समान कमल के मध्य विराजमान, गंगा को धारण करने वाले, शीर्ष पर शरत्कालीन चन्द्रमा को धारण किये हुये, प्रसन्न मुखकमल वाले, तीन नेत्रों वाले, विहसित मुख वाले, दिव्य वस्त्र को धारण किये हुये, गन्ध एवं माला से अलंकृत, अनेक रत्नों वाले कल्पों एवं अनुकल्पों से विभूषित, दाहिने उपरि हाथ में मुक्ताक्ष-माला एवं निचले हाथ में ज्ञानमुद्रा तथा बाँयें उपरि हाथ में अमृतकलश एवं निचले हाथ में पुस्तक धारण किये हुये, मुनियों द्वारा सेवित देव का ध्यान करना चाहिये॥१९७-२००॥

एवं ध्यात्वा यजेत्पीठे पूर्वोक्ते नवशक्तिके ।
पद्मत्रयसमोपेते भूगेहत्रितयान्विते ॥२०१॥
चतुर्द्वारयुतेऽङ्गानि केशरेषु यजेत्ततः ।
स्वरान् षोडश तत्रैव द्वन्द्वशः केशरस्थितान् ॥२०२॥
यजेद्वर्गाष्टकं पश्चादष्टपत्रेषु चापरे ।
सरस्वतीं चतुर्वक्त्रं सनकं च सनन्दनम् ॥२०३॥
सनातनं चैव सनत्कुमारं च शुकं तथा ।
व्यासं च परतोष्टौ तु पार्वतीं सुभगां तथा ॥२०४॥
भद्रां क्रिया शान्तिरौद्र्यौ कालीं कलभिकामपि ।
चतुरस्त्रे चतुष्कोणमाग्नेये शान्तमर्चयेत् ॥२०५॥
सिद्धगन्धर्वयोगीन्द्रान् विद्याधरगणानपि ।
इन्द्रादींश्च तदस्त्राणि प्राग्वद्वीथीद्वये यजेत् ॥२०६॥

इस प्रकार ध्यान करके पूर्वोक्त नव शक्तियों से समन्वित पीठ पर उनका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर तीन अष्टपत्र, तीन भूपुर एवं चार द्वारों से समन्वित पूजन-यन्त्र में षडङ्ग-पूजन करने के उपरान्त प्रत्येक केशरों में दो-दो स्वरों के क्रम से सोलह स्वरों का पूजन करना चाहिये।
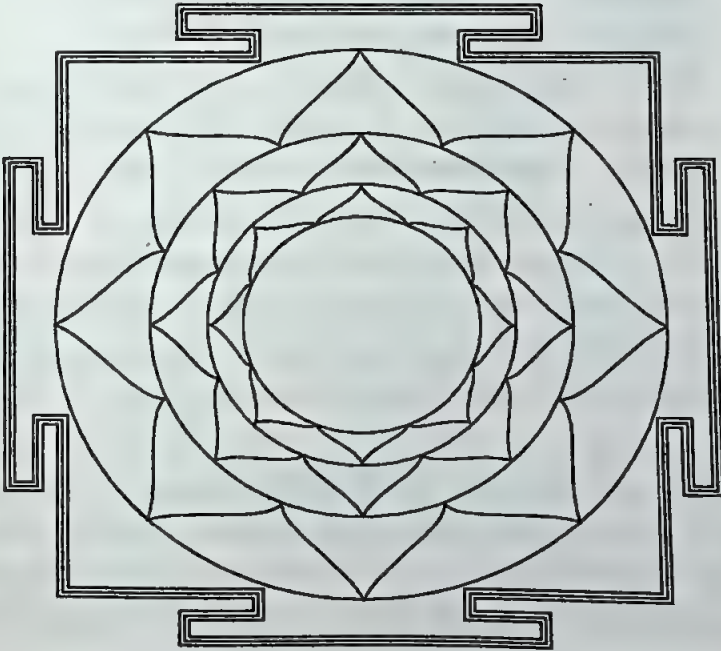
इसके बाद अष्टपत्र में क च ट त प य श ल-क्ष—इस अष्टवर्ग का पूजन करने के पश्चात् उसके बाद वाले अष्टपत्र में सरस्वती, ब्रह्मा, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, शुकदेव और व्यास का पूजन करना चाहिये। पुन: उसके बाद वाले अष्टपत्र में पार्वती, सुभगा, भद्रा, क्रिया, शान्ति, रौद्री, काली एवं कलभिका का पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर भूपुर के अग्निकोण में शान्त, नैर्ऋत्यकोण में सिद्धों एवं गन्धर्वों, वायव्यकोण में योगीन्द्रों एवं ईशानकोण में विद्याधरों का अर्चन करने के बाद भूपुर की प्रथम वीथि में इन्द्रादि दस दिक्पालों और द्वितीय वीथि में उनके वज्रादि दस आयुधों का पूजन करना चाहिये॥२०१-२०६॥

एकलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्ततः ।
क्षीराज्याक्तैस्तिलैः पद्मैः पायसैर्वा घृतप्लुतैः ।
तर्पणादि ततः कृत्वा काम्यकर्माणि साधयेत् ॥२०७॥
कण्ठमात्रोदके स्थित्वा जपेन्मन्त्रं सहस्रकम् ।
प्रत्यहं मण्डलादर्वाक्कवीनामग्रणीर्भवेत् ॥२०८॥
पञ्चविंशतिधा जप्तमन्नपायसमेव च।
भक्षितं क्षीरसंसिक्तं परं वा काव्यकारकम्।
सर्वापन्नाशकं चैव सर्वरोगविनाशनम् ॥२०९॥
त्रयोदश्यां प्रदोषे च सोपवासः शिवालयम् ।
मौनी गत्वार्चयेद्देवं विद्यायुः परिवृद्धये ॥२१०॥
आज्येन पायसान्नेन वाक्कामो जुहुयात्सदा ।
श्रीकामो जलजैर्बिल्वैर्नन्द्यावर्त्तैः सदा हुनेत् ॥२११॥

सविधि पूजन के उपरान्त मन्त्र का एक लाख जप करके दुग्ध एवं गोघृत-सिक्त तिल, कमलपुष्प अथवा घृत-प्लुत पायस से कृत जप का दशांश (दस हजार) हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण आदि करके काम्य कर्मों का साधन करना चाहिये।

कण्ठ-पर्यन्त जल में खड़े होकर प्रतिदिन मन्त्र का एक हजार जप करने वाला साधक चालीस दिनों के भीतर ही कवियों में अग्रगण्य हो जाता है।

मन्त्र के पच्चीस जप से अभिमन्त्रित दुग्ध-सिक्त अन्न और पायस का भक्षण करना काव्य-रचना कराने वाला होता है; साथ ही यह समस्त आपत्तियों का नाशक होता है। इससे समस्त रोगों का विनाश होता है। विद्या एवं आयु की वृद्धि के लिये त्रयोदशी एवं प्रदोष में उपवास रहते हुये मौन धारण करके शिवालय में जाकर देवता का पूजन करना चाहिये। वाणी की कामना वाले को गोघृत एवं हविष्यान्न से हवन करना चाहिये।

धन की कामना वाले को सदा कमल, बेल और नन्द्यावर्त-पुष्पों से हवन करना चाहिये॥२०७-२११॥

आज्यक्षीराक्तदूर्वाभिर्हुत्वा दद्याच्च दक्षिणाम्।
गुरवे गां च महिषीं तस्य मृत्युभयं कुतः॥२१२॥
आदित्याभिमुखो भूत्वा दद्याद्दशजलाञ्जलीन्।
मूलमन्त्रेण मन्त्रज्ञः सर्वदोषैर्न बाध्यते॥२१३॥
प्रातः सायं च सप्तैवं मध्याह्ने चैकविंशतिम्।
दुग्धबुद्ध्या जलैर्देवं तर्पयित्वा ततो हुनेत्।
पलाशपुष्पैरचिरात्कविर्होमादिभिर्भवेत्॥२१४॥
गौर्या पार्श्वस्थया सार्धं श्रीकामश्चिन्तयेत्प्रभुम्।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं भूयसीं श्रियमाप्नुयात्॥२१५॥
भुञ्जानः प्रयतो मन्त्री गोमूत्रे पक्वमोदनम्।
भिक्षान्नमथ वा मन्त्रमयुतद्वितयं जपेत्॥२१६॥
अश्रुतान् वेदशास्त्रादीन् व्याचष्टे नात्र संशयः।
एवमाराधितो मन्त्रो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः॥२१७॥

गोघृत एवं गोदुग्ध से सिक्त दूर्वा से हवन करने के बाद दक्षिणा में गुरु को गाय और भैंस प्रदान करने वाले को मृत्यु-भय नहीं होता। सूर्य के सम्मुख खड़े होकर मूल मन्त्र से दस जलाञ्जलि देने वाला मन्त्रज्ञ साधक किसी भी दोष से बाधित नहीं होता। इसी प्रकार प्रातः एवं सायंकाल सात बार तथा मध्याह्न में इक्कीस बार जल में दुग्धबुद्धि रखकर देव का तर्पण करने के पश्चात् पलाशपुष्पों से हवन करने वाला साधक थोड़े ही दिनों में कवि हो जाता है।

लक्ष्मी की कामना से बगल में बैठी हुई गौरी के साथ शिव का ध्यान करते हुये मन्त्र का दस हजार जप करने वाला साधक प्रभूत धन प्राप्त करता है।

प्रयत्न-पूर्वक गोमूत्र में पके भात अथवा भिक्षान्न का भक्षण करते हुये मन्त्र का बीस हजार जप करने वाला साधक कभी न सुने हुये वेद-शास्त्र आदि की भी व्याख्या करने लगता है; इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये। इस प्रकार से आराधित यह मन्त्र भोग-मोक्ष प्रदान करने वाला होता है॥२१२-२१७॥

अथातो दक्षिणामूर्तेर्द्व्यक्षरो मनुरुच्यते।
हंस इत्यस्य गायत्री छन्दो ब्रह्मा मुनिर्मतः॥२१८॥
देवता दक्षिणामूर्तिर्हंबीजं शक्तिरन्तिमः।
हसव्यञ्जनयोर्योगे षड्दीर्घाद्यङ्गकल्पनम्॥२१९॥

ध्यानपूजादिकं सर्वं तथा काम्यनियोजनम्।
द्वात्रिंशदक्षरप्रोक्तदक्षिणामूर्तिमन्त्रवत् ॥२२०॥
विशेषतः स्वयं रोगहरः सारस्वतप्रदः।
ज्ञानप्रदश्च भवति तथा मोक्षप्रदोऽपि च ॥२२१॥

दक्षिणामूर्ति का द्व्यक्षर मन्त्र—अब दक्षिणामूर्ति के दो अक्षरों वाले मन्त्र को कहा जा रहा है। वह मन्त्र है—हंसः। इस द्व्यक्षर मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता दक्षिणामूर्ति, बीज 'हं' एवं शक्ति 'सः' कहा गया है। हकार एवं सकार में छः दीर्घ स्वरों को संयुक्त करके (ह्सां, ह्सीं, ह्सूं, ह्सैं, ह्सौं ह्सः) इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। इसका ध्यान-पूजन-विनियोग-काम्य प्रयोग आदि सभी दक्षिणामूर्ति के बत्तीस अक्षर वाले मन्त्र के समान होते हैं। यह मन्त्र विशेषतया स्वयं रोगों का हरण करने वाला, विद्या प्रदान करने वाला, ज्ञान प्रदान करने वाला एवं मोक्ष प्रदान करने वाला है॥२१८-२२१॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वामिनां सिद्धिदस्य तु।
दक्षिणामूर्तिभेदस्य तस्य मन्त्रचतुष्टयम् ॥२२२॥
ऊर्ध्वपश्चिमयोः सौम्यप्रागाम्नायोक्तसिद्धिकृत् ॥२२३॥
क्रमादेतेऽत्र प्रोच्यन्ते महादेवाय हुं त्विति।
वामो मुनिर्विराट् छन्दो देवता वामनायकः ॥२२४॥
कालिकाबीजपूर्वैश्च षड्वर्णैः स्यात्षडङ्गकम्।
लिङ्गन्यस्तमहाकालिं मदिरासक्तमानसम् ॥२२५॥
लोहदण्डं मांसपिण्डं पानपात्रं त्रिशूलकम्।
दधतं भर्जितम्मत्स्यं चषकं रुधिरस्य च ॥२२६॥
स्पृशन्तमेकेन भगमपरेण कुचद्वयम्।
इत्थं सञ्चिन्त्य देवेशं कालपीठे समर्चयेत् ॥२२७॥
भगमालां भगलतां भगां कोणत्रये यजेत्।
लिङ्गस्थितं लिङ्गभगमात्मानं चात्ममेखलम् ॥२२८॥
मत्स्यप्रियं च तद्बाह्ये पञ्चकोणे समर्चयेत्।
मन्दोन्मत्तं रतिकरं चलन्मध्यं स्खलत्पदम् ॥२२९॥
वेदपृष्ठं धर्मशास्त्रं शान्त्यतीतं निरञ्जनम्।
तत्र स्थितं च तद्बाह्ये पूजयेन्नवयोनिके ॥२३०॥

वाममार्ग में सिद्धिप्रद दक्षिणामूर्ति के मन्त्रचतुष्टय—अब मैं वाममार्गियों के

लिये सिद्धि-प्रदायक दक्षिणामूर्ति के चार मन्त्रों को कहता हूँ। ये चारो मन्त्र ऊर्ध्वाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, उत्तराम्नाय एवं पूर्वाम्नाय में सिद्धिप्रद कहे गये हैं। यहाँ वे आम्नायक्रम से कहे जा रहे हैं। ऊर्ध्वाम्नास का मन्त्र है—महादेवाय हुं। इस षडक्षर मन्त्र के ऋषि वाम, छन्द विराट् और देवता वामनायक कहे गये हैं। पूर्व में काली-वीज (क्रीं) लगाकर मन्त्र के छ: वर्णों से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है।

इसके बाद लिङ्ग पर महाकाली को बैठाये हुये, मदिरा में आसक्त मन वाले, अपने आठ हाथों में से छ: हाथों में क्रमश: लोहदण्ड, मांसपिण्ड, पानपात्र, त्रिशूल, तली मछली एवं रुधिर से पूर्ण चषक धारण किये हुये, सातवें हाथ महाकाली के भग एवं आठवें हाथ से उनके दोनों स्तनों को स्पर्श करते हुये देवश्रेष्ठ वामनायक का ध्यान करके कालपीठ पर सम्यक् रूप से अर्चन करना चाहिये। त्रिकोण-समन्वित पञ्चकोण के मध्य-बिन्दु में लिङ्गभग-स्वरूप स्वयं का यजन करके भगमाला, भगलता, भगा एवं स्वमेखला का क्रमश: यजन करना चाहिये। उसके नवकोण में मत्स्यप्रिय, मदोन्मत्त, रतिकर, चलन्मध्य, स्खलत्पद, वेदपृष्ठ, धर्मशास्त्र, शान्त्यतीत एवं निरञ्जन का पूजन करना चाहिये॥२२२-२३०॥

लक्षाष्टकञ्जपेन्मन्त्रं प्रथमं तु सुरान्वितैः ।
होमाद्धि मांसशकलैर्मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥२३१॥
सम्भोगी यो जपेल्लक्षं जुहुयाच्चायुतं परम् ।
तर्पयेच्चन्दनेनैव तत्परं मन्त्रसिद्धये ॥२३२॥
जपादिकं प्रकर्तव्यं यथाकार्यानुसारतः ।
अवश्यञ्जायते कार्यं तस्माच्चेद्विकलेन्द्रियः ।
तदा न कार्यं भवति वाममार्गेण साधितम् ॥२३३॥

तत्पश्चात् सर्वप्रथम मदिरापान करने के बाद मन्त्र का आठ लाख की संख्या में जप करने के उपरान्त मांसखण्ड़ों की आहुति प्रदान करते हुये हवन करने से मन्त्र की सिद्धि हो जाती है। जो साधक सम्भोग-रत रहते हुये मन्त्र का एक लाख जप करने के बाद दस हजार हवन करके चन्दनजल से तर्पण करता है, उसे श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त होती है। कार्य के अनुसार जप आदि करना चाहिये; इससे अवश्य ही कार्यसिद्धि होती है। साधक यदि व्याकुल इन्द्रिय वाला होता है तो वाममार्ग द्वारा साधित कार्य सिद्ध नहीं होता है॥२३१-२३३॥

अथातो दक्षिणामूर्तेरपरो मन्त्र उच्यते ।
तारो नमो भगवते दक्षिणामूर्तये वदेत् ।
मह्यं मेधां वदेत्प्रज्ञां प्रयच्छानलवल्लभाम् ॥२३४॥

चतुर्विंशतिवर्णोऽयं मुनिर्ब्रह्मा समीरितः ।
देवता दक्षिणा मेधा गायत्री छन्द उच्यते ॥२३५॥
मेधाबीजं तथा शक्तिः स्वाहा मेधासमृद्धये ।
नियोगोऽथ षडङ्गानि आं ईं ऊं ऐं च औं च अः ॥२३६॥
एतैर्वर्णैस्तु दिग्बन्धं भूर्भुवःसुवरोमिति ।
व्याख्यापीठेऽतिशुभ्रं च भस्मोद्धूलितविग्रहम् ॥२३७॥
ज्ञानमुद्राक्षमालाढ्यं वीणापुस्तकधारिणम् ।
प्राग्वत्पूजादिकं सर्वं पुरश्चरणमुच्यते ॥२३८॥

अब मैं दक्षिणामूर्ति के पश्चिमाम्नाय में सिद्धिप्रद मन्त्र को कहता हूँ। चौबीस अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमो भगवते दक्षिणामूर्त्तये मह्यं मेधां प्रज्ञां प्रयच्छ स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता दक्षिणा मेधा कहे गये हैं। इसका बीज मेधा एवं शक्ति स्वाहा है। मेधा-समृद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है। आं ईं ऊं ऐं औं अः से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। भूर्भुवःसुवरोम् से दिग्बन्धन करना चाहिये।

अत्यन्त शुभ्र वर्ण वाले, सम्पूर्ण शरीर में भस्म लपेटे हुये, हाथों में ज्ञानमुद्रा, अक्षमाला, वीणा एचं पुस्तक धारण किये हुये देवता का व्याख्यापीठ पर ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात् पूजन आदि सबकुछ पूर्ववत् करना चाहिये। अब पुरश्चरण कहा जा रहा है॥२३४-२३८॥

कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णाचतुर्दशी ।
चत्वारिंशत्सहस्राणां जपात्स्याच्च पुरस्क्रिया ॥२३९॥
आज्यं दशांशं होतव्यं मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ।
पापाधिक्यान्न चेत्सिद्धिस्तदैवन्तु समाचरेत् ॥२४०॥
बिल्वाधःस्थो जपेल्लक्षं ततः सिद्धिर्भवेदिति ।
दूरे दृष्टा च चेत्सिद्धिः पश्चाद्द्वारे शिवालये ।
लक्षमेकं मनुञ्जप्त्वा हुत्वाज्यं सिद्धिभाग्भवेत् ॥२४१॥
ततः प्रयोगं कुर्वीत हुनेत्पालाशपुष्पकैः ।
यमुद्दिश्यायुतं सोऽपि मूर्खो विद्यानिधिर्भवेत् ॥२४२॥
कण्ठमात्रे जले स्थित्वा जपेन्मन्त्रसहस्रकम् ।
प्रत्यहं मण्डलादर्वाक्कवीनामग्रणीर्भवेत् ॥२४३॥
भुञ्जानः प्रयतो मन्त्री गोमूत्रे पक्वभोजनम् ।

भिक्षान्नमथ वा मन्त्रमयुतद्वितयं जपेत्।
अश्रुतं वेदशास्त्रादि व्याचष्टे नात्र संशयः ॥२४४॥
स्वहस्ते जलमादाय प्रातस्तदभिमन्त्रयेत्।
पञ्चविंशतिवारान् हि पाययेद्बालकाय तत्।
मासषट्कं तस्य विद्या भवेद्गङ्गाप्रवाहवत् ॥२४५॥

कृष्णपक्ष की अष्टमी से प्रारम्भ करके कृष्णचतुर्दशी-पर्यन्त मन्त्र का चौवालीस हजार जप करने से इसका पुरश्चरण होता है। जप पूर्ण करने के उपरान्त गोघृत से उसका दशांश (चौवालीस सौ) हवन करने से मन्त्रसिद्धि होती है।

पापों की अधिकता के कारण यदि मन्त्रसिद्धि न हो तो इस प्रकार की क्रिया करनी चाहिये। बिल्ववृक्ष के नीचे अवस्थित होकर मन्त्र का एक लाख जप करने से सिद्धि प्राप्त होती है। फिर भी यदि न मिले तो शिवालय के द्वार पर एक लाख मन्त्रजप करने के उपरान्त गोघृत द्वारा हवन करने पर साधक सिद्धि प्राप्त करने का भागी हो जाता है। इसके पश्चात् साधक को प्रयोग-साधन करना चाहिये।

जिस व्यक्ति को उद्देश्य करके इस मन्त्र द्वारा पलाशपुष्पों से दस हजार हवन किया जाता है, वह मूर्ख होने पर भी विद्या का आगार हो जाता है।

कण्ठमात्र जल में खड़े होकर मन्त्र का प्रतिदिन एक हजार जप करने वाला साधक चालीस दिनों के भीतर ही कवियों में अग्रगण्य हो जाता है।

जो साधक प्रतिदिन गोमूत्र में पाक किया गया भोजन अथवा भिक्षा में प्राप्त अन्न का भोजन करके मन्त्र का बीस हजार जप करता है, वह न सुने गये वेद-शास्त्र आदि का भी विवेचन करने लगता है।

प्रात:काल अपने हाथ में जल लेकर उसे मन्त्र के पच्चीस जप से अभिमन्त्रित कर जिस बालक को पिलाया जाता है, उसकी विद्या छः मास में ही गंगा-प्रवाह के समान अखण्ड़ित हो जाती है।।२३९-२४५।।

शरभावतारिहरमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नृसिंहाद्बलिनो मम।
मन्त्रं शरभसञ्ज्ञस्य द्रुतसिद्धिप्रदायकम् ॥२४६॥
ॐखंखांखं फडुच्चार्य द्विः शत्रून्ग्रससीति च।
तथा हुं फट् सर्वास्त्रसंहरणाय शरभेति च।
शान्ताय पक्षिराजाय हुं फट् स्वाहा नमो मनुः ॥२४७॥

एकचत्वारिंशदर्णो वासुदेवो मुनिर्मतः।
कालाग्निरुद्रः शरभो देवता परिकीर्तितः ॥२४८॥
छन्दस्तु जगती स्वाहा शक्तिर्बीजं खमुच्यते।
वेदाङ्कदशसप्तागसागरैरङ्गकल्पनम् ॥२४९॥
पुनः समस्तमन्त्रेण दिग्बन्धं तु समाचरेत्।

शरभ-मन्त्र—अब मैं नृसिंह से भी सबल मेरे प्रतिनिधि-भूत शरभ के शीघ्र सिद्धि-प्रदायक मन्त्र को कहता हूँ। इकतालीस अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ खं खां खं फट् शत्रून् ग्रससि ग्रससि हुं फट् सर्वास्त्रसंहरणाय शरभाय शान्ताय पक्षिराजाय हुं फट् स्वाहा नमः। इस मन्त्र के ऋषि वासुदेव, छन्द जगती, देवता कालाग्निरुद्र शरभ, बीज खं एवं शक्ति स्वाहा है। मन्त्र के चार, नव, दस, सात, सात एवं चार वर्णों से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ खं खां खं हृदयाय नमः, फट् शत्रून् ग्रससि ग्रससि शिरसे स्वाहा, हुं फट् सर्वास्त्रसंहरणाय शिखायै वषट्, शरभाय शान्ताय कवचाय हुं, पक्षिराजाय हु फट् नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा नमः अस्त्राय फट्। तत्पश्चात् सम्पूर्ण मन्त्र से दिग्बन्धन करना चाहिये॥२४६-२४९॥

चन्द्रार्काग्नित्रिनयनं कालीदुर्गाद्विपक्षकम् ॥२५०॥
विद्युज्जिह्वं वज्रनखं वडवाग्न्युदरं तथा।
व्याधिमृत्युरिपुघ्नं च चण्डवातातिवेगिनम् ॥२५१॥
हृद्भैरवस्वरूपं च वैरिवृन्दनिषूदनम्।
मृगेन्द्रत्वक्छरीरेऽस्य पक्षाभ्यां चञ्चुना रवः ॥२५२॥
अधोवक्त्रश्चतुष्पाद ऊर्ध्वदृष्टिश्चतुर्भुजः।
कालान्तदहनप्रख्यो नीलजीमूतनिःस्वनः ॥२५३॥
अरिर्यद्दर्शनादेव विनष्टबलविक्रमः।
सटाक्षिप्तग्रहर्क्षाय पक्षविक्षिप्तभूभृते।
अष्टपादाय रुद्राय नमः शरभमूर्तये ॥२५४॥
एवं ध्यायेत्सहस्रं तु प्रजपेत्पायसं हुनेत्।
प्रत्यहं मासषट्केन मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥२५५॥
तदाजेयस्तु संग्रामे भूतप्रेतपिशाचकाः।
नश्यन्ति दर्शनादेव चाधयो व्याधयस्तथा ॥२५६॥

चन्द्र, सूर्य एवं अग्नि-स्वरूप तीन नेत्रों वाले; काली एवं दुर्गा-रूप दो पंख वाले; विद्युत् रूपी जिह्वा, वज्ररूपी नख एव वड़वाग्नि-रूपी उदर वाले; रोग, मृत्यु एवं शत्रु

का हनन करने वाले; प्रचण्ड़ वायु-सदृश वेग वाले; हृद्भैरव-स्वरूप; वैरियों का दलन करने वाले; मृगेन्द्र-चर्म से युक्त शरीर वाले; अपने पंखों एवं चोंच से ध्वनि उत्पन्न करने वाले; मुख के नीचे चार पैर एवं दृष्टि के ऊपर चार भुजाओं वाले; काल का भी दहन करने वाले; मेघ-सदृश श्वास वाले; दर्शनमात्र से ही शत्रु के वल एवं प्रताप को नष्ट करने वाले; ग्रह-नक्षत्रों को अपनी कलँगी से दूर फेंक देने वाले; अपने पंख से राजाओं को विक्षिप्त कर देने वाले; आठ पैरों वाले शरभ-स्वरूप रुद्र को नमस्कार है।

प्रतिदिन इस प्रकार से ध्यान करके उक्त मन्त्र का एक हजार की संख्या में जप करने के पश्चात् पायस से हवन करने पर छः मास में मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है। मन्त्र-सिद्धि हो जाने पर वह साधक युद्ध में अजेय हो जाता है और भूत-प्रेत-पिशाच-आधि-व्याधि उसे देखते ही नष्ट हो जाते हैं॥२५०-२५६॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मालामन्त्रं सुसिद्धिदम्।
तारो नमो भगवते ङेऽन्तं शरभ शाल्व च॥२५७॥
सर्वभूतोच्चाटनाय ग्रहराक्षस चोच्चरेत्।
निवारणाय ज्वालेति ङेऽन्तं मालास्वरूपकम्॥२५८॥
दक्षनिष्काशनायेति साक्षादिति पदं वदेत्।
कालरुद्रस्वरूपाष्टमूर्त्तये च तथा वदेत्॥२५९॥
कृशानुरेतसे चेति महेतिपदमुच्चरेत्।
क्रूरभूतोच्चाटनायेत्यप्रतिशयनाय च॥२६०॥
शत्रूंश्च नाशयद्वन्द्वं वदेच्छत्रुपशूंस्ततः।
गृह्णयुग्मं खादयुग्मं तारं हुं फड्वसुप्रियाम्॥२६१॥
अष्टोत्तरशतार्णोऽयमष्टोत्तरशतं जपेत्।
प्रत्यहं मासषट्केन सिद्धः स्यात्तत्फलं शृणु॥२६२॥
पात्रे पूतं जलं स्थाप्य सप्तवाराभिमन्त्रितम्।
पानार्थं तत्प्रसादेन दातव्यं लापयेत्तथा॥२६३॥
प्रयान्ति सर्वभूतानि ज्वराश्चातुर्थिकादयः।
सप्ताहात्तत्प्रयोगेण नात्र कार्या विचारणा॥२६४॥

शरभ-मालामन्त्र—अब मैं शरभ के सुन्दर सिद्धिप्रद मालामन्त्र को कहता हूँ। एक सौ आठ अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमो भगवते शरभाय शाल्वाय सर्वभूतोच्चाटनाय ग्रहराक्षसनिवारणाय ज्वालामालास्वरूपाय दक्षनिष्काशनाय

साक्षात्कालरुद्रस्वरूपाष्टमूर्त्तये कृशानुरेतसे महाक्रूरभूतोच्चाटनाय अप्रतिशयनाय शत्रून् नाशय नाशय शत्रुपशून् गृह्ण गृह्ण खाद खाद ॐ हुं फट् स्वाहा। इस मालामन्त्र का प्रतिदिन एक सौ आठ जप करने से छः मास में यह सिद्ध हो जाता है।

अब इस सिद्ध मन्त्र के फल का श्रवण करो। पात्र में पवित्र जल रखकर उसे इस मन्त्र के सात जप से अभिमन्त्रित करने के बाद पीड़ित व्यक्ति का अभिषेक करते हुये पान करने के लिये प्रदान करना चाहिये। एक सप्ताह-पर्यन्त इस प्रयोग को करने से मन्त्र के प्रसाद से समस्त भूत आदि के साथ-साथ चातुर्थिक आदि ज्वर भी समाप्त हो जाते हैं; इसमें किसी प्रकार का अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये॥२५७-२६४॥

अघोरास्त्रमन्त्रविधिकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ह्यघोरास्त्राह्वयं मनुम्।
मायां स्फुरद्वयं चैव प्रस्फुरद्वितयं वदेत्॥२६५॥
पश्चाद्वदेत्तरद्वन्द्वं तरप्रान्तं च प्रद्वयम्।
प्रचटद्वितयं पश्चात्कहद्वन्द्वं महद्वयम्॥२६६॥
बन्धद्वयं घातयद्विर्हुंहुं भूशरवर्णकः।
मनुः प्रोक्तोऽघोरमुनिरुष्णिक् छन्दोऽस्य देवता॥२६७॥
अघोररुद्रो वं बीजं ह्रीं शक्तिश्च प्रकीर्तिता।
शरर्त्तुदशदिग्दन्तिदिवाकरमितैर्मनोः।
वर्णैः कुर्यात्षडङ्गानि पदन्यासोऽथ वक्ष्यते॥२६८॥
भाले वक्त्रे गले हृद्यथो नाभिकरजानुषु।
सजङ्घपादयोश्चैव पदान्येकादश न्यसेत्॥२६९॥
शरर्त्तुनेत्रवस्वब्धिशरवेदाब्धिवेदकैः।
रसनेत्रमितैर्वर्णैस्तत्पदैश्च भवत्यसौ॥२७०॥
मेघाकारं ततो ध्यायेद् भीमदंष्ट्रं त्रिलोचनम्।
भुजङ्गभूषणं रक्तवसनालेपशोभितम्॥२७१॥
परशुं करवालं च बाणं त्रिशिखमेव च।
दधानं दक्षिणैर्हस्तैरूर्ध्वादिक्रमतः परैः।
डमरुं खेटकं चापं नृकपालं च बिभ्रतम्॥२७२॥
काम्यकर्मसु रक्ताभं कृष्णाभमभिचारके।
निग्रहे ग्रहभूतादिमुक्तौ मुक्तानिभं स्मरेत्॥२७३॥

अघोरास्त्र-मन्त्र—अब मैं अघोरास्त्र मन्त्र को कहता हूँ। इक्यावन अक्षरों का वह

मन्त्र है—ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर तर तर प्रतर प्रतर चट चट प्रचट प्रचट कह कह मह मह बन्ध बन्ध घातय घातय हूं हूं। इस मन्त्र के ऋषि अघोर, छन्द उष्णिक्, देवता अघोररुद्र, बीज वं एवं शक्ति ह्रीं कहे गये हैं। मन्त्र के पाँच, छः, दस, दस, आठ एवं बारह वर्णों से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये।

अब पदन्यास को कहा जा रहा है। मन्त्र के ग्यारह पदों का शरीर के इन ग्यारह स्थानों में न्यास करना चाहिये—ललाट, मुख, गला, हृदय, नाभि, कर, जानु, दक्ष-वाम जंघा एवं दक्ष-वाम पाद। यह पदन्यास क्रमशः मन्त्र के पाँच, छः, दो, आठ, चार, पाँच, चार, चार, चार, छः एवं दो वर्णों से करना चाहिये।

तदनन्तर मेघ-सदृश आकृति वाले, भयानक दाढ़ों वाले, तीन नेत्रों वाले, सर्पों का आभूषण धारण किये हुये, रक्त वस्त्र एवं लेप से सुशोभित, दाहिने चार हाथों में ऊपर वाले हाथ से क्रमशः परशु, करवाल, बाण एवं त्रिशिख तथा इसी प्रकार बाँयें हाथों में क्रमशः डमरु, खेटक, चाप एवं नरकपाल धारण किये हुये अघोररुद्र का काम्य कर्मों में रक्तवर्ण, अभिचार कर्मों में कृष्णवर्ण एवं ग्रह-भूत आदि की बाधा उपस्थित होने पर उससे मुक्ति के लिये मुक्ता-सदृश वर्ण वाले स्वरूप का ध्यान करना चाहिये॥२६५-२७३॥

एवं सञ्चिन्त्य देवेशं शिवपीठे पुरोदिते।
षट्कोणान्तःस्थिते पद्मद्वितये भूपुरैर्वृते॥२७४॥
केशरेष्वङ्गपूजा स्याद्देवाग्रादिप्रदक्षिणैः।
डमरुं परशुं खड्गं खेटं बाणं तथा धनुः॥२७५॥
शूलं कपालं ब्राह्म्याद्या द्वितीयेऽष्टदलेऽर्चयेत्।
वीथीद्वये लोकपालांस्तदस्त्राणि च पूजयेत्॥२७६॥
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः।
जुहुयात्तद्दशांशेन तिलैः शुद्धघृतप्लुतैः॥२७७॥
तर्पणं मार्जनं कृत्वा भोजयेन्मधुरैर्द्विजान्।
एवं सिद्धे मन्त्रवरे काम्यकर्माणि साधयेत्॥२७८॥

इस प्रकार ध्यान करते हुये अन्दर में षट्कोण से युक्त एवं बाहर से भूपुर से घिरे दो अष्टदलात्मक कमलों वाले पूर्वोक्त शिवपीठ पर देवेश का पूजन करना चाहिये। केशरों में षडङ्ग-पूजन करने के बाद देवता के आगे से आरम्भ कर प्रदक्षिणक्रम से प्रथम अष्टदल के आठ पत्रों में क्रमशः डमरु, परशु, खड्ग, खेट, बाण, धनुष, त्रिशूल एवं कपाल का पूजन करने के उपरान्त द्वितीय अष्टदल के आठ पत्रों में क्रमशः ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, ऐन्द्री, वाराही, चामुण्डा एवं महालक्ष्मी—इन

अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् भूपुर की प्रथम वीथी में इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्म एवं अनन्त—इन दस लोकपालों का तथा द्वितीय वीथी में उनके सामने वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल, पद्म एवं चक्र—इन दस आयुधों का क्रमशः पूजन करना चाहिये।

तत्पश्चात् हविष्य-भक्षण करने वाले जितेन्द्रिय साधक को मन्त्र का एक लाख जप करने के उपरान्त शुद्ध घृत से प्लुत तिलों से कृत जप का दशांश (दस हजार) हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण एवं मार्जन करके ब्राह्मणों को मिष्ठान्न का भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार से मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर काम्य कर्मों का साधन करना चाहिये॥२७४-२७८॥

क्रमात्सर्पिरपामार्गतिलसर्षपपायसैः ।
साज्यैः सहस्रं प्रत्येकं यामिन्यां जुहुयात्सुधीः ।
होमोऽयं नाशयेत्सद्यो भूतकृत्यादिनायकान् ॥२७९॥
श्वेतकिंशुकनिर्गुण्डी हेमापामार्गसम्भवैः ।
समिद्वरैः कृतो होमः पूर्ववद् द्रुतशान्तिदः ॥२८०॥
अपामार्गाश्वत्थयोश्च पञ्चगव्ये समुक्षिताः ।
समिधो जुहुयात्कृष्णपञ्चम्यां निशि संयतः ।
पृथक्सहस्रहोमेन भूतानां निग्रहो भवेत् ॥२८१॥
क्रमात्सर्पिरपामार्गपञ्चगव्यहविर्घृतैः ।
हुत्वा सहस्रं प्रत्येकं पात्रे सम्पातयेद् द्रुते ॥२८२॥
सम्पातसर्पिषा साध्यं भोजयेद् द्रुतशान्तये ।
अघोरास्त्राह्वयो मन्त्रः सर्वकाम्यानि साधयेत् ॥२८३॥

साधक को घृत, गोघृत-समन्वित अपामार्ग, तिल, सरसों एवं पायस—इन प्रत्येक से रात्रि में एक-एक हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करना चाहिये। यह हवन भूत-कृत्यादि नायकों का तत्काल विनाश कर देता है। इसी प्रकार श्वेत पलाश, निर्गुण्डी, हेम (धत्तूर) एवं अपामार्ग की समिधाओं से अलग-अलग किया गया हवन शीघ्र शान्तिकारक होता है। कृष्णपक्ष की पञ्चमी तिथि की रात्रि में नियमबद्ध होकर पञ्चगव्य से सिञ्चित अपामार्ग एवं पीपल की समिधाओं से अलग-अलग एक-एक हजार हवन करने से भूतों का निग्रह होता है।

साध्य को शीघ्र शन्ति प्रदान करने के लिये सर्पि, अपामार्ग, पञ्चगव्य, हविष्य एवं घृत से अलग-अलग एक-एक हजार हवन करते समय शीघता-पूर्वक पात्र में

सम्पातित (टपकाये गये) घृत को खिलाना चाहिये। इस अघोरास्त्र मन्त्र से समस्त काम्य कर्मों का साधन करना चाहिये॥२७९-२८३॥

पाशुपतास्त्रमन्त्रविधिकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं पाशुपतास्त्रकम्।
तारः श्रीं पशुशब्दान्ते हुंफड्मन्त्रः षडक्षरः॥२८४॥
वामदेवो मुनिः पङ्क्तिश्छन्दः पशुपतिः सुरः।
मन्त्रार्णैः षड्भिरङ्गानि हुंफडन्तैः सबिन्दुकैः॥२८५॥
जातियुक्तानि चाङ्गेषु तथाङ्गुष्ठादिषु क्रमात्।
ध्यायेत्पशुपतिं सम्यङ्मन्त्री चैकाग्रमानसः॥२८६॥
पञ्चवक्त्रं दशभुजं प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनम्।
अग्निज्वालानिभश्मश्रुमूर्द्धजं भीमदंष्ट्रकम्॥२८७॥
खड्गं बाणानक्षसूत्रं शक्तिं परशुमेव च।
दधानं दक्षिणैर्हस्तैरूर्ध्वादि क्रमतः परैः॥२८८॥
खेटचापौ कुण्डिकां च त्रिशूलं ब्रह्मदण्डकम्।
नानाभरणसन्दीप्तं बालचन्द्रैरलंकृतम्॥२८९॥
मध्याह्नार्कसमं ध्यात्वा शिवपीठे तथार्चयेत्।

पाशुपतास्त्र मन्त्र—अब मैं पशुपतास्त्र मन्त्र को कहता हूँ। छः अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ श्रीं पशु हुं फट्। इस मन्त्र के ऋषि वामदेव, छन्द पंक्ति एवं देवता पशुपति कहे गये हैं। अनुस्वार-सहित प्रत्येक मंन्त्र-वर्ण के अन्त में 'हुं फट्' जोड़कर इस प्रकार षडङ्ग-न्यास करना चाहिये—ॐ हुं फट् हृदयाय नमः, श्रीं हुं फट् शिरसे स्वाहा, पं हुं फट् शिखायै वषट्, शुं हुं फट् कवचाय हुं, हुं हुं फट् नेत्रत्रयाय वौषट्, फट् हुं फट् अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास भी करना चाहिये। इसके बाद मन्त्रज्ञ साधक को एकाग्र मन से पाँच मुख एवं दस भुजाओं वाले, प्रत्येक मुख पर तीन नेत्र वाले, अग्निज्वाला-सदृश दाढ़ी-मूँछ एवं केश वाले, भयानक दाढ़ वाले, दाहिनी ओर के हाथों में ऊपर से क्रमशः खड्ग, बाण, अक्षसूत्र, शक्ति एवं परशु तथा बाँयें में क्रमशः खेट (मुसल), चाप, कुण्ड़िका, त्रिशूल एवं ब्रह्मदण्ड़ धारण किये हुये, अनेक आभूषणों से दीप्तिमान, बालचन्द्र से अलंकृत तथा मध्याह्न के सूर्य-सदृश तेज से समन्वित पशुपति का सम्यक् रूप से ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार ध्यान करके पशुपति का शिवपीठ पर पूजन करना चाहिये॥२८४-२८९॥

पद्ममष्टदलं कृत्वा कर्णिकाकेशरान्वितम्॥२९०॥

चतुर्द्वारसमायुक्तं चतुरस्रत्रयावृतम् ।
एवं पात्रे समालिख्य स्वर्णरौप्यादिके शुभे ॥२९१॥
पटे वा फलजे वापि श्रीकण्ठादिसमुद्भवे ।
सर्वोपचारैराराध्य यजेदङ्गानि पूर्ववत् ॥२९२॥
दलेषु मातृकाः पूज्या लोकेशास्त्राणि तद्बहिः ।
पूजयेद्विधिनानेन सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥२९३॥

इसके बाद स्वर्ण, चाँदी के पत्र, वस्त्र अथवा काष्ठफलक पर कर्णिका एवं केशर से युक्त अष्टदल कमल को चार द्वारों एवं तीन रेखाओं से युक्त भूपुर से समन्वित यन्त्र पर समस्त उपचारों से पूजन करने के उपरान्त पूर्ववत् षडङ्ग-पूजन करना चाहिये।

आठ दलों में ब्राह्मी आदि आठ मातृकाओं का एवं भूपुर में इन्द्रादि दस दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार विधि-पूर्वक पूजन करने वाला साधक अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है॥२९०-२९३॥

लक्षषट्कं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः ।
दशांशैर्जुहुयाद्द्रव्यैर्घृताक्तैः संस्कृतेऽनले ।
तर्पणादि ततः कृत्वा प्रयोगार्हो भवेन्मनुः ॥२९४॥
अनेन मन्त्रितं तोयं ग्रहभूतास्पदे क्षिपेत् ।
सद्यस्तं मुञ्चति क्रन्दत्यहो मन्त्रप्रभावतः ॥२९५॥
अनेन मन्त्रितान् बाणान् विसृजेद्युधि भूपतिः ।
जयेत्क्षणेन सकलानरीन्नास्त्यत्र संशयः ।
एवं मन्त्रस्तु संसिद्धो भुक्तिमुक्तिप्रदो भवेत् ॥२९६॥

हविष्य-भक्षण करने वाले जितेन्द्रिय साधक द्वारा मन्त्र का छः लाख जप करने के पश्चात् घृत-सिक्त हवन-सामग्री द्वारा संस्कृत अग्नि में इस मन्त्र से कृत जप का दशांश (साठ हजार) हवन करने के पश्चात् तर्पण आदि करने से यह मन्त्र प्रयोग के योग्य हो जाता है।

इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल का ग्रह-भूत से पीड़ित व्यक्ति पर निक्षेप करने पर मन्त्र के प्रभाववश आश्चर्यजनक रूप से रुदन करते हुये ग्रह-भूतादि उस व्यक्ति को छोड़कर भाग जाते हैं।

राजा यदि इस मन्त्र से अभिमन्त्रित बाणों को युद्ध में प्रक्षिप्त करता है तो क्षण भर में ही वह अपने समस्त शत्रुओं को जीत लेता है; इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं करना चाहिये। इस प्रकार सम्यक् रूप से सिद्ध यह मन्त्र भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला होता है॥२९४-२९६॥

अथास्य भेदं वक्ष्यामि पश्वन्ते पतिशब्दयुक् ।
भवेदष्टाक्षरो मन्त्रो मुन्याद्यं पूर्ववन्मतम् ॥२९७॥
हुं शक्तिः श्रीं च बीजं स्यात्तद्भिन्नैश्च षडक्षरैः ।
प्रणवाद्यैः षडङ्गानि प्राग्वद्ध्यात्वा च पूजयेत् ॥२९८॥
सद्योजातादिभिः पञ्चब्रह्मभिः प्रथमावृतिः ।
षडङ्गैश्च द्वितीया स्यात्तदस्त्राद्यैस्तृतीयिका ॥२९९॥
उमादिभिश्चतुर्थी स्यात्स्वायुधैश्चापि पञ्चमी ।
षष्ठी चेन्द्रादिभिः प्रोक्ता सप्तमी च तदायुधैः ॥३००॥
अष्टलक्षं पुरश्चर्या पायसेन हुनेत्ततः ।
अन्यत्सर्वं प्रयोगादि पूर्ववत्परिकीर्तितम् ॥३०१॥

अन्य पाशुपतास्त्र-मन्त्र—अब मैं इस मन्त्र के दूसरे भेद को कहता हूँ। पूर्वमन्त्र में 'पशु' शब्द के बाद 'पति' शब्द का योग करने पर आठ अक्षरों का मन्त्र होता है—ॐ श्रीं पशुपति हुं फट्। इस मन्त्र के ऋषि आदि पूर्ववत् कहे गये हैं। इसका बीज श्रीं एवं शक्ति हुं होता है; इनके अतिरिक्त सब षडक्षर मन्त्र के समान ही होते हैं। प्रणव से समन्वित मन्त्रवर्णों से षडङ्गन्यास (ॐ ॐ हृदयाय नमः, ॐ पं शिरसे स्वाहा, ॐ शुं शिखायै वषट्, ॐ पं कवचाय हुं, ॐ तः नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ हुं फट् अस्त्राय फट्) करने के पश्चात् पूर्ववत् ध्यान करके इनका पूजन करना चाहिये।

प्रथम आवरण में सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर एवं ईशान—इन पञ्चब्रह्म का पूजन करना चाहिये। द्वितीय आवरण में षडङ्ग पूजन किया जाता है। तृतीय आवरण में अष्टपत्र में उनके अस्त्रों (डमरु, परशु, खेट, बाण-धनुष, त्रिशूल, कपाल) का पूजन करने के बाद चतुर्थ आवरण में नन्दी, महाकाल, गणेश, वृषभ, भृङ्गी, स्कन्द, उमा एवं चण्डेश्वर का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् पञ्चम आवरण में इनके आयुधों का पूजन किया जाता है। षष्ठ आवरण में इन्द्रादि दस दिक्पालों का एवं सप्तम आवरण में उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये।

पुरश्चरण-हेतु मन्त्र का आठ लाख जप करने के उपरान्त पायस से हवन करना चाहिये। अन्य समस्त विधियाँ एवं प्रयोग आदि पूर्ववत् कहे गये हैं॥२०७-३०१॥

विषनाशननीलकण्ठमन्त्रकथनम्

नीलकण्ठमनुं वक्ष्ये समस्तविषनाशनम् ।
शंनींठ इति मन्त्रोऽयं त्रिवर्णः सर्वकामदः ॥३०२॥
अरुणो मुनिरुद्दिष्टोऽनुष्टुप्छन्दस्तु देवता ।
नीलकण्ठः शं च बीजं ठः शक्तिः परिकीर्तिता ॥३०३॥

हरायेति हृदयं च शिरः प्रोक्तं कपर्दिने।
नीलकण्ठायेति शिखा कवचं कालकूटवि ॥३०४॥
षभक्षणाय हुंफट् स्याच्छ्रीकण्ठाय त्रिनेत्रकम्।
अस्त्रं च शितिकण्ठाय स्वाहान्ता इति सम्मताः ॥३०५॥
न्यस्याः षडङ्गमनवश्चाङ्गुष्ठादिषु विन्यसेत्।
मूर्ध्नि कण्ठे च हृदये न्यसेद्बीजत्रयं पुनः ॥३०६॥
ध्यायेद्देवं नीलकण्ठं बालार्कायुतवर्चसम्।
जटाभूतलसच्चन्द्राकारकैः फणिसत्तमैः ॥३०७॥
कृतकल्पकराम्भोजैर्दधानं जपमालिकाम्।
शूलं कपालं खट्वाङ्गमक्षमालां च बिभ्रतम् ॥३०८॥
प्रतिवक्त्रं त्रिनयनं व्याघ्रचर्माम्बरावृतम्।
पद्ममध्ये समासीनमतिसुन्दरविग्रहम् ॥३०९॥
एवं ध्यात्वाऽर्चयेत्पीठे शैवे सर्वोपचारकैः।
पद्मे वसुदले रम्ये चतुरस्रत्रयावृते ॥३१०॥
चतुर्द्वारि पूर्वमङ्गलोकेशानायुधानि च।
एवं प्रपूजयेमन्त्री सर्वकामस्य सिद्धये ॥३११॥
लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं हविष्यैराज्यसंयुतैः।
तद्दशांशं तर्पणादि भोजयेन्मधुरैर्द्विजान् ॥३१२॥

विष-नाशन नीलकण्ठ-मन्त्र—अब मैं समस्त विषों के विनाशक नीलकण्ठ मन्त्र को कहता हूँ। समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाला तीन अक्षरों का वह मन्त्र है—शं नीं ठः। इस मन्त्र के ऋषि अरुण, छन्द अनुष्टुप्, देवता नीलकण्ठ, बीज शं एवं शक्ति ठः कहे गये हैं। इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—हराय हृदयाय नमः, कपर्दिने शिरसे स्वाहा, नीलकण्ठाय शिखायै वषट्, कालकूटविषभक्षणाय हुम्फट् कवचाय हुं, श्रीकण्ठाय नेत्रत्रयाय वौषट्, शितिकण्ठाय स्वाहा अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास करने के पश्चात् मूर्धा, कण्ठ एवं हृदय में तीनों बीजमन्त्रों का न्यास करना चाहिये।

इसके बाद दस हजार बालसूर्य-सदृश तेजःसम्पन्न, जटा में चन्द्राकार नागों को धारण किये हुये, करकमलों में जपमाला, शूल, कपाल खट्वाङ्ग एवं अक्षमाला धारण किये हुये, प्रत्येक मुख पर तीन नेत्रों वाले, व्याघ्रचर्म से आवृत, कमलमध्य में विराजमान, अत्यन्त शोभन शरीर वाले नीलकण्ठ का ध्यान करना चाहिये।

इस प्रकार ध्यान करके शैव पीठ पर समस्त उपचारों से देव का पूजन करना चाहिये। चार द्वारों एवं तीन भूपुरों वाले आठ दलों वाले रमणीय कमल की कर्णिका में षडङ्ग-पूजन करने के उपरान्त आठ दलों में उमा आदि का पूजन करने के बाद भूपुर में इन्द्रादि दस दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। समस्त कामनाओं की सिद्धि के लिये इसी प्रकार से पूजन करना चाहिये। तदनन्तर मन्त्र का तीन लाख जप करने के उपरान्त गोघृत-समन्वित हविष्य से कृत जप का दशांश (तीस हजार) हवन करके तर्पण आदि करने के बाद ब्राह्मणों को मिष्टान्न-भोजन कराना चाहिये॥३०२-३१२॥

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री त्वष्टोत्तरसहस्रकम्।
स्पृष्ट्वा जपेद्विषग्रस्तं तत्क्षणान्निर्विषो भवेत् ॥३१३॥
बीजाभ्यां प्रथमान्त्याभ्यां पार्श्वयोर्विषमाहरेत् ॥३१४॥
एवं मन्त्राभिजपितकलशोदकसेचनात्।
तक्षकेणापि सन्दष्टस्तत्क्षणान्निर्विषो भवेत् ॥३१५॥
विलोक्य विषिणं मन्त्रं प्रजपेत्सुसमाहितः।
विषद्वयान्मुच्यतेऽसावचिरान्नात्र संशयः ॥३१६॥
दृष्ट्वा च डुण्डुभग्रस्तं स्वशिरःकण्ठहृत्सु च।
मनुवर्णत्रयं न्यस्य देवतारूपकं गुरुम् ॥३१७॥
स्मरेत्स्वदक्षिणानामामध्यमातर्जनीषु च।
मन्त्राक्षरत्रयं न्यस्य तदङ्गुलिभिरुत्तमम् ॥३१८॥
त्रिशूलमुद्रामासाद्य ग्रस्तस्याभिमुखं नयेत्।
प्रदर्श्य मन्त्रं प्रजपेत्पञ्चाशद्वारमत्र तु ॥३१९॥
स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं च तथा विषम्।
रोगग्रहाद्यपस्मारानपमृत्युं च नाशयेत् ॥३२०॥
पञ्चाशन्मनुना जप्तमन्नमौषधमेव च।
भक्षितं चेत्तु रोगादिनाशनं परमं मतम्।

मन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार से सिद्ध मन्त्र का विषार्त व्यक्ति को स्पर्श करते हुये यदि एक हजार जप करता है तो वह व्यक्ति तत्काल ही विष के प्रभाव से मुक्त हो जाता है। प्रथम एवं अन्तिम बीज (शं, ठः) के जप से विषार्त्त के दोनों पार्श्वों को विषमुक्त किया जाता है। इसी प्रकार मन्त्रजप से अभिमन्त्रित कलशजल से स्नान कराने पर तक्षक द्वारा दष्ट व्यक्ति भी सद्यः विषमुक्त हो जाता है। विषग्रस्त व्यक्ति को देखकर

एकाग्र मन से जप करने पर दोनों प्रकार के विष का प्रभाव तत्काल समाप्त हो जाता है; इसमें कोई संशय नहीं है।

मस्तक, कण्ठ और हृदय को डुण्डुभ (डोंड़) सर्प से ग्रस्त देखकर मन्त्र के तीनों वर्णों का उक्त तीनों स्थानों में न्यास करने के बाद देवता-स्वरूप गुरु का स्मरण करके अपने दाहिने हाथ की अनामा, मध्यमा और तर्जनी में तीनों मन्त्राक्षरों का न्यास करके उनसे उत्तम त्रिशूल मुद्रा बनाकर सर्पग्रस्त व्यक्ति को दिखाकर मन्त्र का पचास बार जप करने से स्थावर, जङ्गम एवं कृत्रिम—तीनों प्रकार के विष, रोग, ग्रह आदि, अपस्मार एवं अपमृत्यु को विनष्ट कर देता है। इस मन्त्र के पचास जप से अभिमन्त्रित अन्न अथवा औषध का भक्षण करने से रोगों का पूर्णतः विनाश होता है॥३१३-३२०॥

ॐ नमो नीलकण्ठाय मनुरष्टाक्षरः परः।
मुनिर्ब्रह्मा च गायत्री छन्दो देवः प्रकीर्तितः॥३२१॥
नीलकण्ठो ध्यानपूजाजपाद्यं पूर्ववन्मतम्।
प्रयोगाश्च विशेषेण महाविषहराः स्मृताः॥३२२॥

नीलकण्ठ का अष्टाक्षर मन्त्र—'ॐ नमो नीलकण्ठाय' यह नीलकण्ठ का अष्टाक्षर मन्त्र कहा गया है। इस अष्टाक्षर मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री और देवता नीलकण्ठ कहे गये हैं। इसके ध्यान, पूजन, जप आदि पूर्ववत् होते हैं। इसका प्रयोग विशेषतया घोर विषों की स्थिति में किया जाता है॥३२१-३२२॥

स एव वह्निजायान्तो दशवर्णः प्रकीर्तितः।
अरुणोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्रं देवता महान्॥३२३॥
नीलकण्ठोऽस्य बीजं तु तारः शक्तिर्दहप्रिया।
हुं नमो नीलकण्ठाय शिरः स्वाहा नमस्त्विति॥३२४॥
शिखां नमो नीलकण्ठाय नमः कवचं मतम्।
स्वाहा नमो नेत्रमिति ॐ नमोऽस्त्रं समीरितम्॥३२५॥
दक्षिणं पादमारभ्य वामपादावधि क्रमात्।
वर्गाष्टकं न्यसेन्मन्त्री पादोरुगुल्फसन्धिषु॥३२६॥
हृत्कण्ठमुखशीर्षेषु न्यसेद्वर्गाष्टकं पुनः।
पूर्वाद्यैराननैर्युक्तः पीतश्वेतारुणासितैः॥३२७॥
अभयं परशुं चापं वासुकिं च दधद्भुजैः।
ध्येयो देवोऽस्य पार्श्वस्था गौरी चाप्यतिसुन्दरी॥३२८॥

संहारनिर्विषस्तम्भावेशान् कुर्यात्क्रमान्मुखैः ।
दशलक्षं पुरश्चर्या सर्वत्राक्षरवन्मता ॥३२९॥
मन्त्राक्षराणि हृत्पृष्ठे के कण्ठे कुक्षियुग्मके ।
हृदि बाह्वोर्नेत्रयोश्च मस्तके च क्रमाद्यजेत् ॥३३०॥
विषाक्रान्तस्य पूर्वोक्तमीशं ध्यायञ्छताष्टकम् ।
जपेन्मन्त्रं दृशा सर्वविषाणां वारणम्भवेत् ॥३३१॥

नीलकण्ठ का दशाक्षर मन्त्र—उपर्युक्त अष्टाक्षर मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' लगा देने से वही मन्त्र दस अक्षरों वाला (ॐ नमो नीलकण्ठाय स्वाहा) हो जाता है। इस दशाक्षर मन्त्र के ऋषि अरुण, छन्द गायत्री एवं देवता महान् नीलकण्ठ कहे गये हैं। इसका बीज ॐ एवं शक्ति स्वाहा है। इसका षडङ्ग न्यास इस प्रकार किया जाता है—ॐ नमो हृदयाय नमः, नीलकण्ठाय शिरसे स्वाहा, स्वाहा शिखायै वषट्, ॐ नमो कवचाय हुम्, नीलकण्ठाय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्। तदनन्तर पाद, ऊरु, गुल्फ, सन्धिस्थल, हृदय, कंण्ठ, मुख एवं शीर्ष में क्रमशः वर्गाष्टकों (अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग एवं शवर्ग) का न्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् पीत, श्वेत, अरुण एवं कृष्ण वर्ण वाले पूर्व आदि मुखों से युक्त, हाथों में अभय, परशु, चाप एवं वासुकी को धारण किये हुये देव का ध्यान करना चाहिये। उनके बगल में अत्यन्त सुन्दरी गौरी विराजमान हैं और वे अपने मुखों से क्रमशः संहार, निर्विषीकरण, स्तम्भन एवं आवेशन करते हैं।

वर्णलक्ष के नियम से दश लाख मन्त्रजप से इसका पुरश्चरण कहा गया है। विष से आक्रान्त व्यक्ति के हृदय, पृष्ठ, मस्तक, कण्ठ, कुक्षियुग्म, हृदय, बाहुयुग्म, नेत्रयुग्म एवं मस्तक में मन्त्राक्षरों का क्रमशः पूजन करके पूर्वोक्त देव का ध्यान करते हुये मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने के पश्चात् साधक द्वारा विषार्त्त व्यक्ति को देखने मात्र से ही उसे समस्त विषों से मुक्ति मिल जाती है॥३२३-३३१॥

अथाऽन्यो वक्ष्यते मन्त्रो नानाकार्यकरः परः ।
तारो नमो भगवते सर्वज्ञेतिपदं वदेत् ॥३३२॥
कण्ठं निं नीलकण्ठाय अमलेति पदं वदेत् ।
ङेऽन्तं द्विः क्षिप ॐ स्वाहा चोनत्रिंशाक्षरो मनुः ॥३३३॥
विमलोऽस्य मुनिः प्रोक्तः कृतिश्छन्द उदाहृतम् ।
अमलाख्यो नीलकण्ठो रुद्रो देवः प्रकीर्तितः ॥३३४॥
स्वाहा शक्तिस्तु वौं बीजं मन्त्रार्णैरङ्गपञ्चकम् ।
सप्तभिः पञ्चभिः षड्भिश्चतुर्भिश्चापि सप्तभिः ॥३३५॥

ध्यानार्चनादिकं सर्वं पूर्ववत्समुदाहृतम् ।
लक्षमेकं पुरश्चर्या हुनेदाज्यं दशांशतः ॥३३६॥

नीलकण्ठ के विविध कार्यकर मन्त्र—अब मैं अनेक कार्यों का साधन करने वाले नीलकण्ठ के मन्त्र को कहता हूँ। उन्तीस अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमो भगवते सर्वज्ञकण्ठ निं नीलकण्ठाय अमलाय क्षिप क्षिप ॐ स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि विमल एवं छन्द कृति कहा गया है। देवता अमल नीलकण्ठ रुद्र कहे गये हैं। बीज वौं एवं शक्ति स्वाहा कही गई है। मन्त्र के सात, पाँच, छः, चार एवं सात वर्णों से इसका पञ्चाङ्गन्यास कहा गया है। ध्यान-पूजन आदि सभी पूर्ववत् कहे गये हैं। मन्त्र के एक लाख जप एवं गोघृत द्वारा कृत जप के दशांश हवन से इसका पुरश्चरण होता है॥३३२-३३६॥

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री दशवाराञ्जपेद्यदि ।
दुष्टं विषं द्रव्यसंस्थं हरेदत्र न संशयः ॥३३७॥
जप्त्वा पञ्चदशोन्मानं हरेद् वृश्चिकजं विषम् ।
विषमूषीविषं हन्ति जपः सप्तदशोन्मितः ॥३३८॥
अष्टादशजपाद्धन्याद्विसर्पं नात्र संशयः ।
एकविंशतिजापेन त्वभिचारक्षयो भवेत् ॥३३९॥
परन्तस्य जपाद्धन्ति षड्विंशात्सूतिकागदम् ।
दन्तमूलगदं त्रिंशच्चतुस्त्रिंशच्च शीतलाम् ।
षट्त्रिंशच्च शिरोरोगं गर्भदुःखं खवेदतः ।
नेत्ररोगं वेदवेदैः खबाणैः सकलं विषम् ॥३४०॥
शतसङ्ख्याकजापेन सर्वरोगविनाशनम् ।
अग्निना निहतानान्तु जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥३४१॥

मन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार सिद्ध मन्त्र का यदि दस बार जप करता है तो किसी भी द्रव्य (पदार्थ) में विद्यमान दुष्ट विष को विनष्ट कर देता है; इसमें कोई संशय नहीं है। मन्त्र के पन्द्रह जप से बिच्छू के विष का हरण कर लेता है एवं सत्रह जप से विषैले चूहों के विष का समापन कर देता है। मन्त्र के अट्ठारह जप से रेंगने वाले जीवों के विष का निश्चित रूप से हनन हो जाता है एवं इक्कीस जप से अभिचारकर्म का नाश हो जाता है।

मन्त्र के छब्बीस जप से सूतिका-रोगों का विनाश होता है। दन्तमूल (मसूड़ा) के रोग तीस जप से नष्ट होते हैं एवं चौंतीस जप से शीतला का प्रकोप (चेचक) शान्त हो जाता है। छत्तीस जप से शिरोरोग एवं इकतालीस जप से गर्भदुःख का शमन

होता है। मन्त्र के चौवालीस जप से नेत्ररोगों का एवं इक्यावन जप से समस्त विषों का अन्त हो जाता है। मन्त्र का एक सौ जप समस्त रोगों का विनाशक होता है। अग्नि से जले व्यक्ति को स्वस्थ करने के लिये मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये॥३३७-३४१॥

अथ चिन्तामणेः कूटं प्रवक्ष्याम्यतिसिद्धिदम्।
यद्यत्प्रोक्तं वैदिकानां तत्तत्सिद्धिविधायकम्॥३४२॥
प्रथमः प्रणवः सप्त वेदनेत्रैश्चतुर्दशम्।
षष्टिबिन्दुयुतं कूटं प्रोक्तं दक्षिणमार्गिणाम्॥३४३॥
चत्वारश्चापि चत्वार एकवेदद्विवर्णकाः।
द्वितीयः स्वरबिन्दुभ्यां युक्तः कूटमुदाहृतम्॥३४४॥
शैवादीनां वामिनां तु तुर्यवर्णं समुच्चरन्।
एकोनत्रिंशकञ्चैतत्सप्तवेदाक्षिसम्मितम्॥३४५॥
ततः स्वराः समुच्चार्याः शक्रास्तु तिथिसम्मिताः।
एतत्कूटं समुद्दिष्टं मुन्याद्यमथ कथ्यते॥३४६॥
कश्यपोऽस्य मुनिश्छन्दोऽनुष्टुब्देव उमापतिः।
बीजं क्षकारो रः शक्तिर्मकारः कीलकं मतम्॥३४७॥
रेफादिव्यञ्जनैः षड्भिः कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात्।
विद्रुमारक्तवामार्धदेहं नीलाम्बराङ्गकम्॥३४८॥
अधिगङ्गाशशाङ्कार्धं विलसत्तुङ्गमौलिकम्।
हावभावविलासार्धनारीरूपं महेश्वरम्॥३४९॥
त्रिशूलपाणिं पद्मानि नृकपालं करेषु च।
भीषणं परदेहार्धमालालेपविराजितम्॥३५०॥
एवं ध्यात्वा यजेत्पीठे शैवे सर्वोपचारकैः।
अङ्गानि पूजयेदादौ वामेऽष्टदलकेशरे॥३५१॥
अर्चयेदष्टपत्रेषु कार्तवीर्यवृषादिकान्।
ब्राह्म्याद्या मातरः पूज्या द्वितीयेऽष्टदले पुनः॥३५२॥
लोकेशांश्च तदस्त्राणि प्राग्वद्वीथीद्वये यजेत्।
पूजाद्रव्यादिकं ग्राह्यं स्वस्वाम्नायविभेदतः॥३५३॥

चिन्तामणि कूट—अब मैं चिन्तामणि के अत्यन्त सिद्धिप्रद कूट को कहता हूँ; जो कि वैदिकमार्ग से भी अभीष्टसिद्धि-प्रदायक है। दक्षिणमार्गियों के लिये प्रथम कूट

साठ बिन्दुओं से समन्वित सात, चार, दो एवं चौदह प्रणव से कहा गया है। स्वर एवं बिन्दु से समन्वित चार, चार, एक, चार एवं दो वर्णों वाला द्वितीय कूट कहा गया है। शैवों एवं वाममार्गियों के लिये सात, चार एवं दो वर्णों से समन्वित उन्तीस चतुर्थ वर्ण का उच्चारण करते हुये तिथिसम्मित चौदह स्वरों के उच्चारण से कूट बनते हैं।

इस कूट के ऋषि कश्यप, छन्द अनुष्टुप् ण्वं देवता उमापति हैं। बीज क्षकार, शक्ति रकार एवं कीलक मकार है। रेफादि छः व्यजनों से क्रमशः इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—ऊपर से आती हुई गंगा एवं अर्धचन्द्र से सुशोभित उन्नत शीर्ष वाले, अपने हाव-भाव एवं विलासों से आधे स्त्री के स्वरूप वाले, हाथों में त्रिशूल, पद्म एवं भयंकर नरकपाल लिये हुये, दूसरे आधे शरीर पर माला एवं अंगराग के लेप से सुशोभित महेश्वर का ध्यान करके शैव पीठ पर समस्त उपचारों से उनका अर्चन करना चाहिये। तदनन्तर प्रथमतः अष्टदल के केशरों में षडङ्ग-पूजन करने के उपरान्त आठ दलों में कार्तवीर्य, वृषभ आदि का यजन करने के बाद द्वितीय अष्टदल में ब्राह्मी आदि आठ मातृकाओं का पूजन करना चाहिये।

इसके बाद भूपुर की दोनों वीथियों में क्रमशः इन्द्रादि दस दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। पूजन-हेतु पूजाद्रव्यों का ग्रहण अपने-अपने आम्नाय के अनुसार करना चाहिये।।३४२-३५३।।

शैवादिभिर्वामिभिश्च ध्यायेदष्टभुजं शिवम्।
परशुं पन्नगं शूलं कपालं च शरासनम्।।३५४।।
शरान् वह्निं च खड्गं च दधतं स्त्रीविलासिनम्।
गङ्गातरङ्गविलसच्चन्द्रखण्डाभिशेखरम्।।३५५।।
त्रिनेत्रं त्रिदशैः पूज्यां चिन्तयेत्पार्श्वगां शिवाम्।
अरुणामरुणाकल्पामरुणांशुकधारिणीम्।।३५६।।
अरुणाम्बुजमालाढ्यां त्रिनेत्रां सद्विभूषणाम्।
शूलैः षोडशभिर्व्यग्रभुजषोडशमण्डिताम्।।३५७।।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं त्रिमध्वक्तैः सतण्डुलैः।
तिलैर्दशांशं जुहुयात्तर्पणादि ततश्चरेत्।
एवं संसिद्धमन्त्रस्य प्रयोगो वक्ष्यतेऽधुना।।३५८।।
रेफस्थाने हंस इति पदं दत्त्वा जपेन्मनुम्।
शीघ्रं तेन भवेत्सिद्धिर्ज्ञानं च विषनाशनम्।
प्रसाद्य यो जपेन्मन्त्रमयुतं भाग्यदायकम्।।३५९।।

ततो नाशो भवेत्सद्यो भूतादीनां रुजामपि।
द्विधा ग्रहार्तो जपति बीजमेतन्न संशयः।
त्रिकोणं चिन्तयेन्मूर्ध्नि ग्रस्तस्याग्न्यर्कसन्निभम्॥३६०॥
तन्मध्ये चिन्तयेद्बीजं ग्रहानावेशयेत्तदा।
एतन्मन्त्राभिजपितं बन्धुजीवप्रसूनकम्।
ग्रस्तस्य मूर्ध्नि क्षिप्तं च क्षणादावेशकारकम्॥३६१॥

शैवों एवं वाममार्गियों को आठ भुजाओं से समन्वित शिव का ध्यान करना चाहिये। वे अपने हाथों में क्रमशः परशु, नाग, शूल, कपाल, शरासन, बाण, अग्नि एवं खड्ग धारण किये रहते हैं, स्त्री-रमण करने वाले हैं, उनके शीर्ष पर गंगातरङ्ग से सुशोभित चन्द्रखण्ड़ विराजमान है एवं तीन नेत्रों वाले हैं। उनके बगल में अरुण वर्ण वाली, अरुण वस्त्रधारिणी, लाल कमलों की माला से सुशोभित, देवताओं द्वारा पूजनीया शिवा का चिन्तन करना चाहिये। तीन नेत्रों वाली वे शिवा सम्यक्तया विभूषित हैं और अपनी चलायमान सोलह हाथों में सोलह शूल धारण की हुई हैं। इस प्रकार ध्यान करके मन्त्र का एक लाख जप करने के उपरान्त त्रिमधु-सिक्त तिल-तण्डुल से कृत जप का दशांश (दस हजार) हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण आदि करना चाहिये।

इस प्रकार से सम्यक् रूप से सिद्ध किये गये मन्त्र द्वारा किये जाने वाले प्रयोगों को अब कहा जा रहा है। रेफ के स्थान पर 'हंस' पद लगाकर मन्त्रजप करने से शीघ्र सिद्धि-प्राप्ति के साथ-साथ विष को नष्ट करने का ज्ञान प्राप्त होता है। प्रसादमन्त्र (हौं) लगाकर मन्त्र का यदि दस हजार जप किया जाता है तो वह सौभाग्य प्रदान करने वाला होता है। ग्रह-पीड़ित व्यक्ति यदि इस बीज का जप करता है तो भूत-प्रेतादि के साथ-साथ उसके रोगों का भी सद्यः विनाश हो जाता है; इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये।

अपने शीर्ष पर अग्नि से ग्रस्त सूर्य-सदृश त्रिकोण का चिन्तन करते हुये उसके मध्य में बीज का चिन्तन करके वहीं पर ग्रहों को प्रविष्ट कराकर इस मन्त्र से अभिमन्त्रित बन्धुजीव-पुष्प को ग्रहग्रस्त व्यक्ति के शीर्ष पर प्रक्षिप्त करने से वह तत्क्षण ही आवेशयुक्त हो जाता है॥३५४-३६१॥

पौष्टिके शान्तिके मन्त्रं शुक्लवर्णं विचिन्त्य च।
सकारमादौ संयोज्य जपेत्सिद्धिः प्रजायते॥३६२॥
आपुष्टौ च वशीकारे रक्तं रेफादिकं तथा।
हकाराद्यं च हेमाभं स्तम्भने चैव चिन्तयेत्॥३६३॥

धूम्रवर्णं यकाराढ्यं विद्वेषोच्चाटयोरपि।
शुद्धस्फटिकसङ्काशो ध्येय उग्रो मुमुक्षुभिः ॥३६४॥
अकारादिः प्रजप्तव्यः स मन्त्रो देशिकैः सदा।
वायुमण्डलमध्यस्थं मन्त्रं कृष्णं विचिन्तयेत् ॥३६५॥
नेत्रयोर्विषमं त्वान्ध्यं बाधिर्यं कर्णयोरपि।
कुक्षौ शूलं मुखे छर्दिं कुर्याद्वायुं च मर्मसु ॥३६६॥
चिन्तयेत् कण्ठमालायां चतुरस्रस्य मध्यगम्।
चन्द्रमण्डलमध्यस्थं स्वरैः षोडशभिर्युतम् ॥३६७॥
नेत्रोत्पातं नेत्ररोगं हरत्याशु न संशयः।
रक्तस्रावं कृशाङ्गीनां योनौ ध्यानं हरेत्क्षणात् ॥३६८॥
कुक्षौ ध्यानं च शूले स्याद्विस्फोटविषमज्वरे।
तथा रक्तामये चैवमामे दाहे शिरोगदे।
स्मरेद्यन्त्रं बाहुगतं तत्र तद्दोषशान्तये ॥३६९॥
अत्यारक्तं त्रिकोणान्तःस्थितं यन्मूर्ध्नि चिन्तयेत्।
निधाय पाणिं सा वश्या योषाकर्षणमुच्यते।
दुष्टाङ्गनाहृदम्भोजे स्थितं मन्त्रं विचिन्त्य च ॥३७०॥
मन्त्रवर्णैरथो बद्ध्वा तेजोरूपां च तां स्मरेत्।
तच्छीर्षकेशपाशेनाकर्षयेद्योषितं ध्रुवम्।
वशयेत्तत्क्षणाद्योषां स्रावयेच्छुक्रमेव च ॥३७१॥
निजलिङ्गशिरःस्थं च बीजं सञ्चिन्तयेत्तदा।
प्रवेशयेद्योनिमध्ये तत्संसर्गाच्च सा वशा ॥३७२॥

पौष्टिक एवं शान्तिकर्म-हेतु में शुक्ल वर्ण के मन्त्र का चिन्तन करते हुये आरम्भ में सकार का योग कर जप करने से सिद्धि प्राप्त होती है। वशीकरण-हेतु रक्त वर्ण मन्त्र का चिन्तन करते हुये जप-पूर्व मन्त्र के आरम्भ में रेफ का संयोजन करना चाहिये। स्तम्भन कर्म-हेतु स्वर्णवर्ण मन्त्र का चिन्तन करते हुये जप-पूर्व मन्त्र के आदि में हकार का संयोजन करना चाहिये। विद्वेषण एवं उच्चाटन-हेतु धूम्रवर्ण मन्त्र का चिन्तन करते हुये आदि में यकार लगाकर जप करना चाहिये। मोक्षकामियों को शुद्ध स्फटिक-सदृश वर्ण वाले उग्र स्वरूप मन्त्र का जप करना चाहिये।

देशिकों को आरम्भ में अकार का संयोजन करके सदा उस मन्त्र का जप करना चाहिये। वायुमण्ड़ल के मध्य में अवस्थित कृष्णवर्ण वाले मन्त्र का ध्यान करना

चाहिये। वायु आँखों को छोटा-बड़ा एवं अन्धापन, कानों में बधिरता, कुक्षि में शूल, मुख में छर्दि (वमन) एवं मर्मों में पीड़ा उत्पन्न करने वाला होता है। चतुरस्र-मध्य में स्थित मन्त्र का कण्ठमाला में चिन्तन करना चाहिये।

चन्द्रमण्डल-मध्यस्थित मन्त्र का सोलह स्वरों से युक्त चिन्तन करना चाहिये; यह नेत्रों के उपद्रव एवं नेत्ररोग को तत्क्षण दूर कर देता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। कृशाङ्गियों की योनि में मन्त्र का ध्यान करने से तत्क्षण ही उनका रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

शूल, विस्फोट एवं विषम ज्वर की स्थिति में कुक्षि में मन्त्र का ध्यान करना चाहिये। रक्त-सम्बन्धी रोग, आम (अजीर्ण), दाह एवं शिरोरोग की स्थिति में तत्तत् दोषों की शान्ति के लिये इसके यन्त्र का बाहु में स्मरण करना चाहिये। साधक द्वारा त्रिकोण के भीतर अवस्थित अतीव रक्तवर्ण-स्वरूप मन्त्र का शीर्ष पर चिन्तन करते हुये हाथ रखने से वह (अभीप्सित स्त्री) उसके वशीभूत हो जाती है। अब स्त्रियों के आकर्षण को कहते हैं।

दुष्ट स्त्रियों के हृदय-कमल में स्थित मन्त्र का चिन्तन करते हुये उसे मन्त्रवर्णों से आबद्ध करके तेजःस्वरूपा उस स्त्री का चिन्तन करने पर वह मन्त्र निश्चित ही उस स्त्री की केशराशि को पकड़कर साधक के पास खींच लाती है। मन्त्रप्रभाववश तत्क्षण ही वह स्त्री उसके वशीभूत हो जाती है और शुक्र-स्राव करने लगती है। उस समय अपने लिङ्ग के शीर्ष पर बीज का चिन्तन करते हुये उसकी योनि में लिङ्ग-प्रवेश कराने से उस संसर्ग से वह स्त्री वशीभूत हो जाती है॥३६४-३७२॥

कुलालमृदमानीय तत्र बीजं समालिखेत्।
तन्मकारस्य रेफे तु साध्याख्यां कर्मसंयुताम्॥३७३॥
विलिख्य तत्त्रिकोणेन वेष्टयेत्तद्बहिस्तथा।
षट्कोणैकं समावेष्ट्य षट्कोणे तु समाचरेत्॥३७४॥
रेफं सबिन्दुकं तच्च विलोमैर्वेष्टयेत्स्वरैः।
प्राणप्रतिष्ठा कृत्वास्य चुल्ल्यधो निखनेत्ततः॥३७५॥
स वश्यो जायते क्षिप्रं तत्सिद्धान्नस्य भक्षणात्।
पतिः प्रियायाः कुरुते तदाज्ञां दासवत्सदा॥३७६॥
मधुरत्रययुक्तेन शालिपिष्टेन पुत्तलीम्।
प्रपदाभ्यां च जङ्घाभ्यां जानुभ्यामूरुयुग्मतः॥३७७॥
नाभेरधस्तद्धृदयात्कण्ठादाशीर्षकं ततः।
एवं द्वादशधा छित्त्वा तीक्ष्णशस्त्रेण संहुनेत्॥३७८॥

मूलमन्त्रेण स क्षिप्रं वश्यः स्याज्जीवितान्तकम्।
चतुरस्रे नागवल्लीदले कृत्वास्य मध्यतः।
वकारमध्यसाध्याख्यां लिखित्वा मनुमध्यतः ॥३७९॥
कामराधः स्थितो रेफस्तदधश्चतुरस्रकम्।
लिखेत्तस्य चतुष्कोणे ठकारं बिन्दुभूषितम् ॥३८०॥
विलिख्य स्थापितप्राणं मूलमन्त्राभिमन्त्रितम्।
अष्टोत्तरसहस्रेण शिरोरोगी प्रभक्षयेत् ॥३८१॥
शिरोरोगविनिर्मुक्तो यावज्जन्म भवेत्सुखी।

कुम्हार के यहाँ से मिट्टी लाकर उस पर बीज का अंकन करके उसके मकार के रेफ में त्रिकोण बनाकर कर्म-सहित साध्य-नाम का अंकन करना चाहिये। पुन: उसके बाहर एक षट्कोण बनाकर उस षट्कोण में बिन्दु-सहित रेफ को विलोम स्वरों से वेष्टित करने के बाद उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करके उसे चूल्हे के नीचे जमीन में गाड़ देना चाहिये। उस चूल्हे पर पाक किये गये अन्न का भक्षण करने वाला शीघ्र ही साधक का वशवर्त्ती हो जाता है और स्त्री का पति दास के समान उसकी आज्ञा का पालन करने लगता है।

चावल को मधुरत्रय (शक्कर, शहद, घी) में पीस कर उससे पुत्तलि का निर्माण करने के पश्चात् उसे तेज धार वाले हथियार से बारह टुकड़ों में इस प्रकार विभक्त कर देना चाहिये—दोनों पाँव गुल्फों तक=दो, गुल्फ से घुटनों तक=दो, घुटनों से जाङ्घों तक=दो, जाङ्घों से ऊरु तक=दो, ऊरु से नाभि तक=एक, नाभि से हृदय तक=एक, हृदय से कण्ठ तक=एक, कण्ठ से मस्तक तक=एक। इस प्रकार किये गये बारह टुकड़ों से मूल मन्त्र द्वारा हवन करने पर वह साध्य आजीवन साधक का वशवर्ती हो जाता है।

पान के पत्ते पर चतुरस्र बनाकर उसके मध्य में 'व' के पेट में साध्य-नाम लिखकर चतुरस्र के नीचे 'क्लीं' और 'रां' लिखने के बाद चतुरस्र के चारो कोणों में ठं ठं ठं ठं लिखकर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करने के पश्चात् मूल मन्त्र के एक हजार आठ जप द्वारा अभिमन्त्रित करके उसे शिरोरोगी को खिलाने से उसका शिरोरोग नष्ट हो जाता है और वह जीवन-पर्यन्त सुखी रहता है॥३७३-३८१॥

सरेफेण ककारेण कण्ठे साध्यस्य बन्धयेत् ॥३८२॥
वक्षःस्थलं ककारेण वामं चापि मकारतः।
दक्षांसं रेफतो वामं तथैव च वकारतः ॥३८३॥

ठौकारेण मुखं नाभिं डकारेण प्रबन्धयेत्।
वक्षो बिन्द्वर्धचन्द्राभ्यां बद्ध्वा कर्षन्स्मरेद्धिया।
मरणान्तं स वश्यः स्यादचिरान्नात्र संशयः ॥३८४॥
बन्धुजीवस्य पुष्पेण त्रिकोणं रचयेल्लिखेत्।
तत्पुष्पेण च तद्बीजं चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ॥३८५॥
अस्मिन् संस्थाप्य तत्रैव पूजयित्वा हुनेच्च तैः।
अष्टोत्तरशतं तस्य सम्पातं पातयेत्ततः ॥३८६॥
त्रिलोहं मुष्टिकायां तु पुनस्तमभिमन्त्रयेत्।
अष्टोत्तरसहस्रेण तं करे धारयेन्नृपः ॥३८७॥
जयेत्स युधि भूपालान् दुर्जयान् प्रधनेऽपि च।
विषवेतालभूतादिदुरितैर्बाध्यते न च ॥३८८॥
पञ्चविंशत्सुवर्णस्य रजतस्य तु षोडश।
भागा दशैव ताम्रस्य त्रिलोहोऽत्र प्रकीर्तिता: ॥३८९॥

साध्य के कण्ठ को 'क्र' से बद्ध करने के बाद वक्ष:स्थल के वाम भाग को 'क' से एवं दक्षभाग को 'म' से, दाँयें कन्धे को 'र' से एवं बाँयें कन्धे को 'व' से, मुख को 'ठौ' से, नाभि को 'ड' से तथा वक्ष को बिन्दु एवं अर्धचन्द्र से बद्ध करके खींचते हुये मन में स्मरण करने पर वह साध्य शीघ्र ही जीवन-पर्यन्त के लिये उसके वशीभूत हो जाता है।

बन्धुजीव के पुष्पों से त्रिकोण बनाकर उसके मध्य में बन्धुजीव-पुष्प द्वारा ही चन्दन, अगुरु एवं कुंकुम से मन्त्रबीज का अंकन करने के बाद वहीं पर सम्यक् रूप से उसका स्थापन-पूजन करने के पश्चात् बन्धुजीव के पुष्पों द्वारा ही एक सौ आठ बार हवन करने के बाद उसके सम्पात को गिरा देना चाहिये। पुन: त्रिलोह की अँगूठी को मुट्ठी में लेकर मन्त्र के एक हजार आठ जप से अभिमन्त्रित करने के पश्चात् उसे धारण करने वाला राजा युद्ध में दुर्जय शत्रु को भी उसके धन-सहित जीत लेता है; साथ ही वह भयंकर विष, वेताल, भूत आदि द्वारा कभी भी बाधित नहीं होता।

यहाँ पच्चीस भाग सोना, सोलह भाग चाँदी और दस भाग ताँबा के मिश्रण को त्रिलोह कहा गया है॥३८२-३८९॥

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि मुनिभिर्यदुपासितम्।
अन्त्यसप्तमवेदाक्षिवर्णषष्ठस्वरान्वितम् ॥३९०॥
बिन्दुयुक्तं भवेत्कूटं मुन्याद्याः पूर्ववन्मताः।
षड्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गविधिरीरितः ॥३९१॥

अङ्गुल्यादिकरान्तं च करन्यासं ततश्चरेत्।
मूलाद्यन्तं तु भूकूटं कनिष्ठायां पुनर्न्यसेत् ॥३९२॥
ततश्चत्वारि बीजानि तथैवानामिकादिषु।
क्षकारं मूलबीजं तु भसहाभिसमन्वितम् ॥३९३॥
चत्वार्येतानि बीजानि क्रमात्तेषां तु देवताः।
जयाख्या विजयाख्या च ह्यजिता चापराजिता ॥३९४॥
पादान्मूर्द्धावधि न्यस्येन्मुष्टिकामूलमन्त्रकम्।
मूर्द्धादिपादपर्यन्तं तलाभ्यां व्यापकं न्यसेत् ॥३९५॥
षडङ्गानि पुनर्न्यस्य देवं देवीं च पूजयेत्।
शिरोवदनहृन्नाभिगुदेष्वेवं क्रमान्न्यसेत् ॥३९६॥
ध्यायेत्सूर्यप्रतीकाशं प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनम्।
चन्द्रार्धालंकृतं हस्तैश्चतुर्भिर्दधतं क्रमात्।
सृणिं पाशं कपालं च खट्वाङ्गं रत्नभूषितम् ॥३९७॥
रक्ताङ्गं रक्ताभरणांशुकं चिपिटनासिकम्।
शैवपीठे यजेद्देवं वक्ष्यमाणेन चात्मना ॥३९८॥
नपुंसकस्वरैर्विद्वाननुलोमविलोमगैः।
धर्मादिकैरधर्माद्यैः पादगात्राणि कल्पयेत् ॥३९९॥
इकारेण यजेद्देवीतत्त्वरूपगुणानपि।
चतुर्थपञ्चमाभ्यान्तु मायाविद्यामयो भवेत् ॥४००॥

अब मैं मुनियों द्वारा उपासित अन्य कूट को कहता हूँ। षष्ठ स्वर (ऊ) से समन्वित अन्तिम, सप्तम, चतुर्थ एवं द्वितीय वर्ण को बिन्दु से युक्त करने पर यह कूट बनता है। इस कूट के ऋषि आदि पूर्ववत् कहे गये हैं। दीर्घ स्वर-समन्वित छः बीजों (क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः) से इसका षडङ्ग-न्यास कहा गया है। षडङ्गन्यास करने के पश्चात् इन्हीं बीजों द्वारा अँगुलियों से आरम्भ कर करतल-करपृष्ठ-पर्यन्त करन्यास भी करना चाहिये। पुनः सम्पूर्ण भूकूट को कनिष्ठा में न्यस्त करने के बाद उसी प्रकार चार बीजों को अनामा आदि चार अंगुलियों में न्यस्त करना चाहिये। भकार, सकार एवं हकार से समन्वित क्षकार मूल बीज होता है। इन बीजों के देवता क्रमशः जया, विजया, अजिता एवं अपराजिता कही गई हैं।

मुट्ठी बाँधकर पैर लेकर मस्तक-पर्यन्त एवं मस्तक से पैर-पर्यन्त मूल मन्त्र का न्यास करने के पश्चात् मस्तक से पादतल-पर्यन्त व्यापक न्यास करना चाहिये। पुनः

षडङ्गन्यास करने के पश्चात् देव एवं देवी (शंकर एवं पार्वती) का पूजन करना चाहिये। फिर क्रमशः शिर, मुख, हृदय, नाभि एवं गुदा में न्यास करना चाहिये। इसके बाद सूर्य-सदृश दीप्तिमान, प्रत्येक मुख पर तीन नेत्रों वाले, अर्धचन्द्र से अलंकृत, चार हाथों में क्रमशः रत्न-भूषित सृणि (अंकुश), पाश कपाल एवं खट्वाङ्ग (मूठ में नरकपाल-जटित डण्डा) धारण किये हुये, रक्तवर्ण अंग वाले, रक्तवर्ण आभूषणों से समन्वित वस्त्र वाले, चिपटी नासिका वाले देव का ध्यान करते हुये शैवपीठ पर चार नपुंसक स्वरों के अनुलोम-विलोमक्रम अर्थात् ऋ ॠ ऌ ॡ ॡ ऌ ॠ ऋ स्वरों से क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य एवं अनैश्वर्य-स्वरूप उनके शरीर की कल्पना करके उनका अर्चन करना चाहिये। देवी के तत्त्व, रूप एवं गुणों का पूजन इकार से करना चाहिये। चौथे और पाँचवें से पूजन करने से वह माया और अविद्यामय होता है॥३९०-४००॥

अत ऊर्ध्वं च पीठस्य जकारेण ततोऽम्बुजम्।
सन्ध्यक्षरैश्चतुर्दिक्षु स्थिता वामादिका यजेत्॥४०१॥
वामा ज्येष्ठा च रौद्रीच्छा ज्वालामालाविराजिता।
इत्थं सङ्कल्पिते पीठे तुम्बुरुं तत्र पूजयेत्॥४०२॥
चतुर्द्वारसमायुक्तचतुरस्त्रत्रयावृते।
अष्टपत्राम्बुजेऽङ्गानि केशरेषु समर्चयेत्॥४०३॥
दिक्पत्रेषु स्वबीजानि रक्ता वामादिका यजेत्।
अरुणांशुकपुष्पाढ्यास्ताम्बूलाकुलिताननाः॥४०४॥
वल्लकीवादनरता मदविभ्रममन्थराः।
अष्टपत्रेषु चाभ्यर्च्या देव्यो दुर्गादिकाः क्रमात्॥४०५॥
दुर्गगा सुभगा चैव कराली मोहिनी तथा।
बद्धाञ्जलिपुटाः किञ्चिदानम्रवदनाम्बुजाः॥४०६॥
देवीसदृशभूषाढ्यास्तद्बीजानि सबिन्दवः।
शषसहास्तु तद्बाह्ये यजेद्वीथीद्वये मनुम्॥४०७॥
लोकेश्वरांस्तदस्त्राणि चेत्थं पूजाक्रमः स्मृतः।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं दशांशं तु हुनेद् घृतैः॥४०८॥
तर्पणादि ततः कृत्वा प्रयोगानाचरेत्ततः।

पीठ के ऊपर जकार से पूजन करना चाहिये। सन्ध्यक्षरों से चारो दिशाओं में स्थित एवं ज्वालामाला से सुशोभित वामा, ज्येष्ठा, रौद्री एवं इच्छा का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार के सङ्कल्पित पीठ पर तुम्बरू-नामक गन्धर्व का पूजन करना चाहिये।

इसके बाद तीन रेखाओं एवं चार द्वारों से युक्त भूपुर में अष्टदल कमल बनाकर उसके केशरों में षडङ्ग-पूजन करने के बाद अष्टपत्रों में तत्तत् बीजमन्त्रों से रक्तवर्ण वाली, रक्त वस्त्र एवं रक्तपुष्पों से सुशोभित, ताम्बूल-पूरित मुख वाली, वीणावादन में निरत एवं मद के कारण मन्द गति से भ्रमण करती हुई लाल वर्ण की वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकरणी, बलविकरणी, बलप्रमथिनी एवं सर्वभूतदमनी का पूजन करके मध्य में मनोन्मनी का पूजन करना चाहिये। साथ ही अष्टपत्रों में ही दुर्गा आदि देवियों का भी क्रमशः पूजन करना चाहिये। दुर्गगा, सुभगा, कराली एवं मोहिनी का पूजन चारो दिक्पत्रों में करना चाहिये। ये चारो देवियाँ अञ्जलिबद्ध, कुछ झुकी मुख वाली एवं देवी के समान ही आभूषणों से सुसज्जित हैं। बिन्दु-विभूषित श, ष, स एवं ह (शं, षं, सं, हं) इनके बीज कहे गये हैं। फिर उसके बाहर दोनों वीथियों में इन्द्रादि दस दिक्पालों एवं उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार से इनका पूजनक्रम कहा गया है। इस प्रकार सविधि पूजन के उपरान्त मन्त्र का एक लाख जप करके घृत से कृत जप का दशांश (दस हजार) हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् तर्पण आदि करके प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये।।४०१-४०८।।

युगवह्निपुटान्तःस्थं बीजं स्मृत्वा सहस्रकम् ।
अष्टोत्तरं जपेद्वाराज्ज्वरो नश्येन्न संशयः ।
कुपितस्य हृदम्भोजे स्मृत्वा बीजमिदं जपेत् ।।४०९।।
अष्टोत्तरसहस्रं तु तत्कोपो नश्यति ध्रुवम् ।
एतं मन्त्रं जपित्वा तु प्रातःकाले पिबेज्जलम् ।
हृद्रोगास्तस्य नश्यन्ति सर्वे विष्टम्भकादयः ।।४१०।।
मण्डलं नवनाभाख्यं कृत्वा संस्थापयेद् घटम् ।
पुत्रिणी कन्यका माता भवेदत्र तु का कथा ।।४११।।
राजाभिषेके विजयी विप्रो वेदविदां वरः ।
भूतप्रेतादिकाः कृत्या रोगा नश्यन्ति तत्क्षणात् ।
श्रीतुम्बुरुशिवस्यायं मन्त्रः सर्वार्थसिद्धिदः ।।४१२।।

रं से पुटित बीज का स्मरण करके मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करने वाला साधक एकाहिक ज्वर को निश्चित ही समाप्त कर देता है। क्रोधित व्यक्ति के हृदय कमल में इस बीज का चिन्तन करके एक हजार आठ बार जप करने से उस कुपित का कोप नष्ट हो जाता है। इस मन्त्र के जप से अभिमन्त्रित जल का प्रातःकाल पान करने से समस्त प्रकार के हृदयरोग, अवरोध आदि समाप्त हो जाते हैं।

नवनाभ-नामक मण्डल बनाकर उसमें नव कलशों को स्थापित करके मन्त्र-जप

करने के उपरान्त उस जल से केवल कन्याओं को जन्म देने वाली स्त्री को स्नान कराने पर वह पुत्रवती हो जाती है; इसमें किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं करना चाहिये। इस जल के अभिषेक से राजा विजयी होता है एवं विप्र वेदों का ज्ञाता हो जाता है। उसके अभिषेक से भूत-प्रेत-कृत्या एवं रोगों का सद्यः विनाश हो जाता है। इस प्रकार श्रीतुम्बुरु शिव का यह मन्त्र सर्वार्थ-सिद्धि प्रदान करने वाला है॥४०९-४१२॥

दक्षिणामूर्तिनवार्णमन्त्रकथनम्

अथातो दक्षिणामूर्तेर्नवार्णो मन्त्र उच्यते।
प्रणवाद्यरमाभ्यां तु सम्पुटो नववर्णकः॥४१३॥

भवेत्पञ्चाक्षरो मन्त्रो विराट् छन्दो मुनिः शुकः।
दक्षिणामूर्तिरुद्रोऽस्य देवता समुदीरितः॥४१४॥
श्रीपूर्वपञ्चवर्णैश्च बिन्दुयुक्तैर्ध्रुवादिकैः।
दीर्घस्वरैः षडङ्गानि ततोऽर्णन्यासमाचरेत्।
दृक्कर्णनासिकाद्वन्द्वे मुखे लिङ्गे गुदे पुनः॥४१५॥
पुनर्वर्णान्न्यसेच्छीर्षे ललाटे दृशि घोणके।
मुखे हृद्युदरे जानौ पादे चायं द्वितीयकः।
सृष्टिन्यासं ततः कुर्यात्तृतीयं भुजयोः क्रमात्॥४१६॥
पादमूले च तन्मध्ये पादान्ते दक्षवामयोः।
सर्वाङ्गुलीषु विन्यस्य मूलेन व्यापकं चरेत्॥४१७॥

दक्षिणामूर्त्ति का नवार्ण मन्त्र—अब इस समय दक्षिणामूर्ति के नवार्ण मन्त्र को कहा जा रहा है। नव अक्षरों वाला वह मन्त्र है—ॐ श्रीं नमः शिवाय ॐ श्रीं। पञ्चाक्षर मन्त्र को ॐ एवं श्रीं से पुटित करने पर यह मन्त्र बनता है। इसके ऋषि शुकदेव, छन्द विराट् और देवता दक्षिणामूर्ति रुद्र कहे गये हैं।

ॐ श्रीं के बाद दीर्घ स्वर-समन्वित मन्त्र वर्णों से इस प्रकार षडङ्ग-न्यास किया जाता है—ॐ श्रीं आं नं हृदयाय नमः, ॐ श्रीं ईं मं शिरसे स्वाहा, ॐ श्रीं ॐ शिं शिखायै वषट्, ॐ श्रीं ऐं वां कवचाय हुम्, ॐ श्रीं औं यं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ श्रीं अः ॐ श्रीं अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास भी करना चाहिये। इसके बाद इस प्रकार प्रथम मन्त्रवर्ण-न्यास करना चाहिये—ॐ नमः दक्षनेत्रे, श्रीं नमः वामनेत्रे, ॐ नं नमः दक्षकर्णे, ॐ मं नमः वामकर्णे, ॐ शिं नमः दक्षनासापुटे, ॐ वां नमः वामनासापुटे, ॐ यं नमः मुखे, ॐ नमः लिङ्गे, ॐ श्रीं नमः गुह्ये।

दूसरा मन्त्रवर्णन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ ॐ नमः मस्तके, ॐ श्रीं

नमः भाले, ॐ नं नमः दक्षनेत्रे, ॐ मः नमः वामनेत्रे, ॐ शिं नमः दक्षनासापुटे, ॐ वां नमः वामनासापुटे, ॐ यं नमः मुखे, ॐ ॐ नमः लिङ्गे, ॐ श्रीं नमः गुह्ये।

इसके बाद इस प्रकार तृतीय सृष्टि-न्यास करना चाहिये—ॐ ॐ नमः दक्षभुजे, ॐ श्रीं नमः वामभुजे, ॐ नं नमः दक्षपादमूले, ॐ मं नमः वामपादमूले, ॐ शिं नमः दक्षजानुनि, ॐ वां नमः वामजानुनि, ॐ यं नमः दक्षपादान्ते, ॐ ॐ नमः वामपादान्ते, ॐ श्रीं नमः सर्वांगुल्यग्रे। इसके बाद मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिये॥४१३-४१७॥

स्थितिन्यासं ततः कुर्याच्चतुर्धा स निगद्यते।
दक्षपार्श्वे वामपार्श्वे पृष्ठे च जठरे हृदि।
कण्ठे दक्षे बाहुमूले न्यसेत्ककुदि चान्तरे॥४१८॥
बाहुमूले प्रथमके न्यासं वक्ष्ये द्वितीयकम्।
शीर्षे ललाटे नेत्रे च वामे दक्षे च कर्णयोः।
नासामुखे तृतीयं तु कण्ठहृन्नाभिषु न्यसेत्॥४१९॥
दक्षिणे च तथा वामे बाहुमूले च पार्श्वयोः।
कटेश्च भागद्वितये चतुर्थे कथयाम्यथ॥४२०॥
बाहुमूले च तन्मध्ये वामाङ्गुल्यग्रदक्षिणे।
विन्यसेत्प्रथमं वर्णं द्वितीयार्णं ततो न्यसेत्॥४२१॥
आबाहूदक्पादमूलतत्सन्ध्यङ्गुलिकाग्रके।
तृतीयं विन्यसेद्वर्णं चाङ्गुलीनां च सन्धिषु॥४२२॥
चतुर्थाद्यास्तथा वर्णा वामदक्षिणहस्तयोः।
कनिष्ठाद्यङ्गुलीनां च न्यसेत्सन्धित्रिके त्रिके॥४२३॥

इसके बाद चार प्रकार का स्थितिन्यास करना चाहिये। प्रथम स्थितिन्यास में नव वर्णों से दक्ष पार्श्व, वाम पार्श्व, पीठ, पेट, हृदय, कण्ठ, दक्ष बाहुमूल, ककुद और वाम बाहुमूल में न्यास करना चाहिये। द्वितीय स्थितिन्यास नव वर्णों से शिर, ललाट, दक्ष नेत्र, वाम नेत्र, दक्ष कर्ण, वाम कर्ण, दक्ष नासापुट, वाम नासापुट एवं मुख में करना चाहिये। तृतीय स्थितिन्यास में कण्ठ, हृदय, नाभि, दक्ष बाहुमूल, वाम बाहुमूल, दक्ष पार्श्व, वाम पार्श्व, दक्ष कटि एवं वाम कटि में मन्त्रवर्णों का न्यास किया जाता है।

अब चतुर्थ स्थितिन्यास को कहता हूँ। इसमें मन्त्र के प्रथम वर्ण (ॐ) का दोनों बाहुमूल, दोनों कूर्पर एवं दोनों हाथों के अंगुल्यग्र में न्यास करना चाहिये। द्वितीय वर्ण का न्यास दोनों बाहुओं से प्रारम्भ करके दोनों पैरों की संधियों एवं अंगुलि के अग्रभागों

में करना चाहिये। तृतीय वर्ण का अंगुलियों की सन्धियों में न्यास करना चाहिये। दक्ष-वाम करों के अंगुलियों की तीन-तीन संधियों में चतुर्थ वर्ण का न्यास करना चाहिये॥४१८-४२३॥

ततश्च व्यापकं कृत्वा संहारन्यासमाचरेत्।
वामपादतले पृष्ठे वामदक्षिणपार्श्वयोः ॥४२४॥
तेषां च समुदायेऽपि जङ्घायामूरुकद्वये।
तथा दक्षिणपादे च क्रमादर्णानिमान्न्यसेत् ॥४२५॥
एवं च दक्षिणे पादे द्वितीयो न्यास उच्यते।
वामे करतले पृष्ठे तथा जानुनि दक्षिणे ॥४२६॥
तत्समूहे तथा नाभौ हृदयेऽथ पुनर्न्यसेत्।
वामदक्षिणकट्यां च तृतीयो वै प्रकीर्तितः।
एवं दक्षिणहस्ते च चतुर्थः परिकीर्तितः ॥४२७॥
वामदक्षिणकट्यां तु स्तनान्तं वर्णयुग्मकम्।
स्तनाभ्यां हृदयाभ्यां च न्यसेद्वर्णं तृतीयकम् ॥४२८॥
हृदयान्मस्तकान्तं च चतुर्थं वर्णमादिशेत्।
मस्तकस्य चतुर्दिक्षु चत्वारोर्णाः समीरिताः।
नवमं ब्रह्मरन्ध्रे च न्यासोऽयं पञ्चमः स्मृतः ॥४२९॥
ततश्च व्यापकं कृत्वा सृष्टिन्यासं समाचरेत्।
व्यापकं च पुनः कृत्वा स्थितिन्यासं समाचरेत् ॥४३०॥
पुनश्च व्यापकं कृत्वा पञ्च शान्त्यादिकान्न्यसेत्।
मूर्द्धास्यहृद्गुह्यपादे पुनस्तानेव विन्यसेत् ॥४३१॥
ऊर्ध्वप्रागादिकास्येषु पुनर्व्यापकमाचरेत्।
पुनर्मुन्यादिकं न्यस्य षडङ्गानि ततश्चरेत् ॥४३२॥

इसके बाद व्यापक न्यास करके संहारन्यास करना चाहिये। इसमें प्रथम न्यास वाम पादतल, पृष्ठ, वाम-दक्ष पार्श्व, इन सबके समुदाय, दोनों जाङ्घों, दोनों ऊरुओं एवं दक्ष पाद में क्रमशः वर्णों का न्यास करना चाहिये। इसी प्रकार दक्ष पाद में द्वितीय न्यास करना चाहिये। तृतीय न्यास वाम करतल, पृष्ठ, दक्षिण जानु, नाभि, हृदय एवं वाम-दक्ष कटिभाग में करना चाहिये। इसी प्रकार दक्ष कर में चतुर्थ न्यास कहा गया है।

वाम-दक्ष कटिभाग से स्तनों तक वर्णयुग्म का न्यास करना चाहिये। दोनों स्तनों एवं हृदय के दोनों भागों में तृतीय वर्ण का न्यास करना चाहिये। हृदय से मस्तक-

पर्यन्त चतुर्थ वर्ण का न्यास करने के उपरान्त अग्रिम चार वर्णों का न्यास मस्तक के चारो ओर करके अन्तिम नवम वर्ण का न्यास ब्रह्मरन्ध्र में करना चाहिये। यह पञ्चम न्यास कहा गया है। इसके बाद व्यापक न्यास करके सृष्टिन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् व्यापक न्यास करके पुनः स्थितिन्यास करना चाहिये।

पुनः व्यापक न्यास करने के बाद शान्ति आदि पाँच (शान्ति, शान्त्यतीता, प्रतिष्ठा, विद्या और निवृत्ति) का मूर्धा, मुख, हृदय, गुह्य और पाद में न्यास करना चाहिये। पुनः इन्हीं का ऊपर, पूर्व, उत्तर, दक्षिण एवं पश्चिम में न्यास करने के पश्चात् पुनः व्यापक न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् पुनः ऋष्यादि न्यास करने के बाद षडङ्गन्यास करना चाहिये॥४२४-४३२॥

ततो ध्यायेद्योनिलिङ्गं दक्षिणामूर्तिविग्रहम्।
शतयोजनकोच्छ्रायं पञ्चसप्ततिविस्तृतम्॥४३३॥
वटवृक्षमनुस्मृत्य तदधस्ताद्विचिन्तयेत्।
मण्डपं रुचिरं तद्वत्सहस्रस्तम्भसंयुतम्॥४३४॥
चतुस्तम्भयुतं तस्य मध्ये सिंहासनं शुभम्।
तत्रासीनं महादेवं दक्षिणामूर्तिविग्रहम्॥४३५॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशं शशिखण्डविभूषितम्।
व्याघ्रचर्मधरं शान्तं जटामुकुटमण्डितम्॥४३६॥
मुखपङ्करुहोल्लासं सोमसूर्याग्निलोचनम्।
मुद्रापरश्वधमृगान्बिभ्राणं बाहुभिस्त्रिभिः॥४३७॥
अङ्काष्टके दधानं तु रामबीजं सुशोभनम्।
व्याकुर्वन्तं समस्तानि ब्रह्मतन्त्राणि सादरम्॥४३८॥
धृतपङ्कजहस्तं च सर्वमोहप्रणाशनम्।
शुकादिमुनिमुख्यैस्तु पुस्तकोज्ज्वलपाणिभिः॥४३९॥
उभयेन्दिरया वाचा वाग्देव्या चापि वामतः।
ब्रह्माण्या पद्मनाभेन चानन्देन च संवृतम्॥४४०॥
वेदैश्चाङ्गैश्च वेदान्तैर्विदिशासु च वेष्टितम्।
मीमांसाधर्मशास्त्राभ्यां दिशि प्राच्यामुपासितम्॥४४१॥
इतिहासपुराणाभ्यां यमाशायां तु पश्चिमे।
साङ्ख्यपातञ्जलाभ्यां तु सौम्याशायामुपासितम्॥४४२॥
त्रयस्त्रिंशद्भिरिन्द्राद्यैर्देवैः संवेष्टितं प्रभुम्॥४४३॥

यावन्तो वैश्वदेवस्य नीवीसम्बन्धिनः सुराः ॥४४४॥
त्रीणि चैव सहस्राणि षष्ट्यग्राणि शतानि च।
तावद्भिर्विविधैः साक्षाद्गन्धर्वाद्यैश्च संयुतम् ॥४४५॥
परभूतं महादेवं दक्षिणामूर्तिमादरात्।
भावयेद्योऽपि सद्भावं सर्वज्ञश्च भवेद् ध्रुवम् ॥४४६॥
अस्य पूजाप्रयोगादि द्वात्रिंशार्णसमं मतम्।
पञ्चलक्षं पुरश्चर्या होमो द्वात्रिंशदर्णवत्।
अष्टोत्तरशतं नित्यं जपेत्पुष्पाञ्जलिस्तथा ॥४४७॥

तदनन्तर दक्षिणामूर्त्ति के विग्रह-स्वरूप शत योजन ऊँचे एवं पचहत्तर योजन विस्तृत योनिलिङ्ग का ध्यान करना चाहिये। ऐसा चिन्तन करना चाहिये कि वहाँ पर वटवृक्ष के नीचे हजारो खम्भों से युक्त सुन्दर मण्डप के मध्य में चार खम्भों वाले सुन्दर सिंहासन पर दक्षिणामूर्ति शिव आसीन हैं। शुद्ध स्फटिक-समान वर्ण वाले वे चन्द्रखण्ड से विभूषित हैं। वे व्याघ्र का चर्म धारण किये हैं, शान्त हैं एवं जटारूपी मुकुट से सुशोभित हैं। उनका मुखकमल प्रफुल्लित है। सोम, सूर्य एवं अग्नि-स्वरूप उनके तीन नेत्र हैं। अपने तीन हाथों में वे मुद्रा, परश्वध (परशु) एवं मृग को धारण किये हैं। अपने आठ अंगों में शोभन रामबीज को धारण किये हैं। समस्त ब्रह्मतन्त्रों का आदर-पूर्वक विवेचन कर रहे हैं। हाथों में कमल धारण करके वे सभी के मोह का नाश करने वाले हैं। हाथों में पुस्तक लिये हुये शुक आदि मुनियों, लक्ष्मी, काली, सरस्वती, ब्रह्माणी, पद्मनाभ, आनन्द एवं वेदाङ्गों द्वारा चारो ओर से आवृत हैं। विदिशाओं में वेदान्तों से घिरे हुये हैं। पूर्व दिशा में मीमांसा एवं धर्मशास्त्र के द्वारा, दक्षिण-पश्चिम में इतिहास एवं पुराण के द्वारा तथा उत्तर दिशा में सांख्य एवं योग के द्वारा वे उपासित हैं। वे प्रभु इन्द्रादि तैंतीस देवों द्वारा सम्यक् रूप से घिरे हुये हैं। वैश्वदेव के नीवी-सम्बन्धी तीन हजार एक सौ साठ देवताओं एवं उतने ही सशरीर गन्धर्वादि से वे समन्वित हैं। इस प्रकार परवश दक्षिणामूर्त्ति महादेव का आदर-पूर्वक जो ध्यान करता है, वह सद्भावना-समन्वित एवं सर्वज्ञ होता है।

इस मन्त्र के पूजन, प्रयोग आदि बत्तीस अक्षरों वाले मन्त्र के समान होते हैं। इसका पुरश्चरण पाँच लाख जप से सम्पन्न होता है। बत्तीस अक्षरों वाले मन्त्र के समान ही इसका भी हवन करना चाहिये। इस मन्त्र का प्रतिदिन एक सौ आठ जप करके महादेव को पुष्पाञ्जलि प्रदान करना चाहिये॥४३३-४४७॥

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं द्वात्रिंशदक्षरम्।
सर्वं पूर्ववदेव स्याद्विशेषो ज्ञानदस्त्वयः ॥४४८॥

अज्ञानेन्धनदीप्ताय ज्ञानाग्निज्वालरूपिणे।
आनन्दाघहर प्रीत सम्यज्ज्ञानं प्रयच्छ मे ॥४४९॥

बत्तीस अक्षरात्मक अन्य मन्त्र—अब मैं बत्तीस अक्षरों वाले अन्य मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—अज्ञानेन्धनदीप्ताय ज्ञानाग्निज्वालरूपिणे, आनन्दाघहर प्रीत सम्यज्ज्ञानं प्रयच्छ मे। इस मन्त्र की समस्त विधियाँ पूर्ववत् ही होती हैं। इस मन्त्र का वैशिष्ट्य यह है कि यह ज्ञान-प्रदायक है॥४४८-४४९॥

खड्गरावणमन्त्रः

खड्गरावणमन्त्रोऽथ कथ्यते तन्त्रगोपितम्।
तारो नमो भगवते ङेऽन्तः पशुपतिर्ध्रुवः ॥४५०॥
हृद्भूताधिपतिर्ङेऽन्त ओं हृद्रुद्राय चोच्चरेत्।
खड्गरावण लंलं च विहरद्वितयं सर ॥४५१॥
सर नृत्यद्वयं पश्चाद्व्यसनं पदमुच्चरेत्।
भस्मार्चितशरीराय ततो घण्टापदं वदेत् ॥४५२॥
कपालमालाधराय व्याघ्रचर्मपदं ततः।
परिधानायाथ ङेऽन्तः शशाङ्ककृतशेखरः ॥४५३॥
कृष्णसर्पपदं प्रोच्य वदेद्यज्ञोपवीतिने।
चलद्वयं बल . द्वेधा अतिवर्तिकपालिने ॥४५४॥
जहिद्वयं वदेद् भूतान्नाशयद्वितयं ततः ॥४५५॥
मण्डलेति पदान्ते तु मध्ये फड्द्वितयन्ततः ॥४५६॥
रुद्रां कुशेन शमय प्रवेशययुगं वदेत्।
द्विरावेणय रक्षांसि धाराधिपति संवदेत् ॥४५७॥
रुद्रो ज्ञापयति स्वाहा मन्त्रोऽयं खड्गरावणः।
रावणोस्यामितं छन्दो देवता खड्गरावणः ॥४५८॥
षड्दीर्घबिन्दुयुक्तेन खकारेण षडङ्गकम्।
सद्योजातादिकान् देहे चेशानादीन् मुखेषु च ॥४५९॥
रक्ताम्बरं रक्तवर्णं चन्द्रमौलिं त्रिलोचनम्।
पञ्चाननं करैर्घण्टां कपालाङ्कुशमस्तकम् ॥४६०॥
कृपाणं खेटखट्वाङ्गौ त्रिशूलं डमरुं करैः।
दधानमभयं चापि ध्यायेत्पञ्चाननं शिवम् ॥४६१॥
भूताधिपतये स्वाहा पूजामन्त्रोऽयमीरितः।

खड्गरावणमन्त्र—अब मैं तन्त्रों में गुप्त-रूप में विद्यमान खड्गरावण मन्त्र को कहता हूँ। एक सौ चौहत्तर अक्षरों का वह मन्त्र इस प्रकार है—ॐ नमो भगवते पशुपतये ॐ नमो भूताधिपतये ॐ नमो रुद्राय खड्गरावण लं लं विहर विहर सर सर नृत्य नृत्य व्यसन भस्मार्चितशरीराय घण्टाकपालमालाधराय व्याघ्रचर्मपरिधानाय शशाङ्ककृतशेखराय कृष्णसर्पयज्ञोपवीतिने चल चल बल बल अतिवर्तिकपालिने जहि जहि भूतान्नाशय नाशय मण्डलाय फट् फट् रुद्राङ्कुशेन शमय शमय प्रवेशय प्रवेशय आवेणय आवेणय रक्षांसि धराधिपतिः रुद्रो ज्ञापयति स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि रावण, छन्द अमित एवं देवता खड्गरावण कहे गये हैं। दीर्घ स्वर-समन्वित एवं बिन्दुयुक्त खकार के छः स्वरूपों (खां खीं खूं खैं खौं खः) से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् सद्योजातादि मन्त्रों का शरीर में एवं ईशान आदि मन्त्रों का मुख में न्यास करना चाहिये।

तदनन्तर रक्त वस्त्र धारण किये हुये, रक्त वर्ण वाले, शीर्ष पर चन्द्र को धारण किये हुये, तीन नेत्र एवं पाँच मुख वाले, हाथों में घण्टा, कपाल, अंकुश, मस्तक, कृपाण, खेट, खट्वाङ्ग, त्रिशूल, डमरु एवं अभय धारण किये हुये पञ्चमुख शिव का ध्यान करना चाहिये। इनका पूजन-मन्त्र 'भूताधिपतये स्वाहा' कहा गया है।।४५०-४६१।।

पञ्चाक्षरोदिते पीठे पूजयेत्खड्गरावणम् ।।४६२।।
मूलेन मूर्तिं सङ्कल्प्य तच्छान्तं मन्त्रबिन्दुमत् ।
अङ्गानि दलमूलेषु द्वितीयेऽष्टदले यजेत् ।।४६३।।
श्यामां द्वितीयां बलिनीं तृतीयां कृष्णपिङ्गलाम् ।
फाल्गुनीं झिण्टिरिल्लीं च पञ्चमीं मन्त्रमालिकाम् ।।४६४।।
सप्तमीं खड्गिनीं पश्चाच्चन्द्राङ्कितजटामिमाः ।
पूर्वपत्रादिसव्येन खड्गरावणवल्लभाः ।।४६५।।
ऐन्द्रीं कौमारिकां ब्राह्मीं वाराहीं वैष्णवीं तथा ।
वैनायकीं च चामुण्डां माहेशीं दिक्षु पूजयेत् ।।४६६।।
द्वारपालान् यजेद्दिक्षु द्वाद्वा प्रागादिदेशतः ।
रौद्रपिङ्गलनामानौ श्मशानानलभीषणौ ।।४६७।।
दृढकर्णं भृङ्गरीटिमुदगामर्दकं यजेत् ।
महाकालं च केशेषु कुम्भकर्णमशेषकम् ।।४६८।।
भल्लाटं जानुहारं च भूपुरद्वयवीथिषु ।
इन्द्रादिकांस्तदस्त्राणि बाह्ये भूतबलिं हरेत् ।।४६९।।

अयुतद्वितयं मन्त्रं जपित्वा तद्दशांशतः ।
पायसेन घृताक्तेन जुहुयात्तस्य सिद्धये ॥४७०॥
इत्थं सिद्धमनुर्मन्त्री कृत्याग्रहमपोहयेत् ।
आदेशं तस्य कुर्वन्ति भूता भीता महात्मनः ।
मन्त्रेणानेन सदृशो नान्यो भूतप्रमर्दकः ॥४७१॥

पञ्चाक्षर मन्त्र-निरूपण के प्रसङ्ग में कथित पीठ पर मूल मन्त्र से शान्त मूर्ति कल्पित करके मन्त्रबिन्दु-स्वरूप खड्गरावण का पूजन करना चाहिये। दलमूलों में अङ्गों का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् कमल के अष्टदलों में पूर्वादि पत्रों से आरम्भ कर वामावर्त्तक्रम से श्यामा, बलिनी, कृष्णपिङ्गला, फाल्गुली, झिण्टिरिल्ली, मन्त्रमालिका, खड्गिनी एवं चन्द्राङ्कितजटा—खड्गरावण की इन आठ प्रियाओं का पूजन करना चाहिये। इसके बाद आठो दिशाओं में ऐन्द्री, कौमारी, ब्राह्मी, वाराही, वैष्णवी, वैनायकी, चामुण्डा और माहेश्वरी का पूजन करना चाहिये।

भूपुर के चारो द्वारों पर दो-दो द्वारपालों का इस प्रकार पूजन करना चाहिये—पूर्व द्वार पर श्मशानाग्नि-सदृश भयंकर रौद्र एवं पिङ्गल का, उत्तरद्वार पर जल-सदृश पीस ड़ालने वाले दृढ़कर्ण एवं भृङ्गरिटी का, पश्चिमद्वार पर महाकाल एवं केशराशि-स्वरूप कुम्भकर्ण का तथा दक्षिणद्वार पर भल्लाट एवं जानुहार का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर भूपुर की दोनों वीथियों में से प्रथम वीथि में इन्द्रादि दस दिक्पालों का एवं द्वितीय वीथि में उनके आयुधों का पूजन करने के पश्चात् उसके बाहर भूत-बलि प्रदान करनी चाहिये।

इसके बाद मन्त्र-सिद्धि के लिये बीस हजार मन्त्रजप करके घृत-सिक्त पायस से कृत जप का दशांश (दो हजार) हवन करना चाहिये। इस प्रकार सिद्ध मन्त्र वाला मन्त्रज्ञ साधक कृत्यारूपी ग्रह-पीड़ा को समाप्त कर देता है। उस महात्मा से भयभीत भूतगण उसके आदेशों का पालन करते हैं। भूतों का मर्दन करने वाला इस मन्त्र के समान दूसरा कोई मन्त्र नहीं है॥४६२-४७१॥

मृतसञ्जीविनीमन्त्रकथनम्

अथ प्रवक्ष्ये रुद्रस्य मृतसञ्जीविनीमनुम् ।
प्रणवं व्याहृतीस्तिस्रः प्रासादं मृत्युजिन्मनुम् ।
त्रियम्बकं मृत्युजितं प्रासादं व्याहृतित्रयम् ॥४७२॥
प्रणवं चोच्चरेदेष मृतसञ्जीविनीमनुः ।
वशिष्ठोऽस्य मुनिश्छन्दोऽनुष्टुब्रुद्रोऽस्य देवता।

मृत्युञ्जयाख्यः प्रणवो बीजं शक्तिस्तु हौं मतः ।
तारव्याहृतिमन्त्रांघ्रिचतुष्कोणाङ्गुलीमुखे ॥४७३॥
न्यासं कृत्वा षडङ्गानि तत्र कृत्ये समाचरेत् ।
त्रियम्बकमनोर्न्यासान् पूर्वोक्तानपि सञ्चरेत् ॥४७४॥

मृतसञ्जीविनी मन्त्र—अब मैं रुद्र के मृतसंजीविनी मन्त्र को कहता हूँ। ॐ भूर्भुवः स्वः हौं ॐ जूं सः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॐ जूं सः हौं भूर्भुवः स्वरोम्—पचास अक्षरों का यह मृतसञ्जीविनी मन्त्र है। इस मन्त्र के ऋषि वशिष्ठ, छन्द अनुष्टुप्, देवता मृत्युञ्जय-नामक रुद्र, बीज ॐ एवं शक्ति हौं कहे गये हैं। ॐ भूः भुवः स्वः से पाँचों अंगुलियों और मुख में न्यास करने के बाद षडङ्गन्यास करके पूजन का आरम्भ करना चाहिये। यहाँ पर त्र्यम्बक मन्त्र के पूर्वोक्त न्यासों को भी करना चाहिये॥४७२-४७४॥

अवैदिकानां वक्ष्येऽहं न्यासं मन्त्रविनिर्णयम् ।
तारो नमो भगवते त्र्यम्बकाय ततो वदेत् ॥४७५॥
शूलपाणिश्च रुद्रश्च ङेऽन्तश्चामृतमूर्तये ।
मां जीवय पदस्यान्ते स्याच्चन्द्रजटिलं पदम् ॥४७६॥
त्रिपुरान्तकाय हंह्रीं ङेऽन्तं रुद्रपदं वदेत् ।
ऋग्यजुःसामरूपाय रुद्रायाग्नित्रयाय च ॥४७७॥
ज्वलद्वन्द्वं प्रज्वलद्विर्मां रक्षयुगलं वदेत् ।
अघोरास्त्राय हुंफट् च स्वाहान्तोऽब्ध्यष्टवर्णकः ॥४७८॥
तारो नमो भगवते ततो मन्त्राक्षराणि तु ।
स्वाहान्तमङ्गत्रितये कवचानि च फट् त्रिषु ॥४७९॥
मन्त्राक्षराणि विन्यस्य तत्सङ्ख्येयं क्रमात्स्मृता ।
नृपार्केषुगजस्थाणुदन्तसङ्ख्याक्रमेण च ॥४८०॥
व्याहृतित्रयमुच्चार्य चास्त्राय फडिदं वदेत् ।
अयं दिग्बन्धमन्त्रः स्याद्ध्यानमस्य निरूप्यते ॥४८१॥
ऊर्ध्वं विधोर्मण्डलस्य बद्धपद्मासनं विभुम् ।
स्रवत्पीयूषबिन्दोश्च कलार्धं चन्द्रसुप्रभम् ॥४८२॥
योगमुद्राधरं द्वाभ्यां घटं चामृतपूरितम् ।
सोमसूर्याग्निनेत्रं च बद्धपिङ्गजटाधरम् ॥४८३॥
व्याघ्रचर्माम्बरधरं नानाभरणभूषितम् ।
भस्मानुलेपनं भक्तकृपाकरमनुस्मरेत् ॥४८४॥

त्रियम्बकस्य वेदोक्तपीठे सम्पूजयेच्छिवम्।
चत्वारिंशत्सहस्राणि पौरश्चरणिको जपः ॥४८५॥
प्रोक्तद्रव्यैस्तद्दशांशो होमः शेषं तु पूर्ववत्।
विशेषेण तर्पणं तु शीघ्राभीष्टफलप्रदम् ॥४८६॥
रूपत्रयं यथेत्युक्तं जले ध्यात्वा महेश्वरम्।
सम्पूज्य जुहुयात्तत्र मृत्युरोगापनुत्तये।
प्रयोगाश्चापि सिद्ध्यन्ति पुरा मृत्युञ्जयोदिताः ॥४८७॥

अब मैं अवैदिकों के लिये न्यास और मन्त्र को बतलाता हूँ। चौरासी अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमो भगवते त्र्यम्बकाय शूलपाणये रुद्रायामृतमूर्त्तये मां जीवय चन्द्रजटिल त्रिपुरान्तकाय हं ह्रीं रुद्राय ऋग्यजु:सामरूपाय रुद्रायाग्नित्रितयाय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल मां रक्ष रक्ष अघोरास्त्राय हुं फट् स्वाहा।

मन्त्र के सोलह, बारह, पाँच, आठ, ग्यारह एवं बत्तीस वर्णों से क्रमशः हृदय, शिर एवं शिखा में न्यास करने के लिये उक्त मन्त्रवर्णों के पूर्व 'ॐ नमो भगवते' एवं अन्त में 'स्वाहा' का संयोजन करना चाहिये तथा कवच, नेत्र एवं अस्त्र में न्यास-हेतु पूर्ववत् आरम्भ में 'ॐ नमो भगवते' लगाते हुये अन्त में 'फट्' का संयोजन करना चाहिये, जो इस प्रकार होता है—ॐ नमो भगवते त्र्यम्बकाय शूलपाणये स्वाहा हृदयाय नमः, ॐ नमो भगवते रुद्रायामृतमूर्त्तये मां जीवय स्वाहा शिरसे स्वाहा, ॐ नमो भगवते चन्द्रजटिल स्वाहा शिखायै वषट्। ॐ नमो भगवते त्रिपुरान्तकाय हं ह्रीं फट् कवचाय हुं, ॐ नमो भगवते रुद्राय ऋग्यजु:सामरूपाय फट् नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ नमो भगवते रुद्रायाग्नित्रितयाय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल मां रक्ष रक्ष अघोरास्त्राय हुं फट् स्वाहा फट् अस्त्राय फट्। तत्पश्चात् 'ॐ भूर्भुवः स्वः अस्त्राय फट्' इस दिग्बन्ध मन्त्र का उच्चारण करते हुये दसों दिशाओं में चुटकी बजाकर दिग्बन्धन करना चाहिये।

अब इसके ध्यान को कहा जा रहा है। झरते अमृतबिन्दुओं वाले आकाश-स्थित चन्द्रमण्डल की आधी कला से चन्द्रमा-सदृश प्रभा वाले, बद्ध पद्मासन वाले, एक हाथ में योगमुद्रा एवं दूसरे में अमृत-पूरित दो कलशों को धारण करने वाले, सोम, सूर्य एवं अग्निरूप नेत्र वाले, बँधी हुई पिङ्गल (भूरे) वर्ण की जटा को धारण करने वाले, वस्त्र-स्वरूप व्याघ्रचर्म धारण करने वाले, अनेक आभरणों से भूषित,. भस्म का अनुलेप लगाये हुये, भक्तों पर कृपा करने वाले भगवान् त्र्यम्बक का बार-बार स्मरण करना चाहिये।

वेदोक्त त्र्यम्बक-पीठ पर शिव का सम्यक् रूप से पूजन करने के उपरान्त

पुरश्चरण-हेतु मन्त्र का चौवालीस हजार जप करना चाहिये। तत्पश्चात् पूर्वोक्त द्रव्यों से कृत जप का दशांश (चार हजार चार सौ) हवन करना चाहिये। शेष समस्त विधियाँ पूर्ववत् सम्पन्न करनी चाहिये। इसके तर्पण की विशेषता यह है कि वह शीघ्र ही अभीष्ट फल प्रदान करता है।

मृत्युदायक रोग की समाप्ति के लिये जल में पूर्वोक्त तीन रूपों का ध्यान करके महेश्वर का पूजन करने के बाद हवन करना चाहिये। पूर्वोक्त मृत्युञ्जय मन्त्र में कथित प्रयोग भी इससे सिद्ध होते हैं॥४७५-४८७॥

दशाक्षररुद्रमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि रुद्रमन्त्रं दशाक्षरम्।
तारो नमो भगवते रुद्रायेति प्रकीर्तितः॥४८८॥

बौद्धायनो मुनिः पङ्क्तिश्छन्दो रुद्रोऽस्य देवता।
पृथक्पदैः समस्तेन पञ्चाङ्गविधिरीरितः॥४८९॥

मस्तके चापि नासायां ललाटे च मुखे गले।
हृदये दक्षिणे हस्ते वामे नाभ्यां च पादयोः॥४९०॥

मन्त्रवर्णान् प्रविन्यस्य ध्यानपूजाजपादिकाः।
प्रयोगांश्चात्र विज्ञेयाः पञ्चार्णोक्ता यथा पुरा॥४९१॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते
शिवमन्त्रकथनं नामैकत्रिंशः प्रकाशः॥३१॥

●

दशाक्षर रुद्रमन्त्र—अब मैं दशाक्षर रुद्रमन्त्र को कहता हूँ। वह मन्त्र है—ॐ नमो भगवते रुद्राय। इस मन्त्र के ऋषि बौद्धायन, छन्द पंक्ति एवं देवता रुद्र कहे गये हैं। मन्त्र के चार पदों एवं सम्पूर्ण मन्त्र से इसका पञ्चाङ्गन्यास कहा गया है। मस्तक, नासिका, ललाट, मुख, गला, हृदय, दक्ष एवं वाम हाथ, नाभि एवं दोनों पैरों में मन्त्र के दस वर्णों का न्यास करने के पश्चात् ध्यान, पूजन, जप आदि करना चाहिये। पूर्व में पञ्चाक्षर मन्त्र में कथित प्रयोगों का इस मन्त्र से भी साधन करना चाहिये॥४८८-४९१॥

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिवप्रणीत
'शिवमन्त्रकथन'-नामक इकतीसवाँ प्रकाश
पूर्णता को प्राप्त हुआ।

●

द्वात्रिंशत्तमः प्रकाशः

(भैरवादिमन्त्रकथनम्)

श्रीशिव उवाच

मम भैरवरूपस्य मन्त्राञ्छृण्वन्तु देवताः ।
तामसान् राजसांश्चापि सात्त्विकान् सिद्धिदायकान् ॥१॥
सार्धवर्षाष्टके ब्रह्मण्यायाते त्वथ देवताः ।
अहङ्कारो महानासीत्तत्राविद्याप्रभावतः ॥२॥
तदा तस्मिन् कलियुगे शिश्नोदरपरायणाः ।
न वेदः श्रूयते क्वापि स्मृतिज्ञानं न विद्यते ॥३॥
भक्ष्यं पानं मैथुनं च देशे देशे पुरे पुरे ।
न कश्चिन्मन्यते विष्णुं गणेशं न रविं शिवम् ।
मत्वा सर्वं जगच्छाक्तं भगपूजां प्रकुर्वते ॥४॥
तदा बटुकरूपेण मया पृष्टः पितामहः ।
ब्रह्मन्नादिश्यतां धर्मो वयं येन तरेमहि ॥५॥

श्रीशिव ने कहा—हे देवताओं! अब मेरे भैरव-रूप के तामस, राजस एवं सात्त्विक सिद्धियाँ प्रदान करने वाले मन्त्रों का श्रवण करें। ब्रह्मा के साढ़े आठ वर्ष व्यतीत हो जाने पर अविद्या के प्रभाव से देवताओं में भीषण अहंकार उत्पन्न हो गया था। तब उस कलियुग में सभी शिश्नोदर-परायण (लिङ्ग एवं पेटपूजा करने वाले) हो गये। न तो कहीं वेदध्वनि सुनाई देती थी और न ही स्मृतियों का ज्ञान रह गया था। प्रत्येक देश एवं नगर भक्ष्य, पान एवं मैथुन में निरत हो गया था। विष्णु, गणेश, सूर्य, शिव को कोई कुछ नहीं मानता था; अपितु समस्त संसार को शक्ति-स्वरूप मानकर भगपूजा में निरत हो गया था। ऐसी स्थिति में उस समय बटुक का रूप धारण कर मैंने पितामह ब्रह्मा से पूछा कि हे ब्रह्मन्! आप धर्म का उपदेश करें, जिससे हमलोगों का उद्धार हो सके॥१-५॥

तदा तु ब्रह्मणा प्रोक्तं ममोर्ध्वमुखनिर्गतः ।
आगमः पञ्चमो वेदो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥६॥
तदाद्ये कलिसङ्घे तु मया प्रोक्तः पितामहः ।
ब्रह्मन्निदं त्वया वाच्यं सृष्टिकर्ता सदाशिवः ॥७॥

तदा पितामहेनोक्तं कर्ताहं चापि रक्षकः ।
ममोर्ध्वमुखतो जातो मन्यतां वेद आगमः ॥८॥
एतदाचारनिष्ठा ये यास्यन्ति परमां गतिम् ।
बटुस्त्वं वेत्सि नो सौख्यं भक्ष्यपानाङ्गनाभवम् ॥९॥
इति श्रुत्वा ब्रह्मवचो धर्मसंस्थापनाय तु ।
युगत्रये तदा जातः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥१०॥
अवज्ञां वीक्ष्य च मया प्रखरेण नखेन तु ।
शिरो निपातितं धातुः कराङ्गुल्या धरातले ॥११॥
तन्मुखात्पञ्चमो वेदो मम देहे लयं गतः ।

तब ब्रह्मा ने कहा कि मेरे ऊपर वाले मुख से निःसृत आगम-नामक पञ्चम वेद भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला है। कलियुग के प्रारम्भ में जब मैंने पितामह से कहा कि हे ब्रह्मन्! आप ही यह कहते हैं कि सृष्टिकर्ता सदाशिव हैं, तब ब्रह्मा ने कहा कि मैं ही सृष्टि का कर्ता एवं रक्षक दोनों हूँ। मेरे ही ऊर्ध्व मुख से निर्गत आगम-नामक यह पाँचवाँ वेद है; ऐसा मानना चाहिये। इसके अनुसार जो आचरण करते हैं, वे परमगति को प्राप्त करते हैं। हे बटुक! भक्ष्य, पान एवं अङ्गना से होने वाले सुख को तुम नहीं जानते।

ब्रह्मा के इन वचनों को सुनकर तीनों युगों में धर्म-संस्थापन के लिये बटुक के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। मेरी अवज्ञा होती देखकर बटुक ने अपने हाथों की अंगुलियों के तीखे नखों से ब्रह्मा का सिर काट कर धरती पर गिरा दिया और पाँचवाँ वेद ब्रह्मा के मुख से निकलकर मेरे शरीर में विलीन हो गया॥६-११॥

तदा विप्रैर्धिक्कृतोऽहं ससुरासुमानुषैः ।
लग्ना च ब्रह्महत्या मे पृष्ठतश्चातिभीषणा ॥१२॥
तदा तु विष्णुना प्रोक्तो भीषणत्वाच्च भैरवः ।
भव त्वं बटुकाख्यश्च सेव्यश्चागममार्गतः ॥१३॥
सात्त्विकस्त्वं काशिकायां मुक्तिमार्गप्रदो भव ।
यज्ञादिकर्मरक्षाकृद्राजसस्त्वं दिवप्रदः ॥१४॥
मारणोच्चाटकर्ता त्वं तामसो बटुको भव ।
तस्मात्समर्चयेदेनं पञ्चाम्नायोक्तवर्त्मना ।
तन्मन्त्रान् सम्प्रवक्ष्यामि साधकाभीष्टदायकान् ॥१५॥

उस समय देवताओं, असुरों एवं मनुष्यों सहित ब्राह्मणों ने मेरी बहुत भर्त्सना की

एवं अत्यन्त भयंकर ब्रह्महत्या मेरे पीछे लग गयी। तब श्रीविष्णु ने कहा कि भयङ्कर होने के कारण तुम बटुकभैरव कहलाओगे और आगममार्ग से उपासना करने योग्य बनो। काशी में सत्त्व गुण-समन्वित तुम मुक्ति का मार्ग प्रदान करने वाले बनो। यज्ञादि कर्मों के रक्षक होने के कारण रजोगुण-समन्वित तुम स्वर्ग प्रदान करने वाले बनो। मारण एवं उच्चाटन करने वाला होने के कारण तमोगुण-समन्वित तुम बटुक बनो।

इसलिये पाँचों आम्नायों में कथित मार्ग से इन बटुकभैरव का अर्चन करना चाहिये। अब साधकों के लिये अभीष्ट प्रदान करने वाले उनके मन्त्रों को कहता हूँ॥१२-१५॥

बटुकमन्त्रविधिकथनम्

मायां च बटुकं ङेऽन्तमापदुद्धारणाय च।
कुरुद्वयं च बटुकाय ह्रीं प्रकृतिवर्णकः।
बृहदारण्यकमुनिश्छन्दोऽनुष्टुप् च देवता॥१६॥
भैरवो ह्रींबीजशक्तिराङ्कीलकमुदाहृतम्॥१७॥
अथ न्यासान् प्रवक्ष्यामि भैरवस्य तु यैर्विना।
न जायते मनोः सिद्धिस्तत्रादौ वर्णमातृकः॥१८॥
विसर्गमातृकान्यासो द्वितीयः प्रागुदाहृतः।
जकारादिछकारान्तान्यस्येद्वर्णांस्तृतीयकः ॥१९॥
कलामातृकान्यासश्च चतुर्थस्तदनन्तरम्।
पञ्चमो न्यास उदितः श्रीबीजादिकमातृकः॥२०॥
केवलो मातृकान्यासः षष्ठः स्यात्तदनन्तरम्।
वामहस्ताङ्गुलीमूलमारभ्यामणिबन्धकम्।
श्रीबीजाद्यान् न्यसेद्वर्णानादिक्षान्तांस्तु सप्तमः॥२१॥
श्रीबीजान्तान् क्षकाराद्यानकारान्तान् विलोमतः।
न्यसेद्वर्णान् मातृकायाः स्थानेऽयं त्वष्टमः स्मृतः।
कामबीजादिमातॄणां न्यासस्तु नवमः स्मृतः॥२२॥
मुन्यादित्रितयन्यासे गुह्ये ह्रींबीजमादिशेत्।
ह्रीं शक्तिं पादयोर्नाभौ आं कीलं दशमस्त्वयम्॥२३॥

इक्कीस अक्षरों का बटुकभैरव-मन्त्र है—ह्रीं बटुकाय आपदुद्धारणाय कुरु कुरु बटुकाय ह्रीं। इस मन्त्र के ऋषि बृहदारण्यक, छन्द अनुष्टुप्, देवता भैरव, बीज ह्रीं, शक्ति ह्रीं और रां कीलक कहा गया है।

अब मैं न्यासों को कहता हूँ, जिनके बिना भैरवमन्त्र की सिद्धि नहीं होती। उनमें पहला वर्णमातृका न्यास एवं दूसरा विसर्गमातृका न्यास है, जो पूर्व में कहा जा चुका है। तीसरा पञ्चाशन्मातृका न्यास होता है, जो जकार से आरम्भ होकर छकार तक क्रमशः किया जाता है। चौथा कलामातृका न्यास होता है। इसके बाद पाँचवाँ न्यास मातृकाओं के पूर्व श्रीबीज (श्रीं) लगाकर किया जाता है। छठा केवलमातृका न्यास होता है। बाँयें हाथ के अङ्गुलिमूल से आरम्भ कर मणिबन्ध-पर्यन्त अकार से लेकर क्षकार तक के वर्णों को उनके आदि में श्रीबीज लगाकर किया गया न्यास सातवाँ होता है। विलोमक्रम से क्षकार से अकार-पर्यन्त वर्णों के पश्चात् श्रीबीज लगाकर आठवाँ न्यास किया जाता है। समस्त मातृकाओं के पूर्व कामबीज (क्लीं) लगाकर किया गया न्यास नवाँ कहा गया है। ऋष्यादि तीन न्यासों में से गुह्य में 'ह्रीं बीज' से, दोनों पैरों में ह्रीं शक्तिबीज से और नाभि में आं कीलक से न्यास करना चाहिये; यह दशवाँ न्यास होता है॥१६-२३॥

ह्रां वामीशानाय नमो न्यसेदङ्गुष्ठयोस्तथा।
ह्रीं वीं तत्पुरुषायेति नमस्तर्जनिकाद्वये ॥२४॥
ह्रूं वूमघोराय नमो विन्यसेन्मध्ययोरपि ॥२५॥
ह्रैं वैं च वामदेवाय नमश्चानामयोर्न्यसेत्।
ह्रौं वौं च सद्योजाताय नमो न्यासः कनिष्ठयोः ॥२६॥
अयमेकादशो न्यासस्त्वेवमेव प्रविन्यसेत्।
के मुखे हृदये गुह्ये पादयोर्द्वादशस्त्वयम् ॥२७॥
एवमेव न्यसेत्पश्चादूर्ध्ववक्त्राय वै नमः।
इति प्रयोगाः प्रागादिवक्त्रेष्वेवं त्रयोदशः ॥२८॥
षड् दीर्घस्य हृदि नाभ्यां ह्रीं वा तारप्रपूर्वकम्।
जातियुक्तषडङ्गं च न्यसेन्न्यासश्चतुर्दशः ॥२९॥
चतुर्दशस्वरोपेतैराद्यन्ताद्यैः सबिन्दुभिः।
प्रेतबीजमिदं तेन न्यासस्तिथिमितः स्मृतः ॥३०॥
आद्यन्तप्रणवानाद्यांश्चतुर्थस्वरसंयुतान्।
सबिन्दून् विन्यसेन् मूर्ध्नि बाह्वोश्चैव तु वक्षसि ॥३१॥
नाभौ हस्ताङ्गुलीमध्ये तथा पादाङ्गुलीषु च।
स्थानषट्के क्रमान्न्यस्य न्यासोऽयं स्यात्तु षोडशः ॥३२॥

ग्यारहवाँ न्यास 'ह्रां वामीशानाय नमः' से दोनों अँगूठों में, 'ह्रीं वीं तत्पुरुषाय नमः' से दोनों तर्जनियों में, 'ह्रूं वूं अघोराय नमः' से दोनों मध्यमाओं में, 'ह्रैं वैं

वामदेवाय नमः' से दोनों अनामिकाओं में एवं 'ह्रौं वौं सद्योजाताय नमः' से दोनों कनिष्ठाओं में किया जाता है। इन्हीं मन्त्रों से मस्तक, मुख, हृदय, गुह्य एवं दोनों पैरों में बारहवाँ न्यास किया जाता है।

इसी प्रकार ऊर्ध्ववक्त्राय वै नमः, पूर्ववक्त्राय वै नमः, पश्चिमवक्त्राय वै नमः, दक्षिणवक्त्राय वै नमः, उत्तरवक्त्राय वै नमः से मस्तक, मुख, हृदय, गुह्य और पैरों में किया गया न्यास तेरहवाँ न्यास होता है। इसी प्रकार पूर्व में ह्रीं अथवा ॐ एवं अन्त में नमः लगाकर ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः से किया गया हृदयादि षडङ्ग न्यास चौदहवाँ न्यास होता है। प्रेतबीज (वं) को चौदह स्वरों से युक्त करके (वं वां विं वीं वुं वूं वृं वॄं व्लृं व्लॄं वें वैं वौं वः) शरीर के चौदह स्थानों में पन्द्रहवाँ न्यास किया जाता है। आदि और अन्त में प्रणव से संयुक्त चतुर्थ स्वर-समन्वित व (ॐ वीं ॐ) से मूर्धा, दोनों बाहु, वक्ष, नाभि, कराङ्गुलिमध्य एवं पादाङ्गुलियाँ—इन छः स्थानों पर सोलहवाँ न्यास किया जाता है॥२४-३२॥

एकादशचतुर्थौ तु शक्रस्वरसबिन्दुकौ ।
ध्यानबीजमिदं प्रोक्तं ब्रह्मरन्ध्रे मुखे दृशोः ॥३३॥
ग्रीवानासाकपोलेषु चिबुके ब्रह्मरन्ध्रके ।
पुनर्न्यसेदयं न्यासः प्रोक्तः सप्तदशः सुराः ॥३४॥
मायाबीजं सप्तपञ्चप्रथमास्तारसंयुताः ।
पादयोर्हस्तयोर्नेत्रश्रोत्रकुक्षीन्द्रियेषु च ।
स्थानषट्के प्रविन्यस्य न्यासश्चाष्टादशः स्मृतः ॥३५॥
श्रीबीजं चिबुके पादे गले पादद्वये पुनः ।
हृदये पादयोर्नाभौ पादयोश्च प्रविन्यसेत् ।
पञ्चस्थानेष्वष्टधाऽयं न्यास एकोनविंशकः ॥३६॥
त्रिंशत्तमचतुर्थौ च षष्ठस्वरसबिन्दुकौ ।
घृणाबीजमिदं न्यस्य हृदये नाभिमण्डले ॥३७॥
हृदये पादयोर्न्यस्य हृदये दक्षकुक्षिके ।
हृदये वामपादे च हृदये दक्षनेत्रके ॥३८॥
हृदये वामनेत्रे च हृदये दक्षघोणके ।
हृदये वामघोणे च हृदये दक्षकर्णके ।
हृदये वामकर्णे च हृदये विंशकस्त्वयम् ॥३९॥
त्रयोदशचतुर्थौ तु षष्ठस्वरसबिन्दुकौ ।
घण्टाबीजमिदं न्यस्य घण्टिकानाभिघण्टिषु ॥४०॥

हृत्पादे हृत्कटौ शीर्षे मस्तके च कटौ स्तने।
गुल्फे स्तने तु स्यादेकविंशकोऽयं सुसम्मतः ॥४१॥

मन्त्र के ग्यारहवें एवं चौथे वर्ण को बिन्दु-सहित चौदहवें स्वर से समन्वित करने पर ध्यानबीज होता है। इस ध्यानबीज से ब्रह्मरन्ध्र, मुख, दोनों आँखों, ग्रीवा, नासिका, कपोल, चिबुक एवं पुनः ब्रह्मरन्ध्र में न्यास करने को देवताओं ने सत्रहवाँ न्यास कहा है।

ह्रीं एवं ॐ से संयुक्त सातवें, पाँचवें तथा पहले वर्ण से दोनों पैर, दोनों हाथ, नेत्र, कर्ण, कुक्षि एवं लिङ्ग—इन छः स्थानों में किया गया न्यास अट्ठारहवाँ न्यास होता है। श्रीबीज से चिबुक, पैर, गला, पुनः दोनों पैर, हृदय, दोनों पैर, नाभि एवं दोनों पैर—इस प्रकार पाँच स्थानों में आठ बार किया गया न्यास उन्नीसवाँ न्यास होता है।

बिन्दु-सहित षष्ठ स्वर-समन्वित तीसवें एवं चौथे वर्ण से घृणाबीज बनता है। इससे हृदय-नाभिमण्डल, हृदय-दोनों पैर, हृदय-दक्ष कुक्षि, हृदय-वाम पाद, हृदय-दक्ष नेत्र, हृदय-वाम नेत्र, हृदय-दक्ष नासा, हृदय-वाम नासा, हृदय-दक्ष कर्ण, हृदय-वाम कर्ण और हृदय में किया गया न्यास बीसवाँ न्यास होता है।

बिन्दु-सहित षष्ठ स्वर से समन्वित तेरहवें एवं चौथे वर्ण से घण्टाबीज (घ्रूं) बनता है। इससे घण्टिका, नाभि, घण्टिका, हृदय-पाद, हृदय-कटि, शिर, मस्तक, कटि, स्तन, गुल्फ, स्तन इन तेरह स्थानों में किया गया न्यास इक्कीसवाँ कहा गया है॥३३-४१॥

प्रकृत्यक्षिसमुद्रार्णाः षष्ठस्वरसबिन्दुकाः।
ख्यातिबीजमिदं मूर्ध्नि स्फिग्जिह्वानाभिकण्ठके ॥४२॥
हृज्जङ्घानेत्रकर्णेषु बाहुयुग्मे स्तनद्वये।
क्रमेण विन्यसेन्न्यासो द्वाविंशोऽयं प्रकीर्तितः ॥४३॥
प्रणवो मूलबीजं स्याद्धृदये पादयोर्न्यसेत्।
हस्तयोः कर्णयोर्नासाद्वयेऽयं तु त्रिविंशकः ॥४४॥
अर्कवेदेष्वन्त्यपूर्ववर्णास्तुर्यस्वरान्वितान्।
नादबिन्दुयुतान्बीजमासुर्याः परिकीर्तितम् ॥४५॥
मुखे नेत्रद्वये कर्णद्वये चैव कपोलयोः।
गण्डयोः कण्ठदेशे च स्तनयोर्हृदि पादयोः ॥४६॥
चिबुके मस्तके बाह्वोः स्कन्धयोर्दन्तमूलयोः।
ब्रह्मरन्ध्रे तथाधारे भ्रूमध्येऽयं जिनोन्मितः ॥४७॥

बिन्दु-सहित षष्ठ स्वर-समन्वित इक्कीसवें, दूसरे एवं चौथे वर्ण के संयोग से बनने वाले ख्यातिबीज (रव्यूं) से क्रमशः मूर्धा, स्फिक् (नितम्ब), जिह्वा, नाभि, कण्ठ, हृदय, जङ्घा, नेत्र, कर्ण, बाहुयुग्म एवं स्तनद्वय में किया जाने वाला न्यास बाईसवाँ कहा गया है। प्रणव-सहित मूलबीज (ॐ ह्रीं) से हृदय, दोनों पैर, दोनों हाथ, दोनों कान एवं दोनों नासापुटों में तेईसवाँ न्यास किया जाता है। आसुरी-बीज (मीं) से मुख, दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनों कपोल, दोनों गण्डस्थल, कण्ठ, दोनों स्तन, हृदय, दोनों पैर, चिबुक, मस्तंक, दोनों भुजा, दोनों कन्धों, दोनों दन्तमूलों, ब्रह्मरन्ध्र, मूलाधार एवं भ्रूमध्य में न्यास करना चाहिये। यह चौबीसवाँ न्यास होता है॥४२-४७॥

मर्मन्यासानतो वक्ष्ये त्रिदेवस्यातिदुर्लभान्।
दिक्सप्तपञ्चपञ्चागवेदप्रलयसागराः ॥४८॥
एकत्रिंशत्कृताद्यन्ताश्चतुर्थस्वरसंयुताः।
बिन्दुनादसमायुक्ताः कूटमाकूटनामकम्।
न्यसेच्छीर्षे गण्डयोश्च मुखेऽयं तत्त्वसम्मितः ॥४९॥
जिनत्रिंशाब्धिबाणाक्षिवेदशैलमितायुताः।
बिन्दुतुर्यस्वराभ्यां तु कालबीजमुदाहृतम् ॥५०॥
नेत्रयोः कर्णयोर्नाभौ लिङ्गे चापि गुदे न्यसेत्।
षड्विंशोऽयं समाख्यातः सप्तविंशोऽथ कथ्यते ॥५१॥
संवर्तवेदवेदेन्द्राः प्रथमाभ्यां च संयुताः।
तुर्यस्वरेण बिन्द्वाढ्या विद्याबीजमुदाहृतम् ॥५२॥
कपोलयोर्ब्रह्मरन्ध्रे दन्तपङ्क्त्योश्च विन्यसेत्।

अब त्रिदेवों के लिये भी अत्यन्त दुर्लभ मर्मन्यासों को कहता हूँ। बिन्दु एवं नाद से समन्वित तथा आदि एवं अन्त में चतुर्थ स्वर से युक्त दशवें, सातवें, पाँचवें, पाँचवें, सातवें, चौथे, पहले, चौथे एवं इकतीसवें वर्ण के संयोग से बने आकूट-नामक कूट से मस्तक, दोनों गण्डस्थल एवं मुख में किया गया न्यास पच्चीसवाँ न्यास कहा गया है। 'नभरलमरक्षरह्सीं' इस कालबीज से दोनों नेत्र, दोनों कान, नाभि, लिङ्ग एवं गुदा में किया गया न्यास छब्बीसवाँ होता है। विद्याबीज 'क्षरशरह्सीं' से दोनों कपोल, ब्रह्मरन्ध्र, दोनों दन्तपंक्तियों में सत्ताईसवाँ यह न्यास करना चाहिये। विद्याबीज 'क्षरशरह्सीं' से दोनों कपोल, ब्रह्मरन्ध्र, दोनों दन्तपंक्तियों में यह सत्ताईसवाँ न्यास करना चाहिये॥४८-५२॥

अष्टाविंशमथो वक्ष्ये शृङ्खलान्यासमद्भुतम् ॥५३॥

अन्त्यान्ध्याद्यादिमेषूनत्रिंशद्बाणान्तकांस्तथा ।
तुर्यस्वरैस्तथैकत्रिंशन्मिताब्धित्रिसागरैः ॥५४॥
त्रिपञ्चरामषष्ठाढ्यं नादबिन्दुविभूषितम् ।
महापरोक्षं तत्कूटमङ्गेष्वेषु प्रविन्यसेत् ॥५५॥
मस्तके नेत्रयोः श्रुत्योः कपोलद्वयगण्डयोः ।
चिबुके च गले स्कन्धद्वये च स्तनयोर्हृदि ॥५६॥
कुक्षिद्वये तथा नाभौ जङ्घयोर्व्यञ्जने तथा ।
अण्डद्वये न्यसेत्पश्चान्मूलाधारे च गुल्फयोः ॥५७॥
पादयोश्च पृथङ्न्यस्य पादयोरङ्गुलीषु च ।
ब्रह्मरन्ध्रे पुनश्चांघ्र्योः पादयोरङ्गुलीषु च ॥५८॥
ब्रह्मरन्ध्रे पुनर्मूलाधारे च ब्रह्मरन्ध्रके ।
ॐकारमादौ संयोज्य मातृकान्यासमाचरेत् ।
न्यासश्चूडामणिश्चायमूनत्रिंशः प्रकीर्तितः ॥५९॥
ऊनत्रिंशाष्टधृत्यक्षिवेदान्त्याङ्करसाब्धयः ।
आद्येकत्रिंशवर्णास्तु सतुर्यस्वरबिन्दवः ॥६०॥
एतत्सरस्वतीकूटमेतत्पूर्वास्तु मातृकाः ।
वाक्सिद्ध्यर्थं न्यसेद्देहे त्रिंशोऽयं समुदीरितः ॥६१॥
एते तु वामिनो न्यासा न्यूना हानिविधायकाः ।
अवामिनां त्रयो नित्याः शेषाः काम्यप्रयोगके ॥६२॥

अब अत्यन्त अद्भुत अट्ठाईसवें शृङ्खलान्यास को कहता हूँ। इसमें महापरोक्ष कूट 'सहसहलकलइशर-वरवलवअई' से क्रमशः मस्तक, दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनों कपोल, दोनों गण्डस्थल, चिबुक, गला, दोनों कन्धा, दोनों स्तन, हृदय, दोनों कुक्षि, नाभि, दोनों जंघा, लिङ्ग, अण्डद्वय में न्यास करने के पश्चात् मूलाधार, दोनों गुल्फ, दोनों पैर एवं दोनों पैरों की अंगुलियों में अलग-अलग न्यास किया जाता है। चूड़ामणि-स्वरूप उन्तीसवाँ न्यास ब्रह्मरन्ध्र, पुनः दोनों पैर और उनकी अंगुलियों, पुनः ब्रह्मरन्ध्र, पुनः मूलाधार, पुनः ब्रह्मरन्ध्र में मातृकाओं के आदि में ॐ लगाकर किया जाता है। वाक्सिद्धि के लिये महासरस्वती-बीज 'कलडरसहरहक्षशरूंक्रों' को मातृकाओं के पूर्व लगाकर शरीर में उनका न्यास करना चाहिये। यह तीसवाँ न्यास कहा गया है।

उपर्युक्त ये सभी तीस न्यास वाममार्गियों के लिये विहित हैं। इनमें से किसी का

भी त्याग करने पर हानि होती है। दक्षिणमार्गियों के लिये तीन न्यास ही नित्य करणीय हैं; शेष सत्ताईस न्यासों को उन्हें काम्य प्रयोगों में करना चाहिये।।५३-६२।।

एवं न्यस्ततनुर्ध्यायेच्छुद्धस्फटिकसन्निभम्।
दीप्तमुद्रावराभीतिकिङ्किणीजालनूपुरैः ।।६३।।
युतं रत्नमयैः स्मेरवदनं कुटिलालकम्।
दक्षे शूलं च परशुं दधतं बटुरूपिणम्।।६४।।
द्विभुजं संस्मरेद्देवकार्यार्थं सात्त्विकं द्विजः।
वैष्णवस्तु चतुर्बाहुं जटामुकुटधारिणम्।।६५।।
त्रिशूलं पाशदण्डौ च दधतं च कमण्डलुम्।
मूलाद्यसद्योजातेन स्थापयेत्तदनन्तरम्।।६६।।
समूलवामदेवेन सन्निधापनमुद्रया।
मूलेन सन्निधायाथ सन्निरोधनमाचरेत्।।६७।।
अघोरान्तेन मूलेन सन्निरोधनमुद्रया।
षडङ्गैः सकलीकुर्यादमृतीकृत्य मूलतः।।६८।।
परमीकरणं मूलात्स्वस्वमुद्राभिरेव च।
ध्यात्वा संस्थापनं कुर्यान्मुद्राः सन्दर्शयेत्ततः।।६९।।
लिङ्गाद्या पूर्वमुद्दिष्टा योनिमुद्रा तु तत्र या।
तां दर्शयेत्तत्पुरुषमूलाभ्यां च ततो बलिम्।।७०।।
ईशानेन समूलेन कृत्वा देवं तथार्चयेत्।

इस प्रकार न्यस्त शरीर वाले साधक को सात्त्विक कार्य के लिये शुद्ध स्फटिक-सदृश कान्तिमान, दीप्त मुद्रा, वर, अभय, रत्नमय छोटी घण्टियों एवं नूपुर से समन्वित, प्रसन्न मुख तथा घुंघुराले बाल वाले, दाहिने हाथ में शूल एवं बाँयें में परशु धारण किये हुये दो भुजाओं वाले, बटुक स्वरूप वाले देव का स्मरण करना चाहिये।

वैष्णव साधक को उनके जटा-मुकुट धारण करने वाले तथा त्रिशूल, पाश, दण्ड एवं कमण्डलु लिये हुये चार भुजाओं वाले स्वरूप का ध्यान करना चाहिये।

तत्पश्चात् मूल मन्त्र के साथ सद्योजात मन्त्र का उच्चारण करते हुये उनकी स्थापना करनी चाहिये। इसके बाद सन्निधापन मुद्रा प्रदर्शित करते हुये मूल-सहित वामदेव मन्त्र से सन्निधापन करना चाहिये। मूल मन्त्र-सहित अघोरमन्त्र से सन्निरोधन मुद्रा प्रदर्शित करते हुये सन्निरोधन करना चाहिये। सकलीकरण मुद्रा दिखाते हुये षडङ्गमन्त्र से सकलीकरण एवं अमृतीकरण मुद्रा प्रदर्शित करते हुये मूल मन्त्र से अमृतीकरण करना

चाहिये। परमीकरण मुद्रा प्रदर्शित करते हुये मूल मन्त्र से परमीकरण करना चाहिये। ध्यान करके संस्थापन करने के पश्चात् पूर्वोक्त लिङ्गादि मुद्रा एवं योनिमुद्रा मूल मन्त्र-सहित तत्पुरुष मन्त्र से प्रदर्शित करनी चाहिये। इसके बाद मूल-सहित ईशान मन्त्र से बलि प्रदान करके देव का अर्चन करना चाहिये॥६३-७०॥

ततो देवाज्ञया न्यासस्थानेष्वङ्गानि पूजयेत् ॥७१॥
सद्योजातादिकान् पञ्च चाङ्गुष्ठादिषु संयजेत् ।
देवस्य देहे वक्त्रेषु यजेच्चैव पुनश्च तान् ॥७२॥
व्योमाङ्गं कर्णिकायां तु पूर्वदक्षहरेषु च ।
पश्चिमायां देवदेहे सद्योजातादिकान् यजेत् ॥७३॥
असिताङ्गं रुरुं चण्डं क्रोधमुन्मत्तभैरवम् ।
कपालिनं भीषणं च संहारं च समर्चयेत् ॥७४॥
देवाग्रतोऽष्टपत्रेषु यजेत्कोणत्रये पुनः ।
देशग्रामाधिपौ स्थानाधिपतिं संयजेत्पुनः ॥७५॥
त्रिकोणे तुर्यरेखासु मेघनादं प्रचण्डकम् ।
कालदूतं च षट्कोणे षडङ्गानि समर्चयेत् ॥७६॥

तदनन्तर देवता से आज्ञा प्राप्त करके न्यासस्थानों में अङ्ग-पूजन करना चाहिये। सद्योजातादि पाँच का अङ्गुष्ठ आदि में पूजन करके देव के शरीर एवं मुख में पूजन करने के बाद पुनः उनका पूजन करना चाहिये।

कर्णिका के पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर एवं ऊपर में सद्योजातादि पाँच का पूजन करने के बाद देवता के आगे से प्रारम्भ करके अष्टपत्र में असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण एवं संहार—इन आठ भैरवों का पूजन करना चाहिये। इसके बाद कोणत्रय में देशाधिपति, ग्रामाधिपति एवं स्थानाधिपति का पूजन करके त्रिकोण की रेखाओं में मेघनाद, प्रचण्ड और कालदूत का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर षट्कोण में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये॥७१-७६॥

षट्कोणस्य बहिश्चाष्टदिक्षु देवाग्रतो यजेत् ।
डाकिनीपुत्रकान् सर्वान् शाकिनीपुत्रकानपि॥७७॥
लाकिनीपुत्रकानिष्ट्वा हाकिनीपुत्रकान् यजेत् ।
मालिनीपुत्रकानिष्ट्वा देवीपुत्रांस्ततो यजेत् ॥७८॥
देवस्य वामभागे तु यजेदेतान् क्रमेण तु ।
इन्द्रेशानदिशोर्मध्य ऊर्ध्वमुख्या न्यसेत्सुतान् ॥७९॥

रक्षोजलेशयोर्मध्ये त्वधोमुख्या न्यसेत्सुतान् ।
एतेषामन्तरालेऽर्च्याः पुत्रवर्णास्त्रयोदश ॥८०॥

पूजन यन्त्र
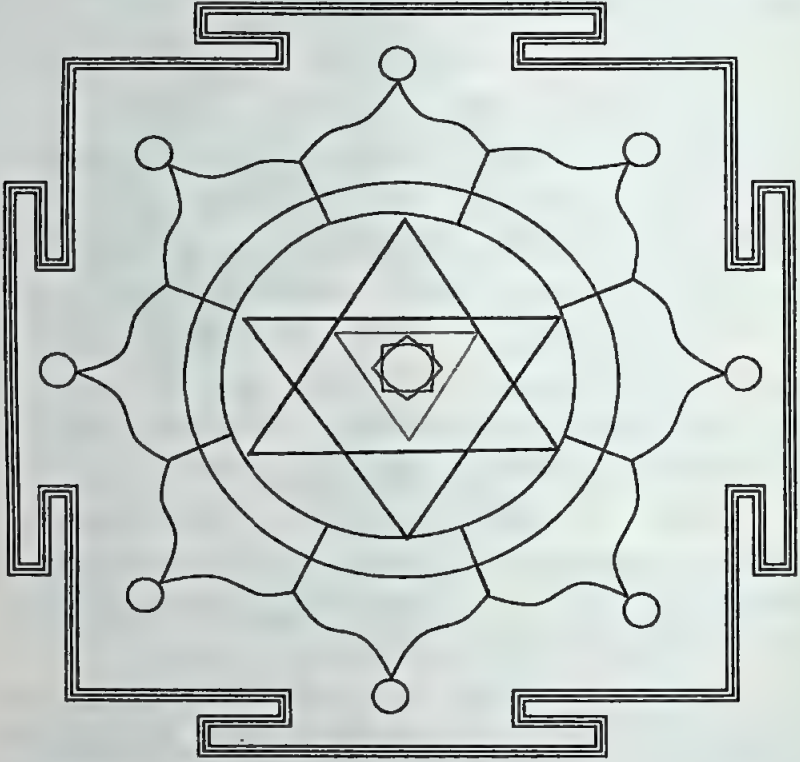
षट्कोण के बाहर देवता के आगे से आरम्भ कर आठो दिशाओं में समस्त डाकिनीपुत्रों, शाकिनीपुत्रों, लाकिनीपुत्रों, हाकिनीपुत्रों एवं मालिनीपुत्रों का यजन करने के बाद देवीपुत्रों का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर देवता के वाम भाग में इनका क्रमशः यजन करना चाहिये। पूर्व-ईशान के मध्य में ऊर्ध्वमुखी-पुत्रों का एवं दक्षिण-पश्चिम के मध्य में अधोमुखी-पुत्रों का यजन करना चाहिये। इन सबके मध्य में तेरह पुत्रवर्णों का पूजन करना चाहिये॥७७-८०॥

ततश्चाष्टदले पद्मे देवाग्रादिप्रदक्षिणम् ।
ब्रह्माणीतनयं माहेशीपुत्रं वैष्णवीसुतम् ॥८१॥
कौमारीन्द्राणिकापुत्रौ महालक्ष्मीसुतं तथा ।
वाराहीतनयं चामुण्डापुत्रं बटुकाभिधम् ॥८२॥

पूजयित्वा ततो बाह्ये पद्मस्येशाग्रतो यजेत्।
भूपुरार्वागिष्टदिक्षु हेतुकं त्रिपुरान्तकम् ॥८३॥
वेतालमग्निजिह्वं च कालान्ते च करालकम्।
एकपादं भीमरूपं प्रागीशानान्तरे यजेत् ॥८४॥
अचलं हाटकेशं च पाशि रक्षो दिगन्तरे।

इसके बाद अष्टदल में देवता के आगे से प्रदक्षिणक्रम से ब्राह्मी-पुत्र, माहेशी-पुत्र, वैष्णवी-पुत्र, कौमारीपुत्र, इन्द्राणी-पुत्र, महालक्ष्मी-पुत्र, वाराही-पुत्र एवं चामुण्डा-पुत्र बटुक का पूजन करना चाहिये।

इसके बाद कमल के आगे भूपुर में ईशानादि क्रम से आठो दिशाओं में हेतुक, त्रिपुरान्तक, वेताल, अग्निजिह्व, कालान्तक, करालक, एकपाद एवं भीमरूप का पूजन करना चाहिये। पूर्व-ईशान के मध्य में अचल का और पश्चिम-नैर्ऋत्य के मध्य में हाटकेश का पूजन करना चाहिये॥८१-८४॥

चतुरस्रादिरेखायां देवाग्रादिप्रदक्षिणम् ॥८५॥
श्रीकण्ठममरेशञ्चानन्तसर्वगसूक्ष्मकौ।
भारभूतं त्रिमूर्तिं च तिथीशं च तदग्रिमे ॥८६॥
चतुरस्रे च देवस्य दक्षिणादिप्रदक्षिणम्।
स्थाण्वीश्वरं च बिल्वीशं दिगीशं भौतिकेश्वरम् ॥८७॥
सद्योजातेश्वरं चैव ग्रहेशाक्रूरकेश्वरौ।
महासेनेश्वरं पश्चात्तृतीये चतुरस्रके ॥८८॥
देवस्योत्तरमारभ्य यजेदेतान् प्रदक्षिणम्।
क्रोधेश्वरं च चण्डीशं कूर्मेशं लाङ्गलीश्वरम् ॥८९॥
दारुकेशं च मीनेशमरोषं भृगुमेव च।

तत्पश्चात् उसके आगे भूपुर की पहली रेखा में देवाग्रादि प्रदक्षिणक्रम से श्रीकण्ठ, अमरेश, अनन्त, सर्वग, सर्वसूक्ष्म, भारभूत, त्रिमूर्ति एवं तिथीश का पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर भूपुर की दूसरी रेखा में देव के दक्षिणादि प्रदक्षिणक्रम से स्थाण्वीश्वर, विल्वीश, दिगीश, भौतिकेश्वर, सद्योजातेश्वर, ग्रहेश, अक्रूरकेश्वर एवं महासेनेश्वर का पूजन करना चाहिये।

पुनः भूपुर की तीसरी रेखा में देव के उत्तर से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणक्रम से क्रोधेश्वर, चण्डीश, कूर्मेश, लाङ्गलीश्वर, दारुकेश, मीनेश, अरोष एवं भृगु का पूजन करना चाहिये॥८५-८९॥

वामभागे तु देवस्य नकुलीशं शिवेश्वरम् ॥९०॥
संवर्तेशं समभ्यर्च्य तद्बाह्ये पूजयेदिमान्।
वामाग्रकोणमारभ्य प्रादक्षिण्येन कोणजान् ॥९१॥
सशक्तिकां दिव्यसिद्धां नतां दीक्षाख्ययोगिनीम्।
भयश्च योगिनीपश्चात्तदन्ते सर्वयोगिनीम्।
तदग्रे लोकपालांश्च पूजाविधिरितीरितः ॥९२॥

देवता के वामभाग में नकुलीश, शिवेश्वर एवं संवर्तेश का पूजन करने के बाद उसके बाहर वामाग्र कोण से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणक्रम से कोणों में शक्ति-सहित नम्रमुखी दिव्यसिद्धा, दीक्षायोगिनी, भययोगिनी एवं सर्वयोगिनी का पूजन करना चाहिये। पुनः उसके आगे इन्द्रादि दस दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। यही इनकी पूजाविधि कही गई है॥९०-९२॥

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः।
हुनेत्तिलैस्त्रिमध्वक्तैस्तर्पणादि ततश्चरेत् ॥९३॥
वाममार्गे द्रुतं सिद्धिः सपादं दशलक्षकम्।
पुरश्चर्या तथा होमो घृतयुक्तपलाशजैः ॥९४॥
वामकौलिकमार्गेण साध्यो दुःखप्रदो मनुः।
विघ्नं दुर्गां समाराध्य बलिं दत्त्वा विधानतः ॥९५॥
काम्यानि साधयेन्मन्त्री यथोक्तां सिद्धिमाप्नुयात्।

पुरश्चरण-हेतु हविष्य-भक्षण करते हुये जितेन्द्रिय रहकर वर्णलक्ष अर्थात् इक्कीस लाख मन्त्रजप करने के उपरान्त त्रिमधु-सिक्त तिलों से हवन करने के बाद तर्पण आदि करना चाहिये। वाममार्ग में मन्त्र के दस लाख पच्चीस हजार जप से शीघ्र ही पुरश्चरण-सिद्धि हो जाती है। इसमें घृत-सिक्त पलाशपुष्पों से हवन किया जाता है। वाम कौलिक मार्ग से साधना करने पर साध्य मन्त्र दुःख-प्रद होता है।

गणेश और दुर्गा की सम्यक् रूप से आराधना करके विधि-पूर्वक बलि प्रदान करके मन्त्रज्ञ साधक को काम्य कर्मों का साधन करना चाहिये; इससे साधक यथोक्त सिद्धि प्राप्त करता है॥९३-९५॥

वश्याय जुहुयादिक्षुशकलैर्वशयेज्जगत् ॥९६॥
जुहुयात्सर्पिषा मन्त्री यथोक्तां सिद्धिमाप्नुयात्।
जुहुयात्पुत्रलाभाय प्रफुल्लैः कैरवैः सुधीः ॥९७॥
धनधान्यादिसम्पत्त्यै जुहुयात्तिलतण्डुलैः।
बिल्वप्रसूनैर्जुहुयान्महतीं विन्दते श्रियम् ॥९८॥

लवणैर्मधुसम्मिश्रैर्वशयेद्वनिताजनान् ।
वृष्टिकामेन होतव्यं वेतसानां समिद्वरैः ॥९९॥
अन्नेन जुहुयान्मन्त्री धनधान्यादिसम्पदे ।
वश्याय जुहुयान्मन्त्री मधुना दिवसत्रयम् ॥१००॥
रोगोक्तौषधिहोमेन रोगा नश्यन्ति तत्क्षणात् ।
कृत्याद्रोहे ग्रहद्रोहे भूतापस्मारसम्भवे ॥१०१॥
व्याघ्राजिने समासीनो जुहुयादयुतं तिलैः ।
भूतादयः पलायन्ते द्रुतं नो यान्ति तद्दिशम् ॥१०२॥

वशीकरण के लिये ईक्षुखण्डों से हवन करना चाहिये। इससे सम्पूर्ण जगत् को वशीभूत किया जा सकता है। गोघृत के हवन से भी मन्त्रज्ञ साधक को वशीकरण-सिद्धि प्राप्त होती है। पुत्रलाभ के लिये विकसित कुमुदपुष्पों से हवन करना चाहिये। धन-धान्य आदि सम्पत्तियों के लिये तिल-मिश्रित चावल से हवन करना चाहिये। प्रभूत लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये बिल्वपुष्पों से हवन करना चाहिये। वनिताओं को वशीभूत करने के लिये मधु-मिश्रित नमक से हवन करना चाहिये।

वर्षा की कामना से बेंत की समिधाओं से हवन करना चाहिये। धन-धान्य आदि सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये मन्त्रज्ञ को अन्न से हवन करना चाहिये। वशीकरण की सिद्धि के लिये मन्त्रज्ञ साधक को तीन दिनों तक मधु से हवन करना चाहिये।

रोगों के लिये निश्चित औषधि से हवन करने पर तत्क्षण ही रोग नष्ट हो जाते हैं। कृत्या-पीड़ा, ग्रह-पीड़ा, भूतों के कारण होने वाली पीड़ा एवं अपस्मार (मिर्गी) से होने वाले कष्ट में व्याघ्रचर्म पर आसीन होकर तिलों से दस हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करना चाहिये। ऐसा करने से तत्काल ही भूत आदि पलायित हो जाते हैं और फिर उस दिशा की ओर मुड़कर भी नहीं आते॥९६-१०२॥

कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णा चतुर्दशी ।
तिलैस्तण्डुलसम्मिश्रैर्मधुरत्रयलोलितैः ॥१०३॥
त्रिसहस्रं प्रतिदिनं जुहुयादयुतं तिलैः ।
भूतादयः पलायन्ते दर्शनात्तस्य पार्वति ॥१०४॥
बटुकेश्वरमभ्यर्च्य भक्ष्यभोज्यफलान्वितम् ।
नित्यं निवेद्य नैवेद्यं मध्यरात्रे बलिं हरेत् ॥१०५॥
शाल्यन्नं सर्पिषा युक्तं लाजाश्चूर्णानि शर्कराः ।
गुडमिक्षुरसापूपैर्मध्वक्तैः परिमिश्रितः ॥१०६॥

एवं बटुकमाराध्य देवं प्रागुक्तवर्त्मना।
रक्तचन्दनपुष्पाद्यैर्बलिरेष प्रकीर्तितः ॥१०७॥
एवं जपित्वा प्रयतः सहस्राण्येकविंशतिम्।
समाप्तदिवसे रात्रौ पूजयित्वा हरेद्बलिम्।
ततः कारयिता राजा तोषयेत्साधकं धनैः ॥१०८॥
विधिनानेन सन्तुष्टो बटुकेशः प्रयच्छति।
तेजो बलं यशः पुत्रान् कान्तिं लक्ष्मीमरोगताम् ॥१०९॥
नश्यन्ति शत्रवः सर्वे वर्द्धन्ते बन्धुबान्धवाः।
भवन्ति ग्रहरोगा नो विषये तस्य भूपतेः ॥११०॥

हे पार्वति! कृष्णपक्ष की अष्टमी से आरम्भ करके कृष्ण-चतुर्दशी-पर्यन्त सात दिनों तक प्रतिदिन त्रिमधु-सिक्त तिल-मिश्रित तण्डुल से तीन हजार एवं केवल तिलों से दस हजार हवन करने पर उस साधक को देखते ही भूत आदि पलायित हो जाते हैं।

प्रतिदिन वटुकेश्वर का पूजन करके भक्ष्य, भोज्य एवं फल से युक्त नैवेद्य अर्पित कर मध्य रात्रि में भात, गोघृत, लाजाचूर्ण, शक्कर, गुड़, ईक्षुरस एवं पूआ को मधु-सिक्त करके बलि प्रदान करना चाहिये।

इस प्रकार पूर्वोक्त मार्ग से रक्त चन्दन-पुष्प आदि से बटुक का आराधन करने के बाद बलि प्रदान कर मन्त्र का इक्कीस हजार जप करना चाहिये। जप-समाप्ति अर्थात् कृष्णचतुर्दशी की रात्रि में पूजन करके बलि प्रदान करनी चाहिये। इसके बाद उक्त अनुष्ठान कराने वाले राजा द्वारा साधक को प्रभूत धन प्रदान करते हुये उसे सन्तुष्ट करना चाहिये। इस विधि द्वारा अनुष्ठान कराने पर प्रसन्न बटुकेश उस राजा के पास आते हैं और उस राजा को तेज, बल, यश, पुत्र, कान्ति, लक्ष्मी एवं आरोग्य प्रदान करते हैं। उसके सभी शत्रुओं का नाश होता है एवं बन्धु-बान्धवों की वृद्धि होती है। साथ ही ग्रहों के कारण होने वाले किसी भी प्रकार के रोग उस राजा को आक्रान्त नहीं करते॥१०३-११०॥

जुहुयाल्लवणैरेवायुतं च स्तम्भनेच्छया।
निगडादिविमोक्षाय प्रयोगोऽयमुदाहृतः ॥१११॥
वचाचूर्णपलक्षुप्तं गव्येनाज्येन लोडितम्।
विभज्य भक्षयेद्वन्ध्या मण्डलात्पुत्रकाङ्क्षिणी ॥११२॥
विनीतं पुत्रमाप्नोति मेधारोग्यबलान्वितम्।
आदावन्ते प्रयोगस्य बटुकाय बलिं हरेत् ॥११३॥

बलिस्तु त्रिविधः प्रोक्तः सात्त्विको राजसस्तथा।
तामसश्चेति पूर्वोक्तो मांसहीनो यदा बलिः ॥११४॥
मुद्गपायससंयुक्तो मधुरत्रयलोडितः।
खाद्यैः फलत्रयैर्युक्तः सात्त्विकः परिकीर्तितः ॥११५॥
अयं विप्रैः प्रदेयस्तु तेन तुष्यति भैरवः।
एवं समांसो भूपादियोग्य उक्तस्तु राजसः ॥११६॥
रक्तमांससुरायुक्तस्सर्वैर्मत्स्यैः समन्वितः।
बलिस्तामस आख्यातः शूद्रादीनां प्रशस्यते ॥११७॥

स्तम्भन-सिद्धि की कामना वाले साधक को लवण (नमक) से दस हजार हवन करना चाहिये। (बन्धन) कारागार से विमुक्ति के लिये इसका प्रयोग कहा गया है।

गोघृत-मिश्रित एक पल वचाचूर्ण को इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करने के उपरान्त उसे चालीस भागों में विभक्त करके चालीस दिनों तक प्रतिदिन भक्षण करने से पुत्र-प्राप्ति की कामना वाली वन्ध्या स्त्री भी मेधा, आरोग्य एवं बल से समन्वित विनम्र पुत्र को प्राप्त करती है। इस प्रयोग का आरम्भ करने के पूर्व एवं पश्चात् बटुक के लिये बलि अवश्य प्रदान करनी चाहिये।

सात्त्विक, राजस एवं तामस के भेद से बलि तीन प्रकार की कही गई है। बलि यदि मांस-रहित देनी हो तो त्रिमधु-समन्वित मूँग एवं पायस तथा भक्षण-योग्य फलों से युक्त बलि सात्त्विक बलि कहलाती है। यह बलि ब्राह्मणों द्वारा प्रदान करने योग्य होती है और इससे बटुक देवता प्रसन्न होते हैं। यही बलि यदि मांस-सहित हो तो राजस बलि कहलाती है और राजाओं द्वारा प्रदान करने योग्य होती है। पुनः यही बलि यदि रक्त, मांस, सुरा एवं मछली आदि से समन्वित होती है तो वह तामस बलि कहलाती है। यह बलि शूद्रों के लिये प्रशस्त कही गई है॥१११-११७॥

भस्मसाधनकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भस्मसाधनमुत्तमम्।
उशीरं चन्दनं कुष्ठं घनसारं च कुङ्कुमम् ॥११८॥
श्वेतार्कमूलं वाराहीं लक्ष्मीं क्षीरमहीरुहम्।
त्वचं बिल्वफलं मूलं शोषयित्वा तु चूर्णयेत् ॥११९॥
पूर्णव्योमगृहीतेन गोमयेन विमिश्रितम्।
कृत्वा पिण्डांश्च संशोष्य संस्कृते हव्यवाहने ॥१२०॥
मूलेन दग्ध्वा तद्भस्म शुद्धपात्रे विनिःक्षिपेत्।
केतकीमालतीपुष्पैर्वासयेद्भस्म शोभितम् ॥१२१॥

अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं स्पृष्ट्वा भस्म सुपूजितम् ।
एतदादाय दिवसे प्रातः पुण्ड्रं करोति यः ॥१२२॥
तस्य रोगाः प्रणश्यन्ति ग्रहाः सन्ति शुभप्रदाः ।
रिपुचौरमृगादिभ्यो भयमस्य न जायते ॥१२३॥
वर्द्धन्ते सम्पदः सर्वाः पूज्यते सकलैर्जनैः ।
राजा वश्यो भवेत्तस्य सामात्यः सपरिच्छदः ॥१२४॥

भस्म-साधन—अब मैं भस्म-साधन की सर्वश्रेष्ठ विधि को सम्यक् रूप से कहता हूँ। खश, चन्दन, कूठ, घनसार, कुमकुम, श्वेत मदार की जड़, वाराही (कँगनी), लक्ष्मी (हल्दी) एवं क्षीरिवृक्ष की छाल तथा बेल के फल एवं उसके जड़ को सुखाकर सबका चूर्ण बनाने के उपरान्त जमीन पर गिरने के पूर्व ही प्राप्त गाय के गोबर में उस चूर्ण को मिलाकर गोलाकार पिण्ड बनाने के बाद उस पिण्ड़ को सुखाकर संस्कृत अग्नि में मूल मन्त्र से जलाकर उसके भस्म को शुद्ध पात्र में एकत्र कर लेना चाहिये। इसके बाद केतकी एवं मालती-पुष्पों से उस भस्म को सुवासित करना चाहिये। तत्पश्चात् उस भस्म का स्पर्श करके मन्त्र का दस हजार जप करने के बाद सम्यक् रूप से उसका पूजन करना चाहिये।

जो साधक इस प्रकार निर्मित भस्म द्वारा प्रतिदिन प्रातःकाल पुण्ड्र (तिलक) लगाता है, उसके समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं तथा समस्त ग्रह भी उसके लिये शुभकारक हो जाते हैं। उसे शत्रुओं, चोरों, चौपायों आदि से किसी प्रकार का भय नहीं रहता। उसके सभी सम्पदाओं की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है और सभी लोग उसका सम्मान करते हैं। अमात्यों एवं दरबारियों सहित राजा उसके वशीभूत होता है॥११८-१२४॥

अभिषेकविधिकथनम्

अथाभिषेकं वक्ष्यामि भूतानां विजयप्रदम् ।
पूर्वोक्ते मण्डले लिप्ते वितानध्वजशोभिते ॥१२५॥
सर्वतोभद्रमालिख्य कर्णिकां तस्य पूरयेत् ।
अष्टद्रोणप्रमाणेन शालिभिः प्राचितैः शुभैः ॥१२६॥
तदर्धांस्तण्डुलांस्तस्मिन्न्यस्य दूर्वाक्षतान्वितान् ।
हेमादिविहितं कुम्भं नवरत्नसमन्वितम् ॥१२७॥
संस्थाप्य विमलैस्तोयैरापूर्यास्मिन् विनिःक्षिपेत् ।
क्षीरद्रुमप्रवालानि लक्ष्मीं दूर्वां तथैव च ॥१२८॥
कर्पूरं चन्दनं बिल्वमुशीरं कुङ्कुमम्पुनः ।
कङ्कोलमगुरुं जातीं मल्लिकां चम्पकोत्पले ॥१२९॥

एवं न्यस्य त्विमं पश्चात्पट्टसूत्रेण वेष्टयेत्।
तस्मिन्नावाह्य बटुकं राजसं सम्प्रपूजयेत् ॥१३०॥
बहिरष्टसु कुम्भेषु भैरवानष्ट पूजयेत्।
त्रयोदशसु कुम्भेषु त्रयोदशगणान् यजेत् ॥१३१॥
बाह्ये दशसु कुम्भेषु लोकेशानर्चयेत्सुधीः।
तद्बहिर्व्यस्तकुम्भेषु श्रीकण्ठादीन् सुरान् यजेत् ॥१३२॥
पञ्चत्रिंशघटेष्वर्च्याः कादिवर्णाः स्वराः क्रमात्।
इति गन्धादिभिः सम्यक्पञ्चावरणमर्चयेत्।

भूतों पर विजयप्रद अभिषेक—अब मैं भूतों पर विजय प्रदान करने वाले अभिषेक को कहता हूँ। पूर्वोक्त लिप्त एवं ध्वज-पताकाओं से विभूषित मण्डल पर सर्वतोभद्रमण्डल की रचना करके उसकी कर्णिका को एक सौ अट्ठाईस क़िलो शुद्ध चावल से भरने के बाद उस पर दूर्वा एवं अक्षत से समन्वित चौंसठ किलो चावल से भरे नवरत्नों से समन्वित स्वर्णादि-निर्मित कलश स्थापित करके उसमें स्वच्छ जल भरने के उपरान्त उसमें दूध वाले वृक्ष के पल्लव, हल्दी, दूर्वा, कपूर, चन्दन, बेल, खश, कुमकुम, कंकोल, अगर, जायफल, मल्लिका, चम्पा एवं कमल का पुष्प डालने के बाद उसे कपड़े के धागे से वेष्टित कर देना चाहिये। इसके बाद उस कलश में बटुक का आवाहन करके राजस विधि से उनका पूजन करना चाहिये।

फिर उसके बाहर आठ कलशों में अष्टभैरवों का पूजन करने के बाद तेरह कलशों में तेरह गणों का पूजन करना चाहिये। उसके बाहर के दश कलशों में इन्द्रादि दस लोकपालों का अर्चन करने के बाद उसके बाहर अलग-अलग कलशों में श्रीकण्ठादि देवताओं का पूजन करना चाहिये। उसके बाद पैंतीस कलशों में क्रमशः स्वरान्वित पैंतीस कादि वर्णों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार गंध-अक्षत-पुष्प आदि से पाँच आवरणों में सम्यक् रूप से पूजन करना चाहिये॥१२५-१३२॥

अयुतं प्रजपेत्स्पृष्ट्वा तान् घटान् देशिकोत्तमः ॥१३३॥
सुदिने शोभने लग्ने वाचयित्वा द्विजातिभिः।
स्वस्तिमङ्गलवाक्यानि विशुद्धैर्वेदपारगैः ॥१३४॥
ततस्तु मञ्चमारूढं प्रणम्य बटुकेश्वरम्।
जितेन्द्रियं शुद्धकायं राजानं ब्राह्मणप्रियम् ॥१३५॥
आस्तिकं सत्यवचनमभिषिञ्चेत्प्रसन्नधीः।
तदा स्वयं च नृपतिः प्रणिपत्य गुरुं प्रियम्।
भूयसीं दक्षिणां दद्यात्प्रसीदति यथा गुरुः ॥१३६॥

राजाभिषिक्तो भवेति साक्षाद् भूमिपुरन्दरः ।
परान्विजयते भूपान् स्तूयते सकलैर्जनैः ॥१३७॥
कृताभिषेकः षण्मासं प्रतिमासं महीपतिः ।
चतुरम्भोधिवलयां शास्ति सर्वां वसुन्धराम् ॥१३८॥

तदनन्तर श्रेष्ठ साधक को उन कलशों को स्पर्श करके मन्त्र का दस हजार जप करना चाहिये। इसके बाद शुभ दिन और शुभ लग्न में विशुद्ध वेदवित् ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन एवं मंगलपाठ करने के बाद बटुक को प्रणाम करके जितेन्द्रिय, शुद्धकाय, ब्राह्मणप्रिय, आस्तिक, सत्यवादी एवं प्रसन्न मन वाले राजा को मंच पर बैठा कर उसका अभिषेक करना चाहिये। उस समय राजा द्वारा अपने गुरु को प्रणाम करके उन्हें प्रचुर दक्षिणा प्रदान करके प्रसन्न करना चाहिये।

इस प्रकार अभिषिक्त राजा पृथ्वी पर साक्षात् इन्द्र-स्वरूप हो जाता है। वह शत्रुराजाओं को जीत लेता है और सभी लोगों द्वारा प्रशंसित होता है। अनवरत छः मास-पर्यन्त प्रतिमास इस प्रकार से अभिषिक्त राजा चारो समुद्रों से घिरी सम्पूर्ण पृथिवी पर शासन करता है॥१३३-१३८॥

गजोष्ट्रवाजिनां रोगादिशान्तिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गजोष्ट्रवृषवाजिनाम् ।
रोगादीनां यथा शान्तिस्तत्तच्छालासु कारयेत् ॥१३९॥
कुण्डं कृत्वा विधानेन होमं कृत्वा यथाविधि ।
पायसाज्यतिलैर्विद्वानयुतत्रितयावधि ॥१४०॥
ब्राह्मणान् भोजयेन्नित्यं भक्ष्यभोज्यफलादिभिः ।
प्राक्प्रोक्तविधिना कुम्भान् स्थापयित्वात्र देशिकः ॥१४१॥
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैस्तज्जलैः प्रोक्षयेद् गजान् ।
अश्वशालामनेनैव वर्द्धन्ते ते दिने दिने ।
युद्धेषु महती शक्तिर्जायते पूर्वतोऽधिका ॥१४२॥
सर्वे रोगाः प्रणश्यन्ति कृत्याद्रोहाः परैः कृताः ।
अस्मात्परतरा रक्षा नास्ति तेषां महीतले ॥१४३॥

हाथियों, घोड़ों एवं ऊँटों के रोग आदि की शान्ति—अब मैं हाथियों, घोड़ों, ऊँटों के रोग आदि की शान्ति को कहता हूँ। यह शान्ति उनके रहने के स्थानों में की जाती है। विद्वान् को हथिसार में विधि-पूर्वक कुण्ड का निर्माण करके तीन दिनों तक प्रतिदिन उसमें यथाविधि पायस, आज्य एवं तिलों की दस-दस हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करके प्रतिदिन भक्ष्य, भोज्य, फल आदि द्वारा ब्राह्मणों को भोजन कराने

के पश्चात् वहीं पर पूर्वोक्त विधि से कलशों को स्थापित करना चाहिये। तत्पश्चात् गन्ध-पुष्प आदि से उन कलशों का पूजन करने के बाद कलशजल से हाथियों का प्रोक्षण करना चाहिये। इसी प्रकार अश्वशाला में भी करना चाहिये। ऐसा करने से वे हाथी, घोड़े दिनोदिन वृद्धि को प्राप्त होते हैं और युद्ध आदि की स्थिति में वे पहले से अधिक शक्ति-सम्पन्न हो जाते हैं। उनके समस्त रोगों का नाश हो जाता है एवं शत्रुओं द्वारा किये गये कृत्या-सम्बन्धी द्रोह भी नष्ट हो जाते हैं। इस पृथिवी पर इससे श्रेष्ठ कोई दूसरी शान्ति उनके लिये नहीं है॥१३९-१४३॥

अभिषिच्य महीपालं परेषां विजयोद्यतम्।
उक्तेन विधिना मन्त्री यामिन्यां बलिमाहरेत्॥१४४॥
अन्यूनाङ्गमजं हत्वा राजसं प्रागुदाहृतम्।
बलिप्रदानसमये रिपूणां सर्वसैन्यकम्॥१४५॥
निवेदयेद्बलिं तेन बटुकाय विशिष्टधीः।
विदर्भयेच्छत्रुनाम्ना बलिमन्त्रं तथा सुधीः॥१४६॥
शत्रुपक्षस्य रुधिरं पिशितं च दिने दिने।
भक्षयेच्छ्वगणैः सार्द्धं सारमेयसमन्वितः।
बलिमन्त्रोऽयमाख्यातः सर्वेषां विजयप्रदः॥१४७॥
अनेन बलिना हृष्टो बटुकः परसैन्यकम्।
श्वगणेभ्यो विभजते सामिषं क्रुद्धमानसः॥१४८॥
एवं कृते परबलं क्षीयते नात्र संशयः।
विजयश्रियमेतेन राजा प्राप्नोत्ययत्नतः॥१४९॥

शत्रुओं पर विजय-प्राप्ति के लिये उद्यत राजा का अभिषेक करके मन्त्रज्ञ को रात्रि में उक्त विधि से यथोचित अङ्ग वाले बकरे का वध करते हुये पूर्वकथित राजस बलि प्रदान करनी चाहिये। बलि प्रदान करते समय बलिमन्त्र के मध्य शत्रु का नाम रखकर उस मन्त्र से शत्रु की समस्त सेना को बलि-स्वरूप वटुक के लिये निवेदित करना चाहिये।

सबको विजय प्रदान करने वाला बलिमन्त्र इस प्रकार है—शत्रुपक्षस्य रुधिरं पिशितं च दिने दिने, भक्षयेच्छ्वगणैः सार्द्धं सारमेयसमन्वितः। अर्थात् सारमेय (कुत्ते) से समन्वित बटुक अपने गणों के साथ शत्रुपक्ष के रक्त एवं मांस का प्रतिदिन भक्षण करें।

इस बलि को देने से प्रसन्न बटुक क्रुद्ध होकर सामिष शत्रुसेना को अपने गणों में बाँट देते हैं। ऐसा करने से शत्रु का बल क्षीण हो जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। इससे अनायास ही राजा को विजयश्री की प्राप्ति हो जाती है॥१४४-१४९॥

नानाभैरवसाधननिरूपणम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नानाभैरवसाधनम्।
श्मशाने ये तु तिष्ठन्ति काले काले पुरे पुरे ॥१५०॥
नियमं कञ्चिदेकं यो न त्यजेद्धर्मगर्भितम्।
वाममार्गादिनिरतोऽप्यद्वेषतरवर्त्मना ॥१५१॥
हीने गुरावपूर्णे वा साधनो लोकभीतितः।
स भवेद्भैरवो देवस्तस्य देशस्य शासकः ॥१५२॥
तत्रत्यभूतवेताला भैरवं सेवयन्ति तम्।
स्वर्गमोक्षच्युतानां स शासनं कुरुते सदा ॥१५३॥
क्षीणे कर्मणि तस्मिंश्च गतो ग्रामे विलीयते।
अन्यस्मिन्नेव बीजेन ग्रामे वसति निश्चितम् ॥१५४॥

अनेक भैरवों की साधना—अब मैं उन अनेक भैरवों की साधना को सम्यक् रूप से कहता हूँ, जो समय-समय पर नगर-नगर में श्मशान में विराजमान रहते हैं। जो साधक धर्मगर्भित किसी भी नियम का त्याग नहीं करता, वाममार्ग आदि में निरत रहते हुये भी विद्वेष-रहित मार्ग से साधना करता है, लोकभय के कारण गुरु न होने की स्थिति में जिसकी साधना अपूर्ण रह जाती है, वही भैरव होकर उस देश का शासक होता है। वहाँ रहने वाले भूत-वेताल उस भैरव की सेवा करते हैं। स्वर्ग एवं मोक्ष से वंचित लोगों पर वह सदा शासन करता है। कर्मों के क्षीण हो जाने पर वह गाँव में विलीन हो जाता है और दूसरे बीज से निश्चित ही वह ग्राम में वास करता है॥१५०-१५४॥

यदाम्नाये भैरवोऽसौ तस्य स्थानं तु तद्दिशि।
तेन मार्गेण वशयेत्कार्यार्थं भैरवञ्च तम् ॥१५५॥
वाग्रमाकाममायाख्यास्मारो बीजं क्रमाद्भवेत्।
पूर्वाद्यूर्ध्वान्तकं त्वेतदाम्नायानां क्रमेण च ॥१५६॥
आम्नायबीजं ग्रामस्य बीजं भं भैरवाय च।
ग्रामनाम ततः प्रोच्य पितृगेहनिवासिने ॥१५७॥
नमस्तेभ्यो मनुमिमं जपेदर्णसहस्रकम्।
निशि श्मशाने च बलिं तदाम्नायोक्तवर्त्मना।
जपादौ च जपान्ते च नित्यं दद्यादनन्यधीः ॥१५८॥
बटुकोक्तं हुनेद् द्रव्यं तर्पणादि ततश्चरेत्।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री भूतानां निग्रहक्षमः ॥१५९॥

जिस आम्नाय का यह भैरव होता है, उसका स्थान उसी दिशा में होता है और कार्य-सिद्धि के लिये उसी मार्ग का अनुसरण कर उस भैरव को वशीभूत करना चाहिये। पूर्वाम्नाय से ऊर्ध्वाम्नाय तक के वीज क्रमशः 'ऐं श्रीं क्लीं ह्रीं क्लीं' होते हैं।

ग्राम का आम्नायबीज, उसके बाद 'भं भैरवाय', तत्पश्चात् ग्राम का नाम बोलकर 'पितृगेहनिवासिने नमस्तेभ्यः' यह उस भैरव का मन्त्र होता है। इस मन्त्र का वर्णसहस्र जप करना चाहिये। जप के पूर्व एवं बाद में उस आम्नाय के मार्ग का अनुसरण करते हुये प्रतिदिन रात्रि में श्मशान में जाकर एकाग्रचित्त से वलि प्रदान करनी चाहिये। इसके बाद बटुकोक्त द्रव्यों से हवन करने के बाद तर्पण आदि करना चाहिये। इस प्रकार से सिद्ध मन्त्र वाला मन्त्रज्ञ साधक भूतों का निग्रह करने में सक्षम हो जाता है॥१५५-१५९॥

तस्मिन् देशे भवेत्तस्य प्रत्यक्षीकरणं शृणु।
कृतनित्यक्रियः प्रातः सोपवासो जितेन्द्रियः ॥१६०॥
सायं सन्ध्यादिकं कृत्वा शान्तिपाठौ विधाय च।
प्रगृह्य सर्वसामग्रीं सायमुत्तरसाधकः ॥१६१॥
व्रजेच्छ्मशानसामग्रीं शृणु सुस्थिरचेतसा।
वटकाश्चणका भक्तं पायसापूपशष्कुलि ॥१६२॥
कन्यकाकर्षितं सूत्रं कुङ्कुमेन सुरञ्जितम्।
अष्टौ वितस्तिदीर्घाश्च समिधः खादिरा मताः ॥१६३॥
कीलालको हस्तमात्रो गन्धपुष्पादिकं तथा।
बलिद्रव्यं च पूर्वोक्तं पूर्वाम्नाये समत्स्यकम् ॥१६४॥
समांसं पश्चिमाम्नाये समद्यं चोत्तरे भवेत्।
ग्राममध्ये श्मशाने तदूर्ध्वाम्नाये सरक्तकम् ॥१६५॥
यथायोग्यं च नैवेद्यं दद्याच्च भयवर्जितः।
पादप्रक्षालनं कृत्वा ततः स्मृत्वास्य देवताम् ॥१६६॥
बद्धाञ्जलिरिदं वाक्यं प्रवदेत्साधकोत्तमः।

उस देश में उस भैरव का प्रत्यक्षीकरण जिस प्रकार से होता है, उसे अब सुनिये। साधक को प्रातःकाल नित्यक्रिया का सम्पादन करने के उपरान्त उपवास-पूर्वक जितेन्द्रिय रहते हुये सायंकाल में सायंसन्ध्या आदि करने के बाद दो बार शान्तिपाठ करके समग्र सामग्रियों को लेकर श्मशान में जाना चाहिये।

श्मशान की सामग्रियाँ क्या होती हैं; इसका स्थिर चित्त से श्रवण करो। वे हैं— चने का बड़ा, भात, पायस, पूआ, पूड़ी, कुमकुम से रंगा हुआ कन्या द्वारा काता गया

सूत्र, बारह अंगुल लम्बी खैर की आठ समिधायें, एक हाथ लम्बा कील, गन्ध, पुष्प आदि। ग्राम-स्थित श्मशान में ये सभी बलि-द्रव्य पूर्वाम्नाय में मछली-सहित, पश्चिमाम्नाय में मांस-सहित, उत्तराम्नाय में मद्य-सहित एवं ऊर्ध्वाम्नाय में रक्त-सहित होते हैं। साथ ही निर्भय होकर यथायोग्य नैवेद्य भी प्रदान करना चाहिये।

वहाँ जाकर पाद-प्रक्षालन करने के बाद उस भैरव का स्मरण करके अञ्जलिबद्ध होकर श्रेष्ठ साधक को इस प्रकार कहना चाहिये॥१६०-१६६॥

अत्र श्मशाने याः काश्चिद्देवता निवसन्ति हि।
ताः प्रयच्छन्तु मे सिद्धिं प्रसन्नाः सन्तु पान्तु माम्॥१६७॥
पूर्वे मां शङ्करः पातु तथाग्नेय्यां च शूलधृक्।
कपाली दक्षिणे पातु नैर्ऋत्ये जटिलोऽवतु॥१६८॥
पश्चिमे पार्वतीशस्तु वायव्यां प्रमथाधिपः।
उत्तरे मुण्डमालाढ्य ईशाने वृषभध्वजः॥१६९॥
ऊर्ध्वं पातु तथा शम्भुरधस्ताद्धूलिधूसरः।
अग्रतो भैरवः पातु पृष्ठतः पातु खेचरः॥१७०॥
दक्षिणे भूधरः पातु वामे च पिशिताशनः।
केशान् पातु विशालाक्षो मूर्द्धानञ्च मरुत्प्रियः॥१७१॥
मस्तकं पातु भृङ्गीशो नेत्रे पातु महामनाः।
कपोलौ पातु वीरेशो गण्डौ गण्डादिमर्दनः॥१७२॥
उत्तरोष्ठं विरूपाक्षोऽप्यधरं यामिनीप्रियः।
दन्तेषु दन्तिविध्वंसी चिबुके नृकपालयुक्॥१७३॥
कण्ठे रक्षतु मां देवो नीलकण्ठो जगद्गुरुः।
दक्षस्कन्धे गिरीन्द्रेशो वामस्कन्धेऽरिसूदनः॥१७४॥
भुजे च दक्षिणे सर्वमन्त्रनाथः सदावतु।
वामे भुजे सार्वभौमो हृदयम्पातु पाण्डुरः॥१७५॥
दक्षस्तनं पशुपतिर्वामं पातु महेश्वरः।
उत्तरे सर्वकल्याणकारकोऽवतु मां सदा॥१७६॥
मनः कामप्रतिध्वंसी जङ्घे पातु दयामयः।
जानुनी पात्वजामित्रो गुल्फौ गौरीपतिः सदा॥१७७॥
पादपृष्ठं ज्ञाननिधिस्तथा पादाङ्गुलीर्हरः।
पादाधः पातु सततं व्योमकेशो जगत्प्रियः॥१७८॥

यहाँ श्मशान में जो कोई देवता निवास करते हैं, वे मुझे सिद्धि प्रदान करें, मेरे ऊपर प्रसन्न हों एवं मेरी रक्षा करें। पूर्व में शंकर एवं आग्नेय कोण में शूलधारी मेरी रक्षा करें। दक्षिण में कपाली एवं नैर्ऋत्य कोण में जटिल मेरी रक्षा करें। पश्चिम में पार्वतीपति एवं वायव्यकोण में प्रमथाधिप मेरी रक्षा करें। उत्तर में मुण्डमालाधारी एवं ईशानकोण में वृषभध्वज मेरी रक्षा करें। ऊपर से शम्भु तथा नीचे से धूलिधूसर मेरी रक्षा करें। आगे से भैरव एवं पीछे से खेचर मेरी रक्षा करें। दक्षिण में भूधर एवं बाँयें पिशिताशन मेरी रक्षा करें। मेरे केशों की रक्षा विशालाक्ष करें एवं मूर्धा की मरुत्प्रिय रक्षा करें। भृङ्गीश मस्तक की एवं महामना नेत्रों की रक्षा करें। वीरेश मेरे दोनों कपोलों की एवं गण्ड़ादिमर्दन मेरे दोनों गण्ड़स्थल की रक्षा करें। ऊपर वाले ओष्ठ की विरूपाक्ष एवं नीचे वाले ओष्ठ की यामिनीप्रिय रक्षा करें। दन्तिविध्वंसक मेरे दाँतों की एवं नरकपाल-युक्त चिबुक की रक्षा करें। जगत् के स्वामी देव नीलकण्ठ मेरे कण्ठ की रक्षा करें। मेरे दाहिने कन्धे की गिरीन्द्रेश एवं बाँयें कन्धे की अरिसूदन रक्षा करें। सर्वमन्त्रनाथ मेरी दाहिनी भुजा की सदा रक्षा करें एवं बाँयीं भुजा की सार्वभौम रक्षा करें। मेरे हृदय की रक्षा पाण्डुर करें। दाहिने स्तन की पशुपति एवं बाँयें स्तन की महेश्वर रक्षा करें। उत्तर में सर्वकल्याणकारक सदा मेरी रक्षा करें। मेरे मन की रक्षा कामप्रतिध्वंसी करें। दयामय मेरे जाघों की, अजामित्र घुटनों की एवं गौरीपति गुल्फों (टखनों) की सदा रक्षा करें। मेरे पैरों के पृष्ठभाग की ज्ञाननिधि तथा पादाङ्गुलियों की हर रक्षा करें। जगत्प्रिय व्योमकेश मेरे पैर के निम्न भाग की सदा-सर्वदा रक्षा करें॥१६७-१७८॥

इति रक्षां समाधाय मन्त्ररक्षां समाचरेत्।
ॐह्रांह्रूंह्रूंहुं च पूर्वे ॐह्रींह्रूंह्रीं हुताशने॥१७९॥
ॐह्रींश्रीं दक्षिणे न्यस्य ॐग्लूंग्लूंश्लूं च नैर्ऋते।
ॐघ्रुंम्रुंप्रूंसआप्यत्येरांप्रांयूंसः समीरणे॥१८०॥
ॐत्रां भैरव सौम्यायां मोंव्रुंघ्रुं चैव फट् शिवे।
ॐग्लौंब्लुमूर्ध्वदेशेऽथो स्रांस्रूंस्रूंस्रस्त्वधः स्मृतम्॥१८१॥
एवं रक्षां समाधायोत्कील्य कीलान् दिगष्टके।
मध्ये महाकीलमथो दिक्पालार्चनमाचरेत्॥१८२॥

इस प्रकार अपने शरीर को सब तरफ से सर्वविध रक्षित करने के उपरान्त दिशाओं में मन्त्र-रक्षा करनी चाहिये। पूर्व दिशा में 'ॐ ह्रां ह्रूं ह्रूं हुं' से, अग्निकोण में 'ॐ ह्रीं ह्रूं ह्रीं' से, दक्षिण दिशा में 'ॐ ह्रीं श्रीं' से, नैर्ऋत्यकोण में 'ॐ ग्लूं ग्लूं श्लूं' से, पश्चिम दिशा में 'ॐ घ्रुं म्रुं प्रूंसः' से, वायव्यकोण में 'ॐ वां प्रां यूं सः' से,

उत्तर दिशा में 'ॐ त्रां भैरव' से, ईशानकोण में 'ॐ त्रुं प्रुं फट्' से, ऊर्ध्व दिशा में 'ॐ ग्लौं ब्लुं' से एवं अध:दिशा में 'स्त्रां स्त्रूं स्त्रूं स्त्र:' से रक्षा-विधान करना चाहिये। इस प्रकार तत्तत् दिशाओं में तत्तत् मन्त्रों का उच्चारण करते हुये अपनी रक्षा करके आठो दिशाओं में आठ कीलों को गाड़ने के बाद मध्य में महाकील अर्थात् एक हाथ लम्बे कील को गाड़कर दिक्पालों का पूजन करना चाहिये॥१७९-१८२॥

ततो मन्त्रजपं कुर्यात्प्रार्थयेच्च पुनः पुनः।
मां भैरव द्विरुच्चार्य भयङ्करहरेति च।
मां रक्ष रक्ष हुं फट् च स्वाहा द्वाविंशदर्णकः ॥१८३॥
पलाशभाजने माषान् कृत्वा प्राचीं व्रजेद्दिशम्।
कीलस्य निकटे चन्द्रमावाह्य पूजयेत्ततः ॥१८४॥
ध्यानं प्रागुक्तवत्कृत्वा तत्पुरे चतुरस्त्रके।
मन्त्रेणानेन चन्द्राय मण्डले बलिमर्पयेत् ॥१८५॥
ॐह्रींह्रींह्रीं समुच्चार्य भो इन्द्र सुरनायक।
प्रसन्नो भव मे शीघ्रं देहि सिद्धिं सनातनीम्।
इमं बलिं गृह्ण गृह्ण हुं फणनागाग्निवर्णकः ॥१८६॥
जलं दत्त्वा बलिं त्यक्त्वा न यावद्वह्निकीलकम्।
अग्निं तत्र समावाह्य प्राग्वद्ध्यात्वा प्रपूजयेत् ॥१८७॥
तदग्रे मण्डलं कृत्वा दद्यान्मन्त्रेण वै बलिम्।
ॐरंरांरिंरींरुंरूं तदा ग्रे ग्रे च पदं वदेत् ॥१८८॥
तेजोनायक शीघ्रं मे सिद्धिं देहि इमं वदेत्।
मुद्गबलिं गृह्ण गृह्ण हुं फड् देवार्णको मनुः ॥१८९॥
ततो दक्षिणकीलस्य निकटे यममर्चयेत्।
दंबीजेन समावाह्य मनुना निर्वपेद्बलिम् ॥१९०॥
ॐप्रंप्रांप्रिं च प्रींप्रुंप्रूं भो यमेति पदं वदेत्।
प्रेताधिपतये शीघ्रं प्रसन्नो भव संवदेत् ॥१९१॥
इमां तु मे सुरां पात्रे बलिं गृह्णयुगं वदेत्।
हुंफडन्तः समाख्यातो मन्त्रो गोरामवर्णकः ॥१९२॥

इसके बाद मन्त्रजप करना चाहिये और बार-बार प्रार्थना करनी चाहिये। बाईस अक्षरों का प्रार्थना-मन्त्र इस प्रकार है—मां भैरव मां भैरव भयङ्करहर रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा। तत्पश्चात् पलाश से निर्मित पात्र में उड़द रखकर पूर्व दिशा-स्थित कील के

निकट चन्द्रमा का आवाहन करके उनका पूजन करना चाहिये। इसके बाद पूर्वोक्त रूप से उनका ध्यान करके उनके चतुरस्र मण्डल में 'ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं भो इन्द्र सुरनायक प्रसन्नो भव मे शीघ्रं देहि सिद्धिं सनातनीम्, इमं बलिं गृह्ण गृह्ण हुं' इस सैंतीस अक्षरों वाले मन्त्र से जल छोड़कर चन्द्रमा के लिये बलि समर्पित करनी चाहिये।

इसके बाद अग्निकोण-स्थित कील के निकट जाकर वहाँ पर अग्निदेव का सम्यक्तया आवाहन करने के बाद पूर्ववत् ध्यान करके उनका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर उस कील के आगे मण्डल बनाकर 'ॐ रं रां रिं रीं रुं रूं ग्रे ग्रे तेजोनायक शीघ्रं मे सिद्धिं देहि इमं मुद्गबलिं गृह्ण गृह्ण हुं फट्'—इस तैंतीस अक्षर वाले मन्त्र का उच्चारण करते हुये उन्हें मूँग की बलि प्रदान करनी चाहिये।

इसके बाद दक्षिण कील के पास जाकर वहाँ पर 'दं' बीज से यम का आवाहन करके उनका पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्र का उच्चारण करते हुये उन्हें सुरा की वलि प्रदान करनी चाहिये। उन्तालीस अक्षरों का बलिमन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ प्रं प्रां प्रिं प्रीं प्रुं प्रूं भो यम प्रेताधिपतये शीघ्रं प्रसन्नो भव इमां तु मे सुरां पात्रे बलिं गृह्ण गृह्ण हुं फट्॥१८३-१९२॥

ततो नैर्ऋत्यकोणस्य निकटे निर्ऋतिं यजेत्।
क्षंबीजेन समावाह्य बलिमन्त्रोऽथ कथ्यते॥१९३॥
ॐ प्रें प्रें प्रें ततो हुं त्रिः श्रीं द्विर्ह्रीं च रमायुगम्।
रक्षोनाथपदं शीघ्रं प्रसन्नो भव संवदेत्॥१९४॥
इमं मे चणकबलिं गृह्ण गृह्ण पुनर्मतः।
षट्त्रिंशदर्णो मन्त्रोऽयं ततः पश्चिमकीलके॥१९५॥
वंबीजेन समावाह्य वरुणं तत्र पूजयेत्।
बलिमन्त्रो ध्रुवो व्रांव्रीं भोभो वरुण संवदेत्॥१९६॥
जलनाथपदस्यान्ते प्रसन्नो भव संवदेत्।
इमं मे चौदनबलिं गृह्ण गृह्ण च हुं च फट्॥१९७॥
त्रिंशदर्णो मनुः प्रोक्तो वरुणस्य बलेरयम्।
ततो व्रजेद्वायुकोणे कीलस्य निकटेऽर्चयेत्॥१९८॥
यंबीजेन समावाह्य वायुं शृणु बलेर्मनुम्।
ॐ वांवींवूं ततः क्रांक्रीं भो भो वायो भुवः पुनः॥१९९॥
क्षिप्रं प्रसन्नो भवेति ममेदं वायवेऽपि च।
बलिं गृह्णयुगं हुंफट्पञ्चत्रिंशाक्षरो मनुः॥२००॥

इसके बाद नैर्ऋत्यकोण-स्थित कील के पास जाकर वहाँ पर 'क्षं' बीज से निर्ऋति देव का आवाहन करने के पश्चात् उनका पूजन करने के उपरान्त मन्त्रोच्चार-पूर्वक उन्हें चणकबलि प्रदान करनी चाहिये। निर्ऋतिदेव को बलि प्रदान करने के लिये छत्तीस अक्षरों का बलिमन्त्र इस प्रकार है—ॐ प्रें प्रें प्रें हुं हुं हु श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं रक्षोनाथ शीघ्रं प्रसन्नो भव इमं मे चणकबलिं गृह्ण गृह्ण।

इसके बाद पश्चिम दिशा-स्थित कील के पास जाकर वहाँ पर 'वं' बीज से वरुण का आवाहन करके पूजन करने के बाद मन्त्रोच्चार-पूर्वक उन्हें भात की बलि प्रदान करनी चाहिये। वरुण के लिये बलि प्रदान करने हेतु इकतीस अक्षरों का बलिमन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ व्रां व्रीं भो भो वरुण जलनाथ प्रसन्नो भव इमं मे ओदनबलिं गृह्ण गृह्ण हुं फट्।

इसके बाद वायुकोण-स्थित कील के पास जाकर उस पर 'यं' बीज द्वारा वायुदेव का आवाहन करने के बाद उनका पूजन करके मन्त्र का उच्चारण करते हुये बलि प्रदान करनी चाहिये। वायुदेव को बलि प्रदान करने हेतु पैंतीस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ॐ वां वीं वूं क्रां क्रीं भो भो वायो भुवः क्षिप्रं प्रसन्नो भव ममेदं वायवेऽपि च बलिं गृह्ण गृह्ण हुं फट्॥१९३-२००॥

उदक्कीलं ततो गत्वा कुम्बीजेन धनेश्वरम्।
आवाहयेत्पूजयित्वा मनुना निर्वपेद्बलिम्॥२०१॥
ॐ क्रींक्रूंक्रीं नमः क्रांक्रां भो भो यक्षपदं वदेत्।
नाथ शीघ्रं प्रसन्नो मे भवेति च पदं वदेत्।
ममापूपबलिं गृह्णयुगं हुंफड् वेदाग्निवर्णकः॥२०२॥
ईशानकीलनिकटे गत्वेशानं समर्चयेत्।
हुंबीजेन समभ्यर्च्य बलिं यच्छेत्तथाऽमुना॥२०३॥
ॐ श्रांश्रींश्रूं ततः श्रींश्रींश्रूं स्याद्वै शष्कुलीपदम्।
बलिं गृह्णयुगं हुंफड् चन्द्रनागमिताक्षरः॥२०४॥
पुष्पाक्षतान् समादाय मध्यस्तम्भं ततो व्रजेत्।
ओं स्तांस्तींह्रीं तथा स्तम्भाय नमोऽयं नवाक्षरः।
अनेन मनुना स्तम्भं निर्भयः परिपूजयेत्॥२०५॥

इसके बाद उत्तर दिशा-स्थित कील के पास जाकर 'कुं' बीज से उस पर धनेश्वर (कुबेर) का आवाहन करने के उपरान्त उनका पूजन करके मन्त्र द्वारा उन्हें अपूप (पूआ) की बलि प्रदान करनी चाहिये। कुबेर को बलि प्रदान करने हेतु चौंतीस अक्षरों का

बलिमन्त्र इस प्रकार है—ॐ क्रां क्रूं क्रीं नमः क्रां क्रां भो भो यक्षनाथ शीघ्रं प्रसन्नो मे भव ममापूपबलिं गृह्ण गृह्ण हुं फट्।

इसके बाद ईशानकोण में विद्यमान कील के निकट जाकर उस पर 'हुं' बीज से ईशान का आवाहन करने के उपरान्त सम्यक् रूप से पूजन करके उन्हें शष्कुली (पूड़ी) की बलि प्रदान करनी चाहिये। ईशानदेव को बलि प्रदान करने हेतु उन्नीस अक्षरों का बलिमन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ श्रां श्रीं श्रूं श्रीं श्रीं श्रूं श्रूं शष्कुलीबलिं गृह्ण गृह्ण हुं फट्।

तदनन्तर पुष्प एवं अक्षत लेकर मध्य कील के पास जाकर 'ॐ स्तां स्तीं ह्रीं स्तम्भाय नमः' इस नवाक्षर मन्त्र से भय-रहित होकर उसका पूजन करना चाहिये॥२०१-२०५॥

महाकवचमन्त्रेण कुर्याद्देहस्य रक्षणम् ।
ओं ह्रांह्रींह्रूं नमो हुं च क्षांक्षींक्षूंक्षश्च प्रोच्चरेत् ॥२०६॥
खांखींखूंखस्तथा घ्रांघ्रींघ्रूंघ्रोंस्त्रोंस्त्रीं ततो वदेत् ।
स्त्रुंस्त्रांस्त्रेंस्त्रं ततो भ्रांभ्रौं त्रिर्ह्रोंमुक्त्वा त्रिधा त्रिधा ॥२०७॥
हुंसप्तकं समुच्चार्य फडन्तं सर्वतो वदेत् ।
रक्ष रक्ष पदं प्रोच्य रक्ष रक्षेति भैरव ॥२०८॥
नाथ नाथ फडन्तोऽयमेकपञ्चाशदक्षरः ।
जप्त्वात्मरक्षां कृत्वाथ स्तम्भस्य च समीपतः ॥२०९॥
आसनं सम्यगास्तीर्य तत्र प्राङ्मुख आस्थितः ।
स्वाग्रे समे तु भूम्यग्रे गोमयाद्युपलेपिते ॥२१०॥
पद्ममष्टदलं कृत्वा तद्बहिः षोडशच्छदम् ।
तद्बाह्येऽष्टदलं चापि ह्यसिताङ्गादिभैरवान् ॥२११॥
पत्राष्टके पूजयित्वा पूजयेत्षोडशच्छदे ।
कुलीशं सुकुलीशं च जामित्रं डामरं रिभम् ॥२१२॥
प्रचण्डं चण्डकेशं च चण्डात्मानं च चामरम् ।
चारित्रं च चमत्कारं चञ्चलं चारुभूषणम् ॥२१३॥
चामीकरं चारुवहं चकितं चेति षोडश ।
एते स्वनामभिः पूज्याः षोडशानन्दपूरिताः ॥२१४॥

तत्पश्चात् महाकवच से शरीर-रक्षा करनी चाहिये। इक्यावन अक्षरों (?) का वह महाकवच मन्त्र इस प्रकार है—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं नमो हुं क्षां क्षीं क्षूं क्षः खां खीं खूं खः

ग्रां ग्रीं ग्रूं ग्रों स्रों स्रीं स्रुं स्रां स्रें स्रं म्रां म्रौं हों हों हों हुं हुं हुं हुं हुं हुं हुं फट् सर्वतो रक्ष रक्ष रक्ष रक्ष भैरवनाथ नाथ फट्। इस मन्त्र का जप करके आत्मरक्षा करने के उपरान्त स्तम्भ के निकट ही सम्यक् रूप से आसन विछाकर उस पर पूर्व की ओर मुख करके आसीन होकर अपने आगे गोबर आदि से लिप्त समतल भूमि पर अष्टदल कमल बनाने के बाद उसके बाहर षोड़श दल वाले कमल का निर्माण करने के पश्चात् उसके बाहर पुनः अष्टदल बना करके सबको भूपुर से वेष्टित करके यन्त्र का निर्माण करना चाहिये।

इसके बाद अष्टपत्र में असिताङ्ग आदि आठ भैरवों का पूजन करने के बाद षोडश दल में आनन्द से भरपूर कुलीश, सुकुलीश, जामित्र, डामर, रिभ, प्रचण्ड, चण्डकेश, चण्डात्मन्, चामर, चारित्र, चमत्कार, चञ्चल, चारुभूषण, चामीकर, चारुवह एवं चकित—इन सोलह का इनके नाम-मन्त्रों से पूजन करना चाहिये॥२०६-२१४॥

ब्राह्म्याद्याश्चाष्टपत्रेषु बहिर्वीथ्यां दिगीश्वरान्।
तद्बाह्ये च तदस्त्राणि तद्बाह्येऽपि त्विमान्यजेत्॥२१५॥
चण्डप्रचण्डोर्ध्वकेशभीषणोद्भीषणाभिधान्।
व्योमकेशं व्योमबाहुं व्योमव्यापकमेव च॥२१६॥
एतान् वीरान् समाहूय चायाहीति समुच्चरन्।
अभ्यर्चयेन्निर्भयः संस्ततो न्यासान् समाचरेत्॥२१७॥

इसके बाद वाले अष्टदल में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करने के पश्चात् उसके बाहर भूपुर की वीथियों में इन्द्रादिक दस दिक्पालों और उनके अस्त्रों का पूजन करना चाहिये।

पुनः भूपुर के बाहर चण्ड, प्रचण्ड, ऊर्ध्वकेश, भीषण, उद्भीषण, व्योमकेश, व्योमबाहु और व्योमव्यापक—इन आठ वीरों का 'आयाहि' का उच्चारण करते हुये आवाहन करके निर्भय होकर उनका पूजन करने के पश्चात् न्यास करना चाहिये॥२१५-२१७॥

पश्चिमाभिमुखो भूत्वा मालां सम्पूज्य सञ्जपेत्।
उच्चैःस्वरांस्तदायाति प्रत्यहं भैरवः स्वयम्॥२१८॥
वामहस्तेन दद्याच्च यथाम्नायोचितं बलिम्।
सम्भोजयेज्जपं कुर्यान्निर्भयः प्रीतमानसः॥२१९॥
तृप्तो देवो यदा ब्रूयाद्वरं वरय वाञ्छितम्।
दक्षिणे पयसा चैव तस्य तृप्तिः प्रजायते॥२२०॥

वामादीनां मांसमद्यरक्ताद्यैः स्थिरतापि वा।
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ वाञ्छितं वरमुच्चरेत्॥२२१॥
आगत्य च गृहं पश्चात्त्र्यहं कुर्यान्महोत्सवम्।
एवं कलियुगे सिद्धिः श्मशानस्य प्रकीर्तिता॥२२२॥
जपेदेवं समारूढो देवः प्रत्यक्षगो भवेत्।
समस्तभैरवाणां तु मन्त्राद्येवं मयोदितम्॥२२३॥

इसके बाद पश्चिमाभिमुख होकर माला का पूजन करने के बाद उच्च स्वर में सम्यक् रूप से मन्त्र का जप करना चाहिये। ऐसा करने से प्रतिदिन भैरव स्वयं प्रत्यक्ष होते हैं। प्रकट होने पर बाँयें हाथ से आम्नाय के अनुरूप उन्हें बलि प्रदान करनी चाहिये। इसके बाद निर्भय होकर प्रसन्न मन से जप करना चाहिये।

दक्षिणमार्ग में दुग्ध अर्पण करने से उनकी तृप्ति होती है एवं वाममार्ग में मांस, मद्य, रक्त आदि के अर्पण से वे तृप्त हो जाते हैं। तृप्त भैरव यदि यह कहें कि 'अभीप्सित वर माँगो' तब भूमि पर दण्डवत् लेटकर प्रणाम करने के बाद उनसे अभीप्सित वर निवेदन करना चाहिये। इसके बाद घर आकर तीन दिनों तक महान् उत्सव मनाना चाहिये। इस प्रकार कलियुग में श्मशान-सिद्धि कही गई है।

इस प्रकार सम्यक् रूप से आरूढ़ होकर जप करने से देव प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। इस प्रकार मेरे द्वारा समस्त भैरवों के मन्त्र आदि को कहा गया॥२१८-२२३॥

क्षेत्रपालमन्त्रनिरूपणम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि क्षेत्रपालमनुं परम्।
ङेऽन्तस्तु क्षेत्रपालः स्यात्क्षौंबीजाद्यो गजाक्षरः॥२२४॥
स एव प्रणवाद्यस्तु दक्षे वामे नवाक्षरः।
मुनिर्ब्रह्मा च गायत्रं छन्दः स्यात्क्षेत्रपालकः॥२२५॥
देवो बीजमिह क्षौं च नमः शक्तिः प्रकीर्त्यते।
षड्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गविधिरीरितः॥२२६॥
ततः सञ्चिन्तयेद्देवमञ्जनाद्रिसमप्रभम्।
वर्तुलास्यं त्रिनयनमूर्ध्वपिङ्गजटाधरम्॥२२७॥
दंष्ट्राकरालवदनं भीमरूपं दिगीश्वरम्।
दक्षे गदां कपालं च वामे सर्पविभूषणम्॥२२८॥

क्षेत्रपाल-मन्त्र—अब मैं क्षेत्रपाल के सर्वश्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ। दक्षिणमार्गियों के लिये आठ अक्षरों का मन्त्र है—क्षौं क्षेत्रपालाय नमः। आदि में 'ॐ' का संयोजन

करने से यही मन्त्र नवाक्षर हो जाता है, जो वाममार्गियों के द्वारा उपास्य होता है। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता क्षेत्रपाल, बीज क्षौं एवं शक्ति नमः कहा गया है। दीर्घ स्वर-समन्वित छः बीजों (क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः) से इसकी षडङ्ग-विधि कही गई है।

षडङ्ग-न्यास करने के उपरान्त अञ्जन पर्वत-सदृश दीप्तिमान, गोल मुख वाले, तीन नेत्रों वाले, शीर्ष पर पिङ्गल वर्ण की जटा धारण किये हुये, विकराल दाढ़ों से युक्त मुख वाले, भयङ्कर स्वरूप वाले, दाहिने हाथ में गदा एवं बाँयें हाथ में कपाल धारण किये हुये, सर्परूपी आभूषण वाले दिगधिपति देव का सम्यक् रूप से चिन्तन करना चाहिये॥२२४-२२८॥

शैवपीठे यजेदष्टदिक्पदिक्सुरभूषिते।
मध्ये देवं षडङ्गानि कर्णिकायां दलेषु च॥२२९॥
अनलं चाग्निकेशं च करालं कान्तिकारकम्।
महाकोपं पिशितास्यं पिङ्गाक्षं चोर्ध्वकेशकम्॥२३०॥
यजेद्भूपुरवीथ्यां च लोकेशानस्त्रसंयुतान्।
धूपदीपादिकं दत्वा नैवेद्यं मनुनामुना॥२३१॥
एह्येहीति समुच्चार्य विद्विषोऽन्तःपुरद्वयम्।
भञ्जयद्विर्नर्तय द्विर्विप्र विप्रमहा वदेत्॥२३२॥
भैरव क्षेत्रपालेति बलिं देव ततो वदेत्।
गृह्णद्वयं वह्निजाया पञ्चत्रिंशाक्षरो मनुः॥२३३॥
एकलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः।
चरुणा घृतसिक्तेन तर्पणादि ततश्चरेत्॥२३४॥

ध्यान करने के उपरान्त आठ दिग्देवताओं से विभूषित शैव पीठ पर मध्य में क्षेत्रपाल का पूजन करने के पश्चात् कर्णिका में षडङ्ग-पूजन करके अष्टपत्रों में अनल, अग्निकेश, कराल, कान्तिकारक, महाकोप, पिशितास्य, पिङ्गाक्ष एवं ऊर्ध्वकेश का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर भूपुर की वीथियों में इन्द्रादि दस दिक्पालों और उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करने के उपरान्त धूप, दीप आदि प्रदान करके मन्त्र से नैवेद्य-समर्पण करना चाहिये। नैवेद्य-समर्पण का मन्त्र इस प्रकार है—एह्येहि विद्विषोऽन्तः-पुरद्वयं भञ्जय भञ्जय, नर्तय नर्तय विप्र विप्र महाभैरव क्षेत्रपालबलिं देव गृह्ण गृह्ण।

तत्पश्चात् मन्त्र का एक लाख जप करके घृत-सिक्त चरु से कृत जप का दशांश (दस हजार) हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण आदि करना चाहिये॥२२९-२३४॥

अथ प्रयोगं वक्ष्यामि सर्वोपद्रवनाशनम्।
रात्रौ गृहाङ्गणे रम्यं कृत्वा स्थण्डिलमुत्तमम्॥२३५॥
आवाह्य तत्र सम्पूज्य क्षेत्रेशं प्रोक्तवर्त्मना।
दक्षमार्गी च दुग्धाद्यैः कृत्वा वै सिक्तकं महत्॥२३६॥
वामाचारी कुलद्रव्यैः स्वाम्नायोक्तैस्तथा परे।
वक्ष्यमाणेन मनुना तस्य हस्ते बलिं हरेत्॥२३७॥
एह्येहि तुरुयुग्मं च मुरुद्वन्द्वं तथा वदेत्।
भुंघिं द्विर्हन विघ्नं च विनाशय विनाशय॥२३८॥
महाबल क्षेत्रपाल बलिं गृह्णद्वयं ततः।
अग्निजाया बलेर्मन्त्रो भवेत्पञ्चाब्धिवर्णकः॥२३९॥
दद्याच्च परिवारेभ्यस्तेषां तेषां तु नामभिः।
बलिनानेन सन्तुष्टः क्षेत्रपालो मुदान्वितः॥२४०॥
ऐश्वर्यविजयारोग्यसौभाग्यादिकसम्पदः।
ददाति रौद्रभूतादि कृत्याद्याशु निवारयेत्॥२४१॥

सर्वोपद्रव-नाशक प्रयोग—अब मैं समस्त उपद्रवों के विनाशक प्रयोग को कहता हूँ। रात्रि में घर के आँगन में सुन्दर स्थण्डिल बनाकर उस पर क्षेत्रेश का आवाहन करके पूर्वकथित मार्ग से पूजन करने के बाद दक्षिणमार्गी साधक को दुग्ध आदि से तथा वाममार्गी साधक को अपने आम्नाय में कथित कुलद्रव्यों से उस स्थण्डिल को सिक्त करना चाहिये। तत्पश्चात् इस मन्त्र से क्षेत्रपाल के हाथ में बलि समर्पित करनी चाहिये। पैंतालीस अक्षरों का वह बलिमन्त्र है—एह्येहि तुरु तुरु मुरु मुरु भुङ्घि भुङ्घि हन हन विघ्नं विनाशय विनाशय महाबल क्षेत्रपाल बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा। साथ ही परिवारदेवताओं के लिये भी उनके नाममन्त्रों से बलि प्रदान करनी चाहिये। इस बलि से सन्तुष्ट क्षेत्रपाल प्रसन्नता-पूर्वक उस साधक को ऐश्वर्य, विजय, आरोग्य, सौभाग्य आदि सम्पत्तियाँ प्रदान करते हैं एवं घोर भूत, कृत्या आदि का तत्क्षण निवारण कर देते हैं॥२३५-२४१॥

विषहरवह्निमन्त्रनिरूपणम्

अथ वक्ष्ये गरहरं वह्निमन्त्रं चमत्कृतम्।
खःखं स्याद् द्व्यक्षरो मन्त्रो मुनिरग्निः प्रकीर्तितः॥२४२॥
पङ्क्तिछन्दो देवताग्निः खो बीजं शक्तिका तु खम्।
षड्दीर्घस्वरयुक्तेन खकारेणाङ्गकल्पनम्॥२४३॥

ध्यानार्चनादिकं सर्वं वैश्वानरसुमन्त्रवत्।
जपो द्वादशसाहस्रं तद्दशांशं घृतैर्हुनेत्।
तर्पणादि ततः कृत्वा प्रयोगं तु समाचरेत्॥२४४॥
स्वस्य वामे करे ध्यायेत्पद्मं पञ्चदलं स्थितम्।
तस्यापि कर्णिकायां तु सविसर्गं खकारकम्॥२४५॥
सानुस्वारं खकारं च ध्यायेत्पञ्चदले स्थितम्।
सुधामयं च तज्ज्वालां पश्चादस्त्रं विभावयेत्॥२४६॥
सम्पूर्णं चामृतमयं विषयुक्तं स्पृशेद्वपेत्।
जपेदष्टोत्तरशतं मन्त्रं यस्य तनुं स्पृशेत्॥२४७॥
सर्वान् विषग्रहान् भूतान् सर्पवृश्चिकवेदनाः।
ज्वराजीर्णविसर्पादि शूलं दन्तादिसम्भवम्।
नेत्ररोगादिकं पीडां सर्वाङ्गस्थां हरेदथ॥२४८॥

विष-विनाशक अग्निमन्त्र—अब मैं विष को दूर करने वाले चमत्कारी अग्निमन्त्र को कहता हूँ। दो अक्षरों का वह मन्त्र है—खः खं। इस द्व्यक्षर मन्त्र के ऋषि अग्निदेव कहे गये हैं। छन्द पंक्ति, देवता अग्नि, बीज खः एवं शक्ति खं कहा गया है। छः दीर्घ स्वर-समन्वित खकार (खां खीं खूं खैं खौं खः) से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। इसके ध्यान, अर्चन आदि सब कुछ वैश्वानर-मन्त्र के समान होते हैं। इसका बारह हजार जप करके घृत से कृत जप का दशांश (बारह सौ) हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण आदि करके प्रयोग-साधन करना चाहिये।

अपने बाँयें हाथ पर पाँच दलों वाले कमल का ध्यान करके उसकी कर्णिका में स्थित 'खः खं' का ध्यान करते हुये उसकी अमृतमय ज्वाला एवं अस्त्र का चिन्तन करना चाहिये। इस प्रकार सम्पूर्ण अमृतमय हाथ से विषयुक्त व्यक्ति का स्पर्श करते हुये उसे अमृत से आप्लावित करना चाहिये।

साधक जिस व्यक्ति के शरीर को स्पर्श करके इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करता है, उसके शरीर के सभी विष, ग्रह, भूत-प्रेत, सर्प-बिच्छू की पीड़ा, ज्वर-अजीर्ण-विसर्प आदि-जनित शूल, दन्त-पीड़ा, नेत्ररोग-पीड़ा, सर्वाङ्ग में स्थित पीड़ा का विनाश हो जाता है॥२४२-२४८॥

चण्डमन्त्रकथनम्

अथ वक्ष्ये चण्डमन्त्रमों हुंफट् त्र्यक्षरो मनुः।
ऋषिस्त्रिकोऽनुष्टुबुक्तं छन्दश्चण्डोऽस्य देवता॥२४९॥

आद्यं बीजं शक्तिरन्त्यमिष्टार्थं विनियोजनम्।
दीप्तफट्हृदयं प्रोक्तं ज्वालाफट् शिर ईरितम्॥२५०॥
शिखा ज्वालामालि फट् च तत्फट् कवचमीरितम्।
हन फण्णेत्रमुद्दिष्टं सर्वज्वालिनि फट् परम्॥२५१॥
एभिर्मन्त्रैः षडङ्गानि जातियुक्तानि कल्पयेत्।
ध्यायेच्चण्डेश्वरं रक्तं त्रिनेत्रं रक्तवाससम्॥२५२॥
चन्द्रमौलिं च बिभ्राणं शूल टङ्कं कमण्डलुम्।
स्फटिकस्रजमाबद्धजटाजूटं सनागकम्॥२५३॥

चण्ड-मन्त्र—अब मैं तीन अक्षरों वाले चण्ड-मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ हुं फट्। इसके ऋषि त्रिक, छन्द अनुष्टुप् और देवता चण्ड कहे गये हैं। ॐ इसका बीज और फट् शक्ति है। अभीष्ट-सिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है। इसका षडङ्ग न्यास इस प्रकार करना चाहिये—दीप्त फट् हृदयाय नमः, ज्वाला फट् शिरसे स्वाहा, ज्वालामालि फट् शिखायै वषट्, फट् कवचाय हुं, हन फट् नेत्रत्रयाय वौषट्, सर्वज्वालिनि फट् अस्त्राय फट्।

तत्पश्चात् रक्त वर्ण वाले, तीन नेत्रों वाले, रक्त वस्त्र धारण किये हुये, मौलि पर चन्द्र को धारण किये हुये, हाथों में शूल टङ्क एवं कमण्डलु लिये हुये, जटाजूट में नाग-सहित स्फटिक की माला धारण किये हुये चण्डेश्वर का ध्यान करना चाहिये॥२४९-२५३॥

शैवे पीठे यजेद्देवं गायत्र्यावाहनं मतम्।
षष्ठस्वरो बिन्दुयुक्तो ङेऽन्तश्चण्डेश्वरः सुहृत्॥२५४॥
पूजामन्त्रोऽस्याष्टवर्णो यजेदङ्गानि पूर्ववत्।
दलेषु मातरः पूज्या वीथ्यां लोकेशहेतयः।
यन्त्रपूजाविधिस्तस्य चैवमेव समीरितः॥२५५॥
चण्डेश्वराय विद्महे चण्डचण्डाय धीमहि।
तन्नश्चण्डः प्रचोदयात्॥२५६॥
इत्येवं चण्डगायत्रीमन्त्रं लक्षत्रयं जपेत्।
सतिलैस्तण्डुलैर्होमस्त्रिमध्वक्तैर्दशांशतः॥२५७॥
राजवृक्षसमिद्भिर्वा तर्पणादि ततश्चरेत्।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत्तदा॥२५८॥

पश्चात् शैव पीठ पर देव का उनकी गायत्री से आवाहन करके 'ॐ चण्डेश्वराय

नमः'—इस आठ अक्षरों वाले मन्त्र से उनका पूजन करना चाहिये। इसके बाद पूर्ववत् षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। तदनन्तर अष्टदल में ब्राह्मी आदि आठ मातृकाओं का पूजन करके भूपुर में दस दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इसी प्रकार इनका यन्त्र-पूजन भी कहा गया है।

इसके वाद 'चण्डेश्वराय विद्महे चण्डचण्डाय धीमहि तन्नश्चण्डः प्रचोदयात्' इस चण्डगायत्री मन्त्र का तीन लाख जप करने के पश्चात् त्रिमधु-सिक्त तिल-सहित तण्डुल से अथवा राजवृक्ष की समिधाओं से कृत जप का दशांश (तीस हजार) हवन करना चाहिये। उसके वाद तर्पण आदि करना चाहिये। इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्रज्ञ साधक को प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये।।२५४-२५८।।

शालिपिष्टमयीं कृत्वा पुत्तलीं प्राणसंयुताम् ।
देवकाष्ठैरेधितेऽग्नौ सम्यक्त्रिमधुरप्लुताम् ।।२५९।।
दक्षिणाङ्गुष्ठमारभ्य पुंसश्छित्वा पृथक् पृथक् ।
जुहुयाद्वामपादादि योषितश्चापि संहुनेत् ।।२६०।।
एवं होमो द्विजादीनां वशकृन्नात्र संशयः ।
यो मर्त्योऽनुदिनं पुष्पैर्हुनेदष्टोत्तरं शतम् ।।२६१।।
सप्ताहं तदवश्यं हि प्राप्नुयाद्यश्च तर्पयेत् ।
मनुनानेन च शिवं चतुर्मासांल्लभेच्छ्रियम् ।।२६२।।
साध्यनक्षत्रवृक्षाद्यैः पुत्तलीं प्राणसंयुताम् ।
स्पृशेत्तां च जपेत्पश्चात्पूजयित्वा हुनेन्निशि ।।२६३।।
नारीं नरं वा वशयेद्यावज्जीवं न संशयः ।
पञ्चाक्षरप्रयोगांश्च मनुनानेन साधयेत् ।।२६४।।

चावल के चूर्ण से साध्य की पुत्तली (प्रतिमा) बनाकर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करने के बाद प्रतिमा यदि पुरुष की हो तो दाहिने अंगूठे से आरम्भ करते हुये अलग-अलग काट करके उन टुकड़ों को त्रिमधु से आप्लावित कर देवकाष्ठ की प्रज्वलित अग्नि में हवन करना चाहिये और प्रतिमा यदि स्त्री की हो तो उसके बाँयें पैर के टुकड़े से हवन का आरम्भ करना चाहिये। इस प्रकार के हवन से द्विजातियों का वशीकरण होता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है।

जो मनुष्य प्रतिदिन पुष्पों से एक सौ आठ आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करता है, वह जिसकी प्रसन्नता के लिये तर्पण करता है, उसे एक सप्ताह के भीतर अवश्य ही प्राप्त कर लेता है। इस मन्त्र से चार मास-पर्यन्त शिव का तर्पण करने से साधक लक्ष्मी प्राप्त करता है।

साध्य के नक्षत्रवृक्ष आदि से उसकी प्रतिमा बनाकर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करने के बाद उसे स्पर्श करके मन्त्र का जप करने के पश्चात् पूजन करके रात्रि में उससे हवन करने पर साध्यभूत स्त्री अथवा पुरुष अपने जीवन-पर्यन्त साधक के वशीभूत हो जाता है; इसमें कोई संशय नहीं है। पञ्चाक्षर मन्त्र से किये जाने वाले प्रयोगों को भी इस मन्त्र से साधित करना चाहिये॥२५९-२६४॥

अथ वक्ष्ये भैरवस्य शक्तेर्बन्द्याः परं मनुम्।
या बन्धयति पापिष्ठान् स्वभक्तान् मोचयेदघात्।
यस्याः प्रभावतः काश्यां भैरवोऽस्त्यधिकारवान्॥२६५॥
तारो हिलियुगं देवी बन्दी ङेऽन्तो नमोऽन्तकः।
एकादशाक्षरो मन्त्रो भैरवोऽस्य मुनिर्मतः॥२६६॥
त्रिष्टुप्छन्दोऽस्य देवी स्याद् भूर्द्विर्द्विर्द्विर्द्विनेत्रकैः।
षडङ्गानि ततो ध्यायेद्रत्नसिंहासने स्थिताम्॥२६७॥
मेघश्यामां सुधाकुम्भमभयं दधतीं स्मरेत्।
एकवीरोदिते पीठे यजेद्बन्धनमुक्तये॥२६८॥
अङ्गपूजां केशरेषु यजेत्पत्रेषु सत्तमः।
कालीं तारां भगवतीं ततः कुब्जां च शीतलाम्॥२६९॥
त्रिपुरां मातृकां लक्ष्मीं भूपुरे तु दिगीश्वरान्।
अग्रवीथ्यामायुधानि बन्दीमेवं समर्चयेत्॥२७०॥
लक्षद्वयं जपेन्मन्त्रं पायसान्नैर्हुनेत्तथा।
विधाय तर्पणाद्यं च प्रयोगानाचरेत्ततः॥२७१॥

भैरव-शक्ति बन्दी देवी का मन्त्र—अब मैं भैरव-शक्ति बन्दी देवी के श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ। यह देवी पापियों को बन्धन में डालती है और अपने भक्तों को पापों से मुक्त करती है; साथ ही इसी के प्रभाव से काशी में भैरव अधिकार-सम्पन्न हैं। ग्यारह अक्षरों का इनका मन्त्र है—ॐ हिलि हिलि बन्दीदेव्यै नमः। इस मन्त्र के ऋषि भैरव, छन्द त्रिष्टुप् और देवी बन्दी हैं। मन्त्र के एक, दो, दो, दो, दो और दो वर्णों से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। इस प्रकार न्यास करने के उपरान्त रत्नसिंहासन पर विराजमान, मेघ-सदृश श्याम वर्ण वाली, हाथों में अमृतकलश एवं अभय धारण की हुई देवी का स्मरण करना चाहिये। तत्पश्चात् बन्धन से मुक्ति के लिये एकवीरा में कथित पीठ पर इनका पूजन करना चाहिये।

साधकश्रेष्ठ को केशरों में अङ्गपूजन करने के उपरान्त अष्टपत्रों में काली, तारा,

भगवती, कुब्जा, शीतला, त्रिपुरा, मातृका एवं लक्ष्मी का पूजन करना चाहिये। इसके बाद भूपुर की प्रथम वीथी में दिक्पालों का एवं द्वितीय वीथी में उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार बन्दी देवी का सम्यक् रूप से अर्चन करना चाहिये।

सम्यक् रूप से अर्चन करने के उपरान्त मन्त्र का दो लाख जप पूर्ण करने के बाद पायसान्न से हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् तर्पण आदि करके प्रयोगों का साधन करना चाहिये॥२६५-२७१॥

एकविंशतिघस्रान्तमयुतं प्रत्यहं जपेत्।
ब्रह्मचर्यरतो मन्त्री गणेशाचर्नपूर्वकम् ॥२७२॥
कारागृहनिबद्धस्य मोक्ष एवं कृते भवेत्।
अपूपोपरि संलेख्यं घृतेन चतुरस्रकम् ॥२७३॥
तस्य मध्ये ठकारं तु लिखेत्तदुदरे तथा।
अमुकं मोचयेत्येवं दिक्षु ह्रींकारमालिखेत् ॥२७४॥
चतुरस्रं पुनस्तच्च मन्त्रेणानेन वेष्टयेत्।
वाङ्माया श्रीबन्दि अमुकेति बन्धपदं वदेत्।
मोक्षं कुरुयुगं स्वाहा धृतिवर्णो मनुः स्मृतः ॥२७५॥
तस्मिन्नपूपे सम्पूज्य बन्दीमावरणान्विताम्।
कारानिकेतनस्थाय प्रदद्यात्सुहृदे च तम् ॥२७६॥
स शुद्धो वाग्यतो भूत्वा भक्षयेत्तमपूपकम्।
तस्मिन्संभक्षिते बद्धो मुच्यते बन्धनाद्द्रुतम् ॥२७७॥

मन्त्रज्ञ साधक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये इक्कीस दिनों तक प्रतिदिन सूर्यास्त के पूर्व गणेश-पूजन करते हुये मन्त्र का यदि दस हजार जप करता है तो ऐसा करने से कारागृह में निरुद्ध व्यक्ति उससे मुक्त हो जाता है।

एक अपूप के ऊपर घृत से चतुरस्र बनाकर उसके मध्य में 'ठ' लिखकर उसके उदर में 'अमुकं मोचय' लिखने के बाद चतुरस्र की दिशाओं में 'ह्रीं' का अंकन करके उस चतुरस्र को पुनः अट्ठारह अक्षरों वाले 'ऐं ह्रीं श्रीबन्दि अमुकं बन्धमोक्षं कुरु कुरु स्वाहा' मन्त्र से वेष्टित कर देना चहिये। इसके बाद उस अपूप में आवरण-सहित बन्दी देवी का पूजन करने के उपरान्त उसे कारागृह में निरुद्ध अपने मित्र को दे देना चाहिये। कारा-निरुद्ध व्यक्ति को शुद्धता-पूर्वक मौन धारण करके उस अपूप का भक्षण कर लेना चाहिये। उसके भक्षण करते ही वह बद्ध व्यक्ति तत्काल ही बन्धन से मुक्त हो जाता है॥२७२-२७७॥

कार्तिकेयमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कार्तिकेयमनुं परम्।
वं वह्नये नमश्चेति तारादिः सप्तवर्णवान् ॥२७८॥
ब्रह्मा मुनिश्च गायत्री छन्दो देवो गुहः स्मृतः।
हृच्छक्तिस्तारको बीजं सतारार्णैः षडङ्गकम् ॥२७९॥
ध्येयो देवो गुहः शक्तिं कुक्कुटाक्षवरान् दधत्।
रक्तो रक्तांशुको रक्तप्रवराकल्पभूषितः ॥२८०॥
प्रथमावृत्तिरङ्गैः स्यात्षड्दलेऽष्टदले पुनः।
जयन्तश्चाग्निकेशश्च कृत्तिकापुत्र एव च ॥२८१॥
भूतः पतिश्च सेनानी गुहो हरण्यशूलकः।
चित्राक्षो भूपुरे शक्रादिकपूजा प्रकीर्तिता ॥२८२॥
पुरश्चर्यायुतं प्रोक्ता घृतहोमो दशांशतः।
तर्प्पणाद्यैर्मनुः सिद्धः श्रीरक्षाजयपुत्रदः ॥२८३॥

कार्तिकेय-मन्त्र—अब मैं कार्तिकेय के श्रेष्ठ मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। सात अक्षरों का वं मन्त्र है—ॐ वं वह्नये नम:। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता गुह (कार्तिकेय) कहे गये हैं। इसका बीज ॐ है एवं शक्ति ह्रीं है। ॐ के सहित 'वं वह्नये नम:' के छ: अक्षरों (ॐ वं, ॐ व, ॐ ह्न, ॐ ये, ॐ न, ॐ म:) से हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र एवं अस्त्र में इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। इसके बाद रक्त वर्ण वाले, रक्त वस्त्रधारी, रक्त वर्ण के श्रेष्ठ आभूषणों से भूषित, कुक्कुटाक्ष-सदृश श्रेष्ठ शक्ति को धारण किये हुये गुहदेव का ध्यान करना चाहिये।

इनके पूजन के क्रम में प्रथम आवरण में छ: दलों में अङ्ग-पूजन करने के पश्चात् अष्टदलों में क्रमश: जयन्त, अग्निकेश, कृत्तिकापुत्र, भूतपति, सेनानी, गुह, हरण्यशूलक एवं चित्राक्ष का पूजन करना चहिये। इसके बाद भूपुर में इन्द्रादि दस दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।

दस हजार जप से इसका पुरश्चरण कहा गया है। जप का दशांश (एक हजार) धृत से हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण आदि करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। सिद्ध हो जाने पर यह मन्त्र लक्ष्मी, रक्षा, जय एवं पुत्र प्रदान करने वाला होता है॥२७८-२८३॥

शीतलामन्त्रकथनम्

अथ वक्ष्ये महेशस्य वस्त्रप्रक्षालिका तु या।
शीतलेति च विख्याता तस्या मन्त्रं सुसिद्धिदम् ॥२८४॥
तारो माया रमा शीतलायै हृच्च नवाक्षरः।
उपमन्युर्मुनिश्छन्दो बृहती शीतला सुरी ॥२८५॥
षड्दीर्घयुग्भिर्लक्ष्म्याश्च बीजाभ्यां स्यात्षडङ्गकम्।
ध्यायेच्च शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् ॥२८६॥
मार्जनीशूर्पहस्तां च रक्तपुष्पहिमार्चिताम्।
तैलादिमलसंयुक्तवस्त्रपोटलिशीर्षिकाम् ॥२८७॥
त्रिकोणान्तर्यजेद्देवीं कोद्रवां च मसूरिकाम्।
शराविकां च कोणेषु भूपुरे त्वष्टभैरवान् ॥२८८॥
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं पायसेन दशांशतः।
हुत्वा कृत्वा तर्पणादि मन्त्री सिद्धः प्रजायते ॥२८९॥
नाभिमात्रे जले स्थित्वा यः सहस्रं जपेन्मनुम्।
तेन सम्मार्जिताश्चैव स्फोटा नश्यन्ति तत्क्षणात् ॥२९०॥
साधितो येन मन्त्रोऽयं तस्य वंशे न शीतला।
तेनाभिमन्त्रितं भस्म यद्गृहे तत्र सा न हि ॥२९१॥

शीतला-मन्त्र—अब मैं शिव के वस्त्रों का प्रक्षालन करने वाली एवं लोक में शीतला के नाम से विख्यात देवी के सुन्दर सिद्धिप्रद मन्त्र को कहता हूँ। नव अक्षरों का शीतला-मन्त्र इस प्रकार है—ॐ ह्रीं श्रीं शीतलायै नमः। इस नवाक्षर मन्त्र के ऋषि उपमन्यु, छन्द बृहती एवं देवी शीतला कही गई हैं। छः दीर्घ स्वर-समन्वित लक्ष्मीबीजों (श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रः) से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। इसके बाद गर्दभ पर विराजमान, दिशा-रूपी वस्त्रों वाली, हाथों में मार्जनी (झाड़ू) एवं सूप ली हुई, रक्त पुष्पों एवं हिमखण्ड से पूजित, शीर्ष पर तैल आदि मल से संयुक्त वस्त्रों की गठरी रखी हुई देवी शीतला का ध्यान करना चाहिये।

तदनन्तर पूजन-यन्त्र के त्रिकोणमध्य में देवी का पूजन करके तीनों कोणों में कोद्रवा, मसूरिका एवं शराविका का पूजन करने के बाद भूपुर में असिताङ्गादि अष्टभैरवों का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्र का दस हजार जप करने के बाद पायस से दशांश (एक हजार) हवन करके तर्पण आदि करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

नाभि-पर्यन्त जल में खड़े होकर जो इस मन्त्र का एक हजार जप करता है, उसके

द्वारा सम्मार्जन करने (झाड़ने) से (चेचक के) फोड़े तत्क्षण ही नष्ट हो जाते हैं। जो इस मन्त्र को सिद्ध कर लेता है, उसके वंश में शीतला रोग नहीं होता। इस मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म जिस घर में रहता है, वहाँ शीतला नहीं रहती॥२८४-२९१॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भर्त्तुरस्याः परं मनुम्।
तारः प्रासादबीजं यं वं व्योमव्यापिने द्विठः॥२९२॥
एकादशार्णो मन्त्रोऽयं न्यासध्यानजपादिकम्।
प्रासादमन्त्रवज्ज्ञेयमर्धलक्षं पुरस्कृतिः।
दशांशं जुहुयादाज्यैस्तर्पणादि ततश्चरेत्॥२९३॥
सिद्धमन्त्रेणौषधं तु दशवाराभिमन्त्रितम्।
यथोक्तगुणतामेति निर्वीर्यमपि नान्यथा॥२९४॥
अथवानेन जपितं यदेकादशवारकान्।
रोगिभ्यो भेषजं दत्तं तत्तत्पूर्णगुणं भवेत्॥२९५॥
प्रातःकाले समुत्थायोदकमेकादशावधि।
मन्त्रयित्वा पिबेन्मन्त्रैः प्रत्यहं द्वादशाब्दकम्।
वलीपलितनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं युवा॥२९६॥
त्रिवर्षाच्च महारोगाः कुष्ठाद्या यान्ति संक्षयम्।
जले चैकादशाहेन रोगहृज्जायते मनुः॥२९७॥

शीतलाभर्तृ-मन्त्र—अब मैं इस शीतला के स्वामी के श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ। ग्यारह अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ ह्रौं यं वं व्योमव्यापिने ठः ठः। इस मन्त्र के न्यास, ध्यान, जप आदि सभी प्रासादमन्त्र के समान जानने चाहिये। पचास हजार जप से इसका पुरश्चरण कहा गया है। गोघृत से कृत जप का दशांश (पाँच हजार) हवन करने के पश्चात् तर्पण आदि करना चाहिये। इस सिद्ध मन्त्र के दस जप से अभिमन्त्रित निर्वीर्य औषध भी अपने यथोक्त गुणों से युक्त हो जाता है। अथवा इस मन्त्र के ग्यारह जप से अभिमन्त्रित जिन औषधों को रोगियों के लिये दिया जाता है, वे सभी औषध अपने-अपने गुणों से पूर्ण होते हैं।

जो युवा व्यक्ति प्रात:काल उठकर इस मन्त्र के ग्यारह जप से अभिमन्त्रित जल का बारह वर्षों तक प्रतिदिन पान करता है, वह वली (झुर्री)-पलित (श्वेत केश) अर्थात् वृद्धावस्था के लक्षण से मुक्त होकर सौ वर्षों तक जीवित रहता है। तीन वर्षों तक इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल का पान करने से कुष्ठ आदि भयंकर रोग भी नष्ट हो जाते हैं और ग्यारह दिनों तक पीने से रोग समाप्त हो जाते हैं॥२९२-२९७॥

लघुश्यामामन्त्रकथनम्

अथ वक्ष्ये लघुश्यामामन्त्रं तं भैरवप्रियम् ।
नम उच्छिष्टचाण्डालि मातङ्गि प्रवदेत्ततः ।
सर्ववशङ्करि स्वाहा वाग्बीजाद्यो नखार्णकः ॥२९८॥
मदनोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्री निवृतादिका ।
देवता तु लघुश्यामा वाग्बीजं बीजमुच्यते ॥२९९॥
स्वाहा शक्तिर्नियोगस्तु निखिलाभीष्टसाधने ।
वाक्पूर्विकां रतिं मूर्ध्नि प्रीतिं मायादिकां हृदि ॥३००॥
पादयोर्विन्यसेन्मन्त्री कामपूर्वां मनोभवाम् ।
इच्छाशक्तिं ज्ञानशक्तिं क्रियाशक्तिं क्रमान्न्यसेत् ॥३०१॥
वाङ्मायाकामबीजाद्यां मुखे कण्ठां सदेशके ।
द्रां द्रावणं न्यसेच्छीर्षे द्रां च शोषणमास्यके ॥३०२॥
क्लीं तापनं हृदि न्यस्य ब्लूं सम्मोहनमिन्द्रिये ।
स उन्मादनकं पादे ततः कुर्यात्षडङ्गकम् ॥३०३॥
रामाग्निगुणरामाङ्गनेत्रवर्णैर्मनुस्थितैः ।

लघुश्यामा मन्त्र—अब मैं भैरव को प्रिय लघुश्यामा-मन्त्र को कहता हूँ। बीस अक्षरों का वह मन्त्र है—ऐं नमः उच्छिष्टचाण्डालि मातङ्गि सर्ववशङ्करि स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि मदन, छन्द निवृत् आदि गायत्री एवं देवता लघुश्यामा हैं। वाग्बीज (ऐं) बीज एवं स्वाहा शक्ति कहा गया है। समस्त अभीष्ट-साधन के लिये इसका विनियोग किया जाता है।

इसके बाद इस प्रकार न्यास करना चाहिये—ऐं रत्यै नमः मूर्ध्नि, ह्रीं प्रीत्यै नमः हृदि, क्लीं मनोभवाय नमः पादयोः, ऐं इच्छाशक्त्यै नमः मुखे, ह्रीं ज्ञानशक्त्यै नमः कण्ठे, क्लीं क्रियाशक्त्यै नमः लिङ्गे, द्रां द्रावण-बाणाय नमः शिरसि, द्रीं शोषणबाणाय नमः मुखे, क्लीं तापनबाणाय नमः हृदि, ब्लूं मोहनबाणाय नमः गुह्ये। सः उन्मादनबाणाय नमः पादयोः।

तदनन्तर मन्त्र के तीन, तीन, तीन, तीन, छः एवं दो वर्णों से इस प्रकार षडङ्ग न्यास करना चाहिये—ऐं नमः हृदयाय नमः, उच्छिष्ट शिरसे स्वाहा, चाण्डालि शिखायै वषट्, मातङ्गि कवचाय हुम्, सर्ववशङ्करि नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्॥२९८-३०३॥

आं क्षां ब्राह्मीकन्यकायै नमो मूर्ध्नि प्रविन्यसेत् ॥३०४॥

ईं लां महेश्वरीकन्यकायै वामांसके नमः ।
कूं हां कौमारीकन्यकायै नमो दक्षांसके न्यसेत् ॥३०५॥
ॐ वाराहीकन्यकायै वामे पार्श्वे च विन्यसेत् ।
ॐ सां चेन्द्राणीकन्यायै नमो दक्षिणपार्श्वके ॥३०६॥
ॐ चां चामुण्डाकन्यायै नमश्च ककुदि न्यसेत् ।
अः लामुक्त्वा महालक्ष्मीकन्यायै च नमो हृदि ॥३०७॥
तारवागादिका अष्टौ सिद्धीश्च कन्यकान्तिमाः ।
चतुर्थस्वरसंयुक्ता न्यसेच्छीर्षललाटयोः ।
भ्रूमध्ये कण्ठहृन्नाभिमूलाधारान्तरेषु च ॥३०८॥
अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा ।
वशिता चाथ प्राकाम्यं प्राप्तिरित्यष्टसिद्धयः ॥३०९॥

इसके बाद इस प्रकार न्यास करना चाहिये—आं क्षां ब्राह्मीकन्यकायै नमः मूर्ध्नि, ईं लां माहेश्वरीकन्यकायै नमः वामांसे, कूं ह्रां कौमारीकन्यकायै नमः दक्षांसे, ॐ वाराहीकन्यकायै नमः वामपार्श्वे, ॐ सां इन्द्राणीकन्यकायै नमः दक्षपार्श्वे, ॐ चां चामुण्डाकन्यकायै नमः ककुदि, अः लां महालक्ष्मीकन्यकायै नमः हृदि।

इसके बाद इस प्रकार अष्टसिद्धि-न्यास करना चाहिये—ॐ ऐं अणिमासिद्धिकन्यकायै नमः शीर्षे, ॐ ऐं महिमासिद्धिकन्यकायै नमः ललाटे, ॐ ऐं लघिमासिद्धिकन्यकायै नमः भ्रूमध्ये, ॐ ऐं गरिमासिद्धि-कन्यकायै नमः कण्ठे, ॐ ऐं ईशितासिद्धिकन्यकायै नमः हृदि, ॐ ऐं वशितासिद्धिकन्यकायै नमः नाभौ, ॐ ऐं प्राकाम्यसिद्धिकन्यकायै नमः आधारे, ॐ ऐं प्राप्तिसिद्धिकन्यकायै नमः लिङ्गे॥३०४-३०९॥

कामाद्या कन्यकाः प्रोक्ता अष्टावप्सरसो न्यसेत् ।
के भाले नेत्रयोर्वक्त्रे कर्णयोः ककुदि ध्रुवम् ॥३१०॥
उर्वशीं मेनकां रम्भां घृताचीं पुञ्जिकस्थलाम् ।
सुकेशीं मञ्जुघोषां च महारङ्गवतीं तथा ॥३११॥
यक्षगन्धर्वसिद्धानां कन्यका नरनागयोः ।
विद्याधरकिम्पुरुषपिशाचानां क्रमेण च ॥३१२॥
अंसयोर्हृदये न्यस्य स्तनयोर्जठरे तथा ।
गुह्ये चाधारदेशे च क्लीमाद्याश्च नमोऽन्तकाः ॥३१३॥

इसके बाद आदि में कामबीज लगाकर आठ अप्सराकन्यकाओं का तत्तत् स्थानों

में इस प्रकार न्यास करना चाहिये—ॐ क्लीं उर्वशीकन्यकायै नमः मूर्ध्नि, ॐ क्लीं मेनकाकन्यकायै नमः ललाटे, ॐ क्लीं रम्भाकन्यकायै नमः दक्षनेत्रे, ॐ क्लीं घृताचीकन्यकायै नमः वामनेत्रे, ॐ क्ली पुञ्जिकस्थलाकन्यकायै नमः मुखे, ॐ क्लीं सुकेशीकन्यकायै नमः दक्षकर्णे, ॐ क्लीं मंजुघोषाकन्यकायै नमः वामकर्णे, ॐ क्लीं महारङ्गवतीकन्यकायै नमः ककुदि।

इसके बाद यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, नर, नाग, विद्याधर, किम्पुरुष एवं पिशाच-कन्यकाओं का क्रमशः इस प्रकार न्यास करना चाहिये—ॐ क्लीं यक्षकन्यकायै नमः दक्षांसे, ॐ क्लीं गन्धर्वकन्यकायै नमः वामांसे, ॐ क्लीं सिद्धकन्यकायै नमः हृदि, ॐ क्लीं नरकन्यकायै नमः दक्षस्तने, ॐ क्लीं नागकन्यकायै नमः वामस्तने, ॐ क्लीं विद्याधरकन्यकायै नमः जठरे, ॐ क्लीं किम्पुरुषकन्यकायै नमः गुह्ये, ॐ क्लीं पिशाचकन्यकायै नमः आधारे॥३१०-३१३॥

ताराद्यान्नमसा युक्तान् मूलवर्णान् सबिन्दुकान्।
न्यसेत्सन्धिषु साग्रेषु करयोः पादयोरपि ॥३१४॥
अंसश्च कूर्परश्चैव मणिबन्धोऽङ्गुलीतलम्।
करस्य सन्धयश्चैते स्फिग्जानु च ततो भवेत् ॥३१५॥
गुल्फमङ्गुलिमूलं च चत्वारः पादसन्धयः।
न्यासानेवंविधान् कृत्वा लघुश्यामां ततः स्मरेत् ॥३१६॥
सुधार्णवान्तर्द्वीपस्थरत्नमन्दिरमध्यगाम्।
माणिक्याभरणां स्मेरां नीलोत्पलनिभाम्बराम् ॥३१७॥
अलक्तैर्लिप्तपादाब्जां वीणावादनतत्पराम्।
त्र्यक्षां ताम्बूलपूर्णास्यां स्मरेच्च शशिशेखराम् ॥३१८॥

इसके बाद इस प्रकार मन्त्रवर्ण-न्यास करना चाहिये—ॐ ॐ नमः दक्षबाहुमूले, ॐ नं नमः दक्षकूर्परे, ॐ मं नमः दक्षमणिबन्धे, ॐ उं नमः दक्षकराङ्गुलिमूले, ॐ च्छिं नमः दक्षकराङ्गुल्यग्रे, ॐ ष्टं नमः वामबाहुमूले, ॐ चां नमः वामकूर्परे, ॐ ण्डां नमः वाममणिबन्धे, ॐ लिं नमः वामकराङ्गुलिमूले, ॐ मां नमः वामकराङ्गुल्यग्रे, ॐ तं नमः दक्षपादमूले, ॐ गिं नमः दक्षजानुनि, ॐ सं नमः दक्षगुल्फे, ॐ र्वं नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले, ॐ वं नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे, ॐ शं नमः वामपादमूले, ॐ ङ्कं नमः वामजानुनि, ॐ रिं नमः वामगुल्फे, ॐ स्वां नमः वामपादाङ्गुलिमूले, ॐ हां नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे।

इस प्रकार न्यासों को करने के पश्चात् सुधासमुद्र के मध्य-स्थित द्वीप पर रत्न-निर्मित मन्दिर के मध्य में विराजमान, माणिक्यों का आभूषण धारण की हुई, प्रसन्न

मुख वाली, नीलकमल-सदृश वस्त्रों वाली, अलक्तक (आलता) से लिप्त चरणकमलों वाली, वीणा-वादन में तत्पर, तीन नेत्रों वाली, ताम्बूल-पूरित मुख वाली, शीर्ष पर चन्द्रमा को धारण की हुई लघुश्यामा का स्मरण करना चाहिये॥३१४-३१८॥

मातङ्गीं प्रोदिते पीठे लघुश्यामां प्रपूजयेत्।
त्रिकोणे पञ्चकोणेषु दले षोडशपत्रके॥३१९॥
वेदद्वारधरागेहावृतेऽग्न्यादिककोणके।
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीस्तदग्रे बाणपञ्चकम्॥३२०॥
केशरेष्वङ्गदेवांश्च ब्राह्म्याद्याश्चाष्टपत्रके।
अणिमाद्याश्च यन्त्राग्रे यजेत्षोडशपत्रके॥३२१॥
उर्वश्याद्याश्च कन्याश्च चतुर्दिक्षु च भूगृहे।
गजाननां सिंहमुखीं गृध्रास्यां काकतुण्डिकाम्॥३२२॥
उष्ट्रग्रीवां हयग्रीवां वाराहीं शरभाननाम्।
उलूकीं च शिवारावां मयूरीं विकटाननाम्॥३२३॥
अष्टवक्त्रीं कोटराक्षीं वक्रां विकटलोचनाम्।
समर्चयेद्दिशि प्राच्यामेताः षोडश योगिनीः॥३२४॥
शुष्कोदरी ललज्जिह्वा ह्यदंष्ट्रा वानरानना।
त्र्यक्षा च केकराक्षी च बृहत्तुण्डा सुराप्रिया॥३२५॥
कपालहस्ता रक्ताक्षी शुकी श्येनी कपोतिका।
पाशहस्ता दण्डहस्ता प्रचण्डेति च दक्षिणे॥३२६॥

तदनन्तर पूर्वोक्त मातङ्गी-पीठ पर लघुश्यामा का पूजन करना चाहिये। त्रिकोण, पञ्चकोण, अष्टदल, षोडशपत्र, चार द्वार-युक्त भूपुर से बने यन्त्र में यह पूजन करना चाहिये।

कर्णिका के मध्य बिन्दु में देवी का पूजन करने के उपरान्त त्रिकोण में इच्छा, ज्ञान एवं क्रियाशक्ति का पूजन करना चाहिये। इसके बाद पञ्चकोण में पाँच बाणों का पूजन करना चाहिये। केशरों में अङ्गदेवताओं का पूजन करने के पश्चात् अष्टपत्र में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिये। पुनः उन्हीं अष्टमातृकाओं के आगे अष्टपत्र में अणिमादि अष्टसिद्धियों का पूजन करने के उपरान्त षोडश दल में उर्वशी आदि सोलह कन्यकाओं का पूजन करना चाहिये। इसके बाद भूपुर की पूर्व दिशा में गजानना, सिंहमुखी, गृध्रास्या, काकतुण्डिका, उष्ट्रग्रीवा, हयग्रीवा, वाराही, शरभानना, उलूकी,

शिवारावा, मयूरी, विकटानना, अष्टवक्त्री, कोटराक्षी, वक्रा, विकटलोचना—इन सोलह योगिनियों का सम्यक् रूप से पूजन करना चाहिये।

पूजन यन्त्र
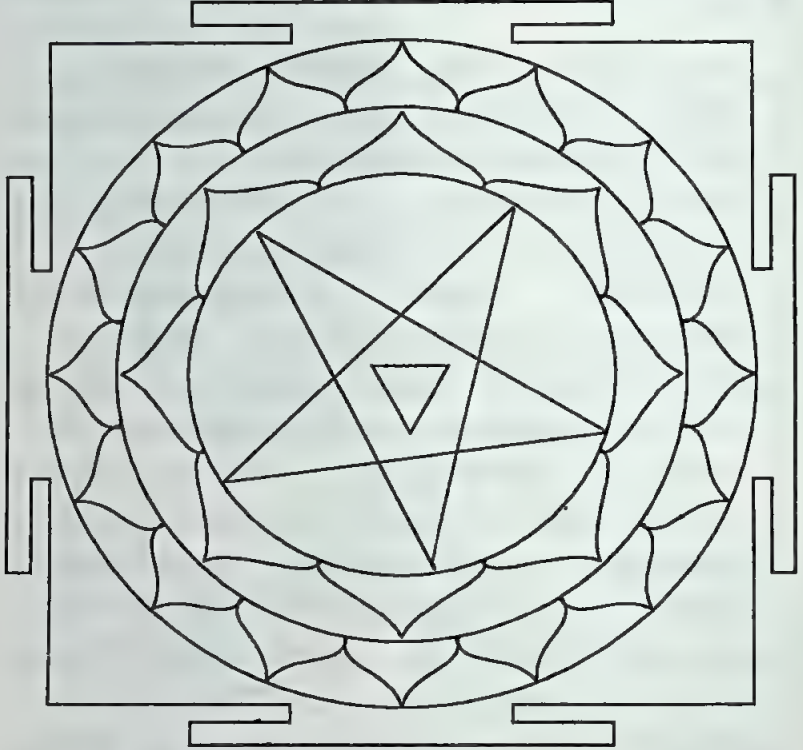
इसी प्रकार दक्षिण दिशा में शुष्कोदरी, ललज्जिह्वा, अदंष्ट्रा, वानरानना, त्र्यक्षा, केकराक्षी, बृहत्तुण्डा, सुराप्रिया, कपालहस्ता, रक्ताक्षी, शुकी, श्येनी, कपोतिका, पाशहस्ता, दण्डहस्ता एवं प्रचण्डा—इन सोलह का पूजन करना चाहिये॥३१९-३२६॥

पूज्याश्चाथ प्रवीथ्यां तु दश चण्डविधिक्रमैः ।
शिशुघ्नी पापहन्त्री च काली रुधिरपायिनी ॥३२७॥
वसान्धया गर्भभक्षा शवहस्तान्त्रमालिनी ।
शूलकेशी बृहत्कुक्षी सर्पास्या प्रेतवाहिनी ॥३२८॥
दन्दशूककरा क्रौञ्ची भूतरम्या वृषानना ।
व्याघ्रास्या भीमनिःश्वासा व्योमैकचरणार्धदृक् ॥३२९॥

लापिनी शेषिणी दृष्टिः कातरा स्थूलनासिका।
विद्युत्प्रभा बलाकास्या मार्जारी कुटिलानना ॥३३०॥
अट्टाट्टहासा कामाक्षी श्वसमानश्रुतिस्तथा।
क्रमाड्डाकिन्य एताश्च पूज्या वह्न्यादिकोणके ॥३३१॥
स्वस्वमन्त्रेण बटुकं गणेशं क्षेत्रपालकम्।
दुर्गां तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादीन्यपि पूजयेत् ॥३३२॥
चतुर्द्वारेषु वाद्यानि तन्वानानि धनिंधनम्।
सुचिरं चेति पूजोक्ता द्वादशावरणैरियम् ॥३३३॥
सर्वासां सम्पदां पाता चैतदाराधको भवेत्।
मातङ्गीमन्त्रसम्प्रोक्ताः प्रयोगाश्चात्र कीर्तिताः ॥३३४॥
अथ वक्ष्यामि गायत्रीं प्रोक्षयेदनयाखिलम्।
यागद्रव्यं च भूपालस्तद्वशे राजपुत्रकाः ॥३३५॥
भवन्ति वशगास्तस्य येन गायत्र्युपासिता।
देवीवन्माननीयाश्च स्त्रियो निन्द्या न जातुचित् ॥३३६॥

पश्चिम दिशा में चण्डविधि से क्रमशः शिशुघ्नी, पापहन्त्री, काली, रुधिरपायिनी, वसान्धया, गर्भभक्षा, शवहस्ता, अन्त्रमालिनी, शूलकेशी, बृहत्कुक्षी—इन दस का पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर सर्पास्या, प्रेतवाहिनी, दन्दशूककरा, क्रौञ्ची, भूतरम्या, वृषानना, व्याघ्रास्या, भीमनिःश्वासा, व्योमैकचरणार्धदृक्, लापिनी, शेषिणी, दृष्टिकातरा, स्थूलनासिका, विद्युत्प्रभा, बलाकास्या, मार्जारी, कुटिलानना, अट्टाट्टहासा, कामाक्षी एवं श्वसमानश्रुती—इन डाकिनियों का अग्न्यादि कोणों में क्रमशः पूजन करना चाहिये।

पुनः भूपुर में बटुक, गणेश, क्षेत्रपाल एवं दुर्गा का उनके मन्त्रों से पूजन करने के उपरान्त उसके बाहर इन्द्रादि दस दिक्पालों और उनके वज्रादि दस आयुधों का पूजन करना चाहिये।

इसके बाद चारो द्वारों पर तत्सङ्ग वाद्य, वितत वाद्य, घनवाद्य, सुषिर वाद्य का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार बारह आवरणों का यह पूजन कहा गया है।

इसका आराधक समस्त सम्पदाओं को प्राप्त करने वाला होता है। पूर्वोक्त मातङ्गी-मन्त्र के निरूपण-प्रसङ्ग में कथित प्रयोग ही इसके भी प्रयोग कहे गये हैं।

अब मैं गायत्री को कहता हूँ। समस्त यागद्रव्यों का इससे प्रोक्षण करना चाहिये। जो इस गायत्री की उपासना करता है, उसके वश में राजा एवं राजपुत्र सभी हो जाते

हैं। स्त्रियाँ देवी के समान पूजनीय होती हैं; अतः इसके उपासकों को कभी भी स्त्री-निन्दा नहीं करनी चाहिये॥३२७-३३६॥

पञ्चकामेश्वरीमन्त्राः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पञ्चकामेश्वरीमनुम्।
कामस्य बाणबीजानां मन्त्रोऽयं परिकीर्तितः॥३३७॥
ऋषिः सम्मोहनश्छन्दो गायत्री देवता भवेत्।
बाणेशी सर्वव्यस्तेन मनुनोक्तं षडङ्गकम्॥३३८॥
मूर्ध्नि पादे मुखे गुह्ये हृदये पञ्च देवताः।
न्यस्तव्याः पञ्चवक्त्राद्या द्रावणी क्षोभणी तथा॥३३९॥
वशकारिण्याकर्षिण्यौ सम्मोहिन्यपि पञ्चमी।
अरुणा रक्तवसना नानारत्नैरलंकृता।
बाणान्धनुः सृणिं पाशं हस्तैः सन्दधतीं भजे॥३४०॥
मोहिनी क्षोभिणी श्यामा स्तम्भिन्याकर्षिणी तथा।
द्राविणी ह्लादिनी क्लिन्ना क्लेदिनी पीठशक्तयः।
बाणेशीयोगपीठाय नमो मूलादिको मनुः॥३४१॥
दत्त्वानेनासनं मन्त्री तस्मिन्देवीं प्रपूजयेत्।
आदौ षडङ्गान्याराध्य दिक्ष्वग्रे द्राविणीमुखाः॥३४२॥
दलेष्वनङ्गरूपा स्यादनङ्गमदना तथा।
अनङ्गमन्मथानङ्गकुसुमा मदनातुरा॥३४३॥
अनङ्गाद्या तथानङ्गनिशितानङ्गमेखला।
अनङ्गभूमिका भूमिपुरे दिक्पाश्च सायुधाः॥३४४॥

पञ्चकामेश्वरी-मन्त्र—अब मैं पञ्च कामेश्वरी मन्त्र को कहता हूँ। यह कामदेव के बाणबीजों का मन्त्र कहा गया है। मन्त्र है—द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स्त्रीं। इस मन्त्र के ऋषि सम्मोहन, छन्द गायत्री एवं देवता बाणेशी हैं। विपरीतक्रम से एक-एक कर पाँच बीजों से इसका पञ्चाङ्गन्यास करने के बाद पाँचों बीजों से अस्त्रन्यास करके षडङ्गन्यास करना चाहिये। इसके बाद इस प्रकार पञ्चदेवता न्यास करना चाहिये—द्रां द्राविण्यै नमः मूर्ध्नि, द्रीं क्षोभिण्यै नमः पादौ, क्लीं वशङ्करिण्यै नमः मुखे, ब्लूं आकर्षिण्यै नमः गुह्ये, स्त्रीं सम्मोहिन्यै नमः हृदये।

तत्पश्चात् रक्त वस्त्रों वाली, अनेक रत्नों से अलंकृत, हाथों में बाण, धनुष, अंकुश एवं पाश धारण की हुई अरुण वर्णा देवी का ध्यान करना चाहिये।

इनकी पीठशक्तियाँ हैं—मोहिनी, क्षोभिणी, श्यामा, स्तम्भिनी, आकर्षिणी, द्राविणी, ह्लादिनी, क्लिन्ना एवं क्लेदिनी। मन्त्रज्ञ साधक को उक्त पीठ पर 'बाणेशीयोगपीठाय नम:' इस मन्त्र से आसन प्रदान कर उस पर देवी का पूजन करना चाहिये। सर्वप्रथम षडङ्ग-पूजन करने के उपरान्त देवी के आगे द्राविणीमुखा का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् अष्टदल में अनङ्गरूपा, अनङ्गमदना, अनङ्गमन्मथा, अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमदनातुरा, अनङ्गनिशिता, अनङ्गमेखला एवं अनङ्गभूमिका का पूजन करने के बाद भूपुर में इन्द्रादि दस दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये॥३३७-३४४॥

पञ्चलक्षं जपेन्मन्त्रं हुनेदाज्यं दशांशत:।
तर्पणादि तत: कृत्वा प्रयोगार्हो मनुर्भवेत्॥३४५॥
दधियुक्तैरशोकस्य पुष्पैर्वा दिवसत्रयम्।
सहस्रं जुहुयात्तस्य वश्या: स्यु: प्राणिनोऽखिला:॥३४६॥
लाजैर्दधियुतैर्मन्त्री होमात्कन्यामवाप्नुयात्।
कन्यापि वशमायाति मासद्वितयमध्यत:॥३४७॥
गव्याज्येन ससम्पातं हुत्वा चाष्टशतं तत:।
आज्यं सम्पातितं दद्यात्स्त्रियै सम्पाद्य तत्त्विदम्॥३४८॥
सा तदाज्यं कान्तभावं भावयित्वा वशं नयेत्।
सुगन्धकुसुमैर्हुत्वा धनमाप्नोति वाञ्छितम्॥३४९॥

उसके बाद पुरश्चरण-हेतु मन्त्र का पाँच लाख जप करने के पश्चात् गोघृत से कृत जप का दशांश (पचास हजार) हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण आदि करने से यह मन्त्र प्रयोग के योग्य हो जाता है।

तीन दिनों तक दधि से समन्वित अशोक के पुष्पों से प्रतिदिन एक हजार हवन करने से समस्त प्राणी साधक के वशीभूत हो जाते हैं। दो मास तक लाजा (धान का लावा) में दधि मिलाकर हवन करने से मन्त्रज्ञ यदि पुरुष हो तो उसे कन्या और यदि कन्या हो तो उसे पुरुष की प्राप्ति हो जाती है।

गोघृत से सम्पात-सहित एक सौ आठ बार हवन करने के पश्चात् सम्पाताज्य को आकांक्षिणी स्त्री को दे देना चाहिये। वह स्त्री उस सम्पाताज्य में अपने पति की भावना करती हुई यदि उसका भक्षण करती है तो उसका पति उसके वशीभूत हो जाता है। इस मन्त्र द्वारा सुगन्धित पुष्पों से हवन करने पर वाञ्छित धन की प्राप्ति होती है॥३४५-३४९॥

रुद्रशीर्षनिवासिनीमन्त्रः

अथ वक्ष्ये रुद्रशीर्षनिवासिन्याः परं मनुम् ।
तारो नमः शिवायै च नारायण्यै पदं वदेत् ॥३५०॥
दशहरायै गङ्गायै स्वाहान्तो विंशदर्णकः ।
व्यासो मुनिः कृतिश्छन्दो देवी गङ्गा प्रकीर्तिता ॥३५१॥
त्रिवह्निवेदबाणाग्निनेत्रवर्णैः षडङ्गकम् ।
चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च सर्वाभरणभूषिताम् ॥३५२॥
रत्नकुम्भसिताम्भोजवराभयलसत्कराम् ।
चामरैर्वीज्यमानां च श्वेतच्छत्रोपशोभिताम् ॥३५३॥
लक्षं जपेद्दशांशेन जुहुयात्सघृतैस्तिलैः ।
जयादिशक्तिभिर्युक्ते पीठे भागीरथीं यजेत् ॥३५४॥
पूजयेत्केशरेष्वङ्गं दले रुद्रं हरिं विधिम् ।
सूर्यं हिमाचलं मेनां भगीरथमपां पतिम् ॥३५५॥
दलाग्रतो मीनकूर्ममण्डूकमकरानपि ।
हंसान् कारण्डवांश्चक्रवाकान् सारसकान् यजेत्॥३५६॥
चतुरस्त्रे शक्रमुख्यानायुधैः संयुतान् यजेत् ।
एवं संसाधितो मन्त्रोऽभीष्टं यच्छति मन्त्रिणे ॥३५७॥

रुद्रशीर्ष-निवासिनी (गंगा)-मन्त्र—अव मैं शिवशीर्ष-निवासिनी अर्थात् गंगा के श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ। वीस अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गङ्गायै स्वाहा। इस गंगामन्त्र के ऋषि व्यास, छन्द कृति एवं देवी गंगा कही गई हैं। मन्त्र के तीन, तीन, चार, पाँच, तीन एवं दो वर्णों से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—ॐ नमः हृदयाय नमः, शिवायै शिरसे स्वाहा, नारायण्यै शिखायै वषट्, दशहरायै कवचाय हुम्, गङ्गायै नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्।

तत्पश्चात् चार भुजाओं एवं तीन नेत्रों वाली, समस्त आभरणों से भूषित, रत्नकलश, श्वेत कमल, वर एवं अभय से सुशोभित हाथों वाली, चँवर द्वारा हवा की जाती हुई, श्वेत छत्र से सुशोभित देवी गंगा का ध्यान करना चाहिये। पुरश्चरण-हेतु मन्त्र का एक लाख जप करके घृत-सहित तिलों से दशांश (दस हजार) हवन करना चाहिये।

जया आदि शक्तियों से युक्त पीठ पर देवी भागीरथी का पूजन करना चाहिये। केशरों में षडङ्ग-पूजन करने के उपरान्त अष्टदल में शिव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, हिमाचल, मेना, भगीरथ एवं वरुण का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर आठ दलों के

अग्रभाग मे मीन, कूर्म, मण्डूक, मकर, हंस, कारण्डव, चक्रवाक एवं सारस का पूजन करने के बाद भूपुर में इन्द्रादि दस दिक्पालों और उनके वज्रादि दस आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार सम्यक् रूप से साधित यह मन्त्र मन्त्रज्ञ को अभीष्ट प्रदान करता है॥३५०-३५७॥

ज्येष्ठशुक्लदशम्यां तु विशेषेण भजेद् बुधः।
दद्याद्दशभ्यो विप्रेभ्यो दशप्रस्थमितांस्तिलान् ॥३५८॥
जप्त्वा सहस्रं हुत्वा च तथोपोष्य विकल्मषः।
सर्वभोगसमायुक्तो जायते मानवो भुवि ॥३५९॥
गङ्गातीरे वर्णलक्षं जपित्वाब्जानि होमयेत्।
श्रीबीपूर्वमनुना तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥३६०॥
जपित्वैवं पक्वबिल्वैर्हुत्वा वश्यं जगद्भवेत्।
तिलैर्हुत्वा दहेत्पापं दूर्वाभिश्च महागदान् ॥३६१॥
ताम्बूलहोमादाप्नोति भोगान्नृपतिदुर्लभान्।
अर्चयित्वा तु यो गङ्गां तुलसीमञ्जरीं क्षिपेत् ॥३६२॥
मन्त्रं पठित्वा लक्षैकमेकान्ते स्थिरमानसः।
गङ्गाप्रवाहवत्तस्य स्याद्वाग्भूतिविजृम्भिता ॥३६३॥

विद्वान् साधक को ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को विशेष रूप से देवी गंगा का पूजन करना चाहिये। इस दिन दस ब्राह्मणों को चार-चार किलो तिल का दान करना चाहिये। इसके बाद निराहार एवं निष्कल्मष रहकर मन्त्र का एक हजार जप करके हवन करने वाला मनुष्य संसार में समस्त भोगों को प्राप्त करने वाला होता है॥

गंगा-तट पर मन्त्र का वर्णलक्ष (बीस लाख) जप करके मन्त्र के पूर्व श्रीबीज (श्रीं) लगाकर उसके द्वारा कमलों से हवन करने वाले साधक को सर्वतोमुखी श्री की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार मन्त्रजप करके पके बेल से हवन करने पर संसार वशीभूत होता है, तिलों के हवन से पापों का नाश होता है, दूर्वा के हवन से महारोगों का नाश होता है एवं ताम्बूल के हवन से राजाओं के लिये भी दुर्लभ भोगों की प्राप्ति होती है।

जो साधक एकान्त में स्थिरचित्त से गङ्गा का पूजन करके एक लाख तुलसी-मञ्जरियों को मन्त्रोच्चार-पूर्वक गंगा में डालता है, उसकी वाणी भी गंगाप्रवाह के समान कभी निरुद्ध नहीं होती॥३५८-३६३॥

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि वामाचाराघनाशनम्।
बहिर्यजनकर्त्तारः सिद्धाः स्युर्यत्प्रभावतः ॥३६४॥

तारो नमो भगवति वाग्भवं च लिहिद्वयम्।
हिलिद्वयं च गङ्गे मां पावयद्वितयं वदेत्॥३६५॥
स्वाहान्तः सप्तविंशार्णो मनुः पापप्रणाशनः।
ईश्वरोऽस्य मुनिश्छन्दोऽमितं गङ्गा च देवता।
रामवेदेषुसप्ताङ्गनेत्रार्णैरङ्गकल्पनम् ॥३६६॥
रक्ताम्बरां रक्तवर्णां शूलकुम्भवराभयान्।
करैः सन्दधतीं स्मेरां कच्छपस्थां सुरादिभिः।
सदैव सर्वपापस्य नाशाय सुनिषेविताम्॥३६७॥

गंगा का अन्य मन्त्र—अब मैं वामाचार-जनित पापों का विनाश करने वाले अन्य मन्त्र को कहता हूँ, जिसके प्रभाव से बहिर्यजन करने वाले सिद्ध होते हैं। पापों का नाश करने वाला सत्ताईस अक्षरों का वह मन्त्र है—ॐ नमो भगवति ऐं लिहि लिहि हिलि हिलि गङ्गे मां पावय पावय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि ईश्वर, छन्द अमित एवं देवता गंगा हैं। मन्त्र के क्रमशः तीन, चार, पाँच, सात, छः एवं दो अक्षरों से इसका षडङ्ग न्यास किया जाता है।

तत्पश्चात रक्त वस्त्र धारण की हुई, रक्त वर्ण वाली, हाथों में शूल, कलश, वर एवं अभय धारण की हुई, विहसित मुख वाली, कच्छप पर विराजमान, देवताओं द्वारा सदा-सर्वदा समस्त पापों के विनाश-हेतु लगाई गयी गंगा का ध्यान करना चाहिये॥३६४-३६७॥

कर्णिकायां यजेद्देवीं षडस्रेष्वङ्गपूजनम्।
ततोऽब्ध्यस्रे तु कावेरीं यमुनां गण्डकीमपि॥३६८॥
कौशिकीं च समभ्यर्च्य तद्वद्बाह्यदलेषु च।
सुरासिन्धुमासवाब्धिं दुग्धसिन्धुं मधूद्भवम्॥३६९॥
दधिसिन्धुं चाज्यसिन्धुं मद्यसिन्धुमिराभवम्।
धातुसिन्धुं रत्नसिन्धुं सिन्धुमिक्षुरसोद्भवम्।
माध्वीसिन्धुं क्षारसिन्धुं सुधायाः सिन्धुमुद्भवम्॥३७०॥
दिगीश्वरान् भूपुरे च पूजितैवं सरिद्वरा।
अलोभाद्वाममार्गेऽपि कृतं पापं विनाशयेत्॥३७१॥
वर्णलक्षं जपेद्धोमः पद्मैः प्रोक्तो दशांशतः।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री मर्वादिनिर्जलस्थले॥३७२॥
देशे गत्वा जलार्थं तु पुरश्चर्यां समाचरेत्।
होमादि सर्वं निर्वर्त्य गङ्गामावाहयेत्ततः॥३७३॥

तत्र कूपादिकं कृत्वा भवेत्तदमृतोपमम् ।
कल्पस्थापिततोयौघं समस्तगदनाशनम् ॥३७४॥

कर्णिका-विन्दु में देवी का पूजन करके षट्कोण में षडङ्ग-पूजन करने के उपरान्त चतुर्दल में कावेरी, यमुना, गण्डकी एवं कौशिकी (कोसी) का सम्यक् रूप से पूजन करने के वाद उसी प्रकार बाहरी दलों में सुरासिन्धु, आसवसिन्धु, दुग्धसिन्धु, मधुसिन्धु, दधिसिन्धु, आज्यसिन्धु, मद्यसिन्धु, जलसिन्धु, धातुसिन्धु, रत्नसिन्धु, इक्षुरससिन्धु, माध्वीसिन्धु, क्षारसिन्धु एवं सुधासिन्धु का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर भूपुर में दस दिक्पालों और उनके दश आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार पूजित होने पर यह श्रेष्ठ नदी विना किसी लोभ के वाममार्ग का आश्रयण करने के कारण किये गये पाप को विनष्ट कर देती है।

इस मन्त्र का वर्णलक्ष (सत्ताईस लाख) जप एवं कमलपुष्पों से कृत जप का दशांश (दो लाख सत्तर हजार) हवन कहा गया है। इस प्रकार सिद्ध मन्त्र वाले मन्त्रज्ञ साधक को मरुभूमि आदि जल-रहित देश में जाकर जल के लिये पुरश्चरण करना चाहिये। वहाँ पर हवन आदि करने के उपरान्त गङ्गा का आवाहन करना चाहिये। वहाँ कुआँ आदि खुदवाने से उसमें से अमृत के समान जल निकलता है। युगों से स्थापित यह जलसमूह समस्त रोगों का विनाश करने वाला है॥३६८-३७४॥

इयमादिमसप्तार्णहीना स्याच्च नखाक्षरी ।
प्राग्वन्मुन्यादिकं बाणवेदत्रित्रित्रिबाहुभिः ॥३७५॥
मन्त्रार्णैः स्युः षडङ्गानि पुरश्चर्या तु लक्षकम् ।
होमद्रव्यादिकं प्राग्वत्सिद्धमन्त्रः समाचरेत् ॥३७६॥
प्रयोगाञ्जलमध्ये तु स्थित्वा जप्त्वायुतं मनुम् ।
त्र्यहादवर्षाकालेऽपि वृष्टिर्भवति भूयसी ॥३७७॥
अयुतं च मनुं जप्त्वा सहस्रैर्जलजैर्हुनेत् ।
सम्पाताज्यं पिबेद्या स्त्री गौर्वा क्षीरनिधिर्भवेत् ॥३७८॥
अनेन मन्त्रितं तोयं वर्षमेकं पिबेत्तु या ।
तस्याः पुत्राः प्रजायन्ते भीष्मतुल्यपराक्रमाः ॥३७९॥
एतन्मन्त्रजपासक्तः पादतीर्थं क्षिपेद्धृदि ।
भूताविष्टस्य तत्कालं मुक्तो भवति नान्यथा ॥३८०॥

गंगा का अन्य मन्त्र—इस मन्त्र को आदि के सात अक्षरों से रहित करने पर यही मन्त्र बीस अक्षरों का हो जाता है। मन्त्र का स्वरूप होता है—ऐं लिहि लिहि हिलि हिलि गङ्गे मां पावय पावय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि, छन्द आदि पूर्ववत् ही कहे गये

हैं। मन्त्र के क्रमश: पाँच, चार, तीन, तीन, तीन एवं दो वर्णों से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। एक लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है। हवनीय द्रव्य आदि पूर्ववत् ही रहते हैं। इस प्रकार सिद्ध मन्त्र से प्रयोगों का साधन करना चाहिये।

तीन दिनों तक जल में खड़े होकर मन्त्र का दस हजार जप करने से वर्षा का समय न होने पर भी प्रचुर वर्षा होती है। मन्त्र का दस हजार जप करके एक हजार कमलों से हवन करना चाहिये। उस हवन के समय सम्पात घृत का जो स्त्री अथवा गौ पान करती है, वह क्षीरसागर हो जाती है। इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल का जो स्त्री एक वर्ष तक पान करती है, उसके पुत्र भीष्म के समान पराक्रमी होते हैं। इस मन्त्र के जप में रत साधक के पादतीर्थ (पैर धोये गये जल) का भूताविष्ट व्यक्ति के हृदय पर छिड़काव करने से वह तत्काल ही भूतों से मुक्त हो जाता है; यह अन्यथा नहीं है॥३७५-३८०॥

तारो हिलिमिलिद्वन्द्वं गङ्गे देवि नमो मनुः ।
तिथिवर्णोऽस्य मुन्यादिपूजा पूर्ववदीरिता ॥३८१॥
त्रिद्विद्विद्व्यक्षिकृतद्व्यर्णैः षडङ्गविधिरीरितः ।
एतस्य भजनाज्जन्तोर्नातीर्थे मरणं भवेत् ॥३८२॥

गंगा का अन्य मन्त्र—गंगा का पन्द्रह अक्षरों का एक अन्य मन्त्र है—ॐ हिलि हिलि मिलि मिलि गङ्गे देवि नमः। इस मन्त्र के ऋषि आदि एवं पूजन पूर्ववत् कहे गये हैं। मन्त्र के तीन, दो, दो, दो, चार एवं दो वर्णों से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है। इस मन्त्र का जप करने वाले की तीर्थ-रहित स्थान में मृत्यु नहीं होती॥३८१-३८२॥

तारो लज्जा रमा हार्दं ततो भगवतीपदम् ।
सम्बुद्धौ गङ्गदयिते नमो वर्म तथास्त्रकम् ॥३८३॥
अष्टादशार्णो मन्त्रोऽयं मुन्याद्यं पूर्ववन्मतम् ।
जपादिना सिद्धमन्त्रः प्रयोगानाचरेदथ ॥३८४॥
पुत्रजीवफलैर्होमात्पुत्रः शीलयुतो भवेत् ।
गुडूच्या रोगनाशः स्याद्रमा पद्मादिहोमतः ॥३८५॥
लक्ष्मीप्राप्तिः श्रीफलैश्च सर्षपैरभिचारकः ।
जातीप्रसूनैर्वश्यं स्याज्जपापुष्पैर्जयो भवेत् ॥३८६॥

गंगा का अन्य मन्त्र—अट्ठारह अक्षरों का गंगा का अन्य मन्त्र है—ॐ ह्रीं श्रीं नमः भगवति गङ्गदयिते नमः हुं फट्। इसके ऋषि आदि पूर्ववत् कहे गये हैं। जप आदि द्वारा मन्त्र के सिद्ध होने पर प्रयोगों का साधन करना चाहिये। इस मन्त्र से जायफल

द्वारा हवन करने पर पुत्र शीलवान होता है। गुरुच्चखण्डों के हवन से रोगों का नाश होता है। कमलों के हवन से धन-प्राप्ति होती है। श्रीफल के हवन से लक्ष्मी-प्राप्ति होती है। सरसों के हवन से अभिचार कर्म किये जाते हैं। जातीपुष्पों के होम से वशीकरण होता है एवं जपापुष्पों के होम से विजय की प्राप्ति होती है॥३८३-३८६॥

वाङ्मतीमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वाङ्मत्याश्च मनुद्वयम्।
बाग्बीजं प्रथमं हृच्च नारदोऽस्य मनोर्मुनिः॥३८७॥
छन्दोऽनुष्टुब्देवतात्र वाङ्मयी परिकीर्तिता।
बीजपूर्वैश्च षड्दीर्घैः षडङ्गविधिरीरितः॥३८८॥
श्वेताम्बरां श्वेतवर्णां श्वेतगन्धानुलेपनाम्।
सुधाकुम्भं च पद्मं च वीणां पुस्तकमेव च।
करैर्दधानां मीनस्थां मुक्ताभरणभूषिताम्॥३८९॥
एवं ध्यात्वा कर्णिकायां यजेद्देवीं षडस्रके।
रुद्रधारां मतिमतीं फल्गुं विष्णुमतीं तथा।
प्रभावतीं भानुमतीं भूपुरे तु दिगीश्वरान्॥३९०॥
लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं पञ्चखाद्यैस्तथा हुनेत्।
तर्पणादि ततः कृत्वा सिद्धमन्त्रः प्रजायते॥३९१॥
सद्योजातस्य बालस्य जिह्वायां बीजमालिखेत्।
मधुना स्वर्णलेखन्या सोऽष्टवर्षः कविर्भवेत्॥३९२॥
वाङ्मत्यां वाथ गङ्गायां पुरश्चर्यां करोति यः।
द्वितीयादप्रतिग्राही भिक्षाशी वाथ मौनवान्॥३९३॥
ब्रह्मचारी भूमिशायी श्वेताम्बरधरः शुचिः।
वाक्सिद्धिं लभतेऽवश्यं दाता भोक्ता त्वयाचकः॥३९४॥

वाङ्मती-मन्त्र—अब मैं वाङ्मती के दो मन्त्रों को कहता हूँ। प्रथम मन्त्र है—ऐं नमः। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता वाङ्मयी कही गई हैं। बीजमन्त्र के छः दीर्घ स्वरूपों (ऐं=आं ई ऊँ ऐ औं अः) से इसकी षडङ्गविधि कही गई है।

श्वेत वस्त्र धारण की हुई श्वेत वर्ण वाली, श्वेत गन्ध का अनुलेप लगायी हुई, हाथों में अमृतकलश, कमल, वीणा एवं पुस्तक धारण की हुई, मोतियों के आभूषणों से विभूषित, मत्स्य पर आसीन देवी वाङ्मती का ध्यान करना चाहिये।

इस प्रकार ध्यान करके कर्णिका में देवी का पूजन करने के बाद षट्कोण में रुद्रधारा, मतिमती, फल्गु, विष्णुमती, प्रभावती एवं भानुमती का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् भूपुर में लोकपालों का पूजन करने के बाद मन्त्र का तीन लाख जप करके पञ्चमेवा से हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण आदि करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

सद्यः उत्पन्न बालक के जीभ पर सुवर्ण की लेखनी से मधु द्वारा बीजमन्त्र (ऐं) का लेखन करने से वह बालक आठ वर्ष की आयु में ही कवि हो जाता है।

जो साधक दूसरे द्वारा दिया अन्न ग्रहण न करते हुये भिक्षा में प्राप्त अन्न का ही भक्षण करके मौन धारण कर, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये, भूमि पर शयन करते हुये श्वेत वस्त्र धारण करके पवित्रता-पूर्वक वाङ्मती अथवा गङ्गा में इसका पुरश्चरण करता है, वह वाक्सिद्धि प्राप्त कर लेता है; साथ ही वह दाता, भोक्ता एवं अयाचक होता है॥३८७-३९४॥

रमात्रपावाग्बीजानि वदेन्ङेऽन्तां च वाङ्मतीम्।
नमो ममेति च पदं धारणां च धियन्तथा॥३९५॥
वाचं गुणान् प्रदेहीति स्वाहान्तस्तत्त्ववर्णकः।
मुन्यादिकं तथा पूजा पुरश्चर्या च पूर्ववत्॥३९६।
स्खलज्जिह्वमनुष्यस्य जिह्वायां तुलसीदलैः।
वचाकल्केन मन्त्रं तु लिखित्वा भानुवासरे॥३९७॥
हविष्यमन्नम्भुञ्जीत मौनी लवणवर्जितम्।
सप्तभिर्भानुवारैश्च साक्षात्स्याद्धिषणोपमः॥३९८॥
अश्रुतग्रन्थबोधाय ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
रवौ तु पायसे मन्त्रं लिखेत्स्वर्णशलाकया॥३९९॥
तदेव पायसं भुक्त्वा ध्यात्वा देवीं स्वपेन्निशि।
स्वप्ने तमर्थं शृणुयात्प्रातर्बीजं स्वयं स्मरेत्॥४००॥

वाङ्मती का अन्य मन्त्र—चौबीस अक्षरों का वाङ्मती का अन्त्र मन्त्र है—श्रीं ह्रीं ऐं वाङ्मत्यै नमः मम धारणां धियं वाचं गुणान् प्रदेहि स्वाहा। इस मन्त्र के ऋष्यादि, पूजन एवं पुरश्चरण पूर्ववत् हैं।

बोलने में जिसकी जिह्वा स्खलित होती हो, उस मनुष्य की जिह्वा पर सात रविवार को तुलसीदलों द्वारा वचाकल्क से इस मन्त्र को लिखकर मौन धारण कर लवण-वर्जित हविष्यान्न-भक्षण करने से वह मनुष्य साक्षात् वाणी-स्वरूप अर्थात् स्पष्टवक्ता हो जाता है।

अश्रुत ग्रन्थ का ज्ञान करने के लिये ब्रह्मचारी एवं जितेन्द्रिय रहकर रविवार को पायस में सुवर्ण की शलाका से इस मन्त्र को लिखकर उसी पायस का भक्षण करके देवी का ध्यान कर शयन करने पर रात्रि में स्वप्न में उस ग्रन्थ के अर्थ का श्रवण करता है और प्रातः बीज को स्वयं ही स्मरण कर लेता है॥३९५-४००॥

मणिकर्णिकामन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मणिकर्णीमनुद्वयम्।
तारो वाग्ह्रीं रमाकामस्तारो मं मणिकर्णिके ॥४०१॥
नमोऽन्तश्शक्रवर्णोऽयं मनुः परमदुर्लभः।
मुनिर्व्यासोऽतिशक्वरी छन्दः स्यान्मणिकर्णिका ॥४०२॥
देवता चन्द्रनेत्राक्षिद्वीषुद्व्यर्णैः षडङ्गकम्।
बीजपूरं दक्षहस्ते वामे चेन्दीवरस्रजम् ॥४०३॥
बद्धाञ्जलिः श्वेतवस्त्रा त्र्यक्षा चन्द्रनिभानना।
पश्चिमाभिमुखी स्मेरा पद्मस्था पद्ममालिका ॥४०४॥
नानाभरणभूषाढ्या ध्येया श्रीमणिकर्णिका।
लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः ॥४०५॥
पुण्डरीकैरुक्तयन्त्रे यजेत्तां गङ्गया समम्।
आवाह्य कलशे देवीं पूजयेदयुतं जपेत् ॥४०६॥
जपन् कारागृहस्थो वा स्यात्प्रसूतिविरोधिनी।
पायसं भक्षयेन्मुक्ती रोगपीडा च नश्यति ॥४०७॥
भूतप्रेतपिशाचानां मोक्षदं परमो मतः।
भुक्तिमुक्तिप्रदो मन्त्रो धनधान्यसमृद्धिदः।
वंशवृद्धिकरः प्रोक्तः काशीवासप्रदायकः ॥४०८॥

मणिकर्णिका-मन्त्र—अब मैं मणिकर्णिका के दो मन्त्रों को कहता हूँ। चौदह अक्षरों का अत्यन्त दुर्लभ मन्त्र है—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ॐ मं मणिकर्णिके नमः। इस मन्त्र के ऋषि व्यास, छन्द अतिशक्वरी एवं देवता मणिकर्णिका हैं। मन्त्र के क्रमशः एक, दो, दो, दो, पाँच एवं दो अक्षरों से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है।

दाहिने हाथ में बीजपूर एवं बाँयें में नीलकमलों की माला धारण की हुई, शेष दो हाथों से अञ्जलि बनाई हुई, श्वेत वस्त्र धारण की हुई, तीन नेत्रों वाली, चन्द्रमुखी, ईषत् मुसकान-युक्त, कमल पर पश्चिमाभिमुख विराजमान, कमलों की माला धारण की हुई, अनेक आभूषणों से सुशोभित श्रीमणिकर्णिका का ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्र का एक लाख जप करके कमलपुष्पों से उसका दशांश हवन करना चाहिये।

इसके बाद पूर्वोक्त यन्त्र में गङ्गा के समान ही मणिकर्णिका का पूजन करना चाहिये। कलश में देवी का आवाहन करके पूजन करने के उपरान्त मन्त्र का दस हजार जप करना चाहिये।

जेल में बन्द रहता हुआ अथवा प्रसूति-विरोधिनी भी इस मन्त्र का जप करते हुये पायस का भक्षण करने से कारागृह से मुक्त हो जाता है एवं रोगपीड़ा भी नष्ट हो जाती है।

यह मन्त्र भूत-प्रेत-पिशाच से मुक्ति दिलाने वाला कहा गया है। यह मन्त्र भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला, धन-धान्य एवं समृद्धि प्रदान करने वाला, वंश की वृद्धि करने वाला तथा काशीवास प्रदान करने वाला कहा गया है॥४०१-४०८॥

तारो मं मणिशब्दान्ते कर्णिके प्रणवात्मिके।
नमश्चतुर्दशार्णोऽयं मुन्याद्यं पूर्ववन्मतम् ॥४०९॥
पदैः सम्पूर्णमन्त्रेण षडङ्गविधिरीरितः।

मणिकर्णिका का अन्य मन्त्र—मणिकर्णिका का चौदह अक्षरों का दूसरा मन्त्र है—ॐ मं मणिकर्णिके प्रणवात्मिके नमः। इसके ऋषि आदि पूर्ववत् कहे गये हैं। मन्त्र के पाँच पदों एवं सम्पूर्ण मन्त्र से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है॥४०९॥

नर्मदामन्त्रकथनम्

ऐंश्रीं मेकलकन्यायै नर्मदायै हृदादिकम् ॥४१०॥
सोमोद्भवायै देवापगायै हृदयपूर्वकम्।
हृदादिषु प्रकल्पायै हृदयं देववर्णकः ॥४११॥
भृग्वर्षिरमितं छन्दो देवता नर्मदा मता।
ङेऽन्तैः पृथक् पञ्चपदैः समस्तैरङ्गकल्पनम् ॥४१२॥
कनकाभां कच्छपस्थां त्रिनेत्रां बहुभूषणाम्।
पद्माभयसुधाकुम्भवराद्यान्बिभ्रतीं करैः ॥४१३॥
मध्ये देवीं षड्दलेषु षडङ्गानि प्रपूजयेत्।
घोणां ज्योतिष्मतीं चापि वामदक्षिणतो यजेत् ॥४१४॥
इन्द्रादयो दिगीशाश्च पूज्या भूपुरवीथिषु।
लक्षं जपेद्धुनेद्यो वै भुक्तिं मुक्तिं ततो भजेत् ॥४१५॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते
भैरवादिमनुकथनं नामद्वात्रिंशः प्रकाशः ॥३२॥

नर्मदा-मन्त्र—चौबीस अक्षरों का नर्मदा का मन्त्र है—ऐं श्रीं मेकलकन्यायै नर्मदायै सोमोद्भवायै देवापगायै नमः। इस मन्त्र के ऋषि भृगु, छन्द अमित एवं देवता नर्मदा कही गई है। मन्त्र के पृथक्-पृथक् पाँच पदों एवं सम्पूर्ण मन्त्र से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है।

षडङ्गन्यास के पश्चात् स्वर्ण-सदृश कान्तिमती, कच्छप पर विराजमान, तीन नेत्रों वाली, अनेक आभूषणों से भूषित, हाथों में पद्म, अभय, अमृतकलश एवं वर को धारण की हुई देवी का ध्यान करना चाहिये।

कर्णिका में देवी का पूजन करने के उपरान्त छः दलों में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। इसके बाद देवी के वामभाग में घोणा का तथा दक्षभाग में ज्योतिष्मती का पूजन करने के बाद भूपुर में इन्द्रादि दस दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार पूजन करके जो साधक उक्त मन्त्र का एक लाख जप करके हवन करता है, वह भोग एवं मोक्ष को प्राप्त करता है।।४१०-४१५।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र
में शिवप्रणीत 'भैरवादिमन्त्रकथन'-नामक
द्वात्रिंश प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।

●

त्रयस्त्रिंशत्तमः प्रकाशः

(दैवतयन्त्रकथनम्)

श्रीदेव्युवाच

राज्ञां भाग्यवतां देव यैश्च रक्षाभिजायते।
दुर्ग्रहाश्च यथा दुःखं दातुं शक्तानविद्विषः॥१॥
कथं स्यात्स्थिरसम्पत्तिः सन्ततिश्च कथं क्रिया।
साधकैस्तु प्रकर्तव्या कथं सिद्धिः प्रजायते॥२॥

श्रीदेवी ने कहा—हे देव! जिससे भाग्यवानों की रक्षा होती है, दुष्ट ग्रह भी जिससे दुःख देने में समर्थ नहीं हो पाते, किस क्रिया से सम्पत्ति स्थिर होती है, कैसे सन्तति प्राप्त होती है, कैसे सिद्धि प्राप्त होती है; एतदर्थ उस उपाय को बतलाने की कृपा करें, जो साधक कर सके॥१-२॥

यन्त्रसिद्धिविधानकथनम्

ईश्वर उवाच

अथ यन्त्रविधिं वक्ष्ये सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।
सिद्धस्य लेखनादेव यन्त्रसिद्धिः प्रजायते॥३॥
न भावि यत्र कार्यं तु सिद्धं चापि तदा भवेत्।
दुःस्वप्नदर्शनं पूर्वं तदा यन्त्रन्न कारयेत्॥४॥
साधकस्य शुभे घस्रे समाराध्येष्टदेवताम्।
स्वप्यात्त्रिदिवसं भूमौ हविष्याशी जपेत्ततः॥५॥
एतद्यन्त्रं करिष्यामि मम तत्कीदृशं प्रभो।
स्वप्ने वदेत्तु देवेशस्तदङ्गत्वेन पूजनम्।
कृत्वा प्रदोषसमये लिखेत्त्रिदिवसं भुवि॥६॥
तृतीयदिवसे रात्रौ यथा स्वप्नः प्रजायते।
तथैवाज्ञां गृहीत्वा तु सत्स्वप्नो वा लिखेद् बुधः॥७॥
अस्वप्ने वाथ दुःस्वप्ने नैव कुर्याल्लिखेन्न तत्।
जीवसंस्थापनं यन्त्रे कुर्याद्येन फलं लभेत्॥८॥

यन्त्रसिद्धि-विधान—ईश्वर ने कहा—अब मैं समस्त तन्त्रों में गुप्त यन्त्र-विधि को कहता हूँ, जिसके अनुसार लिखने-मात्र से ही यन्त्रसिद्धि हो जाती है। इससे न होने

वाले कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं। यन्त्र-लेखन के पूर्व रात्रि में शयन की अवस्था में यदि दुःस्वप्न-दर्शन हुआ हो तो यन्त्र-निर्माण नहीं करना चाहिये।

साधक द्वारा शुभ दिवस में अपने इष्टदेव की सम्यक् रूप से आराधना करके तीन दिनों तक हविष्य-भक्षण करते हुये भूमि पर शयन करना चाहिये। इसके बाद मन्त्रजप करना चाहिये। रात्रि में शयन करते समय अपने इष्टदेव से यह प्रश्न करना चाहिये कि हे प्रभो! मैं इस प्रकार के यन्त्र को बनाना चाहता हूँ, वह कैसा होगा; हे देवेश! इसे आप स्वप्न में कहने की कृपा करें। तत्पश्चात् उसके अङ्गरूप पूजन करके आगामी तीन दिनों तक प्रदोषकाल में साध्य यन्त्र को भूमि पर लिखना चाहिये।

तीसरे दिन रात्रि में जिस प्रकार का स्वप्न दिखाई दे, उसी प्रकार से आज्ञा लेकर अथवा शुभ स्वप्न होने पर विद्वान् को यन्त्रलेखन करना चाहिये। स्वप्न न होने पर अथवा दुःस्वप्न होने पर यन्त्रलेखन नहीं करना चाहिये। लिखित यन्त्र में जीव का स्थापन अर्थात् प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये, जिससे कि इष्ट फल की प्राप्ति हो सके।।३-८।।

षष्ठ्यन्तं साधकपदं मध्ये बीजार्णयोर्लिखेत्।
द्वितीयान्तं साध्यमध्ये कुरुद्वन्द्वं च पार्श्वयोः ।।९।।
हंसो यन्त्रस्य बीजं स्यान्मध्यभागादधो लिखेत्।
हंसः सोहं मनोरस्य लिखेदेकैकमक्षरम् ।।१०।।
ईशानादिषु कोणेषु दक्षपार्श्वे च ईंद्वयम्।
ठद्वयं वामपार्श्वे च लिखेत्पूर्वादितः क्रमात् ।।११।।
लंनंमंक्षं तथा वंयंसंहं पूर्वादिके लिखेत्।
ईशानसोमयोर्मध्ये आंह्रीं वायव्यसोमयोः।
एवं दिक्पालबीजानि विन्यसेद्दिक्षु च क्रमात् ।।१२।।
यन्त्रराजाय विद्महे वरप्रदाय धीमहि।
तन्नो यन्त्रं प्रचोदयात् ।।१३।।
एतस्याः प्रतिकाष्ठायां लिखेद्वर्णत्रयन्त्रयम्।
बहिः प्राणप्रतिष्ठाया मन्त्रं सर्वत्र वेषयेत्।
एवन्तु लिखितं यन्त्रं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।।१४।।

साधक का षष्ठ्यन्त नाम लिखकर उसके मध्य में दोनों बीजवर्णों (हंसः) को लिखने के बाद मध्य में द्वितीयान्त साध्य-नाम लिखकर उसके दोनों ओर 'कुरु कुरु' लिखना चाहिये। यन्त्र के बीज 'हंसः' को मध्य में नीचे की ओर लिखना चाहिये। 'हंसः सोहं' मन्त्र के एक-एक अक्षरों को ईशान आदि कोणों में लिखना चाहिये। दक्ष पार्श्व

में 'ईं ईं' एवं वाम पार्श्व में 'ठः ठः' लिखना चाहिये। इसके बाद पूर्वादि क्रम से 'लं नं मं क्षं वं यं सं हं' लिखने के बाद ईशान और उत्तर तथा वायव्य और उत्तर के मध्य में 'आं ह्रीं' लिखना चाहिये। इसी प्रकार दिक्पालों के बीजवर्णों का तत्तत् दिशाओं में क्रमशः लेखन करना चाहिये।

यन्त्रगायत्री है—यन्त्रराजाय विद्महे वरप्रदाय धीमहि तन्नो यन्त्रं प्रचोदयात्। इस यन्त्रगायत्री के तीन-तीन वर्णों को यन्त्र के बाहर आठो दिशाओं में लिखने के उपरान्त बाहर में सभी तरफ प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र (आं ह्रीं क्रों) को लिखकर उससे लिखित यन्त्र को वेष्टित कर देना चाहिये। इस प्रकार लिखा गया यन्त्र समस्त सिद्धियों को देने वाला होना है॥९-१४॥

स्थूलानुक्तौ भूर्जपत्रे क्षौमे वाम्भोजपत्रके।
यन्त्रं सुलिख्य गुटिकां बद्ध्वा सूत्रेण वेष्टयेत्॥१५॥
लाक्षयाच्छादितं स्वर्णे रौप्ये ताम्रेऽथ वा क्षिपेत्।
यद्देवताकं यन्त्रं स्यात्तद्बीजेन च पूजयेत्॥१६॥
तदभावे मातृकार्णैर्यन्त्रपूजां समाचरेत्।
अष्टोत्तरसहस्रं तु मूलं जप्त्वा हुनेद् घृतम्॥१७॥
तत्र पात्रेन संसिक्तं कृत्वा मन्त्रं नियोजयेत्।
मूर्ध्नि बाहौ गले वापि तत्तदिष्टार्थसिद्धये॥१८॥

यन्त्रलेखन-हेतु आधार का उल्लेख न होने पर यन्त्र को भोजपत्र, रेशमी वस्त्र अथवा कमलपत्र पर अच्छी प्रकार से लिखकर उसकी गुटिका बनाकर उस गुटिका को सूत्र से वेष्टित कर देना चाहिये। पुनः उसे चारो-तरफ से लाख से ढ़ककर सोना, चाँदी अथवा ताँबे में रख देना चाहिये अर्थात् ताबीज में भर देना चाहिये।

सर्वसिद्धि-प्रदायक यन्त्र

इसके बाद जिस देवता का यन्त्र हो, उसके बीजमन्त्र से उस यन्त्र का पूजन करना चाहिये। बीजमन्त्र के अभाव में वर्णमातृकाओं से यन्त्रपूजन करना चाहिये।

तत्पश्चात् मूल मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करके घृत से हवन करना चाहिये। तदनन्तर पात्र के जल में उस यन्त्र को रखकर उसे अभिमन्त्रित करना चाहिये। इसके बाद यथेच्छ अभीष्ट-सिद्धि के लिये उसे शिर (मुकुट अथवा पगड़ी) पर, बाँह में अथवा गले में धारण करना चाहिये॥१५-१८॥

उपास्या वा भूतलिपिर्यन्त्रसिद्धिविधायिनी।
अक्लेशेनैव सर्वेषां मन्त्राणां सिद्धिमाप्नुयात्॥१९॥
मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि यन्त्रोद्धारं सबिन्दुकम्।
अक्प्रत्याहारमुच्चार्य रों रौं डौं डौं ततो वदेत्॥२०॥
हं यं रं वं ततो लं टं कं खं गं घमिति क्रमात्।
वर्गान्त्यमाद्यद्वित्र्यब्धिवर्णान् वर्गचतुष्टये॥२१॥
वर्गेषु प्राक्परं शङ्खं समेवं द्व्यब्धिवर्णकः।
ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्त्तिर्गायत्री छन्द ईरितम्॥२२॥
वर्णेश्वरी देवताऽस्य षडङ्गानि समाचरेत्।
स्वरहीनैर्हयाब्ध्यश्वैर्मन्त्रार्णैः पञ्चपञ्चभिः॥२३॥

अथवा यन्त्रसिद्धि कराने वाली भूतलिपि की उपासना करनी चाहिये। भूतलिपि की उपासना से विना कष्ट के ही समस्त मन्त्रों की सिद्धि प्राप्त हो जाती है। अब मन्त्र एवं यन्त्र का उद्धार बतलाता हूँ। बयालीस अक्षरों का मन्त्र है—अं इं उं ऋं लृं कृं रों रौं डौं डौं हं यं रं वं लं टं कं खं गं घं ङं चं छं जं, ढं टं ठं डं, धं तं थं दं, भं पं फं बं, वं यं रं लं, शं खं। इसके ऋषि दक्षिणामूर्ति हैं, छन्द गायत्री है और देवता वर्णेश्वरी हैं। षडङ्ग न्यास इस प्रकार करना चाहिये—हं यं रं वं लं हृदयाय नमः, ङं कं खं घं गं शिरसे स्वाहा, ञं चं छं झं जं शिखायै वषट्, णं टं ठं ढं डं कवचाय हुं, नं तं थं धं दं नेत्रत्रयाय वौषट्, मं पं फं भं मं अस्त्राय फट्॥१९-२३॥

गुदे लिङ्ग उरोनाभिकण्ठेषु मध्यकेशयोः।
शिरसि ब्रह्मरन्ध्रे च क्रमान्न्यस्या नव स्वराः॥२४॥
ऊर्ध्वप्राग्दक्षिणेशानपश्चिमेषु मुखेषु च।
हं यं टं रं वं लमिति न्यसेद्बीजानि वै क्रमात्॥२५॥
ततः कराग्रे मूले च कूर्परेऽङ्गुलिसन्धिषु।
दक्षवामक्रमेणैव टादिवर्गं तथादिमम्॥२६॥

वर्गं न्यसेत्तथा पादाग्रके मूले च जानुनोः ।
तथा सन्धावङ्गुलीनां गुल्फे सर्गादिनादिकान् ॥२७॥
ठद्वयं पार्श्वयुग्मे च नाभौ पृष्ठे च मादिकान् ।
गुह्ये हृत्ककुदोर्मध्ये शषसान् विन्यसेत् क्रमात् ॥२८॥

तत्पश्चात् गुदा, लिङ्ग, हृदय, नाभि, कण्ठ, भ्रूमध्य, शिर एवं ब्रह्मरन्ध्र में क्रमशः नव स्वरों (अ इ उ ऋ ऌ ए ओ अं अः) का न्यास करना चाहिये। इसके बाद ऊर्ध्व, पूर्व, दक्षिण, उत्तर, पश्चिम एवं मुख में क्रमशः हं यं टं रं वं लं—इन बीजों का न्यास करना चाहिये। इसके पश्चात् दक्ष कराग्र, दक्ष करमूल, दक्ष कूर्पर, दक्ष करांगुलिमूल, दक्ष मणिबन्ध, वाम कराग्र, वाम करमूल, वाम कूर्पर, वाम कराङ्गुलिमूल एवं वाम मणिबन्ध में क्रमशः टादि एवं कादि वर्ग के वर्णों का न्यास करना चाहिये। इसके बाद दक्ष पादाग्र, दक्ष पादमूल, दक्ष जानु, दक्ष पादांगुलिसन्धि, दक्ष गुल्फ, वाम पादाग्र, वाम पादमूल, वाम जानु, वाम पादांगुलिसन्धि एवं वाम गुल्फ में क्रमशः तकारादि एवं पकारादि दस वर्णों का न्यास करना चाहिये। दोनों पार्श्वों में ठकार का एवं नाभि में मकार,पृष्ठ में यकार, गुह्य में शकार, हृदय में षकार तथा ककुत् में सकार का न्यास करना चाहिये॥२४-२८॥

ततो भूतलिपिं ध्यायेत्त्रनेत्रां चन्द्रशेखराम् ।
वराक्षमालापद्मानि कपालं बिभ्रतीं करैः ॥२९॥
लक्षं प्रजप्यादयुतं घृतं हुत्वा च तर्पयेत् ।
एवं भूतलिपिः सेव्या यन्त्रसिद्धिः प्रजायते ।
श्रीविद्याराधने चापि समर्थो जायते नरः ॥३०॥

इसके बाद तीन नेत्रों वाली, शीर्ष पर चन्द्र को धारण की हुई, हाथों में वर, अक्षमाला, कमल एवं कपाल धारण की हुई भूतलिपि का ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर मन्त्र का एक लाख जप करने के उपरान्त घृत से दस हजार हवन करने के बाद तर्पण करना चाहिये। इस प्रकार से भूतलिपि की उपासना करने से यन्त्र-सिद्धि प्राप्त होती है और मनुष्य श्रीविद्या की आराधना करने में भी समर्थ हो जाता है॥२९-३०॥

हेरम्बयन्त्रकथनम्

अथाहं सम्प्रवक्ष्यामि हैरम्बं यन्त्रमुत्तमम् ।
भूर्जपत्रे लिखेद्यन्त्रं कुङ्कुमेन मदेन च ॥३१॥
लिखेद् भूमिगतं मध्येऽमुकस्येति तदुत्तरम् ।
अमुकं चेत्यधःस्थाने वशं कुर्विति पार्श्वयोः ॥३२॥

इत्यादिकं स्वेष्टकर्मपदं ज्ञात्वा लिखेद् बुधः।
षड्भागे केशराणां गां गीं गूं गैं च गौमिति ॥३३॥
गश्चेति विलिखेद्यन्त्रे पूर्वाशादिप्रदक्षिणम्।
हेरम्बमालामन्त्रं च गं नमो वह्निगेहिनीम् ॥३४॥
अं आं ह्रीं क्रीं नमो ङेऽन्तं सर्वविद्याधिपं वदेत्।
सर्वार्थसिद्धिदायेति सर्वदुःखपदं वदेत् ॥३५॥
प्रशमनायेह्येहि भगवान् सर्वानुवादय।
संक्षोभयद्वयं ह्रीं गां नमो ज्वलनगेहिनी ॥३६॥
अमां ह्रीमिति मन्त्रोऽयं प्रोक्तः षट्पञ्चवर्णकः।
पद्माद्बहिः प्रकर्त्तव्यं वर्त्तुलद्वितयन्ततः ॥३७॥
ततः प्रथमवीथ्यां तु लिखेत्स्वाग्रात्प्रदक्षिणम्।
लक्ष्मीबीजानि परत ऐंबीजेन प्रवेष्टयेत् ॥३८॥
ततश्च गुटिकां कृत्वा श्वेतसूत्रेण वेष्टयेत्।
अकृत्वा चाग्निसम्बन्धं तां त्रिलोहे निधापयेत् ॥३९॥
जपादिमालामन्त्रस्य कुर्याद्धेरम्बयन्त्रवत्।
अमितं छन्द इत्युक्तं यन्त्रं दद्यादभीप्सितम् ॥४०॥

हेरम्ब-यन्त्र—अब मैं उत्तम हेरम्ब-यन्त्र को कहता हूँ। इस यन्त्र को भोजपत्र पर कुमकुम और कस्तूरी से लिखना चाहिये।
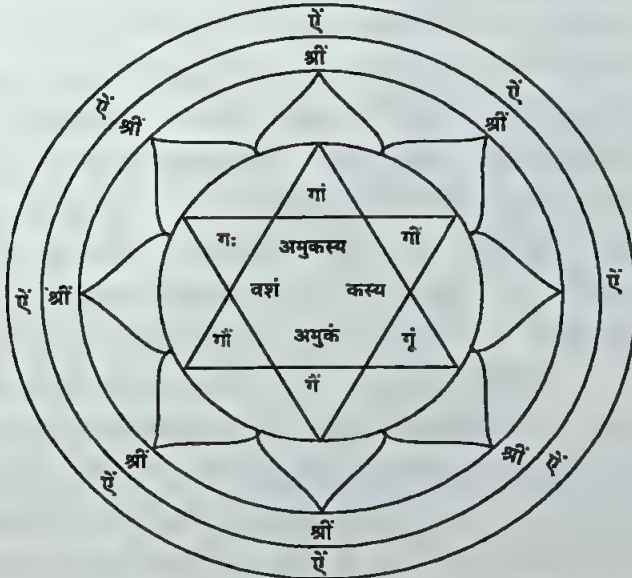
यन्त्र के मध्य में 'अमुकस्य अमुकं वशं कुरु' लिखकर पार्श्व में अपने इष्टकर्म को लिखना चाहिये। केशर के छः भागों में 'गां गीं गूं गैं गौं गः' लिखने के बाद पूर्व से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणक्रम से हेरम्ब मालामन्त्र का अंकन करना चाहिये। पैंसठ अक्षरों का यह मालामन्त्र इस प्रकार है—ॐ गं नमो स्वाहा अं आं ह्रीं क्रीं नमो सर्वविद्याधिपाय सर्वार्थसिद्धिदाय सर्वदु:खप्रशमनाय एह्येहि भगवान् सर्वानुवादय संक्षोभय संक्षोभय ह्रीं गां नमः स्वाहा अं आं ह्रीं। कमल के बाहर दो वृत्त बनाकर प्रथम वीथि में अपने आगे से प्रदक्षिणक्रम से लक्ष्मीबीज (श्री) एवं द्वितीय वीथि में 'ऐं' बीज लिखना चाहिये।

इसके बाद उसकी गुलिका बनाकर उस पर श्वेत सूत्र (धागा) लपेट करके अग्नि का स्पर्श कराये विना त्रिलोह (सोना, चाँदी, ताम्बा)-निर्मित तावीज में रखने के बाद हेरम्ब मालामन्त्र का जप आदि यन्त्रांकित क्रम से करना चाहिये। इसका छन्द अमित कहा गया है। यह यन्त्र अभीप्सित फल प्रदान करता है॥३१-४०॥

षट्कोणमध्ये श्रीबीजपुटितं प्रणवं लिखेत्।
साध्यनाम च तन्मध्ये तद्बाह्येऽष्टदलं लिखेत्॥४१॥
कामबीजं प्रतिदलं बाह्ये खाङ्कुशपत्रकम्।
ग्लौं बीजं तद्दले लेख्यं तद् बाह्ये च लिखेत्पुनः॥४२॥
चतुर्विंशद्दलं पद्मं तत्र चार्णांल्लिखेत्सुधीः।
चतुर्विंशत्यक्षरं च गणेशस्य मनुं शृणु॥४३॥
लक्ष्मीर्गं गणपतये वरं वरद सर्वज।
नं मे वशमेत्युक्त्वा नय स्वाहा मनुर्मतः॥४४॥
द्वात्रिंशद्दलपद्मं तु तद्बाह्ये तत्र संलिखेत्।
कादिकांस्तान् मातृवर्णान् सबिन्दूंस्तस्य बाह्यतः॥४५॥
चन्द्राष्टकयुतं कुर्याच्चतुरस्रं मनोहरम्।
तस्य कोणेषु लं बीजं लिखेत्तस्य बहिष्पुनः॥४६॥
वारुणं मण्डलं लेख्यमर्द्धचन्द्रसमप्रभम्।
तद्वेष्टयेद्वं बीजेन तद्बहिर्वृत्तयुग्मकम्॥४७॥
ह्रीं बीजेनादिवीथ्यां तु वेष्टयेत्परमङ्कुशैः।
बीजं चाद्यन्तयोर्लेख्यं महागणपतेरिदम्॥४८॥

षट्कोण बनाकर उसके मध्य में श्रीबीज से पुटित ॐ के गर्भ में साध्य-नाम का अंकन करने के बाद उसके बाहर अष्टदल बनाकर प्रत्येक दलों में कामबीज (क्लीं) लिखकर बाहर दलों के आगे 'ग्लौं' बीज का अंकन करना चाहिये। तत्पश्चात् उसके

बाहर चौबीस दलों वाला कमल बनाकर उन दलों में चौबीस अक्षरों वाले गणेश-मन्त्र के एक-एक अक्षरों को लिखना चाहिये। वह मन्त्र है—श्रीं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा। पुनः उसके बाहर बत्तीस दलों वाला कमल बनाकर उसके दलों में बिन्दु से विभूषित ककारादि मातृकावर्णों (कं खं गं घं ङ, चं छं जं झं ञं, टं ठं डं ढं णं, तं थं दं धं नं, पं फं बं भं मं, यं रं लं वं शं, षं सं) का अंकन करना चाहिये। तदनन्तर उसके बाहर अष्टचन्द्र-युक्त मनोहर चतुरस्र का निर्माण करके उसके चारो कोणों में 'लं' बीज लिखने के बाद उसके बाहर अर्धचन्द्र के सदृश कान्तिमान वारुण मण्डल की रचना करके उसे 'वं' बीज से वेष्टित कर देना चाहिये। पुनः उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उसकी प्रथम वीथि को 'ह्रीं' एवं दूसरी वीथि को अंकुश-बीज (ईं) से वेष्टित करते हुये आदि और अन्त में महागणपति-बीज का अंकन करना चाहिये।।४१-४८।।

यन्त्रं भूर्जे धरायां वा वसने वा समालिखेत्।
गोरोचना गोमयन्तु कस्तूरी केशरं तथा ।।४९।।
एतैश्च विलिखेद्यन्त्रं लेखनी स्वर्णरौप्यजा।
एतद्यन्त्रं धृतं येन स त्वजेयो नरो भवेत् ।।५०।।
न दह्यते वह्निनाऽसौ न भयं तस्करान्नृपात्।
रणे राजकुले द्यूते संग्रामे शत्रुसङ्कटे।
गृहे वने जलादौ वा सर्वदा स जयी भवेत् ।।५१।।
अनामिकारक्तयुक्तै रक्तद्रव्यैर्लिखेच्च तत्।
रक्तपुष्पादिभिश्चैव नैवेद्यैः परिपूजयेत् ।।५२।।
मनोज्ञां च ततो मूर्तिं कृत्वा तदुदरे क्षिपेत्।
प्रतापयेच्च दीपाग्नौ सप्ताहात् स्त्रियमाप्नुयात् ।।५३।।
जप्त्वा मनुं चाष्टशतं होमयेच्च घृतं तदा।
अवश्यं वशयेन्नारीं विद्वेषणमथोच्यते ।।५४।।

इस यन्त्र को भोजपत्र पर, भूमि पर अथवा वस्त्र पर गोरोचन, गोमय, कस्तूरी अथवा केशर की स्याही से सुवर्ण अथवा चाँदी की लेखनी से लिखना चाहिये। इस यन्त्र को धारण करने वाला मनुष्य अजेय होता है।

इसे धारण करने वाले को अग्नि जला नहीं सकती और न ही उसे राजा अथवा चोरों से किसी प्रकार का भय होता है। रणक्षेत्र में, राजदरबार में, जुआ में, युद्ध में, शत्रु-संकट में, घर में, वन में अथवा जल आदि में सदा वह विजयी होता है।

इस यन्त्र को अनामिका अंगुलि के रक्त से युक्त रक्तद्रव्यों से लिखने के बाद रक्त

पुष्पादि एवं नैवेद्यों द्वारा उसका पूजन करना चाहियें। तदनन्तर साध्य स्त्री की मनोहर मूर्ति बनाकर उसके उदर में पूर्वलिखित यन्त्र को रखने के बाद एक सप्ताह-पर्यन्त प्रदीप्त अग्नि में उस मूर्ति को तपाने से साधक को अभीष्ट स्त्री की प्राप्ति हो जाती है।

इस मन्त्र का आठ सौ जप करने के पश्चात् घृत से हवन करने से अवश्य ही स्त्री का वशीकरण होता है। अव विद्वेषण को कहा जा रहा है॥४९-५४॥

विद्वेषणयन्त्रकथनम्

विद्वेषिरक्तसङ्घृष्टश्मशानाङ्गारकेण च।
लिखेद्यन्त्रं तु मृतकवस्त्रपुङ्खे बहिष्कृते ॥५५॥
सम्यक्सम्पूजयेद् द्वन्द्वं द्वेषयेत्तद् ध्वजाग्रके।
स्थापयेद्वैरिसङ्घस्य विद्वेषो जायते महान् ॥५६॥

विद्वेषण-यन्त्र—विद्वेषी के रक्त से घर्षित (पिष्ट) श्मशान के अंगार (कोयले) से मृतक के बहिष्कृत वस्त्रकोण पर यन्त्र का लेखन करके सम्यक् रूप से पूजन करने के पश्चात् ध्वजा के अग्रभाग में लगाकर स्थापित करने से वैरियों के मध्य में आपस में भयंकर विद्वेष हो जाता है॥५५-५६॥

स्तम्भनयन्त्रकथनम्

स्तम्भनं वक्ष्यते चाथ लिखेद्यन्त्रं शिलातले।
पीतद्रव्यैः पीतपुष्पैरर्कपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥५७॥
पीतसूत्रैर्वेष्टयित्वा साध्यस्य स्थापयेदसून्।
तद्देहल्यास्त्वधस्ताच्च निखनेत्स्तम्भकारकम्।
वाक्स्तम्भं वा गतिस्तम्भं सेनास्तम्भं करोति तत् ॥५८॥
श्मशानाङ्गारमष्या तु मृतवस्त्रे समालिखेत्।
नरास्थिन क्रोधसंयुक्तः पूजयेच्चन्दनादिभिः ॥५९॥
निखातं शवभूमौ तदवश्यं मारयेद्रिपून्।
उत्खातमेतत्पयसा धौतं यन्त्रं च शान्तिकृत्।
महागणपतेर्यन्त्रं प्रोक्तं षट्कर्मसिद्धिदम् ॥६०॥

स्तम्भन-यन्त्र—अब स्तम्भन को कहता हूँ। प्रस्तरशिला पर पीले द्रव्य से यन्त्र का अंकन करके कनेर के पीले पुष्पों एवं मदार के पुष्पों से उसका पूजन करने के बाद उसे पीले धागों से वेष्टित करके उसमें प्राणप्रतिष्ठा करने के पश्चात् उस यन्त्र को साध्य के दरवाजे के नीचे भूमि में दबा देने से उसका स्तम्भन हो जाता है। इस यन्त्र से किसी की वाणी, गति अथवा सेना का भी स्तम्भन होता है।

श्मशान के अंगार की स्याही से मृतक के वस्त्र पर मनुष्य की हड्डी से यन्त्र को लिखकर क्रोध-युक्त होकर चन्दनादि द्वारा उसका पूजन करने के बाद शवभूमि अर्थात श्मशान में गाड़ देने से अवश्य ही शत्रु की मृत्यु हो जाती है। इस यन्त्र को वहाँ से निकालकर दूध से धोने पर उक्त दोष की शान्ति हो जाती है। इस प्रकार षट्कर्मों की सिद्धि प्रदान करने वाले महागणपति यन्त्र को कहा गया।।५७-६०।।

द्वितीयमथ वक्ष्यामि साधकाभीष्टदायकम्।
कृत्वा षट्कोणमादौ तु तस्य मध्ये त्रिकोणकम्।।६१।।
ॐकारं तस्य मध्यस्थं मध्यगं बीजमालिखेत्।
त्रिकोणोर्ध्वं चतुर्दिक्षु श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं समालिखेत्।।६२।।
षट्कोणस्य च कोणेषु पूर्वाशादिक्रमेण च।
ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं च गं च लिखित्वा षड्दले क्रमात्।।६३।।
तस्योपरि लिखेत्तत्र मनोर्वर्णांस्त्रिकांस्त्रिकान्।
गणपतय इत्यादि वर्णैकं चाष्टमे दले।।६४।।
कार्यं तस्य बहिर्वृत्तपञ्चकं प्रथमे लिखेत्।
वीथ्यग्रे तु ह्यकारादीन् क्षकारान्तान् द्वितीयके।।६५।।
अकारादिक्षकारान्तान् व्यत्यस्तांस्तु तृतीयके।
ऐं बीजैर्वेष्टयेत्तुर्यं ह्रीं बीजेन ततो बहिः।।६६।।
चतुरस्रद्वयं कुर्यात् स्त्रीणामर्थे यदा भवेत्।
पुरुषार्थकृतं यन्त्रं त्वष्टास्रेणैव वेष्टयेत्।।६७।।

महागणपति का द्वितीय यन्त्र—अब मैं साधकों का अभीष्ट प्रदान करने वाले दूसरे यन्त्र को कहता हूँ। सर्वप्रथम षट्कोण बनाकर उसके मध्य में त्रिकोण बनाने के बाद उस त्रिकोण के मध्य में गणपति-वीज (गं)-गर्भित ॐ लिखना चाहिये। तत्पश्चात् त्रिकोण के ऊपर चारो दिशाओं में क्रमशः 'श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं' का अंकन करने के पश्चात् षट्कोण के छः कोणों में पूर्वादि दिशाक्रम से 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं' का अंकन करने के बाद उसके बाहर अष्टदल के सात दलों में बाईस अक्षरों वाले मन्त्र के तीन-तीन अक्षरों को क्रमशः लिखते हुये अन्तिम अष्टम दल में अवशिष्ट एक अक्षर लिखना चाहिये।

पुनः उसके बाहर पाँच वृत्तों की रचना करके उसकी प्रथम वीथी में साध्य कार्य का अंकन करने के पश्चात् अग्रिम द्वितीय वीथी में अ से क्ष तक के वर्णों को लिखना चाहिये।

तृतीय वीथी में विपरीतक्रम से अ से क्ष तक (क्ष ह स ष श........आ अ) के वर्णों को लिखने के बाद चतुर्थ वीथी को ऐं बीज से वेष्टित कर देना चाहिये। उसके बाहर ह्रीं बीज से दो चतुरस्र का निर्माण करना चाहिये। यह यन्त्र स्त्रियों के निमित्त होता है।

पुरुषों के लिये बनाये जाने वाले यन्त्र को अस्त्रमन्त्र (फट्) से वेष्टित करना चाहिये॥६१-६७॥

महागणपतेर्यन्त्रं लेख्यं हेमशलाकया।
अलक्तं चैव काश्मीरकस्तूरीरोचनान्वितम् ॥६८॥
मेलयित्वा विभागेन पिष्ट्वा चन्दनवारिणा।
स्वर्णपट्टेऽथ वा सूत्रे धृतं प्राणप्रतिष्ठया।
आयुरारोग्यसम्पत्तिकीर्त्तिकृत्प्रीतिवर्धनम् ॥६९॥

इस महागणपति यन्त्र को समभाग आलता, केशर, कस्तूरी एवं गोरोचन को

मिलाकर उसे चन्दनजल से पीसकर बनायी गई स्याही से सुवर्ण की शलाका से स्वर्णपत्र अथवा वस्त्र पर लिखना चाहिये। प्राण-प्रतिष्ठा करके धारण करने पर यह यन्त्र आयु, आरोग्य, सम्पत्ति एवं कीर्ति को देने वाला तथा प्रीति को बढ़ाने वाला होता है॥६८-६९॥

स्तम्भनकरहरिद्रागणपतियन्त्रकथनम्

अथ यन्त्रं प्रवक्ष्यामि हरिद्रागणपस्य च।
लिखेदष्टदलं पद्मं कर्णिकायां तु वर्तुलम्॥७०॥
तस्य मध्ये साध्यनामवेष्टितं प्रणवं लिखेत्।
प्रणवस्योत्तरे ग्लौं चाग्रे तस्य जठरे तु गम्॥७१॥
गकारमध्ये ह्रींकारं ततः पद्मस्य दिग्दले।
भूबीजोदरगं हं च पूर्वाशादिषु विन्यसेत्॥७२॥
आग्नेयादिकपत्रेषु केवलं गं समालिखेत्।
कमलं वा ततो लेख्यं चतुरस्रद्वयाकृतिम्॥७३॥
अष्टकोणं तस्य कोष्ठाष्टके भूपुरमालिखेत्।
तस्य गर्भे वकारं च सबिन्दुं कोणमस्तके॥७४॥
कुर्याच्च हस्तिमुण्डानि तेषां मध्ये च हं लिखेत्।
तद्बहिश्चतुरस्रं च ग्लौं तत्कोणेषु संलिखेत्॥७५॥
गङ्कारं दिक्षु विलिखेदास्ये कर्णे विलोचने।

स्तम्भन-कारक हरिद्रागणपति-यन्त्र—अब मैं हरिद्रागणपति के यन्त्र को कहता हूँ। सर्वप्रथम अष्टदल कमल बनाने के बाद उसकी कर्णिका में वृत्त बनाकर उसके मध्य में साध्यनाम-गर्भित प्रणव (ॐ) का अंकन करना चाहिये। पुनः उस प्रणव के उत्तर में 'ग्लौं' एवं आगे जठर में ह्रीं-गर्भित 'गं' लिखना चाहिये। तदनन्तर अष्टदल के पूर्वादि दिग्दलों में भूबीज (लं)-गर्भित 'हं' लिखने के पश्चात् आग्नेयादि कोण-स्थित दलों में केवल 'गं' लिखना चाहिये।

अथवा दो चतुरस्रों की आकृति वाला अष्टदल वाला कमल बनाकर उसके आठों कोष्ठों में भूपुर का निर्माण करके उसके मध्य में बिन्दु-सहित वकार (वं) का अंकन करके कोणों के ऊपर हाथी का मस्तक बनाकर उसके मध्य में हं बीज लिखना चाहिये। तत्पश्चात् उसके बाहर चतुरस्र बनाकर उसके कोणों में 'ग्लौं' बीज लिखना चाहिये। दिशाओं 'गं' बीज लिखना चाहिये॥७०-७५॥

आदित्यबुधशुक्राणां मध्ये कस्यापि वासरे॥७६॥

निशीथे निर्जने देशे प्रलिप्ते गोमयाम्भसा ।
प्रदीपदीपिते तत्र तथैवार्द्रकसंयुताम् ॥७७॥
संस्थापयेद्धरिद्रां च सम्यक्प्रक्षालितां जलैः ।
स्थानाष्टके गणेशस्य वरिष्ठां पादसम्मिताम् ॥७८॥
मृदमानीय सम्मील्य कन्यया पेषयेच्च ताम् ।
पश्चात्संशोधयित्वा तां पञ्चविंशतिसङ्ख्यया ॥७९॥
तां हरिद्रागणेशस्य मूलमन्त्रेण मन्त्रयेत् ।
पश्चात्तां लेपयेन्मन्त्री शुभे सूक्ष्मे सितेऽम्बरे ॥८०॥
अस्मिन् पटे लिखेद्यन्त्रमेतत्पूर्वोक्तमेव हि ।
अत्र प्राणान् प्रतिष्ठाप्य पूजितं गुटिकीकृतम् ॥८१॥

उक्त हरिद्रागणपति यन्त्र को रविवार, बुधवार अथवा शुक्रवार में से किसी दिन आधी रात में जनशून्य स्थान पर जल-मिश्रित गोबर से लिप्त भूमि पर दीपक जलाकर जल से सम्यक् रूप से प्रक्षालित अदरख के सहित हल्दी को स्थापित करने के उपरान्त गणेश के आठ स्थानों से उनके पैरों से संस्पृष्ट शुद्ध मिट्टी लाकर सबको मिलाकर कन्या के द्वारा उसे चूर्ण करने के पश्चात् शोधित करके हरिद्रागणेश के मूल मन्त्र के पच्चीस जप से उसे अभिमन्त्रित करने के पश्चात् उस मिट्टी से श्वेत वस्त्र पर लेप कर देना चाहिये। इसके बाद उसी वस्त्र पर गणेश के पूर्वोक्त यन्त्र का अंकन करने के पश्चात् उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करके पूजन करने के उपरान्त उसकी गुटिका बना लेनी चाहिये॥७६-८१॥

गणेशस्यापि प्रतिमां चाङ्गप्रत्यङ्गसंयुताम् ।
विनिर्माय त्रिभिर्भागैर्निशायां तद्धृदि क्षिपेत् ॥८२॥
प्राणसंस्थापनं भूयः कुर्यान्मूर्त्तेर्विचक्षणः ।
गन्धपुष्पादिनैवेद्यैरभ्यर्च्य गणनायकम् ॥८३॥
सदा तन्निलये न्यस्य सहस्त्रं साष्टकं मनुम् ।
सञ्जप्य पूजयेद्भक्त्या पीतवर्णैश्च पुष्पकैः ॥८४॥
सिद्धौदनेन नैवेद्यं निवेद्याथ बलिं हरेत् ।
तण्डुलाञ्छालिसम्भूतान् प्रस्थमानमिताञ्छुभान्॥८५॥
विदलीकृतमूर्द्धांश्च तदर्धं तत्र मेलयेत् ।
गुडं चैव तथा भूयो नारिकेलं च तत्समम् ॥८६॥
मरिचं मुष्टिमानं च सैन्धवं च तदर्धकम् ।
तदर्धं जीरकं चाज्यं कुडवार्धसमं भवेत् ॥८७॥

एतत्सर्वं चतुष्प्रस्थगोदुग्धे मन्दवह्निना ।
पचेत्सिद्धौदनश्चायं गणेशस्य महाप्रियः ॥८८॥
अमुना पायसेनाऽथ लड्डुकापूपकादिभिः ।
कर्पूरवासितैः पूगैस्ताम्बूलैश्चन्दनादिभिः ॥८९॥
तोषयित्वा विधानेन हरिद्रागणपं विभुम् ।
प्रणमेद्दण्डवद् भूमौ स्तुत्वा स्तुतिभिरादरात् ॥९०॥

तत्पश्चात् अंग-प्रत्यंग से संयुक्त गणेश की प्रतिमा बनाकर रात्रि के तीसरे प्रहर में उस प्रतिमा के हृदय में पूर्व-निर्मित यन्त्रगुटिका को स्थापित कर देना चाहिये। इसके बाद विद्वान् साधक द्वारा उस मूर्ति में पुनः प्राण-प्रतिष्ठा करने के पश्चात् गन्ध-पुष्प-नैवेद्य आदि से गणेश की अर्चना करके गणेश-मन्दिर में उसे स्थापित करके बराबर मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करके भक्ति-पूर्वक पीले पुष्पों से पूजन करना चाहिये। इसके बाद सिद्धान्न (भात) का नैवेद्य निवेदित करके बलि प्रदान करनी चाहिये।

एक प्रस्थ के बराबर शालि तण्डुल को चूर्ण करके उसमें उसका आधा गुड़, गुड़ के बराबर नारियल, एक मुट्ठी मरिच, आधा मुट्ठी सेन्धा नमक, एक चौथाई मुट्ठी जीरा एवं आधा कुड़व गोघृत मिलाकर इन सबको चार प्रस्थ गोदुग्ध में मन्द अग्नि पर पाक करना चाहिये। यह सिद्धौदन गणेश को अतिशय प्रिय होता है।

इस प्रकार के पायस अथवा लड्डू-अपूप (पूआ) आदि तथा कर्पूर से सुगन्धित सुपारी-पान-चन्दन आदि के द्वारा सर्वव्यापक हरिद्रागणपति को प्रसन्न करके विधि-पूर्वक भूमि पर दण्डवत् लेटकर प्रणाम करके आदर-पूर्वक स्तुतियों द्वारा स्तुति करनी चाहिये॥८२-९०॥

एवं यः कुरुते नित्यं पञ्चभिः सप्तभिर्दिनैः ।
विघ्नेश्वरप्रसादेन त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
स्तम्भयेत्साधकः सत्यं युद्धभूमौ महानिशि ॥९१॥
स्थापयेद्वैरिणः सेना व्याकुला स्तम्भिता भवेत् ।
देशे ग्रामे पुरे गेहे सभायां स्थापयेद् भुवि ।
तत्तत्स्थानगतान् सर्वाञ्जनान् सस्तंभयेन्नरः॥९२॥
शाखिशाखागतं सम्यक्स्तम्भयेद्वर्षणं महत् ।
अश्ववारणशालासु क्षणात् सर्वानुपद्रवान् ॥९३॥
सम्यग्निवेश्य चैतेषु स्थानेषु बलिमाहरेत् ।
स्तम्भयेदखिलं विश्वं किम्पुनर्वाञ्छितं जनम् ॥९४॥

जो साधक पाँच अथवा सात दिनों तक प्रतिदिन इस प्रकार अर्चन करता है, वह विघ्नेश्वर की कृपा से चराचर-सहित तीनों लोकों को निश्चित ही स्तम्भित कर लेता है। युद्ध-भूमि में आधी रात को इस यन्त्र की स्थापना करने से शत्रुसेना व्याकुल होकर स्तम्भित हो जाती है। जिस देश, ग्राम, नगर, गृह, सभा में भूमि पर इसे स्थापित करता है, उस स्थान पर रहने वाले सभी लोगों का साधक स्तम्भन कर देता है।

इस यन्त्र को वृक्ष की शाखा पर सम्यक् रूप से स्थापित करने से महती वृष्टि का स्तम्भन हो जाता है। अश्वशाला अथवा हस्तिशाला में स्थापित करने पर वहाँ होने वाले समस्त उपद्रव तत्क्षण ही शान्त हो जाते हैं।

इस यन्त्र को उक्त स्थानों में सम्यक् रूप से स्थापित करके बलि प्रदान करना चाहिये; ऐसा करके साधक समस्त विश्व को स्तम्भित कर देता है; फिर मनुष्य के लिये और क्या अभीप्सित रह जाता है।।९१-९४।।

आकर्षणकरहरिद्रागणपतियन्त्रकथनम्

अथाकृष्टिकरं वक्ष्ये हरिद्रागणपस्य च।
हरिद्रां शोधयेद्वेश्ममृदा प्रोक्तेन वर्त्मना ।।९५।।
लिखेदष्टदलं पद्मं कर्णिकायां तु वर्तुलम्।
तस्य मध्ये साध्यनाम प्रणवावेष्टितं लिखेत् ।।९६।।
प्रणवस्योदरे ह्रीं च तस्याश्च जठरे तु गम्।
तद्वेष्टयेत्साध्यनाम ह्लंगंभ्यां हरिदक्षरैः ।।९७।।
हरिद्राविघ्नमन्त्राणैर्वृत्तं कुर्यात्तदूर्ध्वतः ।
ह्रींकारैर्वेष्टनं कृत्वा लिखेदष्टदले पुनः ।।९८।।
ह्रीं बीजं दलाग्रेषु वं बीजं दिक्षु चालिखेत्।
विदिक्पात्रं वेष्टयेच्च पूर्ववच्चाष्टकोष्ठकम् ।।९९।।
तस्य पूर्वादिकोष्ठेषु द्रां द्रीं क्लीं ग्लूं क्रमाल्लिखेत्।
विदिक्पत्रेषु संलिख्य शूलान् कोष्ठाग्रतो लिखेत् ।।१००।।
शूलाग्रेष्वपि ह्लंकारं तत्सन्धावर्धचन्द्रयोः ।
सम्पुटीकृत्य संलिख्य मायया कोणयुग्मके ।।१०१।।
पञ्चमावरणं ह्येतल्लिखितं पूर्ववर्त्मना ।

हरिद्रागणपति का आकर्षण-कारक यन्त्र—अब मैं हरिद्रागणेश के आकर्षण कारक यन्त्र को कहता हूँ। पूर्वोक्त रीति से घर की मिट्टी द्वारा हरिद्रा का शोधन करके गोलाकार कर्णिका वाला अष्टदल कमल बनाकर उसके मध्य में साध्यनाम-गर्भित ॐ लिखने के बाद प्रणव के उदर में 'ह्रीं' और ह्रीं के उदर में 'गं' लिखना

चाहिये। तत्पश्चात् उस साध्यनाम को 'ह्लं-गं' इन दो हरिद्राक्षरों से वेष्टित कर देना चाहिये। इसके बाद उसके ऊपर हरिद्रागणेश के मन्त्रवर्णों से वृत्त बनाकर वेष्टित कर देना चाहिये। तत्पश्चात् ह्रीं से वेष्टित करके पुनः अष्टदल कमल बनाना चाहिये। उसमें दलों के आगे 'ह्रीं' बीज एवं दिशाओं में 'वं' बीज लिखने के अनन्तर विदिशाओं को पूर्ववत् आठ कोष्ठकों द्वारा वेष्टित कर देना चाहिये।

उसके पूर्वादि कोष्ठों में क्रमशः 'द्रां द्रीं क्लीं क्लूं' लिखकर कोणपत्रों में कोष्ठों के आगे त्रिशूल बनाकर उन त्रिशूलों के आगे 'ह्लं' लिखना चाहिये। दलसन्धियों को अर्द्धचन्द्र से सम्पुटित करके कोणयुग्म में मायाबीज (ह्रीं) लिखना चाहिये। इस प्रकार पूर्वोक्त मार्ग से यह पाँचवाँ आवरण होता है॥९५-१०१॥

कृतप्राणप्रतिष्ठं तद्धरिद्राविघ्नकुक्षिगम् ॥१०२॥
ॐ ह्लं सम्पूज्य यत्नेन समीरं स्थापयेद् बुधः ।
चक्रिहस्तमृदापोह्य गणेशागारमृत्तिकाम् ॥१०३॥
शरावयुगलं रम्यं निर्मायान्यत्र चोभयोः ।
विन्यस्य तं गणेशानं कुसुमैररुणैर्यजेत् ॥१०४॥
बलिं दत्त्वाथ सम्पूज्य विघ्नेशं चन्दनादिकैः ।
द्वितीयेन शरावेण विदधीत सुसाधकः ॥१०५॥
प्रत्यहं कुर्वतस्त्वेवं सप्तभिर्दिवसैर्भुवि ।
साधकस्य समायाति सन्निधौ वाञ्छितो जनः ॥१०६॥
भूपालस्तत्सुतो वापि महिषी वा वराङ्गना ।
अमात्यस्तस्य योषा वा तस्य कन्यापि वाद्भुता ।
आगच्छन्ति न सन्देहो मन्त्रिणः क्लिन्नचेतसः ॥१०७॥

तत्पश्चात् कुक्षि में स्थित हरिद्रागणेश की प्राण-प्रतिष्ठा करके 'ॐ ह्लं' मन्त्र से उनका पूजन करने के पश्चात् शमीकाष्ठ-निर्मित पीठ पर उन्हें स्थापित कर देना चाहिये। कुम्हार के हाथ की मिट्टी और गणेशमन्दिर की मिट्टी लेकर दोनों से एक-एक रमणीय सकोरा बनाकर दोनों को अलग-अलग रखकर एक में रक्तवर्ण पुष्पों से गणेश का पूजन करना चाहिये। इसके बाद बलि प्रदान करके दूसरे सकोरे में चन्दन आदि द्वारा गणेश का पूजन करना चाहिये। प्रतिदिन इसी प्रकार आराधना करने पर सात दिनों में साधक का अभीष्ट व्यक्ति उसके समीप चला आता है।

राजा अथवा राजकुमार, रानी अथवा अनिन्द्य सुन्दरी, अमात्य अथवा उसकी पत्नी अथवा उसकी अतिशय सुन्दरी पुत्री क्लिन्न चित्त वाले मन्त्रज्ञ साधक के पास आ जाते हैं; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये॥१०२-१०७॥

यन्त्रमेतल्लिखित्वा तु तारपत्रे गुडाम्भसा।
पूजितं स्थापितप्राणं दुग्धेनैवाभिषेचयेत् ॥१०८॥
साध्यस्याभिमुखे भूत्वा कथयेत्प्रजपेन्मनुम्।
तदानीमानयेन्नूनं कामयानां तु सुन्दरीम् ॥१०९॥
सामुद्रं रामठं न्यस्य तस्यागारे हरिद्रया।
स्विन्नेन मर्दयित्वा तु कृत्वा साध्याकृतिं शुभाम् ॥११०॥
श्वेतार्कच्छदयुग्मान्तः सप्राणां सन्निवेशयेत्।
दीपाग्नौ तापयेन्मन्त्रं जपेदष्टसहस्रकम्।
क्षणादायाति कामार्ता वाञ्छिता वरवर्णिनी ॥१११॥
नागवल्लीदले क्षौद्रलिप्ते यन्त्रमिदं लिखेत्।
साध्यं संस्मृत्य सम्पूज्य स्वैरं जप्तं प्रभक्षयेत्।
सीमन्तिनी समायाति शीघ्रं यौवनगर्विता ॥११२॥
पत्रे पुष्पे तु वस्त्रादौ क्षौमे वापि लिखेत्क्रमात्।
यमुद्दिश्यात्र तस्यापि क्षणादाकृष्टिकारकम् ॥११३॥
प्रवाहाभिमूखो वापि सरित्सङ्गमनीरगः।
तर्पयेत्तज्जलैः शुद्धैरष्टोत्तरसहस्रकम्।
शतयोजनदूरात्तु साध्यमाकर्षयेद् ध्रुवम् ॥११४॥
बहुनोक्तेन किं चात्र स्मृत्वा यं प्राणिनं जपेत्।
मनुमेनं विधानेन स तदाकर्षयेद्धि तम् ॥११५॥

इस यन्त्र को ताड़पत्र पर जल-मिश्रित गुड़ से लिखकर स्थापित करके प्राणप्रतिष्ठा करने के बाद दुग्ध से अभिषेक करना चाहिये। तदनन्तर साध्य की ओर मुख करके मन्त्रजप करने से कामासक्तों को अवश्य ही सुन्दरी की प्राप्ति होती है।

साध्य के घर में समुद्री नमक और हींग को कच्ची हल्दी के साथ मर्दित कर साध्य की सुन्दर प्रतिमा बनाकर प्राणप्रतिष्ठित करके दो श्वेत अर्कच्छद के मध्य रखकर दीप की अग्नि में तपाते हुये मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करने से क्षणमात्र में ही वर को वरण करने वाली वांछित सुन्दरी काम से आर्त होकर साधक के पास आ जाती है।

पान के पत्ते पर मधु लगाकर उस पर इस यन्त्र को लिखकर साध्य का स्मरण करते हुये पूजन करके मन्त्रजप करने के बाद उसका भक्षण करने पर यौवन-गर्विता सुन्दरी शीघ्र ही साधक के पास आ जाती है।

क्रमशः पत्र, पुष्प अथवा रेशमी वस्त्र पर जिसके उद्देश्य से यन्त्र को लिखा जाता है, यह यन्त्र उसको तत्क्षण ही आकृष्ट कर देता है।

नदियो के संगम के जल-प्रवाह की ओर मुख करके उसके शुद्ध जल से एक हजार आठ बार तर्पण करता है तो वह तर्पण सौ योजन दूर स्थित साध्य को भी निश्चित ही आकर्षित कर लेता है।

अधिक कहने से क्या लाभ? जिस प्राणी का स्मरण करके साधक इस मन्त्र का सविधि जप करता है, उसे यह मन्त्र निश्चित ही आकर्षित कर देता है॥१०८-११४॥

वश्यार्थं यन्त्रसाधनम्

अथ वक्ष्यामि वश्यार्थं यन्त्रसाधनमुत्तमम्।
यन्त्रं सुलिख्य पूर्वोक्तं मायाबीजमुदस्य च।
तत्स्थाने कामबीजं च काममध्ये तु गं लिखेत्॥११६॥
बहिः श्लिष्टैर्मन्त्रवर्णैर्वेष्टयेद्यन्त्रबाह्यतः।
वेष्टयेत्कामबीजेन शेषं पूर्ववदेव हि॥११७॥
पूर्ववत्कृतविघ्नेशकुक्षिमध्ये निवेशयेत्।
विधिना स्थापितप्राणं शरे विन्यस्य तं जपेत्॥११८॥
रक्तमाल्यानुलेपाद्यैर्नैवेद्यैः पूर्ववत्कृतैः।
मनौ साध्याभिधां दत्त्वा स्थाने पूर्वसमीरिते॥११९॥
वशमानययुग्मं च जपेदष्टसहस्रकम्।
साध्यदिक्सम्मुखो भूत्वा मन्त्रं मन्त्री समाहितः॥१२०॥
विघ्नेशाय बलिं दत्त्वा छादयेत्तं च पूर्ववत्।
एवं दिनत्रयं कुर्वन् सप्तभिर्दिवसैर्बुधः॥१२१॥
रक्षोभूतपिशाचाद्यान् देवदानवपन्नगान्।
राजानं मन्त्रिणं राज्ञां स्त्रियं जप्त्वा तथेप्सिताम्।
वशेयत्साधकः शीघ्रं यावज्जीवं न संशयः॥१२२॥
निशांशेनावशिष्टेन निजदेहे सुलेपयेत्।
अचलां कमलां लब्ध्वा वशयेद्विश्वमञ्जसा॥१२३॥

वशीकरण-हेतु यन्त्र-साधन—अब मैं वशीकरण के लिये उत्तम यन्त्र-साधन को कहता हूँ। पूर्वोक्त यन्त्र को सुन्दर रीति से बनाकर उसके मध्य में पूर्वोक्त मायाबीज (ह्रीं) के बदले कामबीज (क्लीं) लिखकर उस क्लीं के मध्य में 'गं' लिखकर उस यन्त्र को बाहर से श्लिष्ट मन्त्रवर्णों से वेष्टित करने के बाद कामबीज (क्लीं) से पुनः वेष्टित

कर देना चाहिये। शेष समस्त विधियाँ पूर्ववत् ही होती हैं। इसके बाद पूर्ववत् गणेश की मूर्ति बनाकर उसकी कुक्षि में इस यन्त्र को काष्ठफलक पर रखकर विधिवत् प्राणप्रतिष्ठित करने के उपरान्त मन्त्रजप करना चाहिये।

इसके बाद रक्त माला, रक्त अनुलेप, नैवेद्य आदि से पूर्ववत् पूजन करके मन्त्र के मध्य साध्य-नाम एवं 'वशमानय वशमानय' जोड़कर साध्य की दिशा की ओर मुख करके समाहित चित्त होकर मन्त्रज्ञ साधक को मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करना चाहिये। तत्पश्चात् विघ्नेश के लिये बलि प्रदान करके उसे पूर्ववत् आच्छादित कर देना चाहिये। इस प्रकार तीन अथवा सात दिनों तक जप करने वाला साधक राक्षस, भूत, पिशाच, देव, दानव, नाग, राजा, मन्त्री, रानी अथवा इच्छित स्त्रियों को जीवन-पर्यन्त के लिये वशीभूत कर लेता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है।

पूजा से बची हुई हल्दी का अपने शरीर पर लेप लगाने वाला साधक अचल लक्ष्मी को प्राप्त करके अनायास ही समस्त संसार को वशीभूत कर लेता है॥११६-१२३॥

हरिद्रया समं चूर्णं शालितण्डुलसम्भवम् ।
तत्समेन गुडेनापि मधुना सैन्धवेन च ॥१२४॥
सम्यग्विमर्दयित्वा च पिण्डाकारं पचेद् घृते ।
निर्माय गणपं तेन यन्त्रं तद्धृदि निःक्षिपेत् ॥१२५॥
समीरं च प्रतिष्ठाप्य गन्धाद्यैः पूर्ववद्यजेत् ।
त्रिदिनं पूजयित्वैवं यन्त्रमध्यात् पृथक्पृथक् ।
प्रतिमां भक्षयेत्पश्चात् साध्या वश्या भवेद् ध्रुवम् ॥१२६॥
शालिपिष्टादिपिण्डेन कृत्वा साध्याकृतिं शुभाम् ।
अष्टाधिकशतं जप्त्वा पूजितां स्थापितानिलाम् ॥१२७॥
निवेद्य विघ्नराजाय साध्यं संस्मृत्य भक्षयेत् ।
वशयेद्वाञ्छितं साध्यं सदा सर्वस्वदायिनम् ॥१२८॥
वश्यमन्त्रं लिखेन्मन्त्री खाद्यपानादिवस्तुषु ।
एवं कृत्वा जपेन्ना त्रिसहस्रं साष्टकं बुधः ।
लक्षेण वशयेत् साध्यं वसुमात्रस्य साधकम् ॥१२९॥

हल्दी-चूर्ण के बराबर शालितण्डुल-चूर्ण, गुड़, मधु, सैन्धव नमक लेकर सबको अच्छी प्रकार मिलाकर पिण्डाकार बनाकर घृत में पाक करके उससे गणेश की मूर्ति बनाकर उस मूर्ति के हृदय में यन्त्र को स्थापित कर देना चाहिये। तदनन्तर उसे भली प्रकार प्रतिष्ठापित करके पूर्ववत् गन्धादि से पूजन करना चाहिये। इसी प्रकार तीन दिनों

तक पूजन करके प्रतिमा के मध्य-स्थित यन्त्र का पृथक्-पृथक् भक्षण करने से साध्या रमणी निश्चित ही साधक के वशीभूत हो जाती है।

शालि-पिष्ट आदि से साध्या की सुन्दर आकृति बनाकर मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके अग्नि में रखकर पूजन करने के बाद विघ्नराज को नैवेद्य समर्पित करके साध्य का स्मरण करके उसका भक्षण करने से सर्वस्व प्रदान करने वाला वाञ्छित साध्य सदा के लिये साधक के वशीभूत हो जाता है।

मनुष्य को खाद्य-पान आदि वस्तुओं पर वश्य मन्त्र लिखकर मन्त्र का तीन हजार आठ बार जप करना चाहिये। इस प्रकार एक लाख जप करने वाला साधक साध्य को वशीभूत कर लेता है। यह जप धनमात्र का साधक होता है॥१२४-१२९॥

चन्दनागुरुकर्पूरनिशाकुङ्कुमरोचनाः ।
मृगेभमदसंयुक्ता ह्यष्टाङ्गं विघ्ननाशने ॥१३०॥
सम्पिष्य तद्वशीकारयन्त्रमालिख्य पूर्ववत् ।
अर्चनादि तथा कृत्वा जपित्वाऽष्टोत्तरं शतम् ॥१३१॥
लिम्पेदनेन गात्रं स्वं कुर्वन् वश्यविशेषकम् ।
ईक्षणात् स्पर्शनात् सद्यस्त्रिलोकीं वशमानयेत् ॥१३२॥
एवं कृत्वा विधिं सद्यो वशयेद्योषितः पुमान् ।
चन्दनेनैव वा कुर्याद्विधिमेनं फलप्रदम् ॥१३३॥
द्विरेफश्च सदाभद्रा मुसली चन्द्रिका जटी ।
बन्धूकवालकोशीरविष्णुक्रान्ताबलास्तथा ॥१३४॥
वाराही शतवीर्या च मायूरी चण्डलोचना ।
सर्वौषधिरसेनैव निशा भागार्धसम्मिता ॥१३५॥
पिष्ट्वा वश्याभिधं यन्त्रं निर्माय प्रतिमामपि ।
प्राणसंस्थापनं कृत्वा जपेदष्टसहस्रकम् ॥१३६॥
शिष्टद्रव्येण तिलकं कुर्यात्प्रातस्तु यो नरः ।
त्रैलोक्यसम्पदा सोऽपि तिरस्कुर्याद्धनाधिपम् ॥१३७॥

चन्दन, अगर, कपूर, हल्दी, कुमकुम, गोरोचन, कस्तूरी एवं गजमद—इनको एक साथ मिलाने से विघ्न-नाशक अष्टाङ्ग बनता है। इन सबको सम्यक् रूप से चूर्ण करने के बाद उसका पिष्ट बनाकर उससे वशीकरण यन्त्र की रचना करके पूर्ववत् उसका अर्चन आदि करने के बाद मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने के उपरान्त उसी पिष्ट का अपने शरीर पर लेप करने वाला साधक वशीकरण-स्वरूप हो जाता है। वह साधक जिसपर दृष्टिपात कर देता है अथवा जिसका स्पर्श कर लेता है, वह

उसके वशीभूत हो जाता है। ऐसा साधक तीनों लोकों को अपने वश में कर लेता है। इस विधि का पालन करने वाला पुरुष साधक तत्क्षण ही स्त्रियों को वशीभूत कर लेता है। अथवा केवल चन्दन के द्वारा उक्त क्रियायें करने पर भी यह विधि फलप्रद होती है।

भौरा, सदाभद्रा (पुष्करमूल), मुसली, बड़ी इलायची, जटामांसी, बन्धूक, वालक, खश, विष्णुकान्ता, बला, व्राराही, शतवीर्या, मायूरी, चण्डलोचना—इन समस्त औषधियों के रस में उनसे आधी मात्रा में हल्दी-चूर्ण मिलाकर पीस कर बनाये गये अवलेह से वश्य यन्त्र एवं साध्य-प्रतिमा बनाकर प्राण-प्रतिष्ठित करने के उपरान्त मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करना चाहिये। यन्त्र एवं प्रतिमा-निर्माण के पश्चात् बचे हुये अवलेह से प्रतिदिन प्रातः जो मनुष्य तिलक करता है, वह तीनों लोकों की सम्पदा को प्राप्त करके कुबेर को भी तिरस्कृत कर देता है॥१३०-१३७॥

कपिलागोमयं व्योम्नि नलिनीदलसम्पुटे।
आदाय ब्रह्मचर्येण भेषजैरुदितं समम्॥१३८॥
पञ्चगव्येन सम्मर्द्य पिण्डाकारं प्रकल्पयेत्।
घृतप्लुतं दहेन्मन्त्री शोषयित्वैधितेऽनले॥१३९॥
समुद्धृत्य च तद्भस्म तन्मध्ये यन्त्रमालिखेत्।
समीरणं प्रतिष्ठाप्य गणपं तत्र पूजयेत्॥१४०॥
अष्टाधिकशतं मन्त्री जपित्वा मन्त्रमुत्तमम्।
काष्ठजे रूप्यरचितपात्रे कांस्यमये तथा।
निधाय लेपयेद्भस्म ललाटादिषु साधकः॥१४१॥
कान्तिपुष्टिधनारोग्यपुत्रपौत्रयशःपशून्।
लब्ध्वा लोकप्रियो भूत्वा दीर्घजीवी भवेद् ध्रुवम्॥१४२॥
पुरोधा नृपते रक्षां भस्मना सायमन्वहम्।
कुर्यादायुष्यवृद्ध्यर्थं यो वै विजयसम्पदे॥१४३॥
तस्मै निष्कत्रयं नित्यं मन्त्री दद्यात्पुरोधसे।

ब्रह्मचर्य-पालन करते हुये कपिला गाय के गोबर को जमीन पर गिरने के पूर्व ही कमलिनी-पत्र के दोने में ग्रहण करने के पश्चात् उतनी ही मात्रा में पूर्वोक्त औषधियों को भी लेकर सबको पञ्चगव्य में मर्दन करके पिण्डाकार बनाने के बाद उसे घृत से तर करके सुखाकर प्रज्वलित अग्नि में जलाने के पश्चात् उसके भस्म को निकालकर उसके मध्य में यन्त्र लिखकर अच्छी तरह प्रतिष्ठापित करके उसी यन्त्र पर गणेश का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके लकड़ी, चाँदी अथवा ताम्बा के पात्र में उस भस्म को रखकर ललाट आदि में उसका लेप लगाने

वाला साधक कान्ति, पुष्टि, धन, आरोग्य, पुत्र, पौत्र, यश एवं पशुओं को प्राप्त करता है एवं लोकप्रिय होकर निश्चित ही दीर्घकाल तक जीवित रहता है। राजा की रक्षा के लिये पुरोहित को प्रतिदिन सायंकाल इस भस्म से तिलक करना चाहिये। आयु की वृद्धि एवं विजय-रूपी सम्पदा की प्राप्ति के लिये राजमन्त्री द्वारा उस पुरोहित को प्रतिदिन तीन निष्क (सुवर्णमुद्रा) प्रदान करना चाहिये॥१३८-१४३॥

रक्ताम्बरसुवर्णैस्तु प्रोक्तभेषजपूर्वकम् ॥१४४॥
निधाय कपिलाज्येन तद्वर्त्या नृकपालके।
दीपं प्रज्वाल्य तेनैव जपेन्मन्त्रं पुनः पुनः ॥१४५॥
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा गृहीत्वा कज्जलं च तत्।
नेत्रे दत्त्वा च वशयेन्निखिलं विश्वमोजसा ॥१४६॥
उमारसेन गुटिकां पिष्ट्वा चन्दनवारिणा।
अभिमन्त्र्य नरं यं वा तिलकं प्रकरोति या ॥१४७॥
सर्वलोकप्रिया भूयादङ्गस्पर्शान्निजं पतिम्।
अङ्गानुवर्त्तिनं कुर्याद्यावज्जीवं न संशयः ॥१४८॥

कपिला गाय के घृत में पूर्वोक्त औषधियों के साथ रक्त वस्त्र एवं सुवर्ण की बत्ती बनाकर नरकपाल में रखकर दीपक जलाकर मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने के बाद उसकी कज्जली को आँखों में लगाने वाला साधक अपने तेज से अखिल विश्व को वशीभूत कर लेता है।

उमारस (हल्दी) से गुटिका बनाकर उसे चन्दनजल के साथ पीसकर उसे मन्त्र से अभिमन्त्रित करके जो भी स्त्री अथवा पुरुष उससे तिलक करता है, वह सबका प्रिय हो जाता है। तिलक करने वाली स्त्री अङ्गों का स्पर्श करके अपने पति को जीवन-पर्यन्त अङ्गानुवर्तन करने वाली बना लेती है; इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये॥१४४-१४८॥

शुद्धया निशया कृत्वा विघ्नेशं प्रोक्तलक्षणम्।
प्रोक्तं गणपतेर्मन्त्रं नरो जप्त्वा सहस्रकम् ॥१४९॥
अष्टाधिकं समभ्यर्च्य चन्दनादिभिरादरात्।
शिखायां बन्धयेन्नित्यं सर्वतो जयमाप्नुयात् ॥१५०॥
संग्रामे विपिने दुष्टश्वापदोत्थभये परे।
आपणव्यवहारेषु द्यूते वादे महार्णवे ॥१५१॥
राजश्चरसमूहेषु सभायां शत्रुसङ्कटे।

विजयी जायते वीरो रोगकृत्याविवर्जितः ।
पराङ्गनासमूहेषु शोभते मन्मथो यथा ॥१५२॥

शुद्ध हल्दी से गणेश की पूर्वोक्त लक्षणों वाली प्रतिमा बनाकर पूर्वकथित गणेशमन्त्र का एक हजार आठ बार जप करने के उपरान्त भक्ति-पूर्वक चन्दन आदि से पूजन करने के पश्चात् उस प्रतिमा को बराबर अपनी शिखा में बाँधने से साधक को सर्वत्र विजय की प्राप्ति होती है। संग्राम में, जंगल में, हिंसक जन्तुओं का भय उपस्थित होने पर, व्यापार में, जुआ में, भयंकर विवाद में, राजसेवकों के मध्य, सभा में, शत्रुसंकट उपस्थित होने पर उस वीर की विजय होती है। वह रोग और कृत्या से रहित होता है। दूसरी स्त्रियों के समूह में वह कामदेव के समान सुशोभित होता है॥१४९-१५२॥

नागवल्लीदले यन्त्रं लिखित्वा नागवारिणा ।
सप्राणमर्चितं जप्तमष्टोत्तरसहस्रतः ।
अखिलं वाञ्छितं साध्यं वश्यं नयति तत्क्षणात् ॥१५३॥
गोदुग्धे सलिले मन्त्री क्वथिते सुदृढीकृते ।
यन्त्रं विलिख्य तेनैव निर्माय गणनायकम् ।
अभिमन्त्र्य शतं साग्रं लक्षयेद्वशयेज्जगत् ॥१५४॥
नारिकेलं गुडोपेतं सघृतं त्रिशतं हुनेत् ।
अन्वहं कृतसम्पातमष्टाधिकशतं बुधः ।
सम्पातं लक्षयेद्यन्त्रं वशमायाति सोऽचिरात् ॥१५५॥
अन्यत्किमु बहूक्तेन साध्यं सञ्चिन्तयन्मनुम् ।
जपेत्स वशतां याति यावदायुर्न संशयः ।
वशीकरणमन्त्रस्य प्रयोगोऽयमुदाहृतः ॥१५६॥

पान के पत्ते पर नागजल से यन्त्र को लिखने के बाद प्राणप्रतिष्ठा करके उसका पूजन कर मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करने से समस्त वांछित साध्य तत्क्षण ही उसके वशीभूत हो जाता है।

गोदुग्ध और पानी को क्वथित करके गाढ़ा बनाकर उससे यन्त्र का अंकन करने के बाद उसी से गणेश की प्रतिमा बनाकर मन्त्र के सौ जप से उसे अभिमन्त्रित करने के बाद उसके आगे बैठकर एक लाख जप करने से सारा संसार वशीभूत हो जाता है।

नारियल के टुकड़ों में गुड़ और घी मिलाकर प्रतिदिन तीन सौ हवन करने के उपरान्त मन्त्र का एक सौ आठ जप करते हुये हवन के सम्पात घृत से यन्त्र बनाने से साध्य शीघ्र वशीभूत हो जाता है।

बहुत कहने से क्या लाभ? साध्य का स्मरण करते हुये मन्त्र का जप करने पर वह साध्य नि:सन्दिग्ध रूप से आजीवन साधक के वशीभूत हो जाता है। वशीकरण-मन्त्र का यह प्रयोग कहा गया है॥१५३-१५६॥

उच्चाटनयन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यन्त्रमुच्चाटनं परम्।
उक्तरीत्या लिखेद्यन्त्रं हुंकारं तस्य मध्यतः ॥१५७॥
ह्रांकारमथ संलिख्य तस्य मध्ये यथा तथा।
तस्य मध्ये साध्यनाम यं लिखेत्पत्रमध्यतः ॥१५८॥
गं बीजं च दलाग्रेषु तदग्रे चाष्टकोणकम्।
कोणे कोणे त्रिशूलञ्च शूलाग्रेषु निवेशितम् ॥१५९॥
षड्बिन्दुलाञ्छितं कार्यं बहिर्वृत्तं सुशोभनम्।
षड्बीजस्थान आलिख्यं यं बीजेन च वेष्टितम् ॥१६०॥
प्रणवं च तदा लेख्यं निशालेपनपूर्वकम्।
श्मशानाङ्गारसारेण ध्वाङ्क्षपक्षशलाकया।
यन्त्रमेतत्समालिख्य स्थापयेदीरणं ततः ॥१६१॥

उच्चाटन-यन्त्र—अब मैं श्रेष्ठ उच्चाटन-यन्त्र को कहता हूँ। पूर्वोक्त प्रकार का यन्त्र बनाकर उसके मध्य में 'हुं' लिखने के पश्चात् उस हुं के मध्य में साध्यनाम-गर्भित 'ह्रां' लिखने के बाद दलों में 'यं' एवं दलाग्रों में 'गं' बीज लिखना चाहिये। तदनन्तर दलाग्रों के आगे अष्टकोण बनाकर प्रत्येक कोण पर त्रिशूल बनाने के बाद उसके बाहर वृत्त बनाकर उसमें अपना कार्य लिखकर यथास्थान छ: बीजों को लिखकर उसे 'यं' बीज से वेष्टित कर देना चाहिये। इसके बाद हल्दी लगाकर 'ॐ' लिखना चाहिये। श्मशान के अंगारभस्म द्वारा काकपंख की शलाका से इस यन्त्र को लिखकर इसे समुचित रूप से स्थापित कर देना चाहिये॥१५७-१६१॥

पिकमध्यस्थितध्वाङ्क्षगृहकाष्ठं प्रयत्नतः।
श्मशानवह्नौ सन्दह्य भस्मादाय तदुद्भवम् ॥१६२॥
विघ्नाधीशगृहद्वा:स्थशर्करारजसान्वितम्।
यन्त्रमध्ये प्रविन्यस्य पुनस्तद् गुटिकीकृतम् ॥१६३॥
शवालिप्तनिशालेपचिताभस्मास्थिनी तथा।
पेषयेच्च चिताङ्गारं कपिकच्छुं च वानरीम् ॥१६४॥
साधको मन्त्रसारेण निर्माय गणपाकृतिम्।
तत्तस्या मध्यगं कृत्वा पुनः प्राणान् प्रवेशयेत् ॥१६५॥

चक्रिहस्तमृदा चैव साध्यपादोत्थपांशुना ।
शरावयुगलं मन्त्री निर्मायान्यत्र चोभयोः ॥१६६॥
अन्यत्र तत्प्रविन्यस्य कृष्णपुष्पैः प्रपूजयेत् ।
मनावुच्चाटयद्वन्द्वं योजयित्वा जपेन्मनुम् ॥१६७॥
अष्टोत्तरसहस्रं तु च्छादयित्वा परेण तम् ।
निखनेद्यस्य च द्वारि मासेनोच्चाटयेच्च तम् ॥१६८॥

पिकों (कोयलों) के बीच में स्थित कौवे के घोंसले की लकड़ी को प्रयत्न-पूर्वक लाकर उसे श्मशान की अग्नि में जलाकर उसके भस्म को ग्रहण करके उसमें गणेशमन्दिर के द्वार की शर्करा-समन्वित धूल को निर्मित यन्त्र के मध्य में रखकर उसे गुटिका-स्वरूप बना लेना चाहिये। पश्चात् शव में लिप्त हल्दी के लेप में चिता-भस्म, चिता की हड्डी, चिताङ्गार, कपिकच्छु (केवाँच) और वानरी को एक साथ पीसकर उससे गणेश की प्रतिमा बनाकर उस प्रतिमा में पूर्वनिर्मित गुटिका को रखने के बाद उसमें प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये।

कुम्हार के हाथ की मिट्टी एवं साध्य के पाँव की धूलि से दो कसोरा (मिट्टी का प्याला) बनाकर एक कसोरे में उस प्रतिमा को रखकर कृष्णवर्ण पुष्पों से उसका पूजन करके मन्त्र में 'उच्चाटय उच्चाटय' जोड़कर एक हजार आठ बार जप करने के बाद दूसरे कसोरे से उसे ढक देना चाहिये। इसके बाद उस शराव-सम्पुट को जिसके द्वार पर भूमि खोदकर गाड़ दिया जाता है, उसका एक मास के भीतर वहाँ से उच्चाटन हो जाता है॥१६२-१६८॥

विद्वेषणयन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यन्त्रं विद्वेषणाह्वयम् ।
यन्त्रं पूर्वदिने लेख्यं मध्ये यं च सबीजकम् ॥१६९॥
पद्ममष्टदलं पश्चात्त्रिशूलानि दलोर्ध्वतः ।
त्रिशूलाग्रे तु हङ्कारं हङ्कारेण तु वेष्टयेत् ॥१७०॥
निशातुर्यांशमानेन मरिचं निम्बमेव च ।
द्वित्रिद्विगुणं पिष्ट्वा हेमपत्राम्बुना ततः ॥१७१॥
मृतकर्पटकं पिष्ट्वा शेषमन्त्रमिमं लिखेत् ।
पञ्चाङ्गं पारिभद्रस्य काकिणीञ्च तथा पुनः ॥१७२॥
चिताग्नौ सन्दहेद्भस्म यन्त्रमध्ये निवेशयेत् ।
संवृत्य विघ्नराजस्य कुक्षौ पूर्ववदर्चयेत् ॥१७३॥

पिचुमन्दभवैः पत्रैः कृष्णपुष्पैर्विशेषतः ।
विद्वेषयद्वयं मन्त्रे जपेत्संयोज्य साष्टकम् ॥१७४॥

विद्वेषण-यन्त्र—अब मैं विद्वेषण-यन्त्र को कहता हूँ। पूजन के एक दिन पूर्व इस यन्त्र को लिखना चाहिये। मध्य में 'यं' बीज लिखकर उसके बाहर अष्टदल कमल बनाकर उसके दलों के ऊपर त्रिशूल बनाने के बाद उन त्रिशूलों के अग्रभाग में 'हं' लिखने के अनन्तर सबको 'हं' से वेष्टित कर देना चाहिये।

चतुर्थांश हल्दी को दो बार, मरिच एवं निम्ब को पृथक्-पृथक् तीन-तीन बार पीसकर पुनः तीनों को मिलाकर दो बार पीसने के बाद मृतक के पुराने कपड़े को धतूरपत्र-स्वरस से पीसकर सबको मिलाकर बने घोल से मन्त्र के शेष भाग का अंकन करना चाहिये। इसके बाद पारिभद्र (निम्व) के पञ्चाङ्ग एवं काकिणी (कौड़ी) को चिता की अग्नि में जलाकर उसके भस्म को यन्त्रमध्य में रखकर उस यन्त्र को गणेश-प्रतिमा के उदर में रखकर पिचुमन्दपत्रों एवं काले पुष्पों से पूर्ववत् अर्चन करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्र में 'विद्वेषय विद्वेषय' जोड़कर उसका एक हजार आठ बार जप करना चाहिये॥१६९-१७४॥

सहस्त्रं तु शरावं च निखनेच्छादितं ततः ।
प्रीतयोर्विधिनानेन विद्वेषो भवति ध्रुवम् ॥१७५॥
आदाय गणपं मन्त्री प्रीतयोरन्तराक्षिपेत् ।
वैरं प्रजायते शीघ्रं देशनाशो भवेद्द्वयोः ॥१७६॥
स तद्यन्त्रगतं भस्म गृहीत्वा पथि विन्यसेत् ।
गच्छतां पादसंस्पर्शाद्विवादस्तु महान् भवेत् ॥१७७॥
देशे ग्रामे पुरे यच्च स्थापितो गणपो भवेत् ।
वैरं च प्राणिवत्तत्र स्वैरं भवति सर्वदा ॥१७८॥
पारिभद्रस्य पञ्चाङ्गमेकभागमितं भवेत् ।
भागैकं मरिचस्यापि निशायाश्च तथैव च ॥१७९॥
सन्दह्य भसितं पूर्ववर्त्मना संस्कृतं पुनः ।
विकीर्णं वैरिणो मूर्ध्नि कुर्यादुन्मादमूकताम् ।
इति विद्वेषणं प्रोक्तं मारणं कथ्यतेऽधुना ॥१८०॥

इसके बाद शराव-स्थित प्रतिमा को गड्ढे में रखकर दूसरे शराव से आच्छादित कर दबा देने से दो प्रिय लोगों में निश्चित ही विद्वेष (वैर) हो जाता है।

साधक दो मित्रों के मध्य उस गणेशप्रतिमा को यदि रख देता है तो शीघ्र ही दोनों में शत्रुता उत्पन्न हो जाती है एवं दोनों देशों का विनाश हो जाता है। साधक यदि

यन्त्रगत भस्म को लेकर मार्ग में विखेर देता है तो उस मार्ग से जाने वालों के पैर में उसका स्पर्श हो जाने के कारण उनमें महान् विवाद उत्पन्न हो जाता है।

जिस देश, गाँव और नगर में गणेश की वह प्रतिमा स्थापित कर दी जाती है, वहाँ के निवासियों में भैंसे के समान शत्रुता उत्पन्न हो जाती है।

एक भाग पारिभद्र का पञ्चाङ्ग, एक भाग मरिच और एक भाग हल्दी को जलाकर भस्म बनाने के बाद पूर्ववत् उसे संस्कृत करके शत्रु के शीर्ष पर विखेर देने से वह शत्रु पागल एवं गूंगा हो जाता है। इस प्रकार विद्वेषण को कहा गया; अब मारण को कहा जा रहा है॥१७५-१८०॥

मारणयन्त्रकथनम्

पूर्वोक्तमन्त्रमालिख्य ह्राङ्कारं तस्य मध्यतः।
मायाविघ्नेशबीजे द्वे ह्राङ्कारे तु समालिखेत्।
लेख्यं दलेष्वग्निबीजं तद्बाह्येऽष्टास्रकं भवेत्॥१८१॥
चतुरस्रद्वये चाथ रं तत्कोणाष्टके लिखेत्।
त्रिकोणं तद्बहिः कार्यं त्रिकोणे च वरे लिखेत्॥१८२॥
मन्त्रप्रोक्तानि बीजानि वह्निकोणे लिखेदथ।
तद्बहिर्वह्निकोणेषु वह्निबीजं समालिखेत्॥१८३॥
निशां शुद्धां समालिख्य मृतकर्पटके शुभे।
चिताङ्गारोत्थया मष्या काकपक्षशलाकया॥१८४॥
यथोक्तं सुलिखेद्यन्त्रमेतन्मारणनामकम्।
कणारामठचव्याख्यनिशामरिचसद्वचाः ॥१८५॥
स्नुहीक्षीरेण संलिप्य पिष्ट्वा शवपटेऽथ वा।
कारस्करस्य पञ्चाङ्गैरण्डबीजान्वितामृताम्॥१८६॥
पिष्ट्वा कर्पटकेशौ च लिम्पेच्छेषं पुरोक्तवत्।
समीरं च प्रतिष्ठाप्य कृत्वा गणपतिं ततः॥१८७॥
यन्त्रस्य त्रिदले न्यस्य पुनः प्राणप्रतिष्ठितम्।

मारण-यन्त्र—पूर्वोक्त मन्त्र को लिखकर उसके मध्य में 'ह्रां' लिखने के बाद 'ह्रीं गं ह्रां ह्रां' लिखकर आठ दलों में अग्निबीज (रं) लिखकर उसके बाहर अष्टकोण अथवा दो चतुरस्र बनाकर उसके आठ कोणों में 'रं' लिखना चाहिये। उसके बाहर त्रिकोण बनाकर उसके अग्निकोण में मन्त्रबीजों का अंकन करने के बाद उसके बाहर अग्निकोण में 'रं' लिखना चाहिये। इस यन्त्र को मिट्टी के सकोरे पर शुद्ध हल्दी से

लिखकर चिताङ्गार की स्याही से काकपक्ष की शलाका से इस मारण यन्त्र को लिखना चाहिये।

हींग, हल्दी, मरिच एवं वचा को स्नुही-दुग्ध में भिगोकर पीस लेना चाहिये अथवा शव के कपड़े या कारस्कर-पंचाङ्ग, एरण्डबीज और गुरुच को पीसकर उस सकोरे पर लेप लगाना चाहिये। शेष क्रियायें पूर्ववत् होती हैं। गणेश-प्रतिमा को बनाकर उसे सम्यक् प्रकार से प्रतिष्ठित करके यन्त्र के तीन दलों में रखकर पुनः प्रतिष्ठापित करना चाहिये॥१८१-१८७॥

मातृसद्मसमुद्भूतां गणेशागारमृत्तिकाम् ॥१८८॥
निम्बान्मृदं च कर्कन्धूवृक्षमूलसमुद्भवाम् ।
श्मशानमृत्तिकां तद्वत्करवीरद्रुमूलजाम् ॥१८९॥
कुम्भकारकरस्पृष्टामूषरस्थानजां मृदम् ।
पिष्ट्वा शरावयुगलं कृत्वा चान्यत्र चोभयोः ॥१९०॥
यन्त्रं निवेशयेच्चापि कृष्णपुष्पैः प्रपूजयेत् ।
कारस्करभवैः पत्रैर्नैवेद्यैश्च यथा पुरा ॥१९१॥
उक्तमन्त्रपदस्थाने साध्यनाम निवेश्य हि ।
मानयेत्पूजयेच्चैव सहस्रं साष्टकं जपेत् ॥१९२॥
दक्षिणाशामुखो भूत्वा रजन्यां भूतवासरे ।
चत्वरे प्रेतभूमौ च मातृविघ्नगृहेऽथ वा ॥१९३॥
वल्मीके कोटरे वापि कारस्करतरूद्भवे ।
पिधायान्यशरावे च निखन्य बलिमाहरेत् ।
साध्यो यमपुरं याति सप्ताहाज्ज्वरपीडितः ॥१९४॥
अमोघवीर्यमेतद्धि विधानं भुवि दुर्लभम् ।
भूदेवव्यतिरिक्तेषु राजवैरिषु योजयेत् ॥१९५॥
नृपोऽपि कारयेद्यस्तु कर्तारं तोषयेद्धनैः ।
कर्तापि तद्दशांशेन प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥१९६॥
एतान्युक्तानि यन्त्राणि हरिद्रागणपस्य च ।
षट्षट्कर्मकराण्याशु गोपनीयानि यत्नतः ॥१९७॥

देवीमन्दिर, गणेश-मन्दिर, नीम्बवृक्षमूल, कर्कन्धू वृक्षमूल, श्मशान, करवीरमूल एवं कुम्हार द्वारा स्पृष्ट ऊषर स्थान—इन सात स्थानों की मिट्टी को एकत्र करके सबको एक साथ चूर्ण करने के उपरान्त उनसे दो सकोरों का निर्माण करने के बाद एक सकोरे

के मध्य में यन्त्र को स्थापित करके कृष्णवर्ण पुष्पों से उसका पूजन करने के उपरान्त पूर्वकथित कारस्कर के पत्तों से निर्मित दोने में नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। तत्पश्चात् उक्त मन्त्र में साध्य का नाम जोड़कर आदरपूर्वक उसका पूजन करने के बाद उस मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करना चाहिये।

तदनन्तर भूतवार (शनिवार) की रात्रि में दक्षिण की तरफ मुख करके चौराहा, श्मशान, देवी-मन्दिर, गणेश-मन्दिर, दीमक की बाँबी अथवा कारस्कर वृक्ष के कोटर में उक्त सकोरे को स्थापित करने के बाद दूसरे सकोरे से उसे आच्छादित करके वहीं पर दबा देने के पश्चात् बलि प्रदान करनी चाहिये। ऐसा करने से एक सप्ताह के भीतर ही ज्वर से पीड़ित होकर साध्य यमलोक को प्रस्थान कर जाता है।

यह विधान अमोघ बलशाली है एवं इस पृथिवी पर दुर्लभ है। ब्राह्मण के अतिरिक्त राजवैरियों के लिये इसका प्रयोग करना चाहिये। इसको अनुष्ठित कराने वाले राजा को अनुष्ठाता ब्राह्मण को धनादि प्रदान करके पूर्णतः सन्तुष्ट करना चाहिये एवं अनुष्ठाता को भी उस प्राप्त धन का दशांश दान करके प्रायश्चित्त करना चाहिये। इस प्रकार हरिद्रा गणपति के इन यन्त्रों का वर्णन किया गया। षट्कर्मों के सम्पादक इन यन्त्रों को प्रयत्न-पूर्वक गोपनीय रखना चाहिये॥१८८-१९७॥

मातृकायन्त्रसाधनम्

अथ वक्ष्ये मातृकाया यन्त्रं साधकसिद्धिदम्।
अष्टपत्रं लिखेत्पूर्वं मातृकूटं तु मध्यतः॥१९८॥
ह्सौमिति च पत्रेषु केशरेषु त्रिशः स्वरान्।
तस्योर्ध्वं भूपुरं कुर्याद्रचनेयं प्रदर्शिता॥१९९॥
एतद्यन्त्रस्य मध्यस्थं नाम कृत्वा प्रयोजयेत्।
प्रातर्मूर्ध्नि शिरोबिन्दुमध्यस्थं सर्वसम्पदे॥२००॥
अभिषेकाच्च धनकृत्पूजनाल्लोकवश्यकृत्॥२०१॥
स्थापनाद् गृहदेशादौ यन्त्रं सर्वार्थसिद्धिदम्।
सौवर्णे राजते ताम्रे पट्टे वा यन्त्रमुद्धरेत्॥२०२॥
यस्य प्रतिष्ठा देवस्य लिखेत्तन्नामपूर्वकम्।
यन्त्रमध्ये महादेवं सम्यग्ध्यात्वा तु तत्र च॥२०३॥
प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत देवीं तत्रार्चयेत्पुनः।
स्पृष्ट्वा यन्त्रं जपेन्मन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम्॥२०४॥
मातृकानामतो यन्त्रं निखनेच्च धरातले।
तत्र सम्यक्पूजयित्वा मृदा भूमिं च पूजयेत्॥२०५॥

मातरश्चोपरि स्थाप्याः स्वाभीष्टा देवता ततः ।
सान्निध्यं देवतायाः स्यात्साधकः सुखमाप्नुयात् ॥२०६॥

मातृका-यन्त्र-साधन—अब मैं साधकों को सिद्धि प्रदान करने वाले मातृका यन्त्र को कहता हूँ। सर्वप्रथम अष्टदल कमल की रचना करके उसके मध्य में मातृकूट का अंकन करने के बाद उसके आठ पत्रों में 'ह्सौं' लिखकर केशरों में तीन-तीन स्वरों का अंकन करना चाहिये। तदनन्तर उसके बाहर भूपुर का निर्माण करने से मातृका-यन्त्र पूर्ण हो जाता है। यन्त्र के मध्य में साध्यनाम का अंकन कर इसका प्रयोग करना चाहिये। समस्त सम्पत्तियों की प्राप्ति के लिये प्रातःकाल शिरोबिन्दु के मध्य-स्थित मूर्धा पर अभिषेक करने से धन-प्राप्ति होती है एवं इसके पूजन से लोक-वशीकरण होता है। गृह-देश आदि में स्थापित करने से यह यन्त्र समस्त सिद्धियों को देने वाला होता है। सोने, चाँदी अथवा ताँबे के पत्र पर इस यन्त्र का अंकन करना चाहिये।

जिस देवता की प्रतिष्ठा करनी हो, उसके नाम-सहित लिखे यन्त्र के मध्य में महादेव का सम्यक् रूप से ध्यान करके उस यन्त्र में प्राणप्रतिष्ठा करने के बाद वहीं पर देवी का अर्चन करना चाहिये। इसके बाद यन्त्र का स्पर्श करके मन्त्र का एक हजार जप करना चाहिये और मातृका-नामक यन्त्र को धरातल में गाड़ देना चाहिये। वहाँ की भूमि एवं मिट्टी का सम्यक् रूप से पूजन करके मातृकाओं को स्थापित करने के बाद अपने इष्टदेव को स्थापित करने से साधक को देवता का सान्निध्य एवं सुख प्राप्त होता है॥१९८-२०६॥

अथो लिपीश्वरस्यान्यं वक्ष्ये यन्त्रं सुसिद्धिदम् ।
लिखेदष्टदलं पद्मं तन्मध्ये ज्ञानिनो मनुम् ॥२०७॥
हह ज्ञानिन इत्येष नमोऽन्तः सप्तवर्णकः ।
ज्ञानिमन्त्रं वसुदले पूर्वादिषु लिखेत्क्रमात् ॥२०८॥
ह्लंकारपुटितं यं च ह्योकारं हं ततः पुनः ।
इं ईं उं ऊं च ऐं लेख्यं चाष्टपत्रेषु मन्त्रिणा ॥२०९॥
सिद्धादिचक्रे साध्यस्य नामाद्यर्णस्थितो भवेत् ।
यन्त्रकोष्ठे तत्र संस्थैर्वर्णैः साध्यस्य नामकम् ॥२१०॥
पुटयित्वाष्टमं पत्रं लिखेदथ च वेष्टयेत् ।
वृत्तेन यन्त्रमुक्तं तन्मातृकायास्तथैव च ॥२११॥
चन्दनेन पटे लेख्यं चिरं जयति दुःखदम् ।
सर्वशान्तिकरं राहो रोहिण्यामुदिते सति ॥२१२॥
साधकस्य करे बद्धं पूर्वोक्तं फलमादिशेत् ।

अन्य सिद्धिप्रद लिपीश्वर यन्त्र—अब मैं लिपीश्वर के दूसरे सिद्धिप्रद यन्त्र को कहता हूँ। अष्टदल कमल बनाकर उसके मध्य में ज्ञानियों के मन्त्र को लिखना चाहिये। सात अक्षरों का ज्ञानियों का मन्त्र है—हह ज्ञानिनो नमः। इस ज्ञानी मन्त्र को अष्ट दल में पूर्वादि क्रम से लिखना चाहिये। तत्श्चात् मन्त्रज्ञ साधक को आठो दलों में क्रमशः 'ह्लं' से पुटित यं, ऐं, हं, इं, ईं, उं, ऊं एवं ऐं को लिखना चाहिये।

तत्पश्चात् सिद्धादि चक्र में साध्य के नाम का आदि वर्ण लिखने के बाद यन्त्र-कोष्ठ में साध्य के नाम-वर्णों को पुटित करके अष्टम पत्र पर लिखना चाहिये। इसके बाद यन्त्र के बाहर वृत्तों को बनाने से उसी प्रकार का मातृकायन्त्र स्पष्ट हो जाता है। यन्त्र को वस्त्र पर चन्दन से लिखने से दु:खों पर विजय प्राप्त होती है। रोहिणी नक्षत्र में लेखन करने से यह यन्त्र राहु की सर्वविध शान्ति करने वाला होता है। साधक के हाथ में बाँधने पर भी उपरोक्त फल ही प्राप्त होते है॥२०७-२१२॥

एतस्या एव देव्यास्तु वक्ष्य उच्चाटमारणम् ॥२१३॥
यन्त्रं प्राग्वच्चाष्टदले कर्णिकायां मनुं श्रियम् ।
रं कापेश्वराय नमः प्रोक्तश्चाष्टाक्षरस्त्विह ॥२१४॥
ततो मध्यादष्टदिक्षु वर्णान् सम्पुटितान् लिखेत् ।
ईं मध्ये पूर्वतो यै च कं चं दं तं यमेव च ।
यं शं वं हं च प्राच्यां हि प्राग्वद्वा सं समालिखेत् ॥२१५॥
सिद्धादिचक्रकोष्ठस्था वर्णाः सम्पुटितास्तु ये ।
बहिस्तु ते वेष्टनीया वायुमण्डलचक्रतः ॥२१६॥
षड्बिन्दुलाञ्छितं वृत्तवेष्टितं रसकोणकम् ।
वायुमण्डलमेतत्स्यात् स्नात्वा मन्दोदये सति ॥२१७॥
तालपत्रे लिखित्वारेर्गृहमध्ये निधापयेत् ।
अवश्यं तस्य मृत्युः स्याद्देहल्यधः प्रपूजितम् ।
यदा तदा भवेच्छत्रोरुच्चाटो नात्र संशयः ॥२१८॥
अष्टपत्रं लिखेत्पद्मं कर्णिकायां लिखेन्मनुम् ।
करौ स्वठौ नै फड् नमो मनुरष्टाक्षरः स्मृतः ॥२१९॥
अष्टपत्रेषु लेख्यानि रंकारपुटितानि तु ।
उं ईं खं छं ठं च यं च हं सं चेति प्रवेष्टयेत् ॥२२०॥
त्रिकोणेनाष्टमे पत्रे शत्रोर्नाम लिखेदथ ।
सिद्धादिचक्रे कथिता ये वर्णास्तैश्च संयुतम् ॥२२१॥

भौमोदये कृत्तिकायां शववस्त्रे समालिखेत्।
श्मशानाङ्गारकेणापि स साध्यः स्याद्यमातिथिः ॥२२२॥
एवमष्टदले च स्यान्नाममित्रार्णवेष्टितम्।
काश्मीरीयावकाभ्यां तु भूर्जपत्रे लिखेत्पुनः ॥२२३॥
अर्चयित्वा करे चैव बध्नीयाद्वामके तु यः।
सर्वत्र कुरुते रक्षां यन्त्रमेतत्सुदुर्लभम् ॥२२४॥

अब इसी देवी के उच्चाटन-मारण आदि यन्त्रों को कहता हूँ। पूर्ववत् अष्टदल बनाकर उसकी कर्णिका में 'रं कापेश्वराय नमः' इस अष्टाक्षर लक्ष्मी-मन्त्र का अंकन करने के बाद मध्य से आठों दिशाओं में सम्पुटित वर्णों को लिखकर मध्य में ईं लिखना चाहिये। कं चं टं तं यं शं वं हं पूर्वादि क्रम से आठ पत्रों में लिखना चाहिये। सिद्धादि चक्रकोष्ठ में विद्यमान सम्पुटित वर्णों को बाहर से वायुमण्डल चक्र से वेष्टित कर देना चाहिये। षड्विन्दु-लांछित वृत्त-वेष्टित षट्कोण वायुमण्डल होता है।

प्रातःकाल स्नान करने के बाद ताड़पत्र पर इस यन्त्र को लिखकर शत्रु के गृह-मध्य में रख देने से अवश्य ही शत्रु की मृत्यु हो जाती है। इसी यन्त्र को शत्रु के दरवाजे पर रखकर यदि पूजन किया जाता है तो शत्रु का निश्चित ही उच्चाटन हो जाता है।

अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में 'करौ स्वठौ नै फट् नमः' इस अष्टाक्षर मन्त्र को लिखकर आठ पत्रों में 'रं' से पुटित उं ईं खं छं ठं यं हं सं को क्रमशः लिखना चाहिये। अष्टम पत्र में त्रिकोण बनाकर उसमें सिद्धादि चक्र में कथित वर्णों से संयुक्त शत्रु का नाम लिखना चाहिये। इस यन्त्र को भौमोदय काल में कृत्तिका नक्षत्र में शव-वस्त्र पर श्मशान के कोयले से लिखने पर वह साध्य यमराज का अतिथि हो जाता है। इसी प्रकार जो साधक भोजपत्र पर केशर एवं यावक (आलता) से अष्टदल बनाकर उसमें मित्रवर्णों से वेष्टित नाम लिखकर उसका अर्चन करके अपनी बाँयीं भुजा में धारण करता है, यह सुदुर्लभ यन्त्र उस साधक की सर्वत्र रक्षा करता है॥२१३-२२४॥

अथ यन्त्रान्तरं वक्ष्ये प्राग्वदष्टदलं कुरु।
तत्कर्णिकायां तु लिखेदों वों विं विं विधुन्तुदा ॥२२५॥
य नमश्चेति रुद्रार्णान् दलेषु विलिखेत्क्रमात्।
प्रादक्षिण्येन पूर्वादौ वर्णान् बीजेन संयुतान् ॥२२६॥
अं ऊं वं धं कं च टं च धं भं चैवाष्टपत्रके।
प्राग्वत्साध्यं च मित्रार्णयुक्तं सम्यक् क्रमाल्लिखेत् ॥२२७॥
ततस्तु वेष्टयेत्सर्वमर्धचन्द्रैः सुशोभनैः ॥२२८॥

पूर्वाषाढाख्यनक्षत्रे लिखेच्छुक्रोदये सति।
कुचन्दनोदकेनैतद् भुक्तं भक्ष्येण भाग्यदम् ॥२२९॥
अष्टपत्रं लिखेत्पद्मं कर्णिकायां लिखेन्मनुम्।
अंठं जगौ च ठं प्रोच्य मूलमन्त्रो नवाक्षरः।
लिखेदष्टदले प्राग्वत्प्रादक्षिण्येन सम्पुटान् ॥२३०॥
ठं लं गं जं च टं दं लं प्राग्वच्चाष्टदले तथा।
साध्यनामार्णकान् मित्रवर्णाद्यानपि चाग्रतः ॥२३१॥
भूपुरं चाष्टवज्राख्यं लिखेद् भूर्जे च गैरिकैः।
धृत्वा हस्ते प्रोक्ष्य करं श्मशानमृत्तिकास्थले।
लिखितं गैरिकैरेतत्सर्वोपद्रवनाशनम् ॥२३२॥

अब दूसरे यन्त्र को कहता हूँ। पूर्ववत् अष्टदल बनाकर उसकी कर्णिका में 'ॐ वों विं विं विधुन्तुदाय नमः' इस ग्यारह अक्षरों वाले मन्त्र को लिखना चाहिये। इसके बाद आठ दलों में पूर्वादि प्रादक्षिण्यक्रम से बीज-युक्त 'अं ऊं वं धं कं टं धं भं' इन वर्णों को लिखना चाहियें। तत्पश्चात् पूर्ववत् मित्रवर्ण-युक्त साध्यनामाक्षरों को क्रमशः लिखना चाहिये। इसके बाद उसे सुन्दर अर्धचन्द्र से वेष्टित कर देना चाहिये। पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में शुक्रोदय के समय इस यन्त्र को कुचन्दन के जल एवं जूठे भक्ष्य पदार्थों को मिला कर लिखने से यह यन्त्र भाग्यवर्द्धक होता है।

अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में 'अं ठं जगौ ठं' के साथ नवाक्षर मूल मन्त्र को लिखकर आठ दलों में प्रदक्षिणक्रम से सम्पुटित 'ठं लं गं जं टं दं लं' को लिखने के बाद पूर्ववत् साध्य-नाम के साथ मित्र-वर्णों को उनके अग्रभाग में लिखना चाहिये। इसके बाद अष्टवज्र-नामक भूपुर लिखना चाहिये। इस यन्त्र को भोजपत्र पर गेरु से लिखकर हाथ में धारण करने के बाद हाथ धोकर श्मशान की मिट्टी में गेरु से लिखने पर सभी उपद्रवों का शमन हो जाता है॥२२५-२३२॥

त्रिपुरभैरवीयन्त्रकथनम्

वक्ष्ये त्रिपुरभैरव्या यन्त्रं सर्वार्थसाधकम्।
नवयोन्यात्मकं सम्यक् त्रिकोणं तस्य मध्यतः ॥२३३॥
या योनिस्ता समारभ्य प्राच्यां भागात्प्रदक्षिणम्।
ससार्वकूटमेकैकं लिखेत्तानि वदाम्यहम् ॥२३४॥
हकारश्च सकारं च तथौकारसमन्वितम्।
नादबिन्दुसमायुक्तं मध्ययोनाविदं लिखेत् ॥२३५॥

हकारञ्च सकारं च ककारञ्च तथा लरौ।
नादबिन्दुयुतौ चैव तद्दले च समालिखेत् ॥२३६॥
हकारञ्च सकारं च रेफमौकारसंयुतम्।
विसर्गाद्यमिदं कूटं तृतीये सुलिखेत्ततः ॥२३७॥
पुनरेतानि कूटानि चतुस्सप्तादियोनिषु।
वृत्तद्वयन्तु तद्वाह्ये वीथिकायां प्रवेष्टयेत् ॥२३८॥
सबिन्दुकैर्मातृकार्णैस्तद्वहिश्चाष्टकोणकम्।
चतुरस्रद्वयेनैव कर्त्तव्यं तत्र संलिखेत् ॥२३९॥
कामबीजन्तु कोणेषु यन्त्रमेतत्प्रवेष्टयेत्।
लाक्षया च त्रिलोहेन होमसम्पातसाधितम् ॥२४०॥
बाहुमूले धृतं यन्त्रं पुत्रायुः सुखदं भवेत्।
नानाभोगाञ्जयं दद्यात्संग्रामे नात्र संशयः।

त्रिपुरभैरवी-यन्त्र—अब मैं सर्वार्थ-साधक त्रिपुरभैरवी-यन्त्र को कहता हूँ। सम्यक् रूप से नव योनियों वाला त्रिकोण बनाकर उसके मध्य-स्थित योनि से आरम्भ करके पूर्वादि प्रदक्षिणक्रम से उनमें एक-एक कूटों को लिखना चाहिये। मध्य योनि में 'हसौं', द्वितीय योनि में 'हस्क्लरौं' एवं तृतीय योनि में 'ह्स्रौः' लिखना चाहिये। पुनः इन्हीं कूटों को अन्य योनियों में भी लिखना चाहिये। तदनन्तर उसके बाहर दो वृत्तों की वीथि में सानुस्वार मातृकावर्णों को अंकित करना चाहिये। पुनः उसके बाहर अष्टकोण बनाकर उसे दो चतुरस्र से आच्छादित कर देना चाहिये। उन कोणों में कामबीज (क्लीं) का अंकन करना चाहिये। इस यन्त्र को लाख से युक्त करके त्रिलोह के ताबीज में भर कर होम-सम्पात घृत से साधित करना चाहिये।

इस यन्त्र को बाहुमूल में धारण करने से पुत्र, आयु और सुख की प्राप्ति होती है। अनेक प्रकार के भोगों को प्रदान करने वाला यह यन्त्र युद्ध में विजय प्रदान करने वाला भी होता है; इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये॥२३३-२४०॥

अथान्यत्त्रैपुरं वक्ष्ये भूर्जे षट्कोणमालिखेत् ॥२४१॥
ससाध्यं तस्य मध्ये तु कामबीजं समालिखेत्।
कोणेष्वपि लिखेत्कामं बहिः षोडशपत्रकम्।
कुर्यात्पत्रेषु सुलिखेत्कामबीजानि तद्वहिः ॥२४२॥
कृत्वा वृत्तद्वयं वीथ्यां हंबीजेन प्रवेष्टयेत्।
तद्वहिश्चतुरस्रन्तु कुर्याद्यन्त्रं सुलेखतः ॥२४३॥

गोरोचनाकुङ्कुमाभ्यां सम्पत्सौभाग्यकारकम् ।
करोति कविताकीर्तिं साधकस्य न संशयः ॥२४४॥

अन्य त्रिपुरभैरवी-यन्त्र—अब मैं एक-दूसरे त्रिपुरभैरवी-यन्त्र को कहता हूँ। भोजपत्र पर षट्कोण बनाकर उसके मध्य में साध्य-नाम-सहित क्लीं लिखकर कोणों में भी क्लीं लिखना चाहिये। तत्पश्चात् उसके बाहर षोडशदल कमल बनाकर उन दलों में भी क्लीं लिखना चाहिये। पुनः उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उसकी वीथि में 'हं' बीज लिखने के उपरान्त उसके बाहर चतुरस्र बनाने से सुन्दर यन्त्र बन जाता है।
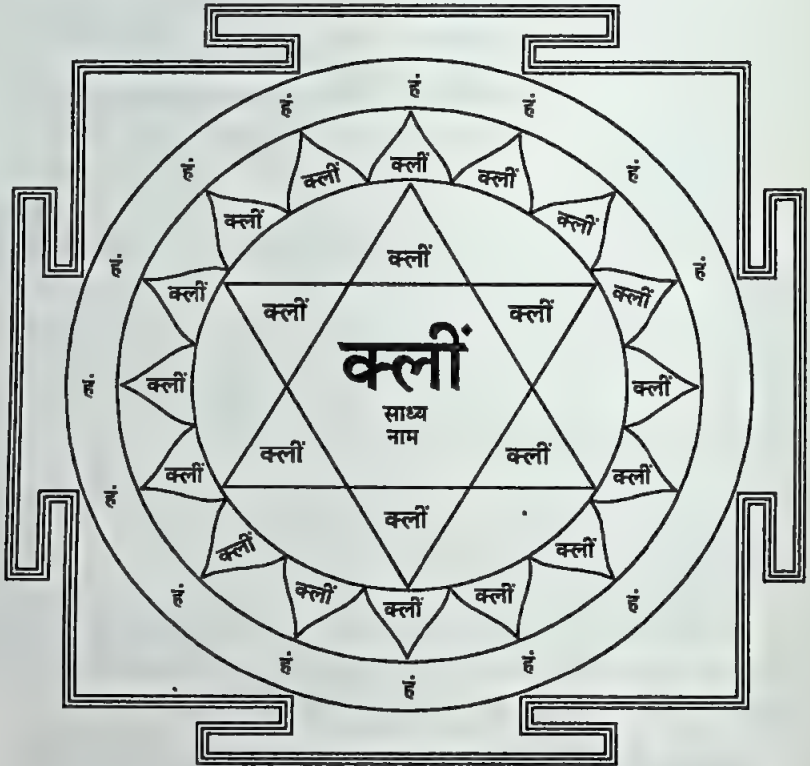
गोरोचन एवं कुमकुम से निर्मित यह यन्त्र सम्पत्ति एवं सौभाग्य-प्रदायक होता है; साथ ही यह साधक को कवित्व शक्ति से सम्पन्न करके उसे यशःभागी बनाता है; इसमें कोई संशय नहीं है॥२४१-२४४॥

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि त्रैपुरं स्त्रीवशङ्करम् ।
आदौ लिखित्वा षट्कोणं तन्मध्ये कामबीजकम् ॥२४५॥

काममध्ये तु ह्रींकारं दलेषु विलिखेच्च तत्।
षट्कोणसन्धौ हुंकारं सर्वं स्त्रींकारवेष्टितम्॥२४६॥
त्रिपुरदेवि विद्महे कामेश्वरि धीमहि।
तन्नः क्लीं प्रचोदयात्॥२४७॥
त्रिपुरायास्तु गायत्रीं जप्त्वा यन्त्रे च संलिखेत्।
तेन यन्त्रं भवेत्सिद्धमीरितं नात्र संशयः॥२४८॥

स्त्री-वश्यकारक त्रिपुरभैरवी-यन्त्र—अब मैं स्त्री को वशीभूत करने वाले अन्य त्रिपुरभैरवी-यन्त्र को कहता हूँ। सर्वप्रथम षट्कोण बनाकर उसके मध्य में क्ली लिखकर दलों में ह्रीं-गर्भित क्लीं लिखने के बाद षट्कोण की सन्धियों में 'हुं' लिखकर सबों को 'स्त्रीं' से वेष्टित कर देना चाहिये। तदनन्तर 'त्रिपुरदेवि विद्महे कामेश्वरि धीमहि तन्नो क्लीं प्रचोदयात्' इस त्रिपुरागायत्री का जप करके इसे यन्त्र में लिखना चाहिये। ऐसा करने से यह यन्त्र सिद्ध हो जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है॥२४५-२४८॥

पञ्चबाणेश्वरीयन्त्रमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पञ्चबाणेश्वरीमनुम्।
यन्त्रं पञ्चदलं चादौ कृत्वा तत्र तु संलिखेत्॥२४९॥
ससाध्यं कामबीजं च दलेषु तु लिखेत्क्रमात्।
अग्न्यादिप्रादक्षिण्येन द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स इत्यपि॥२५०॥
वृत्तद्वयञ्च तद्बाह्ये कृत्वा वीथीद्वयं भजेत्।
वेष्टयेत्प्रथमां वीथीं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स इत्यपि॥२५१॥
द्वितीयां मातृकावर्णैस्तद्बहिश्चतुरस्रकम्।
चतुरस्रेशकोणात्तु कामबीजं समालिखेत्॥२५२॥
सुवर्णनिर्मिते पट्टे कस्तूर्या यन्त्रमालिखेत्।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ धृतं तत्स्त्रीवशङ्करम्।
दद्याद्यथेप्सितान् कामान् साधकाय रणे द्रुतम्॥२५३॥

पञ्चबाणेश्वरी के यन्त्र एवं मन्त्र—अब मैं पञ्चबाणेश्वरी के यन्त्र एवं मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। सर्वप्रथम पञ्चकोण बनाकर उसके मध्य में साध्यनाम-गर्भित कामबीज (क्लीं) लिखने के उपरान्त दलों में अग्निकोण से प्रारम्भ कर प्रदक्षिणक्रम से द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः को क्रमशः लिखना चाहिये। फिर उसके बाहर दो वृत्त बनाकर प्रथम वीथि में द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः लिखकर द्वितीय वीथि में मातृका वर्णों को लिखने

के वाद उसके बाहर चतुरस्र बनाकर चतुरस्र के पूर्वकोण से प्रारम्भ कर सभी कोणों में कामबीज (क्लीं) लिखना चाहिये।

सुवर्ण-निर्मित पट्ट पर कस्तूरी से इस यन्त्र को लिखकर गले में अथवा दाहिनी भुजा में धारण करने से यह स्त्री का वशीकरण करने वाला होता है। युद्ध की अवस्था में यह साधक की अभीप्सित कामनाओं को शीघ्र प्रदान करता है।।२४९-२५३।।

राजमातङ्गीयन्त्रकथनम्

अथातो राजमातङ्ग्या यन्त्रं वक्ष्ये सुसिद्धिदम्।
सुवर्णरचिते पट्टे लेखन्या स्वर्णरूप्यया ।।२५४।।
राजते ताम्रके वापि भूर्जे वापि मनोहरे।
काश्मीरीरोचनैणेययुतचन्दनवारिभिः ।।२५५।।
लिखेद्यन्त्रं तु तत्रादौ त्रिकोणं तु समालिखेत्।
साध्यनामान्वितं तत्र ह्रीं क्लीं बीजद्वयं लिखेत् ।।२५६।।
ह्रीं श्रीं तस्माद्बहिः कुर्यात् पञ्चपत्रसरोरुहे।
अं नमः प्रथमे पत्रेऽन्यस्मिन् भगवतीति च ।।२५७।।
मातङ्गेश्वरी तृतीये सर्वजनमनोहरी।
चतुर्थे पञ्चमे पत्रे स्यात्सर्वमुखरञ्जिनी ।।२५८।।

राजमातङ्गी-यन्त्र—अब मैं सुन्दर सिद्धि प्रदान करने वाले राजमातङ्गी-यन्त्र को कहता हूँ। मनोहर सुवर्णपत्र, रजतपत्र, ताम्रपत्र अथवा भोजपत्र पर सुवर्ण अथवा चाँदी की लेखनी द्वारा केशर, गोरोचन, कस्तूरी एवं चन्दन-मिश्रित जल की स्याही से यन्त्र की रचना करनी चाहिये। सर्वप्रथम त्रिकोण की रचना करके उसमें साध्य नाम-समन्वित 'ह्रीं' एवं 'क्लीं' इन दो बीजों का अंकन करने के पश्चात् उसके बाहर 'ह्रीं-श्रीं' लिखना चाहिये। पुनः उसके बाहर पाँच पत्रों वाला कमल बनाकर उसके प्रथम पत्र पर 'अं नमः', द्वितीय पत्र पर 'भगवती', तृतीय पत्र पर 'मातङ्गेश्वरी', चतुर्थ पत्र पर 'सर्वजनमनोहरी' एवं पञ्चम पत्र पर 'सर्वमुखरञ्जिनी' लिखना चाहिये।।२५४-२५८।।

बहिश्चाष्टदलं कृत्वा क्लीं ह्रीं श्रीं प्रथमे लिखेत्।
एतामपि लिखेत्तत्र सर्वराजवशङ्करम् ।।२५९।।
द्वितीये तु दले सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करम्।
तृतीये सर्वदुष्टेति लिखेन्मृगवशङ्करम् ।।२६०।।
चतुर्थे सर्वसर्वेति लिखेच्चापि वशङ्करम्।
पञ्चमे सर्वलोकेति लिखेन्मन्त्रं वशङ्करम् ।।२६१।।

लिखेत्षष्ठे तथा यन्त्रेऽमुकं मे वशमानय।
स्वाहा सप्तमपत्रेऽस्य श्रीं ह्रीं ऐं सौं च क्लीं च ऐं॥२६२॥

तदनन्तर उसके बाहर अष्टदल कमल बनाकर उसके प्रथम दल में 'क्लीं ह्रीं श्रीं सर्वराजवशङ्कराम्', द्वितीय दल में 'सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्कराम्', तृतीय दल में 'सर्वदुष्टमृगवशङ्कराम्', चतुर्थ दल में 'सर्वसर्ववशङ्कराम्', पञ्चम दल में 'सर्वलोकवशङ्कराम्', षष्ठ दल में 'अमुकं मे वशमानय', सप्तम दल में 'स्वाहा' एवं अष्टम दल में 'श्रीं ह्रीं ऐं सौ: क्लीं ऐं' लिखना चाहिये॥२५९-२६२॥

वृत्तद्वयन्तु तद्बाह्ये वीथ्यां तत्र प्रवेष्टयेत्।
बीजषट्कोणके प्रोक्तमष्टपत्रं द्वितीयके॥२६३॥
उक्त्वा श्रीं च तृतीयादिपत्रसंस्थैश्च वर्णकै:।
ततोऽष्टपत्रजैर्वर्णान् लिखेच्चैवाग्रतस्तदा॥२६४॥
वृत्तद्वये तु तद्बाह्ये तत्र वीथ्यां तु संलिखेत्।
साध्यनामाक्षरयुतान् मातृकार्णान् क्रमात्क्रमात्॥२६५॥
तद्बहिश्चतुरस्रं च तत्कोणेषु समालिखेत्।
साध्यनामयुतं कामबीजमत्यन्तशुद्धिमत्॥२६६॥
तेन लेख्यमिदं यन्त्रं साधु सर्वेषु जन्तुषु।
एतद्यन्त्रं लिखेच्चैव जप्त्वा मन्त्रमनन्यधी:॥२६७॥
हुत्वा घृतादिकं चैव गुटिकीकृत्य साधक:।
साभिषेक: स्वयं बाहौ दक्षिणे तद्विधारयेत्।
पूज्यते त्रिदशाद्यैश्च किं पुनर्मानवोत्तमै:॥२६८॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यमिच्छेद्यद्यत्स वाञ्छितम्।
अवश्यमेव लभते पुरुषो नात्र संशय:॥२६९॥

उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उसकी वीथी में षट्कोण में कथित बीजों, अष्टम पत्र में कथित बीजों को लिखने के बाद 'श्रीं' के साथ तृतीय पत्र के वर्णों को लिखकर उसके आगे अष्टम पत्र में उक्त बीजों को लिखना चाहिये। वृत्तद्वय के बाहर साध्य नामाक्षर-युक्त मातृकावर्णों को लिखना चाहिये। पुन: उसके बाहर चतुरस्र बनाकर उसके कोणों में साध्य नाम-युक्त क्लीं बीज लिखना चाहिये। इस प्रकार से लिखित यन्त्र समस्त प्राणियों के लिये कल्याणकारी होता है।

इस यन्त्र को लिखने के पश्चात् एकाग्र चित्त से मन्त्र का जप करने के उपरान्त घृत आदि से हवन करके उस यन्त्र को गुटिका-स्वरूप बनाकर अभिषिक्त साधक को

अपनी दाहिनी भुजा में धारण करना चाहिये। देवता आदि भी इस यन्त्र को धारण करने वाले की पूजा करते हैं; फिर मनुष्यों का तो कहना ही क्या है?

इसको धारण करने वाला व्यक्ति आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य के साथ-साथ समस्त अभीष्ट वस्तुओं को अवश्य ही प्राप्त करता है; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये॥२६३-२६९॥

भुवनेश्वरीयन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भुवनेश्यास्तु यन्त्रकम्।
कुर्याच्च षड्दलं पद्मं कर्णिकायां च हृल्लिखेत्॥२७०॥
साध्ययुक्तं षड्दलेषु केवलं शक्तिबीजकम्।
बहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा वीथिकायां प्रवेष्टयेत्॥२७१॥
स्वरैः षोडशभिर्बिन्दुयुक्तैस्तद्बाह्यमों लिखेत्।
भूपुरं यन्त्रमेतत्तु वन्ध्यानामपि पुत्रदम्॥२७२॥

भुवनेश्वरी यन्त्र—अब मैं भुवनेश्वरी यन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। छः दलों वाला कमल बनाकर उसकी कर्णिका में ह्रीं लिखकर छः दलों में साध्य नाम-युक्त 'ह्रीं' लिखने के उपरान्त उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उसकी वीथी में अनुस्वार-सहित सोलह स्वरों को लिखकर उसके बाहर 'ॐ' लिखने के बाद उसके बाहर भूपुर की रचना करनी चाहिये। यह यन्त्र वन्ध्या को भी पुत्र प्रदान करने में समर्थ होता है॥२७०-२७२॥

अथातो भुवनेश्वर्या वश्यकृद्यन्त्रमुच्यते।
आदौ सुलिख्य षट्कोणं मायां साध्यसमन्विताम्॥२७३॥
कर्णिकायां षड्दलेषु तद्बहिर्भूपुरं लिखेत्।
एतद्यन्त्रं वश्यकरं पूजितं बाहुमध्यगम्॥२७४॥

भुवनेश्वरी का वशीकरण यन्त्र—अब मैं भुवनेश्वरी के वशीकरण यन्त्र को कहता हूँ। सर्वप्रथम मनोहर षट्कोण बनाकर उसकी कर्णिका एवं छः दलों में साध्यनाम-समन्वित 'ह्रीं' लिखने के बाद उसके बाहर भूपुर की रचना करने से वशीकरण करने वाला यह यन्त्र निर्मित हो जाता है। इस यन्त्र को पूजन करके बाहु-मध्य में धारण करना चाहिये॥२७३-२७४॥

अथान्यद् भुवनेश्वर्याः प्रोच्यते यन्त्रमुत्तमम्।
आदौ कुर्याच्च षट्कोणं कोणा वज्रसमन्विताः॥२७५॥
मध्ये ससाध्यां मायां च लिखेत्कोणेषु तां पुनः।
वृत्तत्रयं बहिष्कुर्यात्तत्र वीथीद्वयं भवेत्॥२७६॥

वेष्टयेन्मायया वीथीद्वयमेतच्चतुर्थकम्।
श्रीखण्डरोचनाभ्यां तु लेख्यं सर्वजयप्रदम्॥२७७॥
दद्याच्च मनसोद्दिष्टं बाहौ वा हृदये धृतम्।
मायास्थाने तु मन्त्रं वा भुवनेश्याः समालिखेत्॥२७८॥

भुवनेश्वरी का अन्य यन्त्र—अब मैं भुवनेश्वरी के दूसरे उत्तम यन्त्र को कहता हूँ। सर्वप्रथम षट्कोण की रचना करके उन कोणों के अग्रभाग में वज्र बनाकर मध्य में एवं कोणों में साध्यनाम-समन्वित 'ह्रीं' लिखने के बाद उसके बाहर दो वीथियों वाला तीन वृत्त बनाकर दोनों वीथियों में 'ह्रीं' लिखना चाहिये। श्रीखण्ड चन्दन और गोरोचन से लिखित यह चतुर्थ यन्त्र सब प्रकार से विजय प्रदान करने वाला होता है। भुजा अथवा हृदय में धारण करने से यह यन्त्र समस्त मनोरथों को देने वाला होता है। इस यन्त्र में माया (ह्रीं) के स्थान पर भुवनेश्वरी के मन्त्र को भी लिखा जा सकता है॥२७५-२७८॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भुवनेश्यास्तु यन्त्रकम्।
अष्टपत्रं लिखेत्पद्मं कर्णिकायां समालिखेत्॥२७९॥
आं ह्रीं क्रीमिति बीजानि त्रिस्त्रिधा केसरेषु च।
लिखेत्स्वरान् पत्रमध्ये कादिवर्गाष्टकं लिखेत्॥२८०॥
भूपुरं च बहिष्कुर्याल्लिखेत्प्राग्वच्च धारयेत्।
सर्ववाञ्छाप्रदं यन्त्रं सम्पत्सन्ततिदं परम्॥२८१॥

भुवनेश्वरी का अन्य यन्त्र—अब मैं भुवनेश्वरी के अन्य यन्त्र को कहता हूँ। सर्वप्रथम अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में 'आं ह्रीं क्रीं' बीजों को तीन-तीन बार लिखने के बाद केशरों में सोलह स्वरों को लिखना चाहिये। इसके बाद पत्रों के मध्य में कादि अष्टवर्ग को लिखना चाहिये। तत्पश्चात् उसके बाहर भूपुर की रचना करने के बाद पूर्ववत् धारण करना चाहिये। यह श्रेष्ठ यन्त्र समस्त आकांक्षाओं को पूर्ण करने वाला होने के साथ-साथ सम्पत्ति एवं सन्तति प्रदान करने वाला होता है॥२७९-२८१॥

लक्ष्मीप्रदलक्ष्मीयन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि लक्ष्मीयन्त्रं रमाप्रदम्।
भूर्जपत्रे लिखेत्पद्मं कर्णिकायां ध्रुवं न्यसेत्॥२८२॥
तत्पत्रेषु लिखेत्क्रीं ह्रीं क्लीं तथा साध्यनाम च।
तत्केसरेषु संलेख्यं श्रीं ह्रीं क्लीं च दिगष्टके॥२८३॥

लिखेद् द्वादशपत्रेषु क्रमादेकैकमक्षरम्।
वाचं मायां रमां कामं हसरौ इति कूटकम्॥२८४॥
जगत्प्रभूत्यै हृदयं द्वादशार्णो मनुस्त्वयम्।
तद्बाह्ये षोडशदले केसरेषु द्वयं द्वयम्॥२८५॥
ककारादिसकारान्तान् द्वात्रिंशद्वर्णकान् लिखेत्।
तारो ह्रीं कवचं कें कें क्षें क्षें श्रीं ह्रीं ततः परम्॥२८६॥
क्षं ह्रीं फडिति सूर्यार्णो लक्ष्मीमन्त्रः समीरितः।
यन्त्रमेतन्महालक्ष्म्याः प्रोक्तं सम्पत्करं परम्।
सर्वसौभाग्यदं चापि सर्वदुःखविमोचनम्॥२८७॥

धन-प्रदायक लक्ष्मी-यन्त्र—अब मैं धन-प्रदायक लक्ष्मी-यन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। भोजपत्र पर अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में ॐ का विन्यास करना चाहिये। तदनन्तर उसके दलों में 'क्रीं ह्रीं क्लीं' लिखकर साध्य-नाम लिखने के बाद आठो दिशाओं में 'श्री ह्रीं क्ली' लिखना चाहिये। पश्चात् उसके बाहर द्वादशदल कमल बनाकर उसके दलों में 'ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्स्रौ जगत्प्रभूत्यै नमः' इस बारह अक्षरों वाले मन्त्र के एक-एक अक्षरों को लिखना चाहिये।

पुनः उसके बाहर षोड़शदल कमल बनाकर उसके सोलह दलों में क से लेकर स तक के बत्तीस वर्णों में से दो-दो वर्णों को लिखना चाहिये। 'ॐ ह्रीं हुं कें कें क्षें क्षें श्रीं ह्रीं क्षं ह्रीं फट्' यह बारह अक्षरों का लक्ष्मी-मन्त्र कहा गया है। महालक्ष्मी का यह यन्त्र सम्पत्ति प्रदान करने वाला, समस्त सौभाग्य प्रदान करने वाला एवं समस्त दुःखों का विमोचक कहा गया है॥२८२-२८७॥

अश्वारूढायन्त्रमथो प्रोच्यते साधकेष्टदम्।
षट्कोणमध्ये साध्याख्यां भुवनेशीं समालिखेत्॥२८८॥
आं ह्रीं क्रीं ऐं क्लीं च सौं च षड्दलेषु लिखेत्क्रमात्।
बहिर्द्वादशपत्रे च वर्णानेतान् समालिखेत्॥२८९॥
अं आं क्रां हं हि परमेश्वरि स्वाहा ततः परम्।
बहिश्चत्वारि कार्याणि वृत्तान्येवं तु वीथिकाः।
द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स इत्येतैर्बाणबीजैः प्रवेष्टयेत्॥२९०॥
द्वितीयवीथ्यां हृल्लेखा नित्यक्लिन्ने मदद्रवे।
स्वाहेत्येकादशार्णेन वेष्टयेन्मातृकार्णकैः।
तृतीया तद्बहिः कुर्याद् भूपुरे चैव शङ्करम्॥२९१॥

अश्वारूढ़ा-यन्त्र—अब मैं साधक के अभीष्ट को प्रदान करने वाले अश्वारूढ़ा-यन्त्र को कहता हूँ। षट्कोण के मध्य में साध्यनाम-सहित ह्रीं लिखकर छः दलों में क्रमशः आं ह्रीं क्रीं ऐं क्लीं सौं लिखना चाहिये। फिर उसके बाहर द्वादशदल कमल बनाकर उसके दलों में 'अं आं क्रां हं हिं परमेश्वरि स्वाहा' इस मन्त्र के एक-एक अक्षरों को लिखना चाहिये।

तदनन्तर उसके बाहर चार वृत्त बनाकर उसकी प्रथम वीथि में 'द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः' इन पाँच बाणबीजों को, द्वितीय वीथि में 'ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा' इस मन्त्र के ग्यारह वर्णों को एवं तृतीय वीथि में मातृका वर्णों को लिखने के उपरान्त उसके बाहर भूपुर बनाने से यह यन्त्र कल्याणकारक होता है॥२८८-२९१॥

त्वरितायन्त्रकथनम्

अथान्यत्त्वरितायास्तु मनोज्ञं यन्त्रमुच्यते।
एकाशीतिपदं चक्रं लिखित्वा तस्य मध्यमे।
कोष्ठे लिखेच्चकारन्तु साध्यनामास्य चोदरे॥२९२॥
तत्कोष्ठकाच्चतुर्दिक्षु लिखेत्कोष्ठचतुष्टये।
ज्ञां सं चं वं तथैकैकमक्षरं चेशकोणतः॥२९३॥
आग्नेयान्तं लिखेच्छ्लोकं पूर्वोक्तं मध्यमां विना।
एवमेव च नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तं पुनर्लिखेत्॥२९४॥
तद्बाह्ये तु चतुर्दिक्षु मनुमेवं समालिखेत्।
ॐ ह्रीं हं खें च क्षें क्षः स्त्रीं हं क्षं ह्रीं च वषणमनुः॥२९५॥
वृत्तद्वयं तु तद्बाह्ये कृत्वा वीथ्यां समालिखेत्।
चं मालिकां तु तद्बाह्ये कुम्भं कुर्यात् सुशोभनम्॥२९६॥
तस्य मूलमुखे चापि लिखेत्पद्मं समाहितः।
कुङ्कुमैर्लाक्षया चापि लिखितं स्वर्णपट्टके॥२९७॥
धवले वसने वापि लेखन्या स्वर्णजातया।
सम्पूज्य जपसंसिद्धिं प्राप्नुयाद्यत्र तत्र वै॥२९८॥
भवेल्लक्ष्मीरतिप्रीता नीरोगाश्च प्रजास्तथा।
गजाश्वपशवस्त्वन्ये सुखिनः प्राणिनो भृशम्॥२९९॥
भूतप्रेतपिशाचादिपीडासु बिभृयादिदम्।
अलक्ष्मीशान्तये चाशु सिद्धये सर्वसम्पदाम्॥३००॥
कृत्यामृत्युग्रहे दुष्टे सर्वरोगविमुक्तये।

पुत्रपौत्रैश्वर्यदीर्घायुष्यसंसिद्धयेऽपि च।
एतद्यन्त्रोत्तमं प्रोक्तं त्वरिताया घटार्गलम् ॥३०१॥

त्वरिता-यन्त्र—अब त्वरिता के मनोज्ञ यन्त्र को कहता हूँ। इक्यासी कोष्ठों का चक्र बनाकर उसके मध्य कोष्ठ में साध्यनाम-गर्भित 'च' लिखने के बाद उसके चारो दिशाओं में स्थित चार कोष्ठों में क्रमशः 'ज्ञां सं चं वं' इन चार अक्षरों को लिखना चाहिये। तदनन्तर ईशान कोण से अग्निकोण-पर्यन्त मध्यम पंक्ति को छोड़कर पूर्वोक्त श्लोक लिखना चाहिये। इसी प्रकार नैर्ऋत्य से वायव्य कोण तक भी लिखना चाहिये। फिर उसके बाहर चारो दिशाओं में 'ॐ ह्रीं ह्रं खें क्षें क्षः स्त्रीं ह्रं क्षं ह्रीं वषट्' इस मन्त्र को लिखना चाहिये। इसके बाद उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उसकी वीथि में 'चं मालिकां' लिखने के पश्चात् उसके बाहर सुन्दर कुम्भ बनाकर उसके मुखमूल में एकाग्रता-पूर्वक कमल बनाना चाहिये।

इस यन्त्र को स्वर्णपट्ट अथवा धवल वस्त्र पर कुमकुम एवं लाक्षा द्वारा स्वर्ण की लेखनी से लिखकर पूजन करके मन्त्रजप करने से सिद्धि प्राप्त होती है। इस यन्त्र का जिस स्थान पर पूजन एवं जप किया जाता है, वहाँ पर लक्ष्मीं सदा विराजमान रहती हैं; प्रजा निरोग रहती है एवं हाथी, घोड़े आदि पशु एवं अन्य प्राणी अत्यन्त सुखी रहते हैं। भूत, प्रेत, पिशाचादि की पीड़ा में इसे धारण करना चाहिये। दरिद्रता की शान्ति के लिये, समस्त सम्पदाओं की प्राप्ति के लिये, दुष्ट कृत्या एवं मारक ग्रह के साथ-साथ समस्त रोगों से मुक्ति के लिये, पुत्र-पौत्र-ऐश्वर्य एवं दीर्घायु की प्राप्ति के लिये त्वरिता का यह घटार्गल यन्त्र श्रेष्ठ कहा गया है॥२९२-३०१॥

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि त्वरितायन्त्रमुत्तमम्।
कृत्वा तु दिग्दलं पद्मं कर्णिकायां समालिखेत्।
ह्रींकारं तस्य मध्ये तु साध्यनाम समालिखेत् ॥३०२॥
क्रमाद्दलेषु सुलिखेद् ह्रीङ्कारसहितं मनुम्।
त्वरिताया बहिः कुर्यात्षट्कोणं च बहिश्चरेत् ॥३०३॥
भूपुरं यन्त्रमेतत्तु कृत्याद्रोहग्रहान् हरेत्।
चौरव्याघ्रादिकभयं जप्त्वा तद्धारयेद् ध्रुवम्।
रक्षोजयः स्यात्संग्रामे विवादे विजयस्तथा ॥३०४॥

त्वरिता का अन्य यन्त्र—अब मैं त्वरिता के दूसरे उत्तम यन्त्र को कहता हूँ। अष्टदल कमल बनाकर कर्णिका-मध्य में साध्यनाम-गर्भित 'ह्रीं' लिखने के बाद उसके दलों में क्रमशः ह्रीं-सहित मन्त्र को लिखना चाहिये। पुनः उसके बाहर षट्कोण एवं षट्कोण के बाहर भूपुर बनाने से यह यन्त्र सम्पन्न हो जाता है। यह यन्त्र कृत्या एवं

ग्रहप्रकोप को दूर करने वाला होता है। इसके मन्त्र का जप करने पर निश्चित ही चोर, व्याघ्र आदि का भय समाप्त हो जाता है। युद्ध में रक्षा के साथ-साथ जय-प्राप्ति होती है एवं विवाद की स्थिति में भी विजय होती है॥३०२-३०४॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्वरितायाश्च मत्कृतम्।
नवव्यूहाभिधं यन्त्रं नववर्गादिनामके ॥३०५॥
साधकप्रोक्तफलदं तत्प्रकारो निरूप्यते।
कृत्वा चाष्टदलं पद्मं कर्णिकायान्तु ह्रीं लिखेत् ॥३०६॥
तस्य मध्ये लिखेत्तारं तन्मध्ये साध्यनामकम्।
ततश्चाष्टदले लेख्यमौं ह्रीं फट्कारवर्जितम् ॥३०७॥
शेषमन्त्राक्षरं कोष्ठे तत्पद्मं वेष्टयेत्पुनः।
ह्रींकारैस्तस्य बाह्ये तु लेख्या चौंकारशृङ्खला ॥३०८॥
कुम्भं कुर्याच्च तद्बाह्ये प्रथमं यन्त्रमीरितम्।
एवमस्यैव यन्त्रस्य कर्णिकायां समालिखेत् ॥३०९॥
ह्रींकारस्योदरे विद्यात्तृतीयार्णं ससाध्यकम्।
तथा तारादिवर्णांश्च प्राग्वत्पत्रेषु संलिखेत् ॥३१०॥
ह्रींकारमध्ये फट्कारं यदा स्याच्च तदा लिखेत्।
ह्रींकारपुटितान् वर्णानोंकारान्तान् दलेषु च ॥३११॥
नवभेदमिदं यन्त्रं नामवर्गादिभेदतः।
सर्वरक्षाकरं प्रोक्तं दुःखदारिद्र्यनाशनम्।
शुभलक्ष्मीयशोधान्यवाससां पुरुदायकम् ॥३१२॥

त्वरिता का नवव्यूह-नामक यन्त्र—अब मैं स्वयं अपने द्वारा रचित त्वरिता के नववर्गादि-भेद से नवव्यूह-नामक यन्त्र को कहता हूँ; जो कि साधक को कथित फल प्रदान करने वाला है। अब इसके भेदों को मैं कहता हूँ। अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में 'ह्रीं' लिखकर उस ह्रीं के मध्य में 'ॐ' और ॐ के मध्य में साध्य-नाम लिखना चाहिये। इसके बाद अष्टदल में 'ॐ ह्रीं' लिखकर शेष मन्त्राक्षरों को कोष्ठों में लिखकर उस अष्टदल को ह्रीं से वेष्टित कर देना चाहिये। पुनः उसके बाहर ॐकार की शृङ्खला बना देनी चाहिये। फिर उसके बाहर कुम्भ का निर्माण करने से प्रथम प्रकार का यन्त्र पूर्ण हो जाता है।

इसी प्रकार इस यन्त्र की कर्णिका में 'ह्रीं' लिखकर उसके उदर में साध्यनाम-सहित यन्त्र के तृतीय वर्ण को लिखकर दलों में पूर्ववत् ॐकारादि वर्णों को लिखना

चाहिये। इसी प्रकार 'ह्रीं' के मध्य में 'फट्' लिखकर ह्रीं-पुटित मन्त्रवर्णों को दलों में लिखना चाहिये।

इस प्रकार इस यन्त्र के नाम-वर्ग आदि भेद के अनुसार नव भेद होते हैं। ये यन्त्र सब प्रकार से रक्षा करने वाले, दुःख-दारिद्र्य के विनाशक तथा पुरुष को शुभ, लक्ष्मी, यश, धान्य और वस्त्र प्रदान करने वाले होते हैं॥३०५-३१२॥

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि त्वरितायन्त्रमद्भुतम्।
तिर्यगूर्ध्वा द्वादशैव रेखास्तत्र तु कोष्ठगाः।
एकादशानां वर्गेण तुल्या लेख्यास्तथाग्रके॥३१३॥
त्रिशूलानि लिखेन्मध्यकोष्ठके प्रणवं लिखेत्।
तस्य मध्ये साध्यनाम चतुर्दिक्कोष्ठकेषु च॥३१४॥
प्रवेशगत्या च लिखेत्पञ्चपञ्चाक्षराणि च।
क्षं स्त्रीं हुं क्षं तथा फट् च बाह्ये प्राकारके ततः॥३१५॥
ईशानकोणात् सुलिखेत् क्रमात् कोष्ठेषु पञ्चसु।
आमध्यान्तं ध्रुवं वर्म कं खं चं छेति वर्णकान्॥३१६॥
एवं चतुर्षु कोणेषु रान्तं दत्त्वा लिखेत्पुनः।
सव्यासव्ये तथा हं खं वं क्षें वर्णचतुष्टयम्॥३१७॥
एवं द्वितीयप्राकारे तारकोणचतुष्टये।
हुं क्षं चेति त्रयो वर्णा लेख्या वामे च दक्षिणे॥३१८॥
एवं तृतीयप्राकारकोणेषु प्रणवं लिखेत्।
ह्रस्वैर्वर्णैः सव्यमपसव्यं चैव तथा लिखेत्॥३१९॥
पुनश्चतुर्थे प्राकारे लिखेत्तारं च साधकः।
हुंकारं पञ्चमे ध्यात्वा प्राकारे केवलं ध्रुवम्॥३२०॥
पूजनीयाः प्रयत्नेन केवलं भाग्यकाम्यया।
मायाहीनांश्च द्विद्व्यर्णांस्त्वरिताया मनोः क्रमात्॥३२१॥
ईशानकोणात् प्राकारप्रदक्षिणक्रमेण च।
प्रवेशमार्गतस्तुर्यतुल्यसङ्ख्यावृतिर्भवेत्॥३२२॥
मूलमन्त्रेण तद्यन्त्रं सम्पाताज्यपरिप्लुतम्।
ग्रहभीतिहरं नित्यं जयलक्ष्मीयशःप्रदम्॥३२३॥

अन्य त्वरिता-यन्त्र—अब मैं त्वरिता के अन्य अद्भुत यन्त्र को कहता हूँ। तिरछी एवं खड़ी बारह रेखाओं को समान दूरी पर खींचकर ग्यारह वर्गों वाले कोष्ठ

बनाकर रेखाओं के अग्रभाग में त्रिशूल बनाकर मध्यकोष्ठ में साध्यनाम-गर्भित ॐ लिखना चाहिये। चारो दिशाओं के कोष्ठों में प्रवेशगति से पाँच-पाँच वर्णों को लिखने के उपरान्त बाह्य प्राकार में 'क्षं स्त्रीं ह्रं क्षं फट्' लिखना चाहिये। इसके बाद ईशान कोण से प्रारम्भ करके पाँच कोष्ठों में मध्य तक ॐ हुं कं छं खं चं छं वर्णों को लिखना चाहिये। इसी प्रकार चारो कोणों में रकारान्त वर्णों को लिखना चाहिये। फिर बाँयें-दाँयें 'हं ख्रुं वं क्षें' इन चार वर्णों को लिखना चाहिये।

इसी प्रकार दूसरे प्राकार के चारो कोणों में 'ॐ' लिखक्कर बाँयें-दाँयें ह्रं क्षं चं इन तीन वर्णों को लिखना चाहिये। एवमेव तृतीय प्राकार के कोणों में 'ॐ' लिखकर बाँयें-दाँयें ह्रस्व वर्णों को लिखना चाहिये। फिर चौथे प्राकार में 'ॐ' लिखना चाहिये। पाँचवें प्राकार में 'ह्रं' का अंकन करके केवल ॐ का ध्यान करते हुये यत्नपूर्वक केवल भाग्य की कामना से पूजन करना चाहिये। 'ह्रीं' के विना त्वरिता मन्त्र के दो-दो वर्णों को प्राकार के ईशान कोण से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणक्रम से प्रवेशरीति से लिखने से चार आवृत्तियाँ हो जाती हैं। हवन-सम्पात घी से मूल मन्त्र के द्वारा यन्त्र को परिप्लुत करने से यह यन्त्र ग्रहो के भय का हरण करने वाला होने के साथ-साथ जय, लक्ष्मी एवं यश प्रदान करने वाला होता है॥३१३-३२३॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्वरिताया विनिग्रहे।
शत्रूणां यत्क्षमं यन्त्रं यन्न क्वापि च कुण्ठितम्॥३२४॥
एकाशीतिपदं चक्रं लिखेत्तन्मध्यकोष्ठके।
महोदरे साध्यनाम निर्गमे च दिशासु च।
चतसृषु लिखेद्बीजचतुष्कं तन्निगद्यते॥३२५॥
अं आं ब्रूं ह्रूं ततश्चेशकोणतः कालिकामनुम्।
समालिखेच्छ्लोकरूपं तथा नैर्ऋत्यकोणतः॥३२६॥
एवं पुरोक्तवद्यन्त्रं लिखेत्तद्बाह्यतः पुरे।
वेष्टयेद्यममन्त्रेणाभिचार्यश्चेत्पुमान् भवेत्॥३२७॥
अभिचार्या यदा स्त्री स्यात्तदा तुर्यममन्त्रकम्।
कालिकायाश्च मन्त्रेण बाह्यतो वेष्टयेत्ततः।
यरंभ्यां वेष्टयेद्दुःखं कालीयममनू यथा॥३२८॥
कालीमाललमालीकालीनमोक्षक्षमोनली।
मोदोदेननदेदोमोरक्षमत्वत्वमक्षर॥३२९॥
यमाधाररधामायमाटमोटटमोटमा।
वामोमूरिरिमूमोवाटीटलीललललीटटी॥३३०॥

सीसपट्टेऽथ वा श्यावक्स्त्रे वा प्रस्तरेऽपि वा।
विषमष्या समालेख्यं लेखिन्या काकपक्षया ॥३३१॥
काल्यादिशक्तिदेहल्या वामभागे प्रपूरयेत्।
शत्रुर्दुःखमवाप्नोति सद्यो यन्त्रप्रभावतः ॥३३२॥
निखातं चत्वरे तच्चेच्छत्रोर्व्याधिकरं भवेत्।
पूरितं करिवृक्षाधः पुत्रस्त्रीणां वियोगकृत् ॥३३३॥

त्वरिता का शत्रु-निग्रह यन्त्र—अब मैं शत्रुओं के निग्रह में समर्थ और कहीं भी कुण्ठित न होने वाले त्वरिता के यन्त्र को कहता हूँ। इक्यासी कोष्ठों का वर्गाकार चक्र बनाकर उसके बृहदाकार मध्य कोष्ठ में साध्य का नाम लिखकर उसकी चारो दिशाओं में 'अं आं ब्रूं हूं' इन चार बीजों को लिखना चाहिये। इसके बाद ईशान कोण से प्रारम्भ करते हुये श्लोकरूप कालिका-मन्त्र का अंकन करना चाहिये। फिर उसी श्लोकरूप कालिकामन्त्र को नैर्ऋत्य कोण से प्रारम्भ करते हुये लिखना चाहिये। इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकार का यन्त्र बनाकर अभिचार-योग्य यदि पुरुष हो तो यन्त्र को यममन्त्र से वेष्टित कर देना चाहिये।

जिसके विरुद्ध अभिचारकर्म करना हो, वह यदि स्त्री हो तो इस यन्त्र को बाहर से कालिकामन्त्र से वेष्टित करना चाहिये। दुःख को यं रं से वेष्टित करना चाहिये। काली एवं यममन्त्र इस प्रकार है—'कालीमाललमाली-कालीनमोक्षक्षमोनली, मोदोदेन-नदेदोमोरक्षमत्वत्त्वमक्षर' (कालीमन्त्र) एवं 'यमाधाररधामायमाटमोटटमोटमा, वामोमूरिरिमूमोवाटीटलीललीटटी' (यममन्त्र)।

सीसपट्ट, कृष्णवर्ण वस्त्र अथवा पत्थर पर विष की स्याही से काकपक्ष की लेखनी द्वारा इस यन्त्र को लिखना चाहिये। काली आदि शक्ति को दरवाजे के वाम भाग में लिखना चाहिये।

इस यन्त्र के प्रभाव से शत्रु तत्काल ही दुःख प्राप्त करता है। इसे यदि आंगन में गाड़ दिया जाय तो शत्रु व्याधिग्रस्त हो जाता है। इसे करिवृक्ष (करील?) के नीचे गाड़ने से शत्रु का उसके पुत्र-स्त्री से वियोग हो जाता है॥३२४-३३३॥

अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि देशादीनां विनाशनम्।
त्वरितायन्त्रमपरं तूर्द्ध्वाधोऽष्टाष्टकोष्ठकम् ॥३३४॥
पुंसामर्थे लिखेत्पूर्वं साधकः कालिकामनुम्।
पश्चाच्च यममन्त्रार्णैर्वेष्टयेच्चैव तद् ध्रुवम् ॥३३५॥
स्त्रीणामर्थे यदा यन्त्रं यमस्याभ्यन्तरार्णकम्।
कालीमन्त्रेणावगुण्ठ्य यन्त्रमावेष्टयेद्बहिः ॥३३६॥

लेपनीयं विषैस्तच्च हेममक्षिकया पुनः ।
कपिकच्छ्वा पुनर्लिप्त्वा जपितव्यमधोमुखम् ॥३३७॥
लवणं त्र्यूषणं चव्यस्तथा वैकन्तपत्रकम् ।
श्मशानाङ्गारनिम्बाद्यनिर्यासो गेहधूमकः ॥३३८॥
विश्वाख्यं सप्तमं चैतदनुक्तमपि योजयेत् ।
कोष्ठमध्ये तु नामानि बहूनां यत्प्रयोजनम् ॥३३९॥
एतद्यन्त्रं स्थितं यत्र तत्रालक्ष्मीर्गदैः सह ।
उपद्रवा महामारी त्वसाध्या तत्र जायते ॥३४०॥

देशादि का विनाशक त्वरिता-यन्त्र—अब मैं देश आदि का विनाश करने वाले एक दूसरे त्वरिता-यन्त्र को कहता हूँ। यह नीचे-ऊपर आठ-आठ कोष्ठों से बनता है। पुरुष के विरुद्ध अभिचार कर्म में साधक को पहले कालिका-मन्त्र लिखकर उसके बाद यम-मन्त्र से उसे वेष्टित कर देना चाहिये। स्त्री साध्य होने पर पहले यममन्त्र लिखकर उसे कालिकामन्त्र से वेष्टित करना चाहिये। तत्पश्चात् यन्त्र को बाहर से विषलिप्त करने के उपरान्त उस पर पुनः स्वर्णमाक्षिक का लेप लगाना चाहिये। इसके बाद उस पर पुनः कपिकच्छु (केवाँच) का लेप करके नीचे की ओर मुख करके मन्त्रजप करना चाहिये।

नमक, त्र्यूषण, चव्य, वैकन्तपत्र, श्मशान का अङ्गार, निम्ब आदि का निर्यास (गोंद), रसोईघर का धुआँ—ये सातो विष कहे गये हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ जो नहीं कहे गये हैं, उनका भी विषरूप में समावेश कर लेना चाहिये। कोष्ठ के मध्य में प्रयोजन के अनुसार अधिक नामों का भी अंकन करना चाहिये। यह यन्त्र जहाँ पर स्थापित रहता है, वहाँ दरिद्रता एवं रोगों के साथ-साथ महामारी-जैसे असाध्य उपद्रव भी रहते हैं॥३३४-३४०॥

बगलायन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि बगलायन्त्रमुत्तमम् ।
भूर्जपत्रे समालेख्यं हरितालनिशारसैः ॥३४१॥
षट्कोणं तस्य मध्ये तु वलयाकारतो लिखेत् ।
षट्त्रिंशदक्षरो मन्त्रो बगलायाः स उच्यते ॥३४२॥
तारं लज्जां च बगलामुखि सर्वपदं वदेत् ।
दुष्टानामिति चोच्चार्य वाचं मुखमथो पदम् ॥३४३॥
स्तम्भयेति समुच्चार्य जिह्वां कीलय चेत्यपि ।
बुद्धिं विनाशयान्ते तु तारबीजाग्निसुन्दरीः ॥३४४॥

अयं मन्त्रः समुद्दिष्टः साध्यनाम्ना तु वेष्टितः ।
वेष्टयेत्पीतसूत्रेण कुलालस्य गृहं व्रजेत् ॥३४५॥
चक्रे मृदं समारोप्य भ्रामयेद्वृषभं तया ।
कारयेच्च मृदा तत्र हरितालेन लेपयेत् ॥३४६॥
तन्मध्ये निक्षिपेद्यन्त्रं नासायामथ वा ततः ।
अर्चयेतच्चतुष्कालं साध्यनाम्नात्र साधकः ।
दुष्टानां स्तम्भयेद्वाचं साक्षाद्वाचस्पतेरपि ॥३४७॥

बगला-यन्त्र—अब मैं उत्तम बगला-यन्त्र को कहता हूँ। इस यन्त्र को भोजपत्र पर हरताल एवं हल्दी के घोल से लिखना चाहिये। सर्वप्रथम षट्‌कोण बनाकर उसके बीच में छत्तीस अक्षरों वाले बगला-मन्त्र को वलय (कंकण) के आकार में लिखना चाहिये। वह छत्तीस अक्षरों वाला बगला-मन्त्र इस प्रकार है—ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ॐ ह्लीं स्वाहा। इस मन्त्र को साध्य-नाम से वेष्टित कर देना चाहिये। तत्पश्चात् उस यन्त्र पर पीला धागा लपेटकर कुम्हार के घर जाकर चक्र पर मिट्टी रखकर चक्र को घुमाते हुये मिट्टी से वृषभ की आकृति बनाकर उस पर हरिताल का लेप करके उसके मध्य में अथवा उसकी नासिका में यन्त्र को रख देना चाहिये। इसके बाद चारो समय साध्य का नाम लेकर उसका अर्चन करना चाहिये। ऐसा करने पर यह यन्त्र दुष्टों की वाणी को स्तम्भित कर देता है; भले ही वह साक्षात् बृहस्पति ही क्यों न हो॥३४१-३४७॥

अथान्यद्बगलायास्तु वक्ष्यते यन्त्रमुत्तमम् ।
पट्टे वाप्यथ पाषाणे ह्लीङ्कारपुटितं लिखेत् ॥३४८॥
साध्यनामोन्मत्तरसहरिद्रातालकैस्ततः ।
पूर्वमन्त्रेण संवेष्ट्य चोर्ध्वं त्रिवलयं लिखेत् ॥३४९॥
गर्भस्तम्भं गतिस्तम्भं कुर्यादेतन्न संशयः ।
व्याघ्राद्युपद्रवं ग्रामे गतिं तस्यापि वारयेत् ।

बगला का अन्य यन्त्र—अब मैं बगला के अन्य उत्तम यन्त्र को कहता हूँ। धत्तूर-रस, हल्दी एवं हरताल के घोल से वस्त्र अथवा पत्थर पर ह्लीं से पुटित साध्य का नाम लिखकर उसे पूर्वपठित मन्त्र से वेष्टित करने के उपरान्त उसके ऊपर तीन वलयाकृति बनाना चाहिये। यह यन्त्र गर्भ एवं गति को स्तम्भित कर देता है; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये। ग्राम में व्याघ्र आदि का उपद्रव होने पर उनकी गति को भी यह यन्त्र निवारित कर देता है॥३४८-३४९॥

अथान्यद्वक्ष्यते यन्त्रं श्मशानस्थमधोमुखम् ॥३५०॥

घटखर्परमानीय गृहीत्वा वामहस्तके ।
लिखेद्दक्षिणहस्तेन श्मशानाङ्गारकेण च ।
मन्त्रितं निहितं भूमौ रिपूणां स्तम्भयेद् गतिम् ॥३५१॥
प्रेतवस्त्रे लिखेद्यन्त्रमङ्गारेण च तत्पुनः ।
मण्डूकवदने न्यस्येत्पीतवस्त्रेण वेष्टितम् ।
पूजितं पीतपुष्पैस्तद्वाचं संस्तम्भयेद् द्विषाम् ॥३५२॥

अब मैं अन्य यन्त्र को कहता हूँ। श्मशान-स्थित औंधे पड़े घटखर्पर (खपड़ा) को लाकर उसे बाँयें हाथ से पकड़कर दाहिने हाथ से उस पर चिताङ्गार से यन्त्र लिखकर अभिमन्त्रित करके जमीन में दबा देने से यह यन्त्र शत्रुओं की गति को रोक देता है।

पुनः प्रेतवस्त्र पर चिताङ्गार से यन्त्र को लिखकर उसे मेढक के मुख में रखकर मेढ़क को पीले कपड़े में लपेटकर पीले पुष्पों से पूजन करने से शत्रुओं की वाणी अवरुद्ध हो जाती है॥३५०-३५२॥

वाराहीयन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वाराहीयन्त्रमुत्तमम् ।
विलिख्य तारं साध्याख्यां ग्लौंबीजेन प्रवेष्टयेत् ॥३५३॥
ठकारेण च संवेष्ट्य भूपुरे च ततो लिखेत् ।
वज्रादिकं तथा तस्य प्रान्ते प्रणवमालिखेत् ॥३५४॥
वज्रमध्ये साध्यनाम लिखेत्कर्मसमन्वितम् ।
धराबीजेन संवेष्ट्य भूपुरं मूलविद्यया ॥३५५॥
ओमैं ग्लौमैं नमः प्रोच्य ततो भगवतीति च ।
वार्त्तालि वाराहियुगं वाराहमुखि वाग्भवम् ॥३५६॥
ग्लौमैमन्धे अन्धिनीति नमो रुन्धे च रुन्धिनि ।
नमो जृम्भे जृम्भिणीति नमो मोहे च मोहिनि ॥३५७॥
नमः स्तम्भे स्तम्भिनीति नम ऐं ग्लौं च वाग्भवम् ।
सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाग्वदेत् ॥३५८॥
चित्तचक्षुर्मुखगतिजिह्वास्तम्भं कुरुद्वयम् ।
शीघ्रं वश्यं कुरु कुरु ऐंग्लौमैं ठचतुष्ठयम् ।
हुं फट् स्वाहेति मूलाख्या विद्या वेदेशवर्णिका ॥३५९॥
बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वा क्लींबीजेनाद्य वीथिकाम् ।
हुङ्कारेण द्वितीयान्तु वीथिकां परिवेष्टयेत् ॥३६०॥

एतद्यन्त्रं समालेख्यं बाह्यभूपुरसंयुतम्।
कृष्णपुष्पैः समभ्यर्च्य निक्षिपेत्पथि विद्विषः।
रिपुमुच्चाटयेच्छीघ्रं स्थितं वर्षशतादपि ॥३६१॥
वादित्रे मन्त्रमालिख्य वादयेत्समरान्तरे।
सन्त्रस्तास्तद्रवं श्रुत्वा पलायन्ते विरोधिनः ॥३६२॥
अथ चैतत्पताकास्थं युध्यमानस्य वैरिभिः।
दृष्ट्वा च शत्रवः सर्वे पलायन्ते न संशयः ॥३६३॥

वाराही-यन्त्र—अब मैं उत्तम वाराही यन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। साध्यनाम-गर्भित ॐ लिखकर उसमें ग्लौं बीज लिखने के पश्चात् ठकार से उसे वेष्टित करके उसके बाहर भूपुर बनाकर उसमें वज्र बनाने के बाद उसके प्रान्त में 'ॐ' लिखना चाहिये। वज्र के मध्य में कर्म-समन्वित साध्य-नाम लिखकर उसे धराबीज (लं) से वेष्टित करने के बाद भूपुर को मूला विद्या से वेष्टित कर देना चाहिये। एक सौ छः अक्षरों की वह मूला विद्या इस प्रकार है—ॐ ऐं ग्लौं ऐं नमो भगवति वार्त्तालि वार्त्तालि वाराहि वाराहि वाराहमुखि ऐं ग्लौं ऐं अन्धे अन्धिनि नमः रुन्धे रुन्धिनि नमः जृम्भें जृम्भिणि नमः मोहे मोहिनि नमः स्तम्भे स्तम्भिनि नमः ऐं ग्लौं ऐं सर्ववाक्चित्तचक्षुर्मुखगतिजिह्वास्तम्भं कुरु कुरु शीघ्रं वश्यं कुरु कुरु ऐं ग्लौं ऐं ठः ठः ठः ठः हुं फट् स्वाहा।

तत्पश्चात् उसके बाहर तीन वृत्त बनाकर उसकी प्रथम वीथि को 'क्लीं' बीज से एवं द्वितीय वीथि को 'हुं' से चारो ओर से वेष्टित कर देना चाहिये। इसके बाद इस यन्त्र को बाहर से भूपुर से युक्त कर देना चाहिये।

इस प्रकार रचित यन्त्र का कृष्णवर्ण वाले पुष्पों से सम्यक् रूप से अर्चन करने के पश्चात् उसे शत्रुमार्ग पर फेंक देना चाहिये। इससे सौ वर्षों से भी वहाँ रह रहे शत्रु का शीघ्र ही उच्चाटन हो जाता है।

वाद्य पर मन्त्र को लिखकर युद्धक्षेत्र में उसे बजाने से उसकी आवाज को सुनकर सन्त्रस्त शत्रुगण वहाँ से पलायित हो जाते हैं। इसे पताका में लिख कर युद्ध में फहराने से उस पताका को देखते ही युद्धरत समस्त शत्रु भाग खड़े होते हैं; इससे कोई संशय नहीं है॥३५३-३६३॥

स्वप्नवाराहीयन्त्रकथनम्

अथातः स्वप्नवाराह्या यन्त्रं वक्ष्ये च मत्कृतम्।
कृत्वा त्रिकोणं षट्कोणं षोडशारं वसुच्छदम्।
दशारद्वितयं पञ्चदशास्त्रभूगृहद्वयम्॥३६४॥

त्रिकोणे कामबीजस्थं वाग्भवं सम्यगालिखेत्।
षट्कोणे पूर्वतो वाचं च ह्रीं क्रीं श्रीं च हुं तथा ॥३६५॥
लिखेत्षोडशपत्रेषु शक्तीरुच्चाटनीं तथा।
उच्चाटनीश्वरीं चापि शोषिणीं शोषिणीश्वरीम् ॥३६६॥
मारणीं मारणीशीं च भीषणीं भीषणीश्वरीम्।
त्रासिनीं त्रासिनीशीं च कम्पिनीं कम्पिनीश्वरीम् ॥३६७॥
आज्ञाविवर्तिनीं पश्चादाज्ञाविवर्तिनीश्वरीम्।
वस्तुजातेश्वरीं पश्चात् सर्वसम्पादिनीश्वरीम् ॥३६८॥
यजेदष्टदले पद्मे मातृभैंरवसंयुताः।
दशारे विन्यसेत्स्वस्य बीजपूर्वान् दिगीश्वरान् ॥३६९॥
रं लं मं क्षं ततो वं यं सं हं श्रीं ह्रीमिति क्रमात्।
द्वितीये दशपत्रे तु वज्रादीन्यायुधानि च ॥३७०॥
तिथिपत्रे तु वाराह्या मूलमन्त्रं समालिखेत्।
ॐ ह्रीं नमश्च वाराहि घोरे स्वप्नं विसर्गयुक् ॥३७१॥
ठद्वयं वह्निजायान्तो मन्त्रः पञ्चदशाक्षरः।
एतद्यन्त्रं पुनः सम्यङ् मातृकार्णैः प्रवेष्टयेत् ॥३७२॥
भूपुरस्य च कोणेषु चतुर्ष्वपि वरं लिखेत्।
भूर्जादौ यन्त्रमालिख्य जपसम्पातसाधितम् ॥३७३॥
बाह्वादौ विधृतं दद्यान्नृभ्यः कीर्तिं धनं सुखम्।
बहुना किमिहोक्तेन वाराहीष्टं प्रयच्छति ॥३७४॥

स्वप्नवाराही-यन्त्र—अब मैं स्वप्नवाराही के मेरे द्वारा बनाये गये यन्त्र को कहता हूँ। त्रिकोण के बाहर षट्कोण, षट्कोण के बाहर षोडशदल, षोडशदल के बाहर अष्टदल, अष्टदल के बाहर दो दशार, उसके बाहर पंचदशार और उसके बाहर दो भूपुर बनाने से यह यन्त्र निष्पन्न होता है।

त्रिकोण में कामबीज (क्लीं) के भीतर वाग्भवबीज (ऐं) का सम्यक् रूप से अंकन करना चाहिये। इसके बाद षट्कोण में ॐ ऐं ह्रीं क्रीं श्रीं हुं लिखकर षोडश दल में उच्चाटनी, उच्चाटनीश्वरी, शोषिणी, शोषिणीश्वरी, मारणी, मारणीश्वरी, भीषणी, भीषणीश्वरी, त्रासिनी, त्रासिनीश्वरी, कम्पिनी, कम्पिनीश्वरी, आज्ञाविवर्तिनी, आज्ञाविवर्तिनीश्वरी, वस्तुजातेश्वरी एवं सर्वसम्पादिनीश्वरी—इन सोलह शक्तियों को अंकित करना चाहिये।
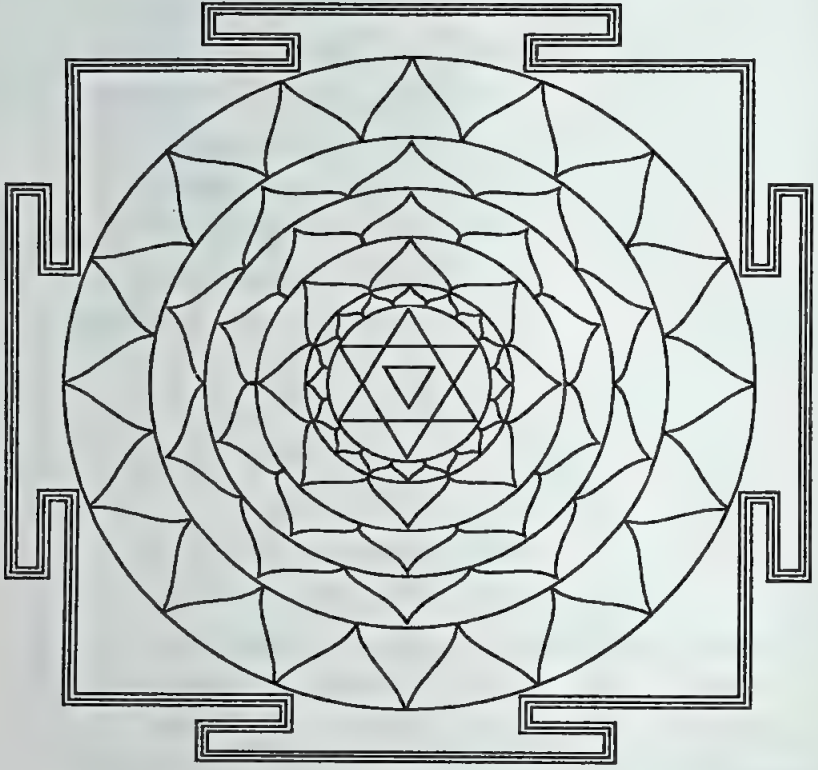
तत्पश्चात् अष्टदल में भैरवों से संयुक्त ब्राह्मी, माहेश्वरी आदि अष्टमातृकाओं का विन्यास करने के बाद प्रथम दशार में बीज-सहित दिक्पालों का विन्यास करना चाहिये। दिक्पालों के बीजमन्त्र क्रमशः 'रं लं मं क्षं वं यं सं हं श्रीं ह्रीं' कहे गये हैं। द्वितीय दशपत्र में वज्रादि दश आयुधों का विन्यास करना चाहिये।

इसके बाद पञ्चदश दल में वाराही के पञ्चदशाक्षर मूल मन्त्र के एक-एक अक्षरों का अंकन करना चाहिये। वह मन्त्र इस प्रकार है—ॐ ह्रीं नमः वाराहि घोरे स्वप्नं ठः ठः स्वाहा। इस यन्त्र को मातृकावर्णों से वेष्टित कर देना चाहिये। तदनन्तर भूपुर के चारो कोणों में 'वरं' लिखना चाहिये।

भोजपत्र पर यन्त्र को लिखकर जप एवं होम-सम्पात घृत से साधित यह यन्त्र भुजा आदि में धारण करने पर मनुष्य को कीर्ति, धन एवं सुख प्रदान करता है। अधिक कहने से क्या लाभ? इस यन्त्र को धारण करने वाले को वाराही उसके समस्त अभीष्ट को प्रदान करती है।।३६४-३७४।।

रक्षाकरमातृकायन्त्रकथनम्

अथ वक्ष्ये मातृकाया यन्त्रं रक्षाकरं परम्।
हकारमध्ये विलिखेत्सकारं साध्यसंयुतम् ॥३७५॥
तद्बाह्येऽष्टदलं पद्मं केशरेषु स्वरान् लिखेत्।
षड्दीर्घयुक्क्षकारेण बहिस्तद्वेष्टयेत् पुरे ॥३७६॥
रोचनाकुङ्कुमाभ्यां च भूर्जपत्रे लिखेदिदम्।
रक्षा भवति यत्रैतद्धनं स्वर्णादिवेष्टितम् ॥३७७॥

रक्षाकर मातृका यन्त्र—अब मैं रक्षा करने वाले मातृका यन्त्र को कहता हूँ। 'ह' के गर्भ में साध्यनाम-गर्भित 'स' लिखकर उसके बाहर अष्टदल बनाकर उसके केशरों में सोलह स्वरों को लिखने के पश्चात् उसे क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः से वेष्टित कर देना चाहिये। इस यन्त्र को गोरोचन और कुमकुम के घोल से भोजपत्र पर लिखना चाहिये। जहाँ यह यन्त्र रहता है, वहाँ स्वर्णादि से ढ़के धन की रक्षा होती है॥३७५-३७७॥

तारायन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तारायन्त्रन्तु सिद्धिदम्।
भूर्ज्जपत्रे लिखेद्यन्त्रमलक्तकरसेन तु ॥३७८॥
षट्कोणमध्ये ॐ ह्रीं रं त्रीं हुं फट् च ससाध्यकम्।
तद्बहिश्चाष्टपत्रस्य केशरेषु द्विषट् स्वरान् ॥३७९॥
पत्रेषु काद्यष्टवर्गान् बहिर्भूपुरमालिखेत्।
पीताम्बरेण संवेष्ट्य बध्नीयात् पट्टसूत्रतः ॥३८०॥
शिशूनां कण्ठतो बद्धं रक्षाकृद् भूतभीतितः।
वामबाहौ तु नारीणां बद्धं पुत्रप्रदं मतम् ॥३८१॥
दक्षबाहौ नृणां बद्धं निर्धनानां धनप्रदम्।
ज्ञानदं ज्ञानमिच्छूनां राज्ञां तु विजयप्रदम् ॥३८२॥

तारा-यन्त्र—अब मैं सिद्धि-प्रदायक तारा-यन्त्र को कहता हूँ। इस यन्त्र को आलता से भोजपत्र पर लिखना चाहिये। षट्कोण के मध्य में साध्यनाम-सहित 'ॐ ह्रीं रं त्रीं हुं फट्' लिखकर उसके बाहर अष्टपत्र के केशरों में बारह स्वरों को लिखना चाहिये। इसके बाद भूपुर में 'क च ट त प य श ल' अष्टवर्गों को लिखकर उसे पीत वस्त्र से वेष्टित करके रेशमी धागे से बाँध देना चाहिये।

यह यन्त्र बालकों के कण्ठ में बाँधने पर भूत-भय से उनकी रक्षा करता है, स्त्रियों

की बाँयीं भुजा में बाँधने से उन्हें पुत्र प्रदान करता है। मनुष्यों की दाहिनी भुजा में बाँधने से यह निर्धनों को धन प्रदान करता है। ज्ञान-पिपासुओं को यह ज्ञान प्रदान करता है एवं राजाओं को विजय दिलाता है॥३७८-३८२॥

वश्यकृद्भुवनेश्वरीयन्त्रकथनम्

अथातो भुवनेश्वर्या वश्यकृद्यन्त्रमुच्यते।
चतुरस्रदलेनैव कुर्यादष्टदलं बुधः॥३८३॥
साध्यनामयुतां मायां लिखेद्यन्त्रं पुनस्तु तत्।
वेष्टयेच्चतुरस्रेण चतुष्कोणेषु वं लिखेत्॥३८४॥
चतुरस्रस्य भूर्जादौ रोचनाकेशरेण च।
जातीकाष्ठस्य लेखन्या वश्यकृत्परमं मतम्॥३८५॥

भुवनेश्वरी का वशीकरण-कारक यन्त्र—अब मैं भुवनेश्वरी के वशीकरण-कारक यन्त्र को कहता हूँ। पहले चतुरस्र दल बनाकर उसके बाहर अष्टदल बनाना चाहिये। यन्त्र के मध्य में साध्यनाम-समन्वित ह्रीं लिखकर उसे चतुरस्र से वेष्टित करके चारो कोणों में 'वं' लिखना चाहिये। यन्त्र को भोजपत्र पर गोरोचन एवं केसर से जातीकाष्ठ की लेखनी से लिखने से यह श्रेष्ठ वशीकरण-कारक कहा गया है॥३८३-३८५॥

सौरयन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सौरं यन्त्रोत्तमं पुनः।
चतुष्पत्रस्य पद्मस्य कर्णिकायां समालिखेत्॥३८६॥
ससाध्यं प्रणवं चां हिं हं सः पत्रेषु संलिखेत्।
एकैकमक्षरं तस्य बाह्येऽष्टदलमालिखेत्॥३८७॥
ॐ घृणिः सूर्य आदित्यः क्रमादष्टदले लिखेत्।
वृत्तद्वयं तु तद्बाह्ये मध्यवीथ्यां समालिखेत्॥३८८॥
भूपुरस्य चतुष्कोणे अं आं ह्रीं ह्रीं समालिखेत्।
सौरं यन्त्रमिदन्नृणां सर्वामयविनाशनम्॥३८९॥
तेजःप्रतापसौभाग्यपुत्रायुष्कीर्तिवर्धनम्।
धनधान्यप्रदं वश्यं सर्वरक्षाकरं परम्॥३९०॥

सूर्य-यन्त्र—अब मैं उत्तम सूर्य-यन्त्र को कहता हूँ। चतुर्दल कमल की कर्णिका में साध्य-सहित ॐ लिखकर उसके चारो पत्रों में क्रमशः 'चां हिं हं सः' लिखना चाहिये। फिर उसके बाहर अष्टदल बनाकर उसके आठ दलों में 'ॐ घृणिः सूर्य

आदित्य:' मन्त्र के एक-एक अक्षरों को क्रमश: लिखना चाहिये। तदनन्तर उसके बाहर दो वृत्त बनाकर वीथि के मध्य में भी ॐ घृणि: सूर्य आदित्य: लिखना चाहिये। इसके बाद भूपुर के चारो कोणों में 'अं आं ह्रीं ह्रीं' लिखने से बना यह सूर्य-यन्त्र मनुष्यों के सभी रोगों का विनाशक होता है।

यह यन्त्र तेज, प्रताप, सौभाग्य, पुत्र, आयु एवं कीर्ति की वृद्धि करने वाला; धन-धान्य प्रदान करने वाला; वशीकरण-कारक एवं सभी प्रकार से रक्षा करने वाला होता है॥३८६-३९०॥

कुरुकुल्लायन्त्रकथनम्

अथात: कुरुकुल्याया यन्त्रं सर्पनिवारणम्।
षट्कोणं विलिखेत्तस्य मध्ये पूर्वादित: क्रमात्॥३९१॥
तारश्च कुरुकुल्लायै स्वाहा सप्ताक्षरो मनु:।
मध्यपूर्वक्रमेणैव लेख्यमेकैकमक्षरम्॥३९२॥
प्रस्तरे लिखितं गेहे पूजितं यन्त्रकं गृहे।
अर्चितं वा धृतं देहे नाशयेद्विविधं विषम्॥३९३॥

सर्प-निवारक कुरुकुल्ला-यन्त्र—अब मैं सर्पों का निवारण करने वाले कुरुकुल्ला-यन्त्र को कहता हूँ। सर्वप्रथम षट्कोण बनाकर उसके मध्य में पूर्वादि क्रम से 'ॐ कुरुकुल्लायै स्वाहा' इस सप्ताक्षर मन्त्र के एक-एक अक्षरों को मध्य-पूर्वक्रम से लिखना चाहिये अर्थात् प्रथम अक्षर को मध्य में लिखकर शेष छ: अक्षरों को छ: कोणों में पूर्वादि क्रम से लिखना चाहिये। पत्थर पर लिखित यन्त्र को पूजित कर घर में रखने अथवा शरीर में धारण करने से यह विविध विषों का नाश करने वाला होता है॥३९१-३९३॥

शत्रुभयावहयन्त्रकथनम्

अथात: सम्प्रवक्ष्यामि यन्त्रं शत्रुभयावहम्।
ॐ ह्रीं च मेखले स्वाहा सप्तार्णोऽयं मनुर्मत:॥३९४॥
लिखेत्प्राग्वच्च षट्कोणे सर्वशत्रुनिवारण:।
सम्यक्सुनिष्ठितो गेहे कलहादि न जायते॥३९५॥

शत्रु-भयावह यन्त्र—अब मैं शत्रु के लिये भयावह यन्त्र को कहता हूँ। 'ॐ ह्रीं मेखले स्वाहा' इस सप्ताक्षर मन्त्र के एक-एक अक्षरों को पूर्ववत् षट्कोण के मध्य में और छ: कोणों में लिखने से यह यन्त्र समस्त शत्रुओं का निवारण करने वाला होता है। इस यन्त्र को घर में सम्यक् रूप से स्थापित करने पर उस घर में कभी भी कलह आदि नहीं होते॥३९४-३९५॥

गर्भस्तम्भकरयन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गर्भस्तम्भकरं परम्।
समन्त्रं त्रिपुरायन्त्रं पञ्चपञ्चालयं लिखेत्॥३९६॥
तिर्यगूर्ध्वं कोष्ठकास्तु जायन्ते तत्र षोडश।
कुर्याद्दलानि चत्वारि कोष्ठार्धं च तथा तले॥३९७॥
ऊर्ध्वकोष्ठचतुष्के तु ह्लं ह्लं ह्लं ह्लं समालिखेत्।
अधःकोष्ठचतुष्के तु हंकारं तु समालिखेत्॥३९८॥
अन्योन्यसम्मुखे लेख्यो ह्लींकारो याम्यसौम्ययोः।
अष्टसप्तमयोर्लेख्यं साध्यनाम्नो द्वयं द्वयम्॥३९९॥
रक्षेति दशमे लेख्यं पुनरेकादशे तथा।
कस्तूरीरोचनाचन्द्रकेशरैर्भूर्ज्जपत्रके।
लिखेद्धूपं ततो दत्त्वा कण्ठे यन्त्रं तु धारयेत्॥४००॥
ऐं ह्लीं श्रीं च समुच्चार्य त्रिपुरायै नमो वदेत्।
गर्भं स्तम्भययुग्मं च डाकिनीदोषमित्यपि।
द्विर्मुञ्चयाग्निगृहिणीकुत्रिवर्णो मनुर्मतः॥४०१॥
एकविंशतितन्तूनां रक्तानां दोरकं चरेत्।
चतुर्दशासितांस्तन्तूंस्तन्तुना तेन बन्धयेत्॥४०२॥
मन्त्रयेत्सप्तवारांश्च धूपो दीपो गुरोस्तथा।
त्रिः कट्यां वेष्टयेद्धार्यागर्भरक्षाकरं परम्॥४०३॥

गर्भस्तम्भन-कारक यन्त्र—अब मैं गर्भ को स्तम्भित करने वाले श्रेष्ठ त्रिपुरा-यन्त्र का मन्त्र-सहित वर्णन करता हूँ। सर्वप्रथम खड़ी एवं तिरछी पाँच-पाँच रेखायें खींचनी चाहिये; इससे तिर्यक् ऊर्ध्व सोलह कोष्ठ बन जाते हैं। नीचे के कोष्ठार्धों से चार दल बनाकर ऊपर के चारो कोष्ठों में 'ह्लं ह्लं ह्लं ह्लं' लिखने के बाद नीचे के चार कोष्ठों में 'हं हं हं हं' लिखना चाहिये। दक्षिण एवं उत्तर में एक-दूसरे के सम्मुख-स्थित कोष्ठों में ह्लीं लिखकर आठवें एवं सातवें कोष्ठों में साध्य-नाम के दो-दो अक्षरों को लिखना चाहिये। दसवें एवं ग्यारहवें कोष्ठ में 'रक्ष रक्ष' लिखना चाहिये। इस यन्त्र को कस्तूरी, गोरोचन, कपूर एवं केसर के घोल से भोजपत्र पर लिखने के बाद धूप देकर कण्ठ में धारण करना चाहिये। तीस अक्षरों का इसका मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ह्लीं श्रीं त्रिपुराये नमः गर्भं स्तम्भय स्तम्भय डाकिनीदोषं मुञ्चय मुञ्चय स्वाहा।

रक्तवर्ण इक्कीस तन्तुओं से दोरक (रस्सी) बनाकर चौदह श्वेत धागों को उस

रस्सी से बाँधने के बाद सात दिनों तक उसे अभिमन्त्रित करते हुये धूप-दीप दिखाना चाहिये। तदनन्तर पत्नी के कमर में उसे तीन बार लपेट देने से यह गर्भ की रक्षा करने वाला होता है॥३९६-४०३॥

वाराहयन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वाराहं यन्त्रमुत्तमम्।
आदौ षट्कोणमालिख्य तन्मध्ये प्रणवं लिखेत्॥४०४॥
प्रणवाभ्यन्तरे ह्रं च ह्रं मध्ये साध्यनामकम्।
सहस्रारे हुं फडिति कोणेष्वेकैकमक्षरम्॥४०५॥
तत्राविस्वपिसञ्ज्वालापदानामुत्तरं वदेत्।
चक्राय स्वाहेति पदं तदा षणमन्त्रसम्भवः॥४०६॥
षट्कोणसन्धिषु च ते लेख्यास्तद्बहिरालिखेत्।
चतुर्दलन्तु क्रमतो द्विद्विवर्णान् दले दले॥४०७॥
नमो नारायणायेति ताराद्योऽष्टाक्षरो मनुः।
केशरेषु लिखित्वाथ पत्रमध्ये ततो लिखेत्॥४०८॥
तारो नमो भगवते वेति बाह्यदले लिखेत्।
राहरूपाय भूर्भुवः संलिखेच्च द्वितीयके॥४०९॥
स्वःपतये भूपतित्वं तृतीये विलिखेद्दले।
मे देहि दापय स्वाहा लिखेत्पत्रे चतुर्थके॥४१०॥

वाराह-यन्त्र—अब मैं वाराह के श्रेष्ठ यन्त्र को कहता हूँ। सर्वप्रथम षट्कोण बनाकर उसके मध्य में ॐ लिखकर उस ॐ के भीतर साध्यनाम-गर्भित 'ह्रं' लिखना चाहिये। इसके बाद षट्कोण के छः कोणों में 'सहस्रारे हुं फट्' मन्त्र के एक-एक अक्षरों को लिखना चाहिये। तत्पश्चात् षट्कोण की सन्धियों में 'अविश्वपिसङ्ग्वालाचक्राय स्वाहा' मन्त्र को लिखना चाहिये। तत्पश्चात् उसके बाहर चतुर्दल कमल बनाकर उसके दलों के केशरों में 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्र के दो-दो वर्णों को क्रमशः लिखकर प्रथम पत्रमध्य में 'ॐ नमो भगवते वा', द्वितीय पत्रमध्य में 'राहरूपाय भूर्भुवः', तृतीय पत्रमध्य में 'स्वःपतये भूपतित्वं' एवं चतुर्थ पत्रमध्य में 'मे देहि दापय स्वाहा' लिखना चाहिये॥४०४-४१०॥

तद्बाह्येऽष्टदलं कृत्वा केशरे द्वन्द्वशः स्वरान्।
दलमध्येऽधुना प्रोक्तवाराहार्णैः कृताक्षरः॥४११॥
प्रत्येकं विलिखेद्यंत्रं लिखेच्चैव द्वितीयके।
तद्बहिः षोडशदले कादिसान्तान् द्विशो लिखेत्॥४१२॥

केशरेषु दलस्यान्ते वाराहार्णद्वयं तथा ।
अधुना चाष्टपत्रन्तु पद्मं तस्य बहिश्चरेत् ॥४१३॥
वृत्तानां पञ्चकं तत्र चतस्रो वीथयो मताः ।
साध्याक्षरेण पुटितं ह्रींबीजेन तृतीयकम् ॥४१४॥
अत्रोक्तकोलमन्त्रेण साध्यस्याख्याविदर्भिता ।
तया संवेष्टयेत्पङ्क्तिं तदग्रे भूपुरं लिखेत् ॥४१५॥
लिखेत्तस्य चतुष्कोणे ग्लौं साध्याख्याविदर्भितम् ।
चतुरस्राद्बहिकुर्य्याद्दश दिक्षु त्रिशूलकान् ।
ह्रीं ग्लौं तेषु लिखेदेतद्यन्त्रं वाराहमद्भुतम् ॥४१६॥

तदनन्तर उसके बाहर अष्टदल कमल बनाकर उसके केशरों में दो-दो स्वरों को लिखने के बाद आठो दलों के मध्य में उपर्युक्त बत्तीस अक्षरों वाले वाराहमन्त्र (ॐ नमो भगवते वाराहरूपाय भूर्भुवःस्वःपतये भूपतित्वं मे देहि दापय स्वाहा) के चार-चार अक्षरों को क्रमशः लिखना चाहिये।

पुनः उसके बाहर षोडशदल कमल बनाकर उसके केशरों में 'क' से 'स' तक के बत्तीस वर्णों को दो-दो के क्रम से लिखकर दलों के मध्य में वाराह-मन्त्र के दो-दो अक्षरों को लिखना चाहिये।

अब उसके बाहर अष्टदल कमल बनाने के बाद उसके बाहर चार वीथियों वाले पाँच वृत्त बनाकर उनमें साध्य-नामाक्षरों से पुटित 'ह्रीं' बीज लिखना चाहिये।

अब साध्य-नामाक्षरों से विदर्भित उपर्युक्त वाराहमन्त्र से इसे वेष्टित करने के अनन्तर उसके बाहर भूपुर बनाकर उसके चारो कोणों में साध्यनाम-विदर्भित 'ग्लौं' लिखना चाहिये। फिर चतुरस्र के बाहर दसो दिशाओं में त्रिशूल बनाकर उनमें 'ह्रीं ग्लौं' लिखने से यह अद्भुत वाराह-यन्त्र बन जाता है॥४११-४१६॥

लाक्षा कृष्णागुरुश्चन्द्रो रोचना कुङ्कुमं हिमम् ।
गोमयस्याम्भसा पिष्टं लेखनद्रव्यमीरितम् ॥४१७॥
लेखनी करकोद्भूता यन्त्रस्यास्य तथोच्यते ।
स्वर्णपत्रेऽखिलावाप्ती राजते चायुराप्यते ॥४१८॥
ग्रामप्राप्तिर्भवेत्ताम्रे पिचुमन्ददले सुखम् ।
भूफले क्षौमवस्त्रे स्याद् भूर्ज्जे संसारमान्यता ॥४१९॥
साधु जप्तमिदं यन्त्रं सम्पातेनाभिषेचितम् ।
जन्मचन्द्रं विना धार्यं तद्भवेदखिलेष्टदम् ॥४२०॥

स्वस्य ध्यात्वा कोलरूपं साध्यदेशे प्रपूरयेत्।
यन्त्रं वराहमावाह्य तत्राङ्गानि प्रपूरयेत्।
दिक्षु मुक्ताशुद्धरागैर्भाजयेन्नात्र संशयः ॥४२१॥

इस यन्त्र को लाख, कृष्ण अगुरु, कपूर, गोरोचन, कुमकुम, चन्दन एवं गोवर को जल के साथ पीसकर बनाये गये घोल से करक (अनार) की लेखनी से स्वर्णपत्र पर लिखने से समस्त मनोकामनाओं की प्राप्ति होती है। उपर्युक्त द्रव्यों से चाँदी के पत्र पर लिखने से आयु की वृद्धि, ताम्बे के पत्र पर लिखने से ग्रामाधिपत्यता, निम्बकाष्ठ के फलक पर लिखने से सुख-प्राप्ति, रेशमी वस्त्र पर लिखने से भू-प्राप्ति एवं भोजपत्र पर लिखने से संसार में मान्यता-प्राप्ति होती है।

साधक द्वारा सम्यक् रूप से मन्त्रजप करने के बाद होम-सम्पात से अभिषिक्त किये गये इस यन्त्र को जन्मचन्द्र से रहित समय में धारण करने पर यह यन्त्र समस्त अभीष्टों को प्रदान करने वाला होता है।

स्वयं को वराहरूप समझते हुये साध्य देश में यन्त्र वनाकर वराह का आवाहन करके वहीं पर उनके अङ्गों को बनाने से साधक दसो दिशाओं में मोतियों के समान विशुद्ध प्रेम को प्राप्त करता है; इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये॥४१७-४२१॥

पृथिवीयन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पृथिवीयन्त्रमद्भुतम्।
अष्टकोणं चाष्टदलं कर्णिकायां समालिखेत्।
ससाध्यं प्रणवं तस्य मध्यकोणाष्टके च ह्लम् ॥४२२॥
अं ह्रीं ग्लौं पूर्वपत्रे च नमो भेति हुताशने।
गवत्यै दक्षिणदले धारिण्यै दक्षपश्चिमे ॥४२३॥
धरणीं पश्चिमे चैव धरे देहि समीरणे।
स्वाहा वायुदले लेख्या ग्लौं ह्लीमोमीशपत्रके ॥४२४॥
वृत्तत्रयन्तु, तद्वाह्ये तत्र वीथीद्वयं भवेत्।
तत्राद्यवीथ्यां प्रणवं नमो भगवते वरा ॥४२५॥
हरूपाय भूर्भुवःसुवःपतये च भूपति।
त्वं मे देहि दापय स्वाहेति देवमितार्णवान्।
परवीथ्यां मातृकार्णांस्ततो भूपुरमालिखेत् ॥४२६॥
गृहान्तः स्थापितं हेमधान्यादेर्वृद्धिकारकम्।
बाहौ धृते जगद्वश्यं पूर्णायुः सुखमेधते ॥४२७॥

पृथिवी-यन्त्र—अब मैं अद्भुत पृथिवी-यन्त्र को कहता हूँ। अष्टकोण और अष्टदल कमल बनाकर कमल-कर्णिका में साध्यनाम-सहित ॐ लिखकर अष्टकोणों में 'ह्रं' लिखना चाहिये। इसके बाद अष्टदल के पूर्वदल में 'अं ह्रीं ग्लौं', अग्निकोण-स्थित दल में 'नमो भ', दक्षिणदल में 'गवत्यै', दक्षिण-पश्चिम दल में 'धारिण्यै', पश्चिमदल में 'धरणी', वायव्य-स्थित दल में 'धरे देहि', उत्तरदल में 'स्वाहा' एवं ईशान कोण-स्थित दल में 'ग्लौं ह्रीं ॐ' का अंकन करना चाहिये।

तत्पश्चात् उसके बाहर दो वीथियों वाले तीन वृत्त बनाकर प्रथम वीथि में 'ॐ नमो भगवते वराहरूपाय भुर्भुवःसुवःपतये भूपतित्वं मे देहि दापय स्वाहा' इस तैंतीस अक्षरों वाले मन्त्र को लिखकर द्वितीय वीथि में मातृकावर्णों को लिखने के पश्चात् उसके बाहर भूपुर बनाना चाहिये।

घर में स्थापित करने पर यह यन्त्र उस घर में सुवर्ण, धान्य आदि की वृद्धि करने वाला होता है। इस यन्त्र को बाँह में धारण करने वाला संसार को अपने वश में कर लेता है एवं अपनी पूर्ण आयु का भोग करते हुये सुखी रहता है॥४२२-४२७॥

नारसिंहयन्त्रकथनम्

अथ यन्त्रं नारसिंहं प्रवक्ष्ये सर्वकामदम्।
आदौ षट्कोणमालिख्य तन्मध्ये प्रणवं चरेत्॥४२८॥
ससाध्यं क्षौं समालिख्य कोणषट्केऽक्षरैककम्।
बाह्ये ध्रुवं जभधृती बहिर्वृत्तद्वयं चरेत्॥४२९॥
तदन्तरालवीथीं तु मायाबीजेन वेष्टयेत्।
तद्बहिर्द्वादशदलं तत्रैकैकाक्षरं न्यसेत्॥४३०॥
तारो नमो भगवते वासुदेवाय तद्बहिः।
वृत्तद्वयान्तरालं च मायाबीजैः प्रवेष्टयेत्॥४३१॥
तद्बहिष्षोडशदले संलिख्य षोडशस्वरान्।
मायां सबिन्दुं च प्राग्वद्वेष्टयेदथ तद्बहिः।
द्वात्रिंशत्पत्रके लेख्यं शलामेकैकमक्षरम्॥४३२॥
उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥४३३॥
बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वा वेष्टयेद्दलमादिमम्।
एवमग्रे तु प्राग्भागे ककारादीन् सबिन्दुकान्॥४३४॥
रकारादीन् दक्षभागे लिखेद्बिन्दुमितांस्ततः।
शकारादीन् वामभागे न्यस्य ह्यौं च तथा लिखेत्॥४३५॥

कर्णयुग्मं च तद्वाह्ये तयोर्लक्षं समालिखेत् ।
एतत्संसाधितं यन्त्रं पूजाहोमजपादिभिः ।
रोगाधिहृद्वस्त्रवर्णचतुर्वर्गफलप्रदम् ॥४३६॥

नारसिंह-यन्त्र—अब मैं समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाले नारसिंह-यन्त्र को कहता हूँ। सर्वप्रथम षट्कोण का अंकन करके उसके मध्य में साध्य-सहित 'क्ष्रौं'-गर्भित 'ॐ' अंकित करने के उपरान्त छः कोणों में 'ध्रु वं ज भ धृ तीं' के एक-एक अक्षरों का अंकन करना चाहिये। तदनन्तर उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उसकी वीथि को मायाबीज (ह्रीं) से वेष्टित कर देना चाहिये।

तत्पश्चात् उसके बाहर द्वादशदल कमल बनाकर उसके बारह दलों में 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्र के एक-एक अक्षरों को क्रमशः अंकित करने के उपरान्त दो वृत्तों के मध्य में मायाबीजों को अंकित कर देना चाहिये।

पुनः उसके बाहर षोडशदल कमल बनाकर उसके दलों में सोलह स्वरों को अंकित कर पूर्ववत् उसके बाहर दो वृत्तों के मध्य 'ह्रीं ह्रीं' अंकित कर उसे घेर देना चाहिये।

पुनः उसके बाहर बत्तीस दल कमल बनाकर उसके दलों में 'उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्' इस श्लोकमन्त्र के एक-एक अक्षरों का अंकन करना चाहिये।

उसके बाहर तीन वृत्त बनाकर उसके आगे पूर्वभाग में बिन्दु-सहित ककारादि वर्णों को, दक्षभाग में बिन्दु-सहित रकारादि वर्णों को एवं वामभाग में बिन्दु-सहित शकारादि वर्णों को न्यस्त करने के साथ-साथ 'ह्रौं' अंकित करना चाहिये। उसके बाहर कर्णयुग्म में 'ळं-क्षं' का अंकन करना चाहिये।

पूजा, होम, जप आदि द्वारा सम्यक् रूप से साधित यह यन्त्र रोगसमूह का हरण करने वाला होने के साथ-साथ वस्त्र, वर्ण एवं धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्रदान करने वाला होता है।।४२८-४३६।।

सर्वबाधाविनाशनयन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सर्वबाधाविनाशनम् ।
प्रागष्टपत्रं रेखाश्च पञ्च स्युर्दक्षिणेतराः ॥४३७॥
द्वात्रिंशत्प्रमितान्येवं जायन्ते कोष्ठकानि तु ।
तस्याग्रिमगता रेखाः फणाकारा विवर्धयेत् ॥४३८॥
पश्चाकारास्तथा रेखाः कुर्यान्नव तु पञ्च च ।
फणासु लेख्यं क्रौं बीजं कोष्ठे श्लोकमनुष्टुभम् ॥४३९॥

साध्यनाम लिखेत्पुच्छे सिद्धं स्याद्यवहोमतः।
समस्तरोगभूतादिकृत्यापीडापहारकम् ॥४४०॥

सर्वबाधा-विनाशक यन्त्र—अब मैं समस्त बाधाओं के विनाशक यन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। ऊपर से नीचे की ओर नव एवं दाँयें से बाँयें की ओर पाँच रेखा खींचने पर बत्तीस कोष्ठ बन जाते है। उन रेखाओं में से आगे वाली रेखा को बढ़ाते हुये फणाकृति वाली बनानी चाहिये। इसके बाद पाँच और नव रेखाओं को पशु की आकृति वाली बनाकर फणाकार रेखाओं के ऊपर 'क्रौं' बीज लिखकर कोष्ठों में पूर्वोक्त 'उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्' इस अनुष्टुप् श्लोक को लिखना चाहिये। तत्पश्चात् पशु के पूँछ में साध्य का नाम लिखकर यव से हवन करने पर यह यन्त्र सिद्ध हो जाता है। यह यन्त्र समस्त रोगों, भूत आदि तथा कृत्या-प्रकोप के कारण होने वाली पीड़ा को दूर करने वाला होता हैं॥४३७-४४०॥

क्षुद्ररोगविनाशनयन्त्रकथनम्

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि क्षुद्ररोगविनाशनम्।
अष्टपत्रकर्णिकायां साध्याख्यां कर्मसंयुताम् ॥४४१॥
क्षौं बीजं च लिखेदष्टपत्रेषु विधिवत्पुनः।
चतुरश्चतुरो वर्णाननुपत्रं ततो लिखेत् ॥४४२॥
भूर्जपत्रेषु मन्त्रेण दीर्घान्तादिसुसाधितम्।
यन्त्रं क्षुद्रामयहरं सर्वरक्षाकरं परम् ॥४४३॥

क्षुद्ररोग-विनाशक यन्त्र—अब मैं क्षुद्र रोगों का विनाश करने वाले यन्त्र को कहता हूँ। भोजपत्र पर अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में साध्य-नाम एवं कर्म-सहित 'क्षौं' बीज लिखकर आठ दलों में पूर्वोक्त अनुष्टुप् श्लोकात्मक मन्त्र के चार-चार अक्षरों को विधिवत् लिखना चाहिये। मन्त्र द्वारा सम्यक् रूप से साधित यह यन्त्र छोटे-छोटे रोगों को हरण करके सर्वविध रक्षा करने वाला होता है॥४४१-४४३॥

महारोगहरयन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महारोगहरं त्विदम्।
वेश्मभूपुरयुग्मेन कोणेषु क्षौं समालिखेत् ॥४४४॥
एतद्यन्त्रमुमे सम्यङ्मण्डलैर्लक्षणान्वितम्।
रम्यं नवपदं कृत्वा कलशं स्थापयेदिह ॥४४५॥
एतन्मन्त्रेण बध्नीयात्कायेन परिपूरयेत्।
वस्त्रयुग्मसमायुक्तमावाह्य नृहरिं विभुम् ॥४४६॥

सम्पूजयेच्चन्दनाद्यैः शान्तिकार्ये मनोहरे।
पूर्वादिदिक्षु चेन्द्रादीन् यजेन्मन्त्री समाहितः।
अष्टाधिकं ततो मन्त्रं सहस्रं प्रजपेत्सुधीः ॥४४७॥
एवं जलैः शोधितं तु यन्त्रं मन्त्रविदुद्धरेत्।
अभिषिञ्चन्मृत्युमुखादवश्यं स निवर्त्तते ॥४४८॥
ग्रहाभिचारभूतादिभयं नश्यति तत्क्षणात्।
भोजयेद्देवताबुद्ध्या भूदेवांस्तोषयेत्तथा ॥४४९॥
प्राणान् प्रदद्याद् गुरवे वित्तशाठ्यविवर्जितः।
स्वकार्यस्यानुसारेण प्रदद्याद्दक्षिणां नरः।
लभेतैहिकसिद्धिं स परत्रापि च मोदते ॥४५०॥

महारोगहर यन्त्र—अब मैं भयंकर रोगों का विनाश करने वाले यन्त्र को कहता हूँ। दो भूपुर बनाकर उसके कोणों में क्षौं लिखकर इस यन्त्र को सम्यक् मण्ड़ल-लक्षणों से युक्त बनाना चाहिये। उसके बाद मनोहर नव पद बनाकर उस पर कलश-स्थापन करने के उपरान्त इस यन्त्र से वस्त्र लपेटकर उस कलश को जल से पूर्ण करने के बाद उसे दो वस्त्रों से वेष्टित करके उसी पर भगवान् नृहरि का आवाहन करके समाहित-चित्त साधक को शान्ति-कार्य में चन्दनादि द्वारा उनकी पूजा करके पूर्वादि दिशाओं में इन्द्रादि दिक्पालों का पूजन करने के बाद मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करना चाहिये। इस प्रकार जल द्वारा शोधित यन्त्र का उद्धार करके उस जल से अभिषेक करने पर मनुष्य मृत्यु के मुख में जाकर भी वापस लौट आता है। ग्रहों के अभिचार एवं भूतादि के भय को यह तत्क्षण नष्ट कर देता है।

इस यन्त्र के साधक को ब्राह्मणों में देवताबुद्धि रखते हुये उन्हें यथेच्छ भोजन कराकर प्राणों से प्रिय वस्तु प्रदान करते हुये सन्तुष्ट करना चाहिये। वित्तशाठ्य से रहित होकर अपने कार्य के अनुसार गुरु को प्रचुर दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये। ऐसा करने वाला मनुष्य इस लोक में अनेकानेक सिद्धियों को प्राप्त करता है एवं शरीरान्त के पश्चात् परलोक में जाकर प्रसन्न होता है॥४४४-४५०॥

नृहरेरद्भुतयन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नृहरेर्यन्त्रमद्भुतम्।
षट्कोणकर्णिकामध्ये हल्लेखां साध्यसंयुताम् ॥४५१॥
आं ह्रीं क्षौं क्रों हुं फडिति षट्कोणेषु षड्लिखेत्।
बहिरष्टदलं कृत्वा स्वरद्वन्द्वं लिखेत्ततः ॥४५२॥

केशरेष्वथ पत्रेषु चतुरर्णान् समालिखेत्।
नृसिंहानुष्टुम्मनोर्बहिर्वृत्तद्वयं लिखेत् ॥४५३॥
उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥४५४॥
वीथ्यां तु मातृकावर्णान् बहिर्भूपुरमालिखेत्।
लिखेच्चिन्तामणेः कूटं कोणेषु प्रागुदीरितम् ॥४५५॥
भूर्ज्जपत्रे लिखित्वेदं धृतं च शिरसा हरेत्।
विषरोगरिपुक्लेशभूतग्रहभयादिकम् ॥४५६॥

नृसिंह का आश्चर्यजनक यन्त्र—अब मैं नृसिंह के अद्भुत यन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। षट्कोण की कर्णिका में साध्य नाम-सहित 'ह्रीं' लिखकर उसके छः कोणों में 'आं ह्रीं क्ष्रौं क्रों हुं फट्' इन छः को एक-एक कर लिखना चाहिये। उसके बाहर अष्टदल बनाकर उसमें दो-दो स्वरों को लिखकर पत्रों में अनुष्टुप् श्लोकात्मक मन्त्र के चार-चार वर्णों को लिखना चाहिये। वह श्लोकात्मक मन्त्र है—उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्। पश्चात् उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उसकी वीथि में मातृकावर्णों को लिखना चाहिये। पुनः उसके बाहर भूपुर बनाकर उसके कोणों में चिन्तामणि कूट को लिखना चाहिये।

इस यन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर शिर पर धारण करने से यह विष-सम्बन्धी रोग, शत्रु-क्लेश, भूत-ग्रह-जनित भय आदि का हरण कर लेता है॥४५१-४५६॥

सुदर्शननृसिंहयन्त्रकथनम्

सुदर्शननृसिंहस्य यन्त्रं सम्प्रोच्यतेऽधुना।
सर्वरोगप्रशमनं सर्वशत्रुविनाशनम् ॥४५७॥
त्रिकोणान्ते तु षट्कोणं तस्य मध्ये च दिग्दलम्।
तत्कर्णिकायां प्रणवं तन्मध्ये चामुकं जहि ॥४५८॥
ततो नवदले लेख्या मन्त्रवर्णा द्विका द्विकाः।
एवं वर्णांस्तु दशमे सहस्रारे च संलिखेत्।
लिखेज्ज्वालावर्त्तिने च क्रौं बीजं च जहिद्वयम् ॥४५९॥
हुं फट् स्वाहेति षट्कोणे क्रौंबीजेन समं लिखेत्।
हुं फट् स्वाहा त्रिकोणेषु तथैव च पदद्वयम्।
जपसम्पातसंसिद्धं रक्षोहृद्रोगशत्रुहृत् ॥४६०॥

सुदर्शन नृसिंह-यन्त्र—अब इस समय समस्त रोगों का शमन करने वाले एवं

समस्त शत्रुओं के विनाशक सुदर्शन नृसिंहयन्त्र को सम्यक् रूप से कहा जा रहा है। सर्वप्रथम त्रिकोण बनाने के बाद षट्कोण की रचना करके उसके बाहर अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में ॐ लिखकर उसके उदर में 'अमुकं जहि' लिखना चाहिये। फिर उसके बाहर नवदल बनाकर उन नव दलों में मन्त्र के दो-दो वर्णों को लिखना चाहिये। इसी प्रकार दसवें सहस्रार में ज्वालावर्तिने क्रौं जहि जहि हुं फट् स्वाहा लिखना चाहिये। षट्कोणों में क्रौं एवं त्रिकोण में 'हुं फट् स्वाहा' लिखकर मन्त्रजप के साथ सम्पात घृत से सिद्ध करने पर यह यन्त्र हृदयरोग से रक्षा करने वाला एवं शत्रु का नाश करने वाला होता है।।४५७-४६०।।

स्त्रीपुत्रमित्रप्रददधिवामनयन्त्रकथनम्

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि यन्त्रं स्त्रीपुत्रमित्रदम्।
दधिवामनदेवस्य वैदिकानां विशेषतः ।।४६१।।
कुर्यात्सम्यक्सप्तदशदलं पद्मं मनोहरम्।
ससाध्यं प्रणवं मध्ये षोडशस्वरवेष्टितम् ।।४६२।।
द्विद्विवर्णान् केशरेषु कालकालीविहीनकान्।
दलेष्वेकैकशो वर्णान् क्रमेण च लिखेन्नमः ।।४६३।।
विष्णवे सुरपतये महाबलाय संलिखेत्।
स्वाहेति च नमोयुक्तं प्रणवाभ्यां च सम्पुटम् ।।४६४।।
श्रीबीजाभ्यां पुरस्कारकृताभ्यां मध्यगं तु तत्।
भूर्जे गन्धाष्टकाद्येन लिखितं श्रीधराप्रदम् ।।४६५।।

दधिवामन-यन्त्र—अब मैं विशेषतया वैदिकों के लिये स्त्री, पुत्र एवं मित्र प्रदान करने वाले दधिवामन देव के यन्त्र को कहता हूँ। सत्रह दलों वाले मनोहर कमल की रचना करके उसके मध्य में सोलह स्वरों से वेष्टित साध्यनाम-सहित ॐ लिखकर केशरों में काल एवं कालि से रहित मन्त्र के दो-दो वर्णों को लिखना चाहिये। दलों में 'ॐ नमः विष्णवे सुरपतये महाबलाय स्वाहा ॐ' मन्त्र के एक-एक अक्षरों को लिखना चाहिये। मन्त्रगत 'सुरपतये' इस मध्यभाग को श्रीं एवं ह्रीं से सम्पुटित करना चाहिये। भोजपत्र पर अष्टगन्ध से लिखित यह यन्त्र लक्ष्मी एवं भूमि प्रदान करने वाला होता है।।४६१-४६५।।

वामनयन्त्रकथनम्

अथातो वक्ष्यते यन्त्रं वामनस्येष्टदायकम्।
कृत्वा चाष्टदलं पद्मं तन्मध्ये साध्यसंयुतम् ।।४६६।।

सुलिख्य प्रणवं तस्य केशरेषु क्रमाद् ध्रुवम्।
नमो नारायणायेति लिखेदेकैकमक्षरम् ॥४६७॥
द्वये दलद्वयं लेख्यं चतुर्वर्णांस्तथाष्टमे।
ॐ नमो विष्णवे ब्रूयात्सुरान्ते पतये महा ॥४६८॥
बलाय वह्निगृहिणी धृतिवर्णो मतो मनुः।
वृत्तत्रयं ततः कुर्यादन्तर्वीथ्यां सुवेष्टयेत् ॥४६९॥
तारो नमो भगवते वासुदेवाय वर्णकैः।
बाह्यवीथ्यां मातृकाभिरिति यन्त्रं प्रकीर्तितम् ॥४७०॥

वामन-यन्त्र—अब अभीष्ट-प्रदायक वामन-यन्त्र को कहा जा रहा है। अष्टदल बनाकर उसके मध्य में साध्य नाम-सहित 'ॐ' लिखकर केशरों में क्रमशः 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्र के एक-एक अक्षरों को लिखना चाहिये। तत्पश्चात् चतुर्दश दल कमल बनाकर अग्रांकित अष्टादश अक्षरों वाले मन्त्र के प्रथम दल में ॐ लिखकर दूसरे दल में दो वर्ण लिखने के उपरान्त प्रतिदल में एक-एक वर्ण लिखते हुये अष्टम दल में चार वर्ण लिखकर शेष मन्त्रवर्णों को एक-एक कर अग्रिम दलों में लिखना चाहिये। ॐ नमो विष्णवे सुरपतये महाबलाय स्वाहा—यह अट्ठारह अक्षरों का मन्त्र कहा गया है। तत्पश्चात् उसके बाहर तीन वृत्त बनाकर प्रथम वीथि में ॐ नमो भगवते वासुदेवाय लिखने के बाद द्वितीय वीथि में मातृकावर्णों को लिखना चाहिये। इस प्रकार यह वामन यन्त्र कहा गया है॥४६६-४७०॥

रामचन्द्रयन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि रामयन्त्रं महाद्भुतम्।
आदौ सुलिख्य षट्कोणं तन्मध्ये वृत्तमालिखेत् ॥४७१॥
रामेतदस्य जठरे साध्यनाम तले लिखेत्।
साधकाख्यां कर्मनाम मध्ये चैव समालिखेत् ॥४७२॥
पार्श्वयोश्च क्रिया लेख्या रेफं वर्णान्तरे लिखेत्।
श्रीबीजं तच्च सकलं प्रणवाभ्यां च सम्पुटेत् ॥४७३॥
ऊर्ध्वाधःसम्मुखाभ्यन्तः षट्कोणेऽङ्गमनून् लिखेत्।
षट्कोणपार्श्वयोर्मायाबीजं चाग्रे च मन्मथम् ॥४७४॥
षट्सन्धिषु च ह्रांबीजं तत्सर्वं वेष्टयेत्पुनः।
वाग्भवेन बहिष्पद्ममष्टपत्रं सकेशरम् ॥४७५॥
केशरेषु स्वरान् वर्णान् पत्रेषु विलिखेत्क्रमात्।
पत्राग्रेषु लिखेन्मालामन्त्रवर्णांस्तथैव च ॥४७६॥

तारो नमो भगवते ङेऽन्तः स्याद्रघुनन्दनः ।
रक्षोघ्नविशदायेति मधुरेति पदं ततः ॥४७७॥
प्रसन्नवदनायेति ततश्चामिततेजसे ।
बलायेति च रामाय विष्णवे नम इत्ययम् ॥४७८॥
सप्तचत्वारिंशदर्णो मालामन्त्र उदीरितः ।

राम-यन्त्र—अब मैं अत्यन्त अद्भुत राम-यन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। सर्वप्रथम षट्कोण की रचना करके उसके मध्य में वृत्त बनाकर उस वृत्त में 'राम' लिखकर वृत्त के नीचे साध्य-नाम एवं मध्य में साधक कर्म का नाम लिखना चाहिये। वृत्त के दोनों ओर क्रिया लिखनी चाहिये। वर्णान्तर में रेफ लिखना चाहिये। फिर सबों को श्रीबीज एवं प्रणव से सम्पुटित कर देना चाहिय। ऊपर, नीचे, सामने एवं भीतर अङ्गमन्त्रों को लिखकर षट्कोण के दोनों ओर 'ह्रीं', आगे 'क्लीं' एवं षट्कोण की सन्धियों में 'ह्रां' बीज लिखकर सबों को 'ऐं' बीज से वेष्टित कर देना चाहिये। इसके बाहर अष्टदल कमल बनाकर उसके केशरों में स्वरवर्णों को क्रमशः लिखकर पत्राग्रों मे मालामन्त्र के वर्णों को लिखना चाहिये। सैंतालीस अक्षरों का मालामन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुरप्रसन्नवदनाय अमिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः॥४७१-४७८॥

तद्बाह्येऽष्टदलं पद्मं श्रीबीजं केशराष्टके ॥४७९॥
पत्रमध्ये लिखेदष्टवर्णानादौ ध्रुवं लिखेत् ।
नमो नारायणायेति तद्बाह्येऽर्कदलं लिखेत् ॥४८०॥
तत्केशरेषु मन्त्रार्णांश्चतुरश्चतुरो लिखेत् ।
अकारादिक्षकारान्तानन्त्यपत्रे च सप्तकम् ॥४८१॥
पत्रमध्ये वासुदेवद्वादशाक्षरवर्णकान् ।
तारो नमो भगवते वासुदेवाय स स्मृतः ॥४८२॥
तद्बहिः षोडशदलं मायां च नृपकेशरैः ।
तारो नमो भगवते रामचन्द्राय हुं च फट् ।
नमः प्रत्येकवर्णं तु दलमध्ये समालिखेत् ॥४८३॥
हंसंभंविंनिं अंशंजं धृंजंविंसुंधरां तथा ।
अंद्यं क्रमाच्च बीजानि बाह्ये षोडशपत्रके ॥४८४॥
प्रत्येकं पत्रमूले तु ह्रीं श्रीं क्लीं विलिखेद् बुधः ।

तदनन्तर उसके बाहर अष्टदल कमल बनाकर उसके आठ केशरों में श्रीबीज लिखकर पत्रों के मध्य में 'ॐ नमो नारायणाय' के आठ वर्णों को लिखना चाहिये।

पश्चात् उसके बाहर द्वादशदल कमल बनाकर उसके केशरों में अकारादि क्षकारान्त मन्त्र के चार-चार वर्णों को लिखकर अन्तिम पत्र में सात वर्ण लिखना चाहिये। पत्रों के मध्य में 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' के बारह अक्षरों को एक-एक करके लिखना चाहिये।

उसके बाहर षोड़श दल कमल बनाकर उसके सोलह दलों में 'ॐ नमो भगवते रामचन्द्राय हुं फट् नमः' मन्त्र के एक-एक वर्णों को 'ह्रीं' के साथ लिखना चाहिये। पुनः षोडश पत्रों के आगे 'हं सं भं विं निं अं शं जं धृं जं विं सुं धं रां अं द्यं' इन सोलह बीजों को लिखना चाहिये। विद्वान् को प्रत्येक पत्रों के मूल में 'ह्रीं श्रीं क्लीं' का अंकन करना चाहिये।।४७९-४८४।।

दलस्य पूर्वभागेषु रामस्यानुष्टुबर्णकान् ।।४८५।।
रामभद्र महेष्वास रघुवर नृपोत्तम ।
दशास्यान्तक मां रक्ष देहि दापय मे श्रियम् ।।४८६।।
दलोत्तरार्धे संलेख्यो नृसिंहानुष्टुभो मनुः ।
पुरा नृसिंहयन्त्रे च कथितोऽत्र निगद्यते ।।४८७।।
उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ।।४८८।।
बहिर्भूपुरमालिख्य वज्राष्टकविवर्जितम् ।
क्ष्रौंबीजं च चतुर्दिक्षु हंबीजं च विदिक्षु च ।।४८९।।
एवं लिखेद्रामयन्त्रं सर्वयन्त्रोत्तमोत्तमम् ।
साधितं जपपूजाभ्यां होमसम्पातकेन च ।।४९०।।
धृतं शिरसि बाहौ वायुरारोग्यप्रदं नृणाम् ।
रक्षाकरं महेशानि महदैश्वर्यवर्धनम् ।।४९१।।
वन्ध्यानामपि नारीणां पुत्रदं सुखदं परम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव गोपनीयं प्रयत्नतः ।।४९२।।

दलों के पूर्व भाग में 'रामभद्र महेष्वास रघुवर नृपोत्तम। दशास्यान्तक मां रक्ष देहि दापय मे श्रियम्' इस अनुष्टुप् मन्त्र के दो-दो अक्षरों को लिखना चाहिये। दलों के उत्तरार्ध में पूर्व में नृसिंहयन्त्र-विवेचन के प्रसङ्ग में कथित 'उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्। नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्' इस अनुष्टुप् मन्त्र को लिखना चाहिये।

तदनन्तर उसके बाहर वज्राष्टक-विवर्जित भूपुर बनाकर उसकी चारो दिशाओं में क्ष्रौं बीज एवं विदिशाओं में हं बीज लिखना चाहिये। इस प्रकार सभी यन्त्रों में उत्तम रामयन्त्र को लिखना चाहिये। जप, पूजा एवं होमसम्पात से साधित इस यन्त्र को मनुष्य

द्वारा अपने शीर्ष अथवा बाहु में धारण करने पर यह आयु एवं आरोग्य प्रदान करने वाला होता है। हे महेशानि! यह यन्त्र मनुष्य की रक्षा करने वाला होने के साथ-साथ महान् ऐश्वर्य-वर्धक भी होता है। वन्ध्या स्त्रियों को यह यन्त्र पुत्र और सुख प्रदान करने वाला होता है; साथ ही यह भुक्ति एवं मुक्तिप्रद भी है; अतः इसे यत्न-पूर्वक गुप्त रखना चाहिये॥४८५-४९२॥

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि रामभद्रस्य मन्त्रकम्।
आदौ सुलिख्य षट्कोणं तन्मध्ये बीजमालिखेत्॥४९३॥
रामित्येतस्य जठरे तले साध्यं समालिखेत्।
साधकाख्यां तदूर्ध्वं तु कर्म मध्ये समालिखेत्॥४९४॥
पार्श्वयोश्च क्रिया लेख्या मनुं पर्णान्तरे लिखेत्।
श्रीबीजेन च रामाय नमो वर्णैः प्रवेष्टयेत्॥४९५॥
तद्बाह्ये हुं जानकीति वल्लभायाग्निगेहिनी।
एतैवर्णैश्च दशभिर्वेष्टयेत्कोणषट्ककम्॥४९६॥
षड्दीर्घानुस्वारयुतं रांबीजं तु समालिखेत्।
ह्रीं श्रीमिति च कोणाग्रे कोणपार्श्वेषु हं लिखेत्॥४९७॥
बहिरष्टदलं कृत्वा केशरे द्वन्द्वशः स्वरान्।
दलेषु पूर्वयन्त्रोक्तमालामन्त्रार्णकान् लिखेत्॥४९८॥
बहिर्वृत्तद्वयान्तःस्थवीथ्यां काद्यैः प्रवेष्टयेत्।
सबिन्दुकैश्च तद्बाह्ये भूपुरे क्ष्रौं दिशासु च॥४९९॥
हुं कोणेषु जपाद्धोमसाधितं यन्त्रमुत्तमम्।
सर्वेष्टफलदं मोक्षदायकं श्रीकरं परम्॥५००॥

अन्य रामभद्र-यन्त्र—अब मैं रामभद्र के दूसरे यन्त्र को कहता हूँ। सर्वप्रथम सुन्दर षट्कोण बनाकर उसके मध्य में 'रां' बीज लिखकर उसके नीचे साध्य-नाम, ऊपर साधक-नाम एवं दोनों के मध्य में कर्म का अंकन करना चाहिये। फिर उसके दोनो ओर क्रिया को लिखकर छः कोणपत्रों में 'श्रीं रामाय नमः' मन्त्र के एक-एक अक्षरों को लिखना चाहिये। पुनः उस षट्कोण को बाहर से 'हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा' इन दस वर्णों से वेष्टित कर देना चाहिये; साथ ही वहीं पर छः दीर्घ स्वर-सहित रां बीज (रां रीं रूं रैं रौं रः) को भी लिखना चाहिये। इसके बाद कोणों के अग्रभाग में 'ह्रीं श्रीं' तथा कोणपार्श्व में 'हं' लिखना चाहिये।

तदनन्तर उसके बाहर अष्टदल कमल बनाकर उसके केशरों में दो-दो स्वरों को लिखकर दलों में पूर्वोक्त मालामन्त्र के वर्णों को लिखना चाहिये। पुनः उसके बाहर दो

वृत्त बनाकर उसकी वीथि में क से क्ष तक के मातृकावर्णों को सानुस्वार लिखकर उसके बाहर भूपुर की चारो दिशाओं में 'क्ष्रौं' बीज एवं कोणों में 'हुं' वीज लिखना चाहिये। जप-हवन से साधित यह उत्तम यन्त्र सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाला, मोक्ष प्रदान करने वाला एवं धन-प्रदायक होता है॥४९३-५००॥

षट्कोणमध्ये प्रणवं प्राग्वत्साध्यादिकं लिखेत्।
मूलार्णान् वसुकोणेषु षड्दीर्घं री च सन्धिषु॥५०१॥
स्ववामपार्श्वे कोणस्य शक्तिबीजं समालिखेत्।
दक्षिणे कामबीजं च बहिरष्टदलं लिखेत्॥५०२॥
द्विशः स्वरान् केशरेषु मालामन्त्रं च पूर्ववत्।
दलमध्ये लिखेत्तस्य बहिर्वृत्तत्रयं चरेत्॥५०३॥
प्राग्यन्त्रोक्तदशार्णेन चान्तर्वीथ्यां प्रवेष्टयेत्।
कादिक्षान्तैर्बहिर्वीथ्यां तद्बहिर्भूपुरं चरेत्॥५०४॥
दिशासु क्ष्रौं हुं विदिक्षु ह्येतत्स्याद्विभवप्रदम्।
कीर्तिलक्ष्मीविजयदं रामयन्त्रं न संशयः॥५०५॥

षट्कोण के मध्य में प्रणव लिखकर अन्य साध्य आदि पूर्ववत् लिखने के बाद मूल मन्त्र के वर्णों को अष्ट कोणों में एवं 'रां रीं रूं रैं रौं रः' को षट्कोण की सन्धियों में लिखकर अपने वाम पार्श्व के कोण में शक्तिबीज (ह्रीं) तथा दक्ष पार्श्व में कामबीज (क्लीं) लिखना चाहिये। पुनः उसके बाहर अष्टदल कमल बनाकर उसके केशरों में दो-दो स्वरवर्णों को लिखकर दलों के मध्य में पूर्ववत् मालामन्त्र के वर्णों को लिखना चाहिये।

इसके बाद तीन वृत्त बनाकर उसके प्रथम वीथि में पूर्व यन्त्र में कथित दशाक्षर मन्त्रवर्णों को एवं द्वितीय वीथि में क से क्ष तक के मातृकावर्णों को लिखकर भूपुर की चारो दिशाओं में क्ष्रौं तथा विदिशाओं में हुं लिखना चाहिये। इस प्रकार रचित यह रामयन्त्र वैभव-प्रदायक होने के साथ-साथ कीर्ति, लक्ष्मी एवं विजय-प्रदायक होता है; इसमें कोई संशय नहीं है॥५०१-५०५॥

श्रीकृष्णगोपालयन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यन्त्रं गोपालदैवतम्।
षट्कोणान्तर्लिखेत्कामं साध्याख्यां कर्मसंयुताम्॥५०६॥
तारो नमश्च कृष्णाय लिखेद्वर्णांश्च षड्दले।
बाह्ये दशदलं पद्मं तत्किञ्जल्केषु संलिखेत्॥५०७॥

द्विशो वर्णान् ङेन्तेदामोदरोस्यब्जगदाभृते।
वासुदेवाय कवचं फट् स्वाहान्तो नखाक्षरः॥५०८॥
गोपीजनवल्लभाय स्वाहैकैकं तु पत्रके।
कोणेषु मदनाक्रान्तं भूगृहं रचयेत्ततः॥५०९॥
रोचनालिखितं यन्त्रं सम्यग्वर्णशलाकया।
हेमपट्टे विधानेन गुटिकीकृत्य पूजितम्॥५१०॥
सम्यक्सम्पातसंसिक्तं दशार्णेनाभिमन्त्रितम्।
गोपालयन्त्रमेतद्धि पुण्यवद्भिः करे धृतम्॥५११॥
शान्त्यादिवश्यकर्मादौ समर्थं चापि गोपितम्।
कीर्त्यादिवर्धनं चैव पुत्रपौत्रविवर्धनम्॥५१२॥
कान्तिरक्षाकरं नृणां सर्वसौभाग्यसौख्यदम्।
अपस्मारादिकरक्षोभूतक्रान्तादिमस्तके।
एतद्यन्त्रं स्मरेत्तत्र जपेन्नश्यति तत्क्षणात्॥५१३॥

श्रीकृष्णगोपाल-यन्त्र—अब मैं गोपाल-यन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। सर्वप्रथम षट्कोण बनाकर उसके मध्य में साध्य-नाम एवं कर्म-सहित कामबीज (क्लीं) लिखने के बाद छः दलों में 'ॐ नमः कृष्णाय' मन्त्र के एक-एक अक्षरों को लिखना चाहिये। तदनन्तर उसके बाहर दशदल कमल बनाकर उसके किंजल्कों में 'नमो दामोदराय गदाभृते वासुदेवाय हुं फट् स्वाहा' इस विंशाक्षर मन्त्र के दो-दो अक्षरों को लिखकर पत्रों में 'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' इस दशाक्षर मन्त्र के एक-एक अक्षरों को लिखना चाहिये। इसके बाद कोणों में 'क्लीं' लिखकर भूपुर की रचना करनी चाहिये।

स्वर्णपट्ट पर स्वर्णशलाका द्वारा गोरोचन से विधि-पूर्वक सम्यक् प्रकार से लिखित इस यन्त्र को गुटिका-स्वरूप बनाकर पूजन करके सम्पातघृत से सम्यक् रूप से संसिक्त करने के बाद दशाक्षर मन्त्र से अभिमन्त्रित इस गोपाल-यन्त्र को पुण्यकर्मा लोगों द्वारा भुजा में धारण करने से वे गुप्त रूप से शान्ति, वशीकरण आदि कर्मों को करने में समर्थ होते हैं।

यह यन्त्र धारण करने वाले की कीर्ति आदि को बढ़ाता है एवं उसके पुत्र-पौत्रों की वृद्धि करता है। यह यन्त्र मनुष्यों के कान्ति की रक्षा करता है एवं उन्हें समस्त सौभाग्य प्रदान करता है। अपस्मार (मिर्गी) आदि रोग एवं राक्षसों, भूतों आदि द्वारा शीर्षभाग के आक्रान्त होने की दशा में इस यन्त्र का स्मरण करते हुये मन्त्र का जप करने से तत्क्षण ही वे सभी नष्ट हो जाते हैं॥५०६-५१३॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कृष्णयन्त्रं महाद्भुतम् ।
आदौ वृत्तं समालिख्य तन्मध्ये ग्लौं समालिखेत् ॥५१४॥
बीजमध्ये साध्यनाम बहिः षट्कोणमालिखेत् ।
तारो नमश्च कृष्णाय दलेष्वेकैकमक्षरम् ॥५१५॥
दलसन्धौ लिखेन्मन्त्रानाग्नेयीतः क्रमादिमान् ।
आचक्राय ततः स्वाहा प्रथमोऽयं षडक्षरः ॥५१६॥
विचक्राय ततः स्वाहा द्वितीयोऽपि षडक्षरः ।
सुचक्राय ततः स्वाहा तृतीयोऽपि षडक्षरः ॥५१७॥
शैलरक्षणचक्राय स्वाहान्तोऽयं दशाक्षरः ।
असुरान्तकचक्राय स्वाहान्तोऽयं नवाक्षरः ॥५१८॥
कामबीजेन षष्ठं तु सन्धिमेवं प्रपूरयेत् ।

कृष्ण-यन्त्र—अब मैं अत्यन्त अद्भुत कृष्ण-यन्त्र को कहता हूँ। सर्वप्रथम एक वृत बनाकर उसके मध्य में 'ग्लौं' बीज लिखने के बाद उस बीज के मध्य में साध्य का नाम लिखकर उसके बाहर षट्कोण बनाकर उसके छः दलों में 'ॐ नमः कृष्णाय' मन्त्र के एक-एक अक्षरों का अंकन करने के बाद दलों की सन्धियों में अग्निकोण से प्रारम्भ करके क्रमशः इन मन्त्रों को लिखना चाहिये—प्रथम दलसन्धि में षडक्षर मन्त्र 'आचक्राय स्वाहा', द्वितीय दलसन्धि में षडक्षर मन्त्र 'विचक्राय स्वाहा', तृतीय दलसन्धि में षडक्षर मन्त्र 'सुचक्राय स्वाहा', चतुर्थ दलसन्धि में दशाक्षर मन्त्र 'शैलरक्षणचक्राय स्वाहा' एवं पञ्चम दलसन्धि में नवाक्षर मन्त्र 'असुरान्तकचक्राय स्वाहा' तथा षष्ठ दलसन्धि में कामबीज (क्लीं) लिखना चाहिये॥५१४-५१८॥

तद्बाह्येऽष्टादशदलं तत्र वर्णानिमाँल्लिखेत् ॥५१९॥
क्लीं कृष्णायपदं चोक्त्वा गोविन्दाय पदं लिखेत् ।
गोपीजनवल्लभेति य स्वाहा धृतिवर्णकः ।
तद्बाह्येऽजिनपत्रेषु कृष्णगायत्रिवर्णकान् ॥५२०॥
दामोदराय विद्महे वासुदेवाय धीमहि ।
तन्नः कृष्णः प्रचोदयात् ॥५२१॥
तद्बाह्ये वृत्तयुग्मान्तर्वीथ्यां कामेन वेष्टयेत् ।
तद्बाह्ये दन्तपत्रेषु गोपालानुष्टुभं लिखेत् ॥५२२॥
ग्लौं क्लीं नमो भगवते नन्दपुत्राय बालक ।
वपुषे श्यामलायेति गोपीजनपदं वदेत् ।
वल्लभायाग्निजायान्तो मन्त्रोऽयं रदवर्णकः ॥५२३॥

वेदवृत्तानि तद्बाह्ये तत्र वीथीत्रयं भवेत्।
यत्तु गोपालमन्त्रे तु ग्लौं तेनाद्यां प्रवेष्टयेत्।
द्वितीयां मातृकावर्णैरांक्रींभ्यां च तृतीयिकाम् ॥५२४॥
यन्त्रराजमिदं ख्यातं सर्वविश्वविमोहनम्।
धर्मकामार्थफलदं शत्रून् दस्यून् निवारयेत् ॥५२५॥
कीर्तिकान्तिधरारोग्यरक्षाश्रीविजयप्रदम्।
पुत्रपौत्रप्रदं लोके भूतवेतालनाशनम् ॥५२६॥
लिखितं भूर्जपत्रादौ पूजितं चाभिमन्त्रितम्।
धारितं सर्वकामानां सिद्धिदं नात्र संशयः।
अभक्ताय न दातव्यं न देवब्राह्मणद्विषे ॥५२७॥

उसके बाहर अट्ठारह दलों वाला कमल बनाकर उसके दलों में 'क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' इस अष्टादशाक्षर मन्त्र के एक-एक अक्षरों को लिखना चाहिये। फिर उसके बाहर चौबीस दलों वाला कमल बनाकर उसके दलों में 'दामोदराय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नः कृष्णः प्रचोदयात्' इस कृष्णगायत्री के एक-एक अक्षरों को प्रत्येक दल में लिखना चाहिये। पुनः उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उसकी वीथि को क्लीं से वेष्टित करने के बाद उसके बाहर बत्तीस दलों वाला कमल बनाकर उसके दलों में गोपाल के अनुष्टुप् मन्त्र 'ग्लौं क्लीं नमो भगवते नन्दपुत्राय बालकवपुषे श्यामलाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' के एक-एक वर्णों को लिखना चाहिये। फिर उसके बाहर चार वृत्त बनाकर उसकी तीन वीथियों में से प्रथम वीथि में आदि में 'ग्लौं' लगाकर गोपाल मन्त्र, द्वितीय वीथि में मातृकावर्ण एवं तृतीय वीथि में 'आं क्रीं' लिखना चाहिये।

समस्त विश्व को विमोहित करने वाला यह विख्यात यन्त्रराज धर्म, अर्थ एवं काम को प्रदान करने वाला तथा शत्रुओं एवं दस्युओं का निवारक है। यह कीर्ति, कान्ति, भूमि, आरोग्य, रक्षा, लक्ष्मी एवं विजय प्रदान करने वाला है। इस लोक में यह पुत्र-पौत्र प्रदान करने वाला तथा भूत-वेताल का विनाशक है।

भोजपत्र आदि पर लिखकर पूजित एवं अभिमन्त्रित यह यन्त्र धारण करने पर समस्त कामनाओं की सिद्धि प्रदान करने वाला है; इसमें कोई संशय नहीं है। इस यन्त्र को अभक्तों तथा देव एवं ब्राह्मण-विरोधियों को कभी नहीं देना चाहिये॥५१९-५२७॥

सर्वोपद्रवनाशककृष्णयन्त्रकथनम्

अथान्यत्कृष्णयन्त्रं तु सर्वोपद्रवनाशनम्।
लिखेत्ससाध्यं ग्लौंबीजं तच्च सम्यक्प्रवेष्टयेत् ॥५२८॥

अष्टादशार्णमन्त्रेण षट्कोणं च तदूर्ध्वतः।
कोणेषु संलिखेद्वर्णान् पत्राक्षरमनोस्तथा ॥५२९॥
तद्बाह्ये दिग्दलं कृत्वा दशवर्णान् क्रमाल्लिखेत्।
गोपीजनवल्लभाय स्वाहा मन्त्रो दशाक्षरः ॥५३०॥
वृत्तद्वयान्तर्वीथ्यां तु कामबीजेन वेष्टयेत्।
तद्बहिष्षोडशदलं केशरेषु स्वरान् लिखेत् ॥५३१॥
दलेषु षोडशार्णेषु वर्णान् प्राग्वत्तथा लिखेत्।
द्वात्रिंशत्कदलं बाह्ये कादिसान्तांश्च वर्णकान्।
तत्केशरेषु चालिख्य दलमध्ये च पूर्ववत् ॥५३२॥
द्वात्रिंशदर्णमन्त्रस्य लिखेद्वर्णांस्ततो बहिः।
वृत्तद्वयान्तर्वीथ्यामांक्रांबीजाभ्यां प्रवेष्टयेत् ॥५३३॥
चतुरस्त्रद्वयेनाथ तद्बाह्येऽष्टास्त्रमालिखेत्।
अष्टार्णैकैकवर्णन्तु मनुमेतं सुदुर्लभम् ॥५३४॥
चौरमारीभयहरं चतुर्वर्गफलप्रदम्।

सर्वोपद्रव-नाशक कृष्ण-यन्त्र—अब मैं समस्त उपद्रवों का विनाश करने वाले कृष्ण के अन्य यन्त्र को कहता हूँ। एक वृत्त बनाकर उसमें साध्य-सहित 'ग्लौं' बीज लिखने के बाद उसे अष्टादशाक्षर मन्त्र से वेष्टित कर देना चाहिये। तत्पश्चात् उसके बाहर षट्कोण बनाकर उसके कोणों में ऊपर से आरम्भ करते हुये षडक्षर मन्त्र (क्लीं कृष्णाय स्वाहा) के एक-एक अक्षरों को लिखने के अनन्तर उसके बाहर दशदल कमल बनाकर उसके दलों में दशाक्षर मन्त्र 'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' के दस वर्णों को क्रमशः लिखना चाहिये। पुनः उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उसकी वीथि को 'क्लीं' से वेष्टित कर देना चाहिये।

तत्पश्चात् उसके बाहर षोड़शदल कमल बनाकर उसके केशरों में सोलह स्वरों को लिखकर दलों में पूर्ववत् षोडशाक्षर मन्त्र के वर्णों को लिखना चाहिये। फिर उसके बाहर बत्तीस दलों वाला कमल बनाकर उसके केशरों में क से स तक के बत्तीस वर्णों को लिखकर दलों में बत्तीस अक्षरों वाले मन्त्र के एक-एक वर्णों को क्रमशः लिखना चाहिये। पुनः उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उसकी वीथि में 'आं क्रां' बीज लिखकर उसे वेष्टित कर देना चाहिये।

तदनन्तर उसके बाहर दो चतुरस्त्र बनाने के बाद पुनः उसके बाहर अष्टास्त्र बनाकर उसके आठो कोणों में अत्यन्त दुर्लभ अष्टाक्षर मन्त्र के एक-एक वर्णों को लिखना चाहिये। यह यन्त्र चोरी एवं महामारी के भय को दूर करने वाला तथा चतुवर्ग के फल को देने वाला होता है॥५२८-५३४॥

हनुमद्यन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि हनुमद्यन्त्रमद्भुतम्।
पद्ममष्टदलं कृत्वा कर्णिकायां समालिखेत्॥५३५॥
ससाध्यं प्रणवं तत्र केशरेषु द्विशः स्वरान्।
दलेषु संलिखेद्वर्णांश्चतुरश्चतुरो मनोः॥५३६॥
नमो भगवते तुभ्यमाञ्जनेय हनूमते।
खगपतङ्गाद्युपद्रवान्नाशयपदं वदेत्॥५३७॥
हुं फट् स्वाहा रदार्णोऽयं बहिर्वृत्तद्वयं चरेत्।
तदन्तरालवीथ्यां तु कादिक्षान्तान् लिखेत्क्रमात्॥५३८॥
वृत्तत्रयं बहिः कृत्वा तत्र मालामनुं लिखेत्।
नमो भगवते प्रोच्य वदेद्धनुमते ततः॥५३९॥
पवनात्मजाय वदेद्राघवप्राण संवदेत्।
प्रदाय लक्ष्मणेत्युक्त्वा दात्रे सीतापदं वदेत्॥५४०॥
दुःखविनाशनायेति रावणेति पदं ततः।
दर्पहायेति सर्वेति ङेऽन्तो दुष्टविनाशनः॥५४१॥
रिपुचौरव्याघ्रवराहकृमि चोच्चरेत्तथा।
पतङ्गादिदुष्टसत्त्वविनाशनपदं वदेत्॥५४२॥
ङेऽन्तं हुं फट् ततः स्वाहा द्व्यशीत्यर्णो मनुर्मतः।
तद्बहिश्चतुरस्रं च यन्त्रमेतत्सुलेखयेत्॥५४३॥
भूर्ज्जे ताम्रेऽथ वा वस्त्रे भित्तौ पट्टे शिलातले।
गोगले वाथ संलेख्यं रोचनानाभिकेशरैः॥५४४॥
रक्षः कृत्याग्रहादीनां पीडारोगादिभीतिहृत्।
बालग्रहामयव्याघ्रभयाद्यं क्रमशो हरेत्॥५४५॥

हनुमत् यन्त्र—अब मैं अद्भुत हनुमद् यन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। सर्वप्रथम अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में साध्यनाम-सहित ॐ लिखकर उसके केशरों में दो-दो स्वरों को लिखने के बाद दलों में 'नमो भगवते तुभ्यमाञ्जनेय हनूमते खगपतङ्गाद्युपद्रवान् नाशय हुं फट् स्वाहा' इस बत्तीस अक्षरों वाले मन्त्र के चार-चार अक्षरों को क्रमशः लिखना चाहिये। पुनः उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उसकी वीथि में क से क्ष तक के वर्णों को क्रमशः लिखना चाहिये।

पुनः उसके बाहर तीन वृत्त बनाकर उसकी वीथि में 'नमो भगवते हनुमते

पवनात्मजाय राघवप्राणप्रदाय लक्ष्मणदात्रे सीतादु:खविनाशनाय रावणदर्पहाय सर्वदुष्टविनाशनाय रिपुचौरव्याघ्रवराहकृमिपतङ्गादिदुष्टसत्त्व-विनाशनाय हुं फट् स्वाहा' इस बयासी अक्षरों वाले मालामन्त्र को लिखकर उसके बाहर चतुरस्त्र बनाने से यह यन्त्र पूर्ण हो जाता है।

इस यन्त्र को भोजपत्र, ताम्रपत्र, वस्त्र, भित्ती (दीवाल), काष्ठफलक, शिलातल अथवा गौ के गले पर रोचन, कस्तूरी एवं केशर के मिश्रित घोल से सुन्दर रीति से लिखना चाहिये। यह यन्त्र राक्षस, कृत्या, ग्रह आदि की पीड़ा एवं रोग आदि के भय को दूर करने वाला होता है। यह क्रमशः बालग्रह, आमय-भय, व्याघ्र-भय आदि का भी हरण करता है।।५३५-५४५।।

दक्षिणामूर्तियन्त्रकथनम्

अथातो दक्षिणामूर्तेर्यन्त्रं वक्ष्ये चमत्कृतम्।
कुर्यादष्टदलं पद्मं कर्णिकायां समालिखेत्।।५४६।।
साध्यनाम स्वरा लेख्या द्वन्द्वशः केशरेषु च।
ततश्चाद्यदले लेख्या अउमास्तारवर्णकाः।।५४७।।
पत्रे द्वितीये नमो भ तृतीये गवते लिखेत्।
चतुर्थे दक्षिणा चेति मूर्तये पञ्चमे लिखेत्।।५४८।।
मह्यं मे विलिखेत्षष्ठे सप्तमे धां प्रयेति च।
च्छ स्वाहेत्यष्टमे पत्रे वृत्तयोरन्तरे ततः।।५४९।।
वीथ्यां कादिकवर्णांश्च तद्बाह्ये भूपुरं लिखेत्।
चतुष्कोणे चतुर्थस्य वर्गस्य प्रथमाक्षरम्।।५५०।।
चतुर्थे च द्वितीयं च तृतीयं वह्निकोणतः।
लिखेच्छैवाष्टगन्धेन भूर्जे धार्यं सदा गले।।५५१।।
पुत्रपौत्रप्रदं नृणामायुःश्रीविजयप्रदम्।
कृत्यापस्मारभूतादिनाशनं सर्वकामदम्।।५५२।।

दक्षिणामूर्त्ति-यन्त्र—अब मैं दक्षिणामूर्ति के चमत्कारी यन्त्र को कहता हूँ। अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में साध्य-नाम का अंकन करने के बाद केशरों में दो-दो स्वरों को लिखकर आठ दलों में से पहले दल में 'अ ऊ मा ॐ', दूसरे दल में 'नमो भ', तीसरे दल में 'गवते', चौथे दल में 'दक्षिणा', पाँचवें दल में 'मूर्त्तये', छठे दल में 'मह्यं मे', सातवें दल में 'धां प्रय' एवं आठवें दल में 'च्छ स्वाहा' का अंकन करना चाहिये।

तदनन्तर उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उसके अन्तराल में क से क्ष तक के

मातृकावर्णों को लिखने के बाद उसके बाहर भूपुर बनाकर उसके चारो कोणों में अग्निकोण से आरम्भ करते हुये क्रमशः चतुर्थ वर्ग का प्रथम अक्षर (त), प्रथम वर्ग का प्रथम अक्षर (क), तृतीय वर्ग का प्रथम अक्षर (ट) एवं द्वितीय वर्ग का प्रथम अक्षर (च) लिखना चाहिये।

इस यन्त्र को भोजपत्र पर शैव अष्टगन्ध से लिखकर सदैव गले में धारण करना चाहिये। यह यन्त्र मनुष्यों को पुत्र, पौत्र, आयु, लक्ष्मी एवं विजय प्रदान करने वाला; कृत्या, अपस्मार (मिर्गी) एवं भूत आदि का विनाश करने वाला तथा समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है।।५४६-५५२।।

मृत्युञ्जययन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यन्त्रं मृत्युञ्जयाभिधम्।
लिखेदष्टदलं पद्मं कर्णिकायां लिखेद् ध्रुवम्।।५५३।।
तस्य मध्ये साध्यनाम दिग्दलेषु च क्षं लिखेत्।
विदिक्पत्रेषु सो लेख्यो बहिर्भूपुरमालिखेत्।।५५४।।
वकारं तच्चतुर्दिक्षु उकारं विदिशासु च।
यन्त्रं मृत्युञ्जयस्येदं जपहोमादिसाधितम्।।५५५।।
धृतं भूर्ज्जेऽथ वा कण्ठे बाहौ कोष्ठे प्रकोष्ठके।
ग्रहरोगविषादीनां नाशनं मृत्युभञ्जनम्।।५५६।।
कीर्तिध्यादीन्दिराकान्तिपुत्रदं नात्र संशयः।
एतद्यः पूजयेन्नित्यमपमृत्युर्विनश्यति।।५५७।।

मृत्युञ्जय-यन्त्र—अब मैं मृत्युञ्जय-नामक यन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में साध्यनाम-गर्भित 'ॐ' लिखने के बाद उसके दिग्दलों में 'क्ष' एवं विदिग्दलों (कोणों) में 'सो' लिखना चाहिये। फिर उसके बाहर भूपुर बनाकर उसके चारो दिशाओं में 'व' एवं विदिशाओं में 'उ' लिखना चाहिये। भोजपत्र पर रचित मृत्युञ्जय का यह यन्त्र जप, होम आदि द्वारा सिद्ध किया जाता है।

इस सिद्ध मृत्युञ्जय यन्त्र को कण्ठ अथवा बाँह में धारण करने पर यह यन्त्र ग्रह, रोग, विष आदि का विनाशक तथा मृत्यु का भञ्जक होता है। यह कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी, कान्ति एवं पुत्र प्रदान करने वाला होता है; इसमें कोई संशय नहीं है। जो साधक प्रतिदिन इसका पूजन करता है, वह अपमृत्यु को विनष्ट कर देता है अर्थात् कभी भी उसकी अकालमृत्यु नहीं होती।।५५३-५५७।।

बटुकभैरवयन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यन्त्रं बटुकभैरवम्।
आलिख्याष्टदलं पद्मं कर्णिकायां समालिखेत् ॥५५८॥
श्रीं ह्रीं क्लीं क्षौं चाष्टदले द्विरावृत्त्या समालिखेत्।
बटुकायेत्यक्षराणि बहिः षोडशपत्रके ॥५५९॥
आपदुद्धारणायेति द्विर्वदेद्बटुकाय ह्रीम्।
लेख्य एकैकवर्णोऽयं बहिःषोडशपत्रके ॥५६०॥
लिखेत्स्वरांश्च तद्बाह्ये द्वात्रिंशद्दलकं लिखेत्।
ककारादिसकारान्तान् बहिर्भुपूरमालिखेत्॥५६१॥
जयदं सुखदं वश्यं मृत्युदारिद्र्यनाशनम्।
श्रीपदं दुरितव्याधिदुष्टग्रहनिकर्त्तनम् ॥५६२॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते
दैवतयन्त्रकथनं नाम त्रयस्त्रिंशःप्रकाशः॥३३॥

●

बटुकभैरव-यन्त्र—अब मैं बटुकभैरव के यन्त्र को कहता हूँ। सर्वप्रथम अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में 'श्रीं ह्रीं क्रीं क्षौं' लिखकर आठ दलों में भी 'बटुकाय' इन चार अक्षरों को दो आवृत्ति में लिखना चाहिये। तदनन्तर उसके बाहर षोडशदल कमल बनाकर उसके सोलह दलों में 'आपदुद्धारणाय बटुकाय बटुकाय ह्रीं' के एक-एक अक्षरों एवं स्वरों को भी लिखना चाहिये। पुनः उसके बाहर बत्तीस दल कमल बनाकर उसके दलों में में क से स तक के बत्तीस अक्षरों को लिखने के बाद उसके बाहर भूपुर बनाना चाहिये।

यह यन्त्र विजय-प्रद, सुख-प्रद, वशीकरण-कारक, मृत्यु एवं दारिद्र्य का विनाशक, लक्ष्मी-प्रद तथा दुःसाध्य व्याधियों एवं दुष्ट ग्रहों का निकर्त्तन करने (काटकर फेंक देने) वाला है॥५५८-५६१॥

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिवप्रणीत
'दैवतयन्त्रकथन'-नामक त्रयस्त्रिंश प्रकाश
पूर्णता को प्राप्त हुआ।

●

चतुस्त्रिंशत्तमः प्रकाशः

(हनुमन्मन्त्रकथनम्)

श्रीदेव्युवाच

ब्रूह्येकादशरुद्रस्य मन्त्रान् हनुमतो मम।
राक्षसा निहता येन त्वत्तो लब्धवरा अपि॥१॥

श्रीदेवी ने कहा—हे देव! अब राक्षसों का विनाश करने वाले एवं स्वयं आपसे वर प्राप्त करने वाले एकादश रुद्र हनुमान् के मन्त्रों को मुझसे कहें॥१॥

श्रीशिव उवाच

वक्ष्यामि तव देवेशि मन्त्रान् हनूमतस्त्विह।
चातुर्युगान्तानाकल्पसंस्थितान् सिद्धिदायकान्॥२॥

श्रीशिव ने कहा—हे देवेशि! अब मैं यहाँ तुम्हारे लिये हनुमान् के मन्त्रों को कहता हूँ, जो चार युगों वाली इस सृष्टि में प्रलय-पर्यन्त विद्यमान हैं एवं सिद्धि प्रदान करने वाले हैं॥२॥

हनुमन्मालामन्त्रकथनम्

तत्रादौ कथयिष्यामि मालामन्त्रं महाफलम्।
तारं च वाग्भवं लक्ष्मीं ह्रीं ह्रीं हुं च समुच्चरेत्॥३॥
आद्यन्ताकृतिवेदार्णं बिन्दुरुद्रस्वरान्वितैः।
हनुमतस्त्वाद्यकूटमेतत्साधक उच्चरेत्।
प्रकृत्याकृतिवेदार्णैर्बिन्दुरुद्रस्वरान्वितैः॥४॥
द्वितीयकूटमेतत् स्यादाद्यन्तकृतवर्णकैः॥५॥
विसर्गेन्द्रस्वरोपेतैस्तृतीयं कूटमुच्यते।
आद्यन्तसिद्धाकृत्यब्धिवर्णैरीशस्वरान्वितैः॥६॥
सानुस्वारैस्तुर्यकूटं ससाध्यैः पञ्चमं मतम्।
तारो नमो हनुमते प्रकटेति पराक्रम॥७॥
आक्रान्तदिङ्मण्डलयशोवितानधवेति च।
लीकृतजगत्रितय वज्रदेह ज्वलेति च॥८॥
दग्निसूर्येति कोटीति सूप्रभतनूरुह।
रुद्रावतार लंकेति पुरीदहन संवदेत्॥९॥

उदधिलङ्घन दश प्रोच्य चाथ शिरः कृतान् ।
तक सीताश्वासनेति वदेद्वायुसुतेति च ॥१०॥
अञ्जनीगर्भसम्भूत श्रीरामलक्ष्मणा वदेत् ।
नन्दकर कपिसैन्यप्राकति ततो वदेत् ॥११॥
सुग्रीवसख्यकारेति णेति वालिनिबर्हण ।
कारणद्रोणपर्वेति तोत्पाटनपदं वदेत् ॥१२॥
अशोकवनमित्युक्त्वा दारणेति पदं वदेत् ।
अक्षकुमारकच्छेति दहनेति पदं ततः ॥१३॥
रक्षोवरसमूहेति विभेदनपदं वदेत् ।
ब्रह्मास्त्रेति ब्रह्मशक्तिग्रहमुक्त्वा च लक्ष्मण ॥१४॥
शक्तिभेदविदारेति ण विशल्योषधीति च ।
समानयन बालेति संवदेद्भानुमण्डल ॥१५॥
ग्रसनोग्रमेघनादहोमविध्वंसनेति च ।
इन्द्रजिद्वधकारेति णेति सीतेति रञ्जक ॥१६॥
राक्षसीसङ्घवीथ्यन्ते दारणेति वदेत्पदम् ।
कुम्भकर्णादिवधकृत्परायणपदं वदेत् ॥१७॥
रामभक्ति तदित्युक्त्वा वदेत्परपदं ततः ।
समुद्रव्योमपदतः समुल्लङ्घन संवदेत् ॥१८॥
महासामर्थ्येति महातेजःपुञ्जविराजमा ।
न स्वामिवचनेत्युक्त्वा सम्पादितार्जनेति च ॥१९॥
संयुगेति सहायेति कुमारेति ग्रहा वदेत् ।
दीन्भीषय पदान्ते शब्दोदयपदं वदेत् ॥२०॥
दक्षिणाशेति मार्त्तण्डमेरुपर्वतवीथिका ।
चलेति सकलेत्युक्त्वा मन्त्रागपदतो वदेत् ॥२१॥
माचार्य मम सर्वग्रहविनाशन सर्व च ।
ज्वरोच्चाटन सर्वेति वदेच्च विघ्ननाशन ॥२२॥
सर्वापत्ति पदान्ते तु निवारणपदं वदेत् ।
सर्वदुष्टपदान्ते च निबर्हणपदं तथा ॥२३॥
सर्वव्याघ्रादिपदतो वदेद्भयनिवारण ।
सर्वशत्रुच्छेदनेति वदेन्मम परस्य च ॥२४॥

त्रियुगेतिपदान्ते तु नपुंस्त्रीतिपदं वदेत्।
नपुंसकात्मकं सर्वान्ते वदेज्जीवंपदं ततः ॥२५॥
वशयद्वयमानय ममाज्ञाकारकं वदेत्।
सम्पादयद्वयम् नानामुनिध्येय ततो वदेत् ॥२६॥
सर्वेति मम सम्प्रोच्य परिवारान्ममेति च।
सेवकान्कुरुयुग्मं च सर्वशस्त्रास्त्र संवदेत् ॥२७॥
विषान्विध्वंसयेति द्विरुक्त्वा ह्रां त्रितयं वदेत्।
हाहाहा पाहि पाहीति प्रागुक्तं कूटपञ्चकम् ॥२८॥
विलोमेन वदेत्सर्वं सर्वशत्रुहरं परम्।
वृत्तानि परसैन्यानि क्षोभयद्वितयं मम ॥२९॥
सर्वकार्यजातमिति साधयद्वितयं ततः।
सर्वदुष्टदुर्जनेति मुख्यानि कीलयद्वयम् ॥३०॥
यत्रय ह्रांत्रयं त्रीन्ह्रीं हुंफट्त्रयं चाग्निगेहिनी।
मालामन्त्रो हनुमतो नागनागशराक्षरः ॥३१॥

उनमें से सर्वप्रथम मैं महान् फल प्रदान करने वाले मालामन्त्र को कहता हूँ। पाँच सौ अट्ठासी अक्षरों वाला हनुमान् का मालामन्त्र इस प्रकार है—ॐ ऐं श्रीं ह्रां ह्रीं ह्रूं हस्ख्फ्रें ख्फ्रें हस्त्रौं हस्ख्फ्रें हसौं ॐ नमो हनुमते प्रकटपराक्रम आक्रान्तदिङ्मण्डल यशोवितान धवलीकृत जगत्त्रितय वज्रदेह ज्वलदग्निसूर्यकोटिसमप्रभ तनूरुह रुद्रावतार लङ्कापुरीदहनोदधिलङ्घन दशशिरःकृतान्तक सीताश्वासन वायुसुत अञ्जनीगर्भसम्भूत श्रीरामलक्ष्मणानन्दकर कपिसैन्यप्राक् सुग्रीवसख्यकारण बालिनिवर्हणकारण द्रोण-पर्वतोत्पाटन अशोकवनदारण अक्षकुमारकच्छदहन रक्षोवरसमूहविभेदन ब्रह्मास्त्रब्रह्म-शक्तिग्रह लक्ष्मणशक्तिभेदविदारण विशल्यौषधिसमानयन बालभानुमण्डलग्रसन उग्रमेघनादहोमविध्वंसन इन्द्रजिद्वधकारण सीतारक्षक राक्षसीसङ्घवीथिदारण कुम्भ-कर्णादिवधकृत्परायण रामभक्तितत्पर समुद्रव्योमसमुल्लङ्घन महासामर्थ्यमहातेजः-पुञ्जविराजमान स्वामिवचनसम्पादितार्जनसंयुगसहाय कुमारग्रहादीन् भीषय शब्दोदय दक्षिणाशामार्तण्डमेरुपर्वतवीथिकाचल सकलमन्त्रागमाचार्य मम सर्वग्रहविनाशन सर्वज्वरोच्चाटन सर्वविघ्ननाशन सर्वापत्तिनिवारण सर्वदुष्टनिवर्हण सर्वव्याघ्रादिभय-निवारण सर्वशत्रुच्छेदन मम परस्य च त्रियुगपुंस्त्रीनपुंसकात्मकं सर्वजीवं वशय वशय आनय आय ममाज्ञाकारकं सम्पादय सम्पादय नानामुनिध्येय सर्वपरिवारान् मम सेवकान् कुरु कुरु सर्वशस्त्रास्त्रविषान् विध्वंसय विध्वंसय ह्रां ह्रां ह्रं हा हा हा पाहि पाहि हसौं हस्ख्फ्रें हस्त्रौं ख्फ्रें हस्फ्रें सर्वशत्रून् हन हन परवृत्तानि परसैन्यानि क्षोभय क्षोभय मम

सर्वकार्यजातं साधय साधय सर्वदुष्टदुर्जनमुख्यानि कीलय कीलय घें घें घें ह्रां ह्रां ह्रां ह्रीं ह्रीं ह्रीं हुं फट् हुं फट् हुं फट् स्वाहा॥३-३१॥

मुनिरस्येश्वरश्छन्दोऽनुष्टुब्देवोऽञ्जनीसुतः ।
तारो नमो भगवते चाञ्जनेयाय हृन्मनुः ॥३२॥

तारो नमो भगवते शिरः स्याद्भद्रमूर्त्तये ।
तारो नमो भगवते शिखा वायुसुताय च ॥३३॥

अग्निगर्भाय भद्राय कवचस्य मनुः स्मृतः ।
तारो नमो भगवते रामदूताय नेत्रके ।
ब्रह्मास्त्रनिवारणाय नरवक्त्रास्त्रमन्त्रकः ॥३४॥

स्फटिकाभं स्वर्णकान्तिं द्विभुजञ्च कृताञ्जलिम् ।
कुण्डलद्वयसंशोभि मुखाम्भोजं स्मरेन्मुहुः ॥३५॥

पूजा तु वैष्णवे पीठे शैवे वा चावृतिं विना ।
अयुतञ्च पुरश्चर्य्या रामस्याग्रे शिवस्य च ॥३६॥

घृतहोमः सहस्रं स्यात्तर्पणादि ततश्चरेत् ।

इस मालामन्त्र के ऋषि ईश्वर, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता अञ्जनीसुत कहे गये हैं। इसका षडंगन्यास इस प्रकार किया जाता है—ॐ नमो भगवते आञ्जनेयाय हृदयाय नमः, ॐ नमो भगवते भद्रमूर्तये शिरसे स्वाहा, ॐ नमो भगवते वायुसुताय शिखायै वषट्, अग्निगर्भाय भद्राय कवचाय हुम्, ॐ नमो भगवते रामदूताय नेत्रत्रयाय वौषट्, ब्रह्मास्त्रनिवारणाय नरवक्त्राय अस्त्राय फट्। षडङ्गन्यास करने के बाद स्फटिक-सदृश आभा वाले, स्वर्ण-कान्तियुक्त, अञ्जलिबद्ध दो हाथों वाले, दो कुण्डलों से सुशोभित मुखकमल वाले हनुमान् का बार-बार स्मरण करना चाहिये।

इसके पुरश्चरण-हेतु वैष्णव अथवा शैव पीठ पर राम अथवा शिव के सम्मुख एक बार पूजन करके मन्त्र का दस हजार जप करने के बाद घृत से एक हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करने के पश्चात् तर्पण आदि करना चाहिये॥३२-३६॥

जितेन्द्रियश्चणकाशी हनुमद्ध्यानतत्परः ॥३७॥

क्षुद्ररोगनिवृत्त्यर्थमष्टोत्तरशतं जपेत् ।
एकान्ते त्रिदिनैर्जापान्नाशो भूतादिकस्य च ।
महारोगादिशान्त्यर्थमष्टोत्तरसहस्रकम् ॥३८॥

सप्ताहं नियताहारो जपेन्निशि च राक्षसाः ।
ग्रहादयश्च नश्यन्ति तथा सर्वेऽभिचारकाः ॥३९॥

जयादिकाङ्क्षी त्वयुतं जपेन्निशि यतासनः ।
ध्यायंस्तथाक्षहन्तारं संग्रामे विजयेत च ॥४०॥
सम्यक्च रामसुग्रीवसन्धिकारं जपेत्स्मरन् ।
अयुतेनाप्यविच्छिन्नसन्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥४१॥

क्षुद्र रोगों की निवृत्ति के लिये साधक को जितेन्द्रिय रहकर चना-भक्षण करते हुये हनुमान के ध्यान में तत्पर होकर मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। इसी प्रकार तीन दिनों तक एकान्त में मन्त्रजप करने से भूत आदि का विनाश होता है।

महारोगादि की शान्ति के लिये स्वल्प आहार ग्रहण करते हुये सात दिनों तक मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करना चाहिये। इससे दुष्ट ग्रहों तथा समस्त अभिचार कर्मों का भी निवारण होता है।

जय आदि की आकांक्षा वाले को रात्रि में नियत आसन पर बैठकर अक्षहन्ता का ध्यान करते हुये जप करने से संग्राम में विजय की प्राप्ति होती है। राम एवं सुग्रीव में सन्धि कराने वाले का सम्यक् रूप से स्मरण करते हुये मन्त्र का दस हजार जप करने से परस्पर शत्रुभूत दो लोगों में निश्चित ही सन्धि हो जाती है॥३७-४१॥

हनुमद्द्वादशाक्षरमन्त्रविधानम्

लङ्काया दाहकं ध्यायन्द्वादशार्णं महामनुम् ।
हौंबीजं सम्यगुच्चार्य पूर्वोक्तं कूटपञ्चकम् ॥४२॥
हनूमते नमो मन्त्रो रामचन्द्रो मुनिः स्मृतः ।
जगतीछन्द उद्दिष्टं हनुमान्देवता मतः ॥४३॥
बीजं तु पञ्चमं कूटं शक्तिराद्यं तु कूटकम् ।
षड्बीजैः प्रथमैर्न्यासः षडङ्गोऽस्य प्रकीर्तितः ॥४४॥
मूर्ध्नि भाले दृशोरास्ये कण्ठे बाहौ तथा हृदि ।
कुक्षौ नाभौ ध्वजे जान्वोः पादयोर्मनुवर्णकान् ॥४५॥
मूर्ध्नि भाले मुखे हृत्के नाभावूर्वोश्च जङ्घयोः ।
पादयोर्विन्यसेन्मन्त्रं षड्बीजानि पदद्वयम् ॥४६॥
बालार्काभं त्रिभुवनक्षोभकं सर्वराक्षसान् ।
नादेनैव त्रासयन्तं सुग्रीवादिकसेवितम् ॥४७॥
सुन्दरं रामचरणध्यानं ध्यायेत्समीरजम् ।

हनुमान् का द्वादशाक्षर मन्त्र—लंका का दहन करने वाले का ध्यान करते हुये द्वादशाक्षर महामन्त्र का जप करना चाहिये। 'हौं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं हनूमते

नमः' इस द्वादशाक्षर मन्त्र के ऋषि रामचन्द्र, छन्द जगती एवं देवता हनुमान् कहे गये हैं। 'ह्सौं' बीज है और ह्स्फ्रें शक्ति हैं। मन्त्रोक्त छः बीजों से इसका प्रथम षडङ्गन्यास कहा गया है।

इसके बाद मूर्धा, ललाट, नेत्र, मुख, कण्ठ, बाहु, हृदय, कुक्षि, नाभि, लिङ्ग, जानु एवं पादद्वय में मन्त्रवर्णों का न्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् मूर्धा, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, ऊरु, जङ्घा एवं पादद्वय में मन्त्र के छः बीज-सहित दो पदों का न्यास करना चाहिये।

तदनन्तर बालसूर्य के सदृश आभा वाले, तीनों भुवनों को क्षुब्ध करने वाले, समस्त राक्षसों को अपनी ध्वनि से ही त्रस्त करने वाले, सुग्रीव आदि द्वारा सेवित, सुन्दर रामचरणों का ध्यान करने वाले वायुपुत्र का ध्यान करना चाहिये॥४२-४७॥

यजेदष्टदले पद्मे केशरेष्वङ्गपूजनम् ॥४८॥
रामभक्तो महातेजाः कपिराजो महाबलः ।
द्रोणाद्रिहारको मेरुपीठकार्चनकारकः ॥४९॥
दक्षिणाशाभास्करश्च सर्वविघ्ननिवारकः ।
एवं पत्रेषु नामानि पूजयेच्च दलाग्रतः ॥५०॥
सुग्रीवमङ्गदं नीलं जाम्बवन्तं तथा नलम् ।
सुषेणं द्विविदं चैव भुपूरे दिक्पतीनपि ॥५१॥
तद्बाह्ये च तदस्त्राणि जपेदर्कसहस्रकम् ।
दशांशं जुहुयाद् व्रीहीन् पयोदध्याज्यसंयुतान् ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत्तथा ॥५२॥

तत्पश्चात् अष्टदल कमल में यजन करना चाहिये। केशरों में अङ्गपूजन करने के बाद दलों में रामभक्त, महातेजा, कपिराज, महाबल, द्रोणाद्रिहारक, मेरुपीठकार्चन कारक, दक्षिणाशाभास्कर एवं सर्वविघ्ननिवारक का इनके नाममन्त्रों से पूजन करने के उपरान्त दलों के आगे सुग्रीव, अङ्गद, नील, जाम्बवन्त, नल, सुषेण, द्विविद का पूजन करना चाहिये। इसके बाद भूपुर में दस दिक्पालों का यजन करने के पश्चात् भूपुर के बाहर उनके वज्रादि आयुधों का अर्चन करने के बाद मन्त्र का बारह हजार जप करके गोदुग्ध, दधि एवं गोघृत-मिश्रित व्रीहि से कृत जप का दशांश हवन करना चाहिये। इस प्रकार सिद्ध मन्त्र वाले साधक को प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये॥४८-५२॥

कदलीबीजपूराम्रफलैर्हुत्वा सहस्रकम् ।
द्वाविंशतिं ब्रह्मचारी विप्रान् सम्भोजयेत्ततः ॥५३॥

एवं कृते महाभूतविषचौराद्युपद्रवाः ।
नश्यन्ति क्षणमात्रेण विद्विष्टग्रहदानवाः ।
अष्टोत्तरशतेनाभिमन्त्रितं विषनाशनम् ॥५४॥
रात्रौ नवशतं मन्त्रं जपेद्दशदिनावधि ।
यो नरस्तस्य नश्यन्ति राजशत्रुप्रभीतयः ॥५५॥
अभिचारे तु भूतोत्थज्वरे तन्मन्त्रमन्त्रितैः ।
भस्मभिः सलिलैर्वापि ताडयेज्ज्वरिणं क्रुधा ॥५६॥
दिनत्रयाज्ज्वरान्मुक्तः सुखं संलभते नरः ।
तन्मन्त्रितौषधं जग्ध्वा नीरोगो जायते ध्रुवम् ॥५७॥

केला, बीजपूर एवं आम्रफलों से बाईस हजार हवन करके ब्रह्मचारी ब्राह्मणों को भोजन कराने से उग्र भूत, विष, चोर, दुष्ट ग्रह, दानव आदि के उपद्रव तत्क्षण ही शान्त हो जाते हैं। मन्त्र के एक सौ आठ जप से अभिमन्त्रित जल विष-नाशक होता है। जो मनुष्य दस दिनों तक प्रतिदिन रात्रि में मन्त्र का नौ सौ जप करता है, उसके राजशत्रु का भय नष्ट हो जाता है।

अभिचारकर्म एवं भूत के प्रभाव से होने वाले ज्वर में इस द्वादशाक्षर मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म अथवा जल द्वारा तीन दिनों तक क्रुद्ध होकर ज्वराविष्ट व्यक्ति का ताड़न करने से वह ज्वर-मुक्त होकर सुख प्राप्त करता है। इस मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित औषध-भक्षण से रोगी नीरोग हो जाता है॥५३-५७॥

तन्मन्त्रितं पयः पीत्वा योद्धुं गच्छन्मनुं जपेत् ।
तज्जप्तभस्मलिप्ताङ्गः शत्रुसङ्घैर्न बाध्यते ॥५८॥
शत्रुक्षतव्रणोद्भूतलूतास्फोटं च भस्मना ।
त्रिर्मन्त्रितेन संस्पृष्टस्त्रिदिनाद्याति शुष्कताम् ॥५९॥
सूर्यास्तमयमारभ्य जपेत्सूर्योदयावधि ।
कीलकं भस्म चादाय सप्ताहावधि संयुतम् ॥६०॥
निखनेद्भस्मकीलौ तु विद्विषां द्वार्य्यलक्षितः ।
विद्वेषाद्भयमापन्नाः पलायन्तेऽरयोऽचिरात् ॥६१॥
अभिमन्त्रितभस्माम्बु देवचन्दनसंयुतम् ।
दीयते तु यदा यस्मै स तदा तस्य दासवत् ।
क्रूराः स्वयं तु चौराद्या भवन्ति विविधा वशाः ॥६२॥

इस द्वादशाक्षर मन्त्र से अभिमन्त्रित दुग्ध का पान करके अङ्गों में अभिमन्त्रित भस्म

लगाकर मन्त्रजप करते हुये युद्ध में गमन करने पर वह मनुष्य शत्रुओं द्वारा बाधित नहीं होता। इस मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित भस्म को शत्रु द्वारा दिये गये व्रण के कारण उत्पन्न लूता, स्फोट आदि पर तीन दिनों तक लगाने से वे सूख जाते हैं।

एक सप्ताह-पर्यन्त सूर्यास्त से आरम्भ करके सूर्योदय-पर्यन्त इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कील और भस्म को गुप्त रूप से शत्रु के द्वार पर जमीन के नीचे दबा देने से विद्वेष के कारण भयभीत वे शत्रु वहाँ से पलायित हो जाते हैं।

अभिमन्त्रित भस्म एवं जल को देवचन्दन से मिश्रित करके साधक द्वारा जिसे प्रदान किया जाता है, वह उसी समय से साधक के दास-समान हो जाता है। अनेकानेक क्रूर मनुष्य, चोर आदि भी अपने-आप ही उसके वशीभूत हो जाते हैं॥५८-६२॥

ईशानदिशि मूलेन भूताङ्कुशतरोः शुभाम्।
अङ्गुष्ठमात्रां प्रतिमां संविधाय हनूमतः॥६३॥
प्राणसंस्थापनं कृत्वा सिन्दूरैः परिपूज्य च।
गृहस्याभिमुखीं द्वारे निखनेन्मन्त्रमन्त्रिताम्॥६४॥
सञ्जायन्ते कदाचिन्न गेहे तस्मिन्नुपद्रवाः।
प्रत्यहं धनपुत्राद्यैरेधते तद्गृहं चिरम्॥६५॥

ईशान कोण की ओर प्रसृत मूल (जड़) वाले भूताङ्कुश (पीपल) वृक्ष की लकड़ी से हनुमान की अङ्गुष्ठ-मात्र ऊँची प्रतिमा बनाकर उसे ईशान दिशा में स्थापित कर प्राणप्रतिष्ठित करके सिन्दूर द्वारा सम्यक् रूप पूजन करने के पश्चात् इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर गृहद्वार के सामने भूमि के अन्दर दबा देने से उस घर में कभी भी कोई उपद्रव नहीं होता; साथ ही चिर काल-पर्यन्त प्रतिदिन उस घर में धन-पुत्र आदि की वृद्धि होती रहती है॥६३-६५॥

निशि श्मशानभूमिस्थमृत्स्नया वापि भस्मना।
शत्रोः प्रतिकृतिं कृत्वा हृदि नाम समालिखेत्॥६६॥
कृतप्राणप्रतिष्ठान्तां भिन्द्याच्छस्त्रैर्मनुं जपेत्।
मन्त्रान्ते प्रोच्चरेच्छत्रोर्नाम च्छिन्धि च भिन्धि च॥६७॥
मारयेति च तस्यान्ते दन्तैरोष्ठं निपीड्य च।
एवं सप्तदिनं कुर्वन् हन्याच्छत्रून्नसंशयः॥६८॥
अर्द्धचन्द्राकृतौ कुण्डे स्थण्डिले वा हुतं चरेत्।
मुक्तकेशः श्मशानस्थो बलासौराष्ट्रिकायुतैः॥६९॥

उन्मत्तफलपुष्पैश्च नखरोमविषैरपि ।
काककौशिकगृध्राणां पक्षैः श्लेष्मान्तकाक्षजैः ॥७०॥
समिद्वरैश्च त्रिशतैर्दक्षिणाशामुखो निशि ।
होमं कुर्यात्स्मरन्मन्त्रं मारयेद्रिपुमुद्धतम् ॥७१॥

रात्रि में श्मशानभूमि की मिट्टी अथवा भस्म द्वारा शत्रु की प्रतिमा बनाकर उसके हृदय में शत्रु का नाम लिखने के बाद प्राण-प्रतिष्ठा करने के उपरान्त उसे शस्त्र से काटकर मन्त्र के अन्त में शत्रु के नाम का उच्चारण करते हुये 'छिन्धि भिन्धि मारय' लगाकर जप करने के अनन्तर दाँतों द्वारा होठ को निपीड़ित करना चाहिये। ऐसा सात दिनों तक करने से निश्चित ही शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

बला, सौराष्ट्रिका, धत्तूर-फल एवं पुष्प, नख, रोम, विष, काकपक्ष, उलूक-पक्ष, गीध्रपक्ष, लिसोड़ा-फल—इन श्रेष्ठ समिधाओं द्वारा रात्रि में अर्धचन्द्राकार वेदी पर निर्मित कुण्ड अथवा स्थण्डिल में मन्त्र-स्मरण करते हुये दक्षिणमुख होकर तीन सौ आहुतियों द्वारा हवन करने वाला साधक उद्धत शत्रु का भी वध करने में समर्थ होता है॥६६-७१॥

शतषट्कं जपेद्रात्रौ श्मशाने दिवसत्रयम् ।
ततो वेताल उत्थाय वदेद्भावि शुभाशुभम् ।
उदितं कुरुते सर्वं किङ्करीभूय मन्त्रिणः ॥७२॥
हनुमत्प्रतिमां भूमौ संलिखेत्तत्पुरो मनुम् ।
साध्यनामद्वितीयान्तं विमोचय विमोचय ॥७३॥
तत्सर्वं मार्जयेद्वामहस्तेनाथ पुनर्लिखेत् ।
एवमष्टोत्तरशतं लिखित्वा मार्जयेत्पुनः ॥७४॥
एवं कृते पराधीनो निगडैर्मुच्यते क्षणात् ।
एवं विद्वेषणादीनि कुर्यात्तत्पल्लवं लिखेत् ॥७५॥

तीन दिनों तक रात्रि में श्मशान में जाकर प्रतिरात्रि मन्त्र का छः सौ जप करने पर वेताल प्रकट होकर होने वाले शुभाशुभ को साधक से कहता है और मन्त्रज्ञ साधक का दास होकर उसकी आज्ञानुसार समस्त कार्यों को सम्पादित करता है।

भूमि पर हनुमान् की प्रतिमा बनाकर उसके सामने मन्त्र के साथ द्वितीयान्त साध्य-नाम-पूर्वक 'विमोचय विमोचय' लिखने के पश्चात् सबको अपने बाँयें हाथ से मिटाकर पुनः पूर्ववत् प्रतिमा बनाकर उसी प्रकार लिखकर बाँयें हाथ से सबको मिटा देना चाहिये। इस प्रकार एक सौ आठ बार करने से पराधीन निगड़बद्ध मनुष्य तत्काल ही

बन्धनमुक्त हो जाता है। इसी प्रकार विद्वेषण आदि में भी करना चाहिये। उसमें पल्लव लगाकर मन्त्र लिखना चाहिये॥७२-७५॥

वश्यार्थं सर्षपैर्होमो विद्वेषे करवीरजैः।
कुसुमैस्तस्य काष्ठैर्वा जीरकैर्मरिचैरपि॥७६॥
ज्वरे दूर्वागुडूचीभिर्दध्ना क्षीरेण वा घृतैः।
तैलाक्ताभिश्च निर्गुण्डीसमिद्भिर्वा समाचरेत्॥७७॥
सौभाग्यैश्चन्दनैः श्वेतै रोचनैलालवङ्गकैः।
सुगन्धिपुष्पैर्वश्यार्थं सप्तधान्यैस्तदाप्तये॥७८॥
किं बहूक्तैर्विषव्याधौ शान्तौ मोहे च मारणे।
विवादे स्तम्भने चैव भूतभीतौ च सङ्कटे॥७९॥
वश्ये युद्धे क्षते दिव्ये बन्धमोक्षे महाबले।
मन्त्रोऽयं साधितो दद्यादिष्टसिद्धिं नृणां ध्रुवम्॥८०॥

वशीकरण के लिये सरसों से एवं विद्वेषण के लिये कनैल-पुष्प अथवा समिधा, जीरा अथवा मरिच से हवन करना चाहिये। ज्वर की समाप्ति-हेतु दधि एवं दुग्ध अथवा घृत-सिक्त दूर्वा एवं गिलोय अथवा तैल-सिक्त निर्गुण्डी की समिधा से हवन करना चाहिये। वशीकरण के लिये सुहागा, श्वेत चन्दन, गोरोचन, इलायची, लवंग एवं सुगन्धित पुष्पों से हवन करना चाहिये। सप्तधान्य की प्राप्ति-हेतु सप्तधान्य से ही हवन करना चाहिये। बहुत कहने से क्या लाभ? विष-जनित व्याधि, शान्ति, मोह, मारण, विवाद, स्तम्भन, भूतों का भय, संकट, वशीकरण, युद्ध, दिव्य क्षत, बन्ध, मोक्ष एवं महाबल की अवस्था में साधित यह मन्त्र मनुष्य को अवश्य ही इष्टसिद्धि प्रदान करता है॥७६-८०॥

नवग्रहोपासितहनुमन्मालामन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मालामन्त्रानुपासितान्।
नवग्रहैर्हनुमतो जपात्सिद्धिविधायकान्॥८१॥
तेषां मुन्यादिकं न्यासः षडङ्गं पूजनन्तथा।
प्रयोगाश्च परिज्ञेयाः साधकैर्द्वादशार्णवत्॥८२॥

नवग्रहोपासित हनुमन्मालामन्त्र—अब मैं नवग्रहों द्वारा उपासित हनुमान् के मालामन्त्रों को कहता हूँ; ये मन्त्र जपमात्र से सिद्धि प्रदान करने वाले हैं। साधक को इन मन्त्रों के ऋषि आदि, षडङ्ग न्यास, पूजन एवं प्रयोग द्वादशाक्षर मन्त्र के समान जानने चाहिये॥८१-८२॥

भास्करोपासितहनुमन्मालामन्त्रकथनम्

तत्रादौ सम्प्रवक्ष्यामि भास्करोपासितं मनुम्।
पूर्वोक्तमालामन्त्रस्य बीजमेकादशन्तु तत् ॥८३॥
नवानामपि मन्त्राणामादौ जानन्तु देवताः।
वदेन्नमो हनुमते वदेन्नमः परस्य च ॥८४॥
क्षयदुष्टगणान् प्रोच्य तथा चारिक्षतज्वरः।
एकाहिकद्व्याहिकेति त्र्याहिकेति चतुर्थकः ॥८५॥
सन्ततज्वरसन्नीति पातिकज्वरभूवदेत्।
तज्वरेति च मन्त्रेति ज्वरशूलभगन्दर ॥८६॥
मूत्रकृच्छ्रकपोलेति वृन्दस्थलपदन्ततः।
कर्णशूलेत्यक्षिशूलवदेच्चरदशूलक ॥८७॥
हस्तशूलेति पादेति शूलादीन् सर्वमुच्चरेत्।
व्याधीन् क्षणात्त्रासयेति भिन्धि छिन्धि विनाशय ॥८८॥
द्विधा निकर्त्तय त्रेधा छेदय द्विश्च भेदय।
महावीरपदन्तारं हनुमन् ह्रांद्वयं वदेत् ॥८९॥
ह्रंहं द्वे च वदेद् ह्रीं द्वे ह्रंहं फट् वह्निगेहिनी।
मालामन्त्रोऽयमुद्दिष्टः सर्वरोगविनाशकः ॥९०॥

सूर्य द्वारा उपासित हनुमान् का मालामन्त्र—सबसे पहले मैं सूर्योपासित मन्त्र को कहता हूँ। समस्त रोगों का विनाशक यह मालामन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ ऐं ह्रीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्स्फ्रे ख्फ्रें ह्स्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं नमो हनुमते नमः परस्य क्षयदुष्टगणान् अरिक्षतज्वर-एकाहिक-द्व्याहिक-त्र्याहिक-सन्ततज्वर-सान्निपातिकज्वर-भूतज्वर-मन्त्रज्वर-शूल-भगन्दर-मूत्रकृच्छ्र-कपोलवृन्दस्थल-दन्त-कर्णशूल-अक्षिशूल-चरद-शूलक-हस्तशूल-पादशूलादीन् सर्वव्याधीन् क्षणात् त्रासय-त्रासय भिन्धि-भिन्धि छिन्धि-छिन्धि विनाशय-विनाशय निकर्तय-निकर्तय छेदय-छेदय भेदय-भेदय महावीरहनुमन् ह्रां ह्रां हं हं ह्रीं ह्रीं हं हं फट् स्वाहा॥८३-९०॥

चन्द्रोपासितहनुमन्मालामन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चन्द्रेणोपासितं मनुम्।
वदेन्नमो भगवते राक्षसेति कुलेति च ॥९१॥
दानवानलद्वादशार्ककोट्युज्ज्वलप्रभेति च।
रं तु रूंहं भीमनादं वदेन्मम परस्य च ॥९२॥

दुष्टदुर्जनमोहाय वदेत्कारक वादिवि ।
वादिद्वेषकारकेति कार्यभञ्जक संवदेत् ॥९३॥
कुरु प्रकृतिकेत्युक्त्वा प्रवृत्तपदमुच्चरेत् ।
कोपावेशेन हत्वेति चामुकान्वै समुच्चरेत् ॥९४॥
दूरस्थेति समीपस्थांस्ततो भूतभवीति च ।
ष्यद्वर्त्तमानान् पुंस्त्रीनपुंसकान् पदमुच्चरेत्।
चतुर्वर्णान् क्षणेनेति सत्वरं जहियुग्मकम् ।
दह संहारय द्विर्द्विर्द्विर्मोहयपदं वदेत् ॥९५॥
शमय द्विर्द्वेषय द्विर्वदेत्सर्पालिमूषक ।
वत्सद्यः पदमुच्चार्य प्राणिनः पदमुच्चरेत् ॥९६॥
द्विर्विध्वंसय हिलिद्विर्द्विर्द्विर्मूकम्पराजय ।
बन्धय द्विः पातय द्विर्ममेति च परस्य च ॥९७॥
दासीभूतं वदेद् द्वेधा सम्पादय त्रिधा त्रिधा ।
ह्रांह्रुं त्रिधा च फट्स्वाहा मन्त्रोऽयं समुदीरितः ॥९८॥

चन्द्रोपासित हनुमन्मालामन्त्र—अब मैं चन्द्र द्वारा उपासित मन्त्र को कहता हूँ। वह मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—नमो भगवते राक्षसकुलदानवानलद्वादशार्ककोट्युज्ज्वलप्रभ रं रूं हं भीमनादं मम परस्य च दुष्टदुर्जनमोहाय कारक वादिविवादिद्वेषकारक कार्यभञ्जक कुरु प्रकृतिकप्रवृत्तकोपावेशेन हत्वा अमुकान् वैं दूरस्थसमीपस्थान् भूतभविष्यद्वर्तमानान् पुंस्त्रीनपुंसकान् चतुर्वर्णान् क्षणेन सत्वरं जहि-जहि दह-दह संहारय-संहारय मोहय-मोहय शमय-शमय द्वेषय-द्वेषय सर्पालिमूषकवत् सद्यः प्राणिनः विध्वंसय विध्वंसय हिलि-हिलि मूकं पराजय-पराजय बन्धय-बन्धय पातय-पातय मम परस्य च दासीभूतं सम्पादय-सम्पादय ह्रां ह्रां ह्रां ह्रुं ह्रुं ह्रुं फट् फट् फट् स्वाहा॥९१-९८॥

मङ्गलोपासितहनुमन्मालामन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मङ्गलोपासितं मनुम् ।
वदेन्नमो हनुमते महाबलपराक्रम ॥९९॥
मम परस्य च भूत वदेत्प्रेतपिशाचशा ।
किनी डापदमुच्चार्य किनी यक्षिणिका च पू ॥१००॥
तना मारी महामारी कृत्या यक्षेति राक्षस ।
वदेद्भैरववेतालग्रहेति ब्रह्मराक्षसा ॥१०१॥

दिकजातक्रूरबन्धान् क्षणेन जहियुग्मकम् ।
भञ्जयद्वितयं प्रोच्य वदेद् द्वेधा निरासय ॥१०२॥
द्वेधा वारय बन्ध द्विस्तुद सूद द्वयं द्वयम् ।
बन्धं द्वेधा मोचय द्विर्ममेनं च पदं वदेत् ॥१०३॥
रक्तरक्तमहामोहेश्वररुद्रावतार हा ।
हाहाह्लंह्लं त्रिधा हुंफट्स्वाहायमुदितो मनुः ॥१०४॥

मङ्गल द्वारा उपासित मालामन्त्र—अब मैं मङ्गल द्वारा उपासित मन्त्र को कहता हूँ। वह इस प्रकार कहा गया है—नमो हनुमते महाबलपराक्रम मम परस्य च भूत-प्रेत-पिशाच-शाकिनी-डाकिनी-यक्षिणिका-पूतना-मारी-महामारी-कृत्या-यक्ष-राक्षस-भैरव-वेताल-ग्रह-ब्रह्मराक्षसादिकजातक्रूरबन्धान् क्षणेन जहि-जहि भञ्जय-भञ्जय निरासय-निरासय वारय-वारय बन्ध-बन्ध तुद-तुद सूद-सूद बन्ध-बन्ध मोचय-मोचय मां एनं रक्त-रक्त-महामोहेश्वर रुद्रावतार हा हा हा ह्लं ह्लं ह्लं हुं फट् स्वाहा॥९९-१०४॥

बुधोपासितहनुमन्मालामन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि बुधेनोपासितं मनुम् ।
नमो हनुमते प्रोच्य त्रैलोक्यक्रमणेति च ॥१०५॥
सर्वशत्रूंश्चतुर्वर्णसम्भवानिति चोच्चरेत् ।
पुंस्त्रीनपुंसकान् भूतभविष्यद्वर्त्तमोच्चरेत्॥१०६॥
नान्दूरस्थसमीपस्थान्नानानामपदं लिखेत् ।
तथा सङ्करजातिजातान् पदं चैव समुच्चरेत् ॥१०७॥
कलत्रपुत्रमित्रेति भृत्यबन्धुसुहृत्पदम् ।
समतापुरुशक्तीति समेतान्थनुरा वदेत् ॥१०८॥
ज्यादिसम्पत्तियुतान्नाराजराजेति पुत्रसे ।
वकान्मन्त्रिसचिवसखीनुक्त्वात्यन्तिकान् क्षणात्॥१०९॥
वदेदधिपतिं मां च कुरुद्वयपदं ततः ।
नानोपायैर्मारयद्विः शत्रूंश्छेदय च्छेदय ॥११०॥
भूतसङ्घैः सहेत्युक्त्वा वदेद्भक्षय भक्षय ।
भिन्धि भिन्धि च सम्प्रोच्य त्वग्निना ज्वालयद्वयम् ॥१११॥
दाहयद्वितयं प्रोच्य वदेदक्षकुमारवत् ।
पादतलाक्रमणेन तनुं चैव शिलातले ॥११२॥
व्यात्रोटय घातय द्विर्द्विर्बन्धयपदं वदेत् ।
क्रुधा चेति पदं प्रोच्य नखैर्द्वेधा विदारय ॥११३॥

देशादस्मादिति प्रोच्य वदेदुच्चाटयद्वयम् ।
द्विर्ध्वंसय त्रासय द्विर्वदेत्पश्चाद्भयातुरान् ॥११४॥
विसंज्ञान् सद्य उच्चार्य द्वेधा कुरुपदं वदेत् ।
भस्मीभूतांस्ततो द्वेधा वदेदुत्पाटयेति च ॥११५॥
भक्तजनवत्सलेति सीताशोकापहारक ।
सर्वत्र मां वदेदेनं रक्ष रक्ष च हा पुनः ॥११६॥
हाहाहुंहुं त्रिधा द्विः फट्स्वाहान्तो मनुरीरितः ।
वेदपञ्चत्रिवर्णोऽयं सर्वाभीष्टप्रदायकः ॥११७॥

बुध द्वारा उपासित मालामन्त्र—अब मैं बुध द्वारा उपासित मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। समस्त अभीष्ट को प्रदान करने वाला तीन सौ चौवन अक्षरों का यह मन्त्र इस प्रकार है—नमो हनुमते त्रैलोक्यक्रमण सर्वशत्रूंश्चतुर्वर्णसम्भवान् पुंस्त्रीनपुंसकान् भूतभविष्यद्वर्तमानान् दूरस्थसमीपस्थान् नानानामसङ्करजातिजातान् कलत्र-पुत्र-मित्र-बन्धु-सुहृत्समतापुरुशक्तिसमेतान् धनुराज्यादिसम्पत्तियुतान् नाराज-राजपुत्रसेवकान् मन्त्रिसचिवसखीन् आत्यन्तिकान् क्षणात् अधिपतिं मां कुरु कुरु नानोपायैः मारय-मारय शत्रून् च्छेदय-च्छेदय भूतसङ्घैः सह भक्षय-भक्षय भिन्धि-भिन्धि अग्निना ज्वालय-ज्वालय दाहय-दाहय अक्षकुमारवत् पादतलाक्रमणेन तनुं शिलातले व्यात्रोटय-व्यात्रोटय घातय-घातय बन्धय-बन्धय क्रुधा नखैर्विदारय-विदारय देशादस्मात् उच्चाटय-उच्चाटय ध्वंसय-ध्वंसय त्रासय-त्रासय भयातुरान् विसंज्ञान् सद्यः कुरु कुरु भस्मीभूतान् उत्पाटय-उत्पाटय भक्तजनवत्सल सीताशोकापहारक सर्वत्र मां एनं रक्ष रक्ष हा हा हा हुं हुं हुं फट् फट् स्वाहा॥१०५-११७॥

गुरूपासितहनुमन्मालामन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गुरुणोपासितं मनुम् ।
नमो हनुमते प्रोच्य वदेन्मम परस्य च ॥११८॥
महाभयानि सर्वेति व्याघ्रतस्कर संवदेत् ॥११९॥
ज्वालाग्निविषजङ्गेति मस्थावरमहेति च ।
कृत्रिमोपविषमहासंग्रामे च पदं वदेत् ॥१२०॥
दुष्टवादे विवादे च शत्रोः कामान् हरद्वयम् ।
द्विर्ग्रासय त्रोटय द्विर्भञ्जय स्तम्भय त्रिधा ॥१२१॥
कण्डय त्रोटय द्विर्द्विर्वानर क्षम संवदेत् ।
महावीरेति मामेनं रक्ष रक्ष त्रिधा त्रिधा ॥१२२॥

हा हुं द्वे त्रिश्च फट् स्वाहा प्रोक्तोऽयं मनुसत्तमः।
सर्वपीडाहरो रामवशकृद्भाग्यदायकः ॥१२३॥

गुरु द्वारा उपासित मालामन्त्र—अब मैं गुरु द्वारा उपासित मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। मन्त्र है—नमो हनुमते मम परस्य च महाभयानि सर्वव्याघ्र-तस्कर-ज्वालाग्नि-विष-जङ्गम-स्थावरमहाकृत्रिमोपविष-महासंग्रामे दुष्टवादे विवादे शत्रोः कामान् हर-हर ग्रासय-ग्रासय त्रोटय-त्रोटय भञ्जय-भञ्जय स्तम्भय-स्तम्भय-स्तम्भय कण्डय-कण्डय त्रोटय-त्रोटय वानरक्षम महावीर मामेनं रक्ष रक्ष रक्ष हा हा हा हुं हुं फट् फट् फट् स्वाहा।

यह मन्त्र समस्त पीड़ाओं का हरण करने वाला, राम को वशीभूत करने वाला एवं सौभाग्य प्रदान करने वाला है॥११८-१२३॥

शुक्रोपासितहनुमन्मन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शुक्रेणाराधितं मनुम्।
तारो नमो हनुमते वदेत्सर्वग्रहानिति ॥१२४॥
भूतेति च भविष्यच्च वर्त्तमानान्पदं वदेत् ॥१२५॥
दूरस्थांश्च समीपस्थान् सर्वकालं वदेत्पदम्।
उच्चाटयद्वयं प्रोच्य परेति च बलानि च ॥१२६॥
क्षोभयद्वितयं सर्वकार्याणि साधयद्विधा।
ह्रांह्रींह्रूंद्विस्त्रयं फट् च स्वाहान्तोऽयं मनुर्मतः ॥१२७॥
महाबलकरश्चायमपमृत्युविनाशकः ।

शुक्र द्वारा उपासित हनुमन्मन्त्र—अब मैं शुक्र द्वारा आराधित मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ नमो हनुमते सर्वग्रहान् भूतभविष्यद्वर्तमानान् दूरस्थान् समीपस्थान् सर्वकालं उच्चाटय-उच्चाटय परबलानि क्षोभय-क्षोभय सर्वकार्याणि साधय-साधय ह्रां ह्रां ह्रीं ह्रीं ह्रूं ह्रूं फट् फट् फट् स्वाहा। शुक्र द्वारा उपासित यह मन्त्र अतिशय बल प्रदान करने वाला एवं अपमृत्यु का विनाश करने वाला है॥१२४-१२७॥

शन्युपासितहनुमन्मालामन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शनिनाराधितं मनुम्।
परकृतयन्त्रमन्त्रपराहंकारसंवदेत् ॥१२८॥
भूतप्रेतपिशाचेति सर्वज्वरपरेति च।
दृष्टिरोगादिकान् प्रोच्य द्विस्त्रासय निवारय ॥१२९॥

बन्ध बन्धय च द्वेधा इलवुचिलवु वदेत्।
कुयन्त्राणि सर्वदुष्टवाचं हुं फट् दहाङ्गना।
इत्येवायं मनुः प्रोक्तः सर्वापत्तिनिवारकः ॥१३०॥

शनि द्वारा आराधित मन्त्र—अब मैं शनि के द्वारा आराधित मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। वह मन्त्र इस प्रकार है—परकृतयन्त्र-मन्त्र-पराहङ्कार-भूत-प्रेत-पिशाच-सर्वज्वर-परदृष्टि-रोगादिकान् त्रासय-त्रासय निवारय-निवारय बन्ध बन्धय-बन्धय इलवुचिलवुकुयन्त्राणि सर्वदुष्टवाचं हुं फट् स्वाहा। यह मन्त्र समस्त आपत्तियों का निवारण करने वाला कहा गया है॥१२८-१३०॥

राहूपासितहनुमन्मालामन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि राहुणोपासितं मनुम्।
नमो भगवते प्रोच्य वदेद्धनुमते पदम् ॥१३१॥
पवनात्मजायेति राघवप्राणसमाय तु।
लक्ष्मणप्राणदात्रे च सीताशोकविनाशकः ॥१३२॥
ङेऽन्तो रावणदर्पघ्नो ङेऽन्तः सर्वपदं वदेत्।
दुष्टविनाशनायेति रिपुचौरपदं वदेत् ॥१३३॥
व्याघ्रवराहकृत्येति चान्तकाय पदं वदेत्।
दुष्टसत्त्वविनाशेति नाय हुंफड् हुताङ्गना ॥१३४॥
उक्तोऽयं मनुराजस्तु लक्ष्मीविद्याजयप्रदः।
विशेषतोऽपमृत्योश्च नाशको रामवल्लभः ॥१३५॥

राहु द्वारा उपासित मन्त्र—अब मैं राहु के द्वारा उपासित मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। मन्त्र है—नमो भगवते हनुमते पवनात्मजाय राघवप्राणसमाय लक्ष्मणप्राणदात्रे सीताशोकविनाशकाय रावणदर्पघ्नाय सर्वदुष्टविनाशनाय रिपु-चौर-व्याघ्र-वराह-कृत्यान्तकाय दुष्टसत्त्वविनाशनाय हुं फट् स्वाहा।

यह मन्त्रराज लक्ष्मी, विद्या एवं जय प्रदान करने के साथ-साथ विशेषतया अपमृत्यु का विनाशक कहा गया है। शनि द्वारा आराधित यह मन्त्र राम को अतिशय प्रिय है॥१३१-१३५॥

केतूपासितहनुमन्मन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि केतुनोपासितं मनुम्।
नमो भगवते प्रोच्य वदेद्धनुमतेपदम् ॥१३६॥

चोररिपुकृमिखगपतङ्गादीन् समुच्चरेत्।
उच्चाटय हुंफट् च स्वाहान्तो मनुरीरितः ॥१३७॥
रामचन्द्रो मुनिश्चैषां गाथा छन्दः प्रकीर्तितम्।
महावीरोऽत्र हनुमान् देवता सम्प्रकीर्तितः ॥१३८॥
नवमं कूटमुद्दिष्टं बीजं शक्तिस्तथाष्टमम्।
एकादशकूटपूर्वं नामन्यासं समाचरेत् ॥१३९॥
ङेऽन्तं नाम तथाङ्गुष्ठादिके चापि षडङ्गकम्।
हनुमान् रामदूतश्च लक्ष्मणप्राणदायकः ॥१४०॥
अञ्जनीसूनुरित्येवं सीताशोकविनाशनः।
नेत्रान्तमेवं कृत्वा तु लङ्काप्रासादभञ्जकः ॥१४१॥

केतु द्वारा उपासित मन्त्र—अब मैं केतु द्वारा उपासित मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र हैं—नमो भगवते हनुमते चोर-रिपु-कृमि-खग-पतङ्गादीन् उच्चाटय हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि रामचन्द्र एवं छन्द गाथा कहा गया है। महावीर हनुमान् इसके देवता कहे गये हैं। इसका बीज ह्सौं एवं शक्ति ह्स्रौं कहा गया है।

इसका करन्यास इस प्रकार किया जाता है—ह्सौं हनुमते अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ह्सौं रामदूताय तर्जनीभ्यां नमः, ह्सौं लक्ष्मणप्राणदायकाय मध्यमाभ्यां नमः, ह्सौं अञ्जनीसूनवे अनामिकाभ्यां नमः, हसौं सीताशोकविनाशनाय कनिष्ठाभ्यां नमः, ह्सौं लङ्काप्रासादभञ्जकाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

इसके बाद इस प्रकार षडङ्ग न्यास करना चाहिये—ह्सौं हनुमते हृदयाय नमः, ह्सौं रामदूताय शिरसे स्वाहा, हसौं लक्ष्मणप्राणदायकाय शिखायै वषट्, ह्सौं अञ्जनीसूनवे कवचाय हुम्, ह्सौं सीताशोकविनाशनाय नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्सौं लङ्काप्रासादभञ्जकाय अस्त्राय फट्॥१३६-१४१॥

अर्कास्तमयमारभ्य यावत्सूर्योदयो भवेत्।
तावन्मन्त्रं जपेद्रात्रौ कार्यमुद्दिश्य मन्त्रवित्।
सप्ताहाज्जायते सिद्धिर्वायुपुत्रप्रसादतः ॥१४२॥
रात्रौ रात्रौ जपेन्मन्त्रं षष्ठ्यां चाष्टोत्तरं शतम्।
दश वासरपर्यन्तं राजशत्रुभयं हरेत् ॥१४३॥
औषधावसरे मन्त्रं दशवारं जपेद् बुधः।
तेनाभिमन्त्रितं दत्तं सर्वं सफलतां व्रजेत् ॥१४४॥
भस्माभिमन्त्रितं यस्य देहे चन्दनमिश्रितम्।
चर्चितं परबाधादि तस्य नश्यत्यसंशयम् ॥१४५॥

स वश्यो जायते नूनं प्राणैरपि धनैरपि।
दासतां याति देवोऽपि मनुष्येषु च का कथा ॥१४६॥
क्रूरसत्त्वानि सर्वाणि वशयेदमुना खलु।
प्रकारेण महावीरज्वरितः शान्तितामियात् ॥१४७॥
बन्धमुक्तौ जपेन्मन्त्रं रात्रौ रात्रौ न संशयः।
द्वादशार्णप्रयोगांश्च निखिलांस्तत्र कारयेत् ॥१४८॥

मन्त्रज्ञ साधक को कार्य को ध्यान में रखकर सूर्यास्त से आरम्भ कर सूर्योदय-पर्यन्त रात्रि में मन्त्रजप करना चाहिये। ऐसा करने से वायुपुत्र की कृपा से एक सप्ताह में कार्य की सिद्धि हो जाती है।

षष्ठी तिथि से प्रारम्भ कर दस दिनों तक अर्थात् पूर्णिमा-पर्यन्त प्रतिरात्रि मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने पर राजशत्रु-भय की समाप्ति होती है। रोगी को औषधि प्रदान करते समय मन्त्र के दस जप से अभिमन्त्रित औषधि देने से विद्वान् वैद्य को पूर्ण सफलता प्राप्त होती है। चन्दन-मिश्रित भस्म को अभिमन्त्रित कर जिसके शरीर में उस भस्म का साधक द्वारा लेप किया जाता है, उसके शरीर में प्रविष्ट परबाधायें अवश्य ही नष्ट हो जाती हैं; साथ ही परबाधा-ग्रस्त वह व्यक्ति अपने धन एवं प्राण दोनों से निश्चित ही साधक के वशीभूत हो जाता है। इस भस्म के लेप से जब देवता भी वशीभूत हो जाते हैं तो फिर मनुष्यों का तो कहना ही क्या है? इस भस्म के प्रयोग सभी क्रूर प्राणी निश्चित ही वशीभूत हो जाते हैं। इसी प्रकार के अवलम्बन से भयंकर ज्वर भी शान्त हो जाता है। बन्धन से मुक्ति के लिये प्रत्येक रात्रि मन्त्रजप करना चाहिये। द्वादशाक्षर मन्त्र में कथित समस्त प्रयोगों का भी इससे साधन करना चाहिये।।१४२-१४८।।

स्तम्भने तु यवो माषा न्यग्रोधस्य फलानि च।
शाल्मलीकुसुमं तालं हरिद्रामलकीफलम् ॥१४९॥
मधुरत्रयसंयुक्तं यथालाभं तु होमयेत्।
उच्चाटार्थं निशि हुनेच्छ्लेष्मान्तकविभीतकान् ॥१५०॥
अष्टोत्तरशतं रात्रौ कार्यमिष्टं च सिद्ध्यति।
वश्यार्थं होमयेद्द्राक्षामपूपानथ गुग्गुलम् ॥१५१॥
विद्वेषे कटुतैलेन संयुक्तं हिंगु होमयेत्।
पञ्चखाद्यैर्नालिकेरैरिक्षुभिः कदलीफलैः ॥१५२॥
सर्वसन्तोषकृद्धोमो मधुरत्रितयान्वितैः।
सौभाग्यार्थं तु काश्मीरकस्तूरीत्वक्समीरणैः ॥१५३॥

पत्रागुरुनखैर्मांसीजातीपत्रफलैस्तथा ।
धत्तूरफलपुष्पाणि समिधो मोहने स्मृताः ॥१५४॥

स्तम्भनकर्म में जौ, उड़द, वट का फल, शाल्मली(सेमर)पुष्प, हरताल, हल्दी एवं आँवला को मधुर-त्रय से युक्त करके कर्म-सिद्धि-पर्यन्त हवन करना चाहिये। उच्चाटन के लिये रात्रि में लिसोड़ा और बहेड़ा से एक सौ आठ आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करने से अभीष्ट कार्य सिद्ध हो जाता है। वशीकरण की सिद्धि के लिये द्राक्षा (दाख), अपूप (पूआ) एवं गुग्गुल मिलाकर हवन करना चाहिये। विद्वेषण कर्म की सिद्धि-हेतु सरसो तैल-मिश्रित हींग से हवन करना चाहिये।

पञ्चमेवा, नारियल, ईक्षुखण्ड एवं केला को मधुरत्रय से सिक्त कर किया गया हवन पूर्ण सन्तोष प्रदान करने वाला होता है अर्थात् इस हवन से सभी कार्य सिद्ध होते हैं।

सौभाग्य-प्राप्ति के लिए केशर, कस्तूरी, समीरण (मरुवा) की छाल, अगुरुपत्र, नख (वृश्चिका), जटामासी, जायफल की छाल एवं फल, धत्तूर के फल एवं पुष्प की समिधा से मोहन कर्म-सिद्धि के लिये हवन करना चाहिये॥१४९-१५४॥

पञ्चकूटात्मकहनुमन्मन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पञ्चकूटात्मकं मनुम् ।
समुद्धृतानि कूटानि पञ्च तान्येव मन्त्रतः ॥१५५॥
हनुमान् रामदूतश्च लक्ष्मणप्राणदायकः ।
ततोऽञ्जनासुतः प्रोक्तः सीताशोकविनाशकः ॥१५६॥
ततः षष्ठः परिज्ञेयो लङ्काप्रासादभञ्जनः ।
कपेरेतानि नामानि कूटपूर्वाणि सन्ति च ॥१५७॥
पञ्चकूटानि चैकेन षडङ्गमनवः स्मृताः ।
ध्यानपूजादिकं सर्वं विज्ञेयं द्वादशार्णवत् ॥१५८॥

हनुमान् का पञ्चकूटात्मक मन्त्र—अब इस समय मैं हनुमान् के पञ्चकूटात्मक मन्त्र को कहता हूँ। पूर्व में जिन पाँच कूटों का उद्धार किया गया है, उन्हीं कूटों के सहित कपि के हनुमान्, रामदूत, लक्ष्मणप्राणदायक, अंजनासुत, सीताशोक-विनाशक, लंकाप्रसादभंजक—ये छः नाम संयुक्त कर यह मन्त्र बनता है। उक्त पाँच कूटों से अलग-अलग एवं एक साथ सबको मिलाकर इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। इस मन्त्र के ध्यान, पूजन आदि सब कुछ द्वादशाक्षर मन्त्र के समान जानने चाहिये॥१५५-१५८॥

रुद्रोपासितहनुमन्मन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं रुद्रैरुपासितम्।
नवग्रहादिमन्त्राणां बीजान्येकादशैव तु ॥१५९॥

स एव मन्त्रो रुद्रेण सहायार्थमुपासितः।
तद्ध्यानपूजान्यासादि ज्ञेयं च द्वादशार्णवत् ॥१६०॥

रुद्र द्वारा उपासित मन्त्र—अब मैं रुद्रों द्वारा उपासित मन्त्र को कहता हूँ। नवग्रहों द्वारा उपासित मन्त्रों के ग्यारह बीजमन्त्र ही रुद्रों द्वारा उपासित हनुमान् का मन्त्र है। इस मन्त्र के ध्यान, पूजन, न्यास आदि सब कुछ द्वादशाक्षर मन्त्र के समान ही जानने चाहिये॥१५९-१६०॥

हनुमदष्टादशाक्षरमन्त्रकथनम्

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रमष्टादशाक्षरम्।
नमो भगवते प्रोच्य आञ्जनेयाय संवदेत् ॥१६१॥

महाबलाय स्वाहेति मुनिरस्येश्वरः स्मृतः।
छन्दोऽनुष्टुब्देवता तु हनुमान्हं च बीजकम्।
स्वाहा शक्तिश्चाञ्जनेयो रुद्रमूर्तिः सुरो मतः ॥१६२॥

अग्निगर्भो रामदूतो ब्रह्मास्त्रविनिवारकः।
द्विरावृत्त्या षडङ्गानि तथाङ्गुष्ठादिषु न्यसेत् ॥१६३॥

तप्तकाञ्चनसङ्काशं हृदये विहिताञ्जलिम्।
किरीटिनं कुण्डलिनं ध्यायेद्वानरनायकम् ॥१६४॥

हनुमान् का अष्टाक्षर मन्त्र—अब मैं हनुमान् के अन्य अष्टादशाक्षर मन्त्र को कहता हूँ। वह मन्त्र है—नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि ईश्वर, छन्द अनुष्टुप्, देवता हनुमान्, बीज हं एवं शक्ति स्वाहा कहे गये हैं। रुद्रमूर्ति आञ्जनेय देव कहे गये हैं। अग्निगर्भ, रामदूत एवं ब्रह्मास्त्रविनिवारक की दो आवृत्ति से इसका करन्यास एवं षडङ्गन्यास किया जाता है (अग्निगर्भ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, रामदूतः तर्जनीभ्यां नमः, ब्रह्मास्त्रनिवारकः मध्यमाभ्यां नमः, अग्निगर्भ अनामिकाभ्यां नमः, रामदूतो कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ब्रह्मास्त्रविनिवारक करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। अग्निगर्भो हृदयाय नमः, रामदूतः शिरसे स्वाहा, ब्रह्मास्त्र-विनिवारकः शिखायै वषट्, अग्निगर्भो कवचाय हुं, रामदूतो नेत्रत्रयाय वौषट्, ब्रह्मास्त्रविनिवारक अस्त्राय फट्)।

उक्त प्रकार से न्यास करने के उपरान्त तप्त स्वर्ण-सदृश कान्तिमान, हृदय पर हाथ जोड़े हुये, किरीट-कुण्डल धारण किये हुये कपिश्रेष्ठ का ध्यान करना चाहिये॥१६१-१६४॥

वैष्णवे पूजयेत्पीठे द्वादशार्णोक्तवर्त्मना ।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः ॥१६५॥
विप्रसन्तर्पणाद्यं तु प्राग्वत्सिद्धो भवेन्मनुः ।
जितेन्द्रियो नक्तभोजी प्रत्यहं साष्टकं शतम् ।
जपित्वा क्षुद्ररोगेभ्यो मुच्यते दिवसत्रयात् ॥१६६॥
भूतप्रेतपिशाचादिनाशायैवं समाचरेत् ।
महारोगनिवृत्त्यै तु सहस्रं त्रिदिनं जपेत् ॥१६७॥
यताशनोऽयुतं नित्यं जपेद्ध्यायन् कपीश्वरम् ।
राक्षसौघं विनिघ्नन्तमचिराज्जयति द्विषः ॥१६८॥
सुग्रीवेण समं रामं मेलयन्तं स्मरन् कपिम् ।
प्रजप्यायुतमात्रं तु सन्धिं कुर्याद्विरुद्धयोः ॥१६९॥
लङ्कां दहन्तं तं ध्यायेदयुतं प्रजपेन्मनुम् ।
शत्रूणां प्रदहेद् ग्रामानचिरादेव साधकः ॥१७०॥
प्रयाणसमये ध्यायन् हनुमन्तं मनुं जपेत् ।
यो याति सोऽचिरात्स्वेष्टं साधयित्वा गृहं व्रजेत् ॥१७१॥
यः कपीशं सदा गेहे पूजयेज्जपतत्परः ।
आयुर्ल्लक्ष्म्यः प्रवर्धन्ते तस्य नश्यन्त्युपद्रवाः ॥१७२॥

द्वादशाक्षर मन्त्र में उक्त रीति से वैष्णव पीठ पर इनका यजन करने के बाद प्रकृत मन्त्र का दस हजार जप करके तिलों से कृत जप का दशांश (एक हजार) हवन करने के उपरान्त पूर्ववत् ब्राह्मणों को सन्तुष्ट आदि करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

जितेन्द्रिय एवं रात्रिभोजी रहकर तीन दिनों तक प्रतिदिन मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने से क्षुद्र रोगों से मुक्ति मिल जाती है। भूत-प्रेत-पिशाच आदि के विनाश-हेतु भी इसी प्रकार मन्त्रजप करना चाहिये। महारोग की निवृत्ति के लिये तीन दिनों तक प्रतिदिन मन्त्र का एक हजार जप करना चाहिये।

प्रतिदिन संयत आसन पर विराजमान होकर राक्षसों का विनाश करते हुये हनुमान् का ध्यान करके मन्त्रजप करने वाला साधक शीघ्र ही अपने शत्रुओं को जीत लेता है।

सुग्रीव से राम का मिलन कराते हुये कपि का स्मरण करके मन्त्र का दस हजार जप करने मात्र से ही विरोधियों में सन्धि हो जाती है।

लंका-दहन करते हुए हनुमान् का ध्यान करके मन्त्र का दस हजार जप करने वाला साधक शीघ्र ही शत्रु के गाँवों को जला डालता है।

जो व्यक्ति यात्रा करते समय हनुमान् का ध्यान करते हुये मन्त्रजप करता है, वह अपने अभीष्ट कार्य को शीघ्र ही सम्पादित करके घर वापस आ जाता है।

जो सदा-सर्वदा अपने घर में हनुमान् का पूजन एवं जप करता है, उसकी आयु एवं लक्ष्मी की वृद्धि होती है तथा उपद्रवों का विनाश होता है।।१६५-१७२।।

हनुमदष्टाक्षरमन्त्रकथनम्

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रमष्टाक्षरं परम् ।
षड्दीर्घयुक्ता हल्लेखा प्रणवेनैव सम्पुटा ॥१७३॥
अष्टार्णोऽयं हनुमतो मन्त्रराजः प्रकीर्तितः ।
षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गविधिरीरितः ॥१७४॥
ध्यानपूजाजपाद्यत्र सर्वं स्याद् द्वादशार्णवत् ।
एतत्प्रभावाज्झटिति चाधिव्याधिविवर्जितः ॥१७५॥
शार्दूलतस्करादिभ्यो न भयं जपतो मनुम् ।
प्रस्थानकाले जपतां नश्येयुस्तस्करादयः ॥१७६॥
कोकिलच्छदलेखन्या त्वलक्तकरसेन च ।
अष्टगन्धैर्लिखेद्रूपं कपिराजस्य सुन्दरम् ॥१७७॥
तन्मध्ये चाष्टकोणेषु शत्रुनाम पुनर्लिखेत् ।
तन्मन्त्रजपितं यन्त्रं दध्याच्छिरसि भूमिपः ।
जयत्यरिगणान् सर्वान् दर्शनादेव निश्चितम् ॥१७८॥
यद्वा जिगीषुर्नृपतिः पूर्वोक्तं लेखयेद् ध्वजे ।
ध्वजमादायोपरागे संस्पर्शान् मोक्षणावधि ॥१७९॥
मातृकाः प्रजपेत्पश्चाद्दशांशेन हुतं चरेत् ।
सर्षपैस्तिलसम्मिश्रैः संस्कृते हव्यवाहने ।
गच्छेद्रणे ध्वजं दृष्ट्वा पलायन्तेऽरयोऽचिरात् ॥१८०॥

हनुमान् का अष्टाक्षर मन्त्र—अब मैं श्रेष्ठ अष्टाक्षर मन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। वह मन्त्र है—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः ॐ। यह अष्टाक्षर मन्त्र हनुमान् का मन्त्रराज कहा गया है। छः दीर्घ-युक्त बीजमन्त्र (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः) से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है। इसका ध्यान, पूजन, जप आदि सबकुछ द्वादशाक्षर मन्त्र के समान होते हैं। इसके प्रभाव से मनुष्य शीघ्र ही आधि-व्याधियों से रहित हो जाता है। इस मन्त्र का जप करने वाले को सिंह-व्याघ्र, चोर आदि का भय नहीं रहता। यात्रा करते समय इसका जप करने से मार्ग-स्थित चोर आदि नष्ट हो जाते हैं।

कोयल के पँख की लेखनी बनाकर अष्टगन्ध और आलता के घोल से हनुमान् की सुन्दर प्रतिमा बनाकर उसके मध्य में अष्टकोण की रचना करके उस अष्टकोण में शत्रु का नाम लिखकर मन्त्रजप करने के उपरान्त उस यन्त्रराज को मस्तक पर धारण करने वाला राजा दर्शन-मात्र से ही समस्त शत्रुओं को जीत लेता है। अथवा विजयेच्छु राजा को चाहिये कि पूर्वोक्त यन्त्र को ध्वज पर लिखकर ग्रहणकाल में स्पर्श से मोक्ष-पर्यन्त उस ध्वज को लेकर मातृकाओं का जप करके सरसो एवं तिल के मिश्रण से संस्कृत अग्नि में कृत जप का दशांश हवन करके रणक्षेत्र में जाय तो उस ध्वज को देखकर शत्रुगण शीघ्र ही युद्धभूमि से भाग खड़े होते हैं॥१७३-१८०॥

प्लीहादिनिवारकहनुमन्मन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं प्लीहादिवारणम्।
हांहुं हनुमते हृच्च ङेऽन्तं कपिपतिं ततः॥१८१॥
वगवगि अंआंप्रोच्य प्लीहं हुं चापि दं वदेत्।
हान्तं जिनमितार्णोऽयं मुन्यादि द्वादशार्णवत्॥१८२॥
प्लीहयुक्तोदरे स्थाप्यं नागवल्लीदलं शुभम्।
गदं दुष्टं नूतनेन पटेनाच्छादयेत्ततः॥१८३॥
वंशजं शकलं तस्य जठरे स्थापयेद् बुधः।
तदादाय ज्वलद्वह्नौ यश्चैवं त्रिः प्रतापयेत्॥१८४॥
बदरीतरुसम्भूतसमिधा मनुनामुना।
सप्तशो जपितेनैवं ताडयेज्जठरास्थितम्।
सप्तकृत्वस्ततो मन्त्री शकलद्वितयं खलु॥१८५॥
एवं कृते प्लीहरोगो नश्यत्येव न संशयः।
यकृद्वृद्धौ चैवमेव दक्षपार्श्वे समाचरेत्॥१८६॥

प्लीहादि-निवारक हनुमन्मन्त्र—अब मैं प्लीहा आदि का निवारण करने वाले हनुमान् के मन्त्र को कहता हूँ। चौबीस अक्षरों का यह मन्त्र है—हां हुं हनुमते नमः कपिपतये वगवगि अं आं प्लीहं हुं दह। इस मन्त्र के ऋषि आदि द्वादशाक्षर मन्त्र के समान कहे गये हैं।

प्लीहा-युक्त उदर पर पान के पत्ते को रखकर उस दुष्ट रोग को नूतन वस्त्र से आच्छादित करने के बाद उस पर बाँस के टुकड़े को रखने के बाद उनमें से एक टुकड़े को लेकर प्रज्ज्वलित अग्नि में तीन बार तप्त करना चाहिये। इसके बाद बेर की समिधा को इस मन्त्र के सात जप से अभिमन्त्रित करके उससे सात बार उदर पर ताड़न करना चाहिये। इसी प्रकार बाँस के दो टुकड़ों से भी करना चाहिये। ऐसा करने से प्लीहा रोग

निश्चित ही नष्ट हो जाता है। यकृत् वृद्धि की दशा में भी इसी प्रकार दक्ष पार्श्व में करना चाहिये॥१८१-१८६॥

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि मालामन्त्रं वदेद् ध्रुवम्।
वज्रकाय वज्रतुण्ड वदेत्कपिलपिङ्गल ॥१८७॥
ऊर्ध्वकेश महावीर सुरक्तमुख कीर्तयेत्।
तडिज्जिह्व महारौद्र दंष्ट्रोत्कट कहद्वयम् ॥१८८॥
करालिने महादृढप्रहारिन्निति कीर्तयेत्।
लंकेश्वरवधायान्ते महासेतुपदं ततः ॥१८९॥
बन्धान्ते च महाशैलप्रवाह गगनेचर।
एह्येहि भगवन् प्रोच्य महाबलपराक्रम ॥१९०॥
भैरवाज्ञापय प्रोच्य एह्येहीतिपदं वदेत्।
महारौद्रपदं प्रोच्य दीर्घपुच्छेन वेष्टय ॥१९१॥
वैरिणम्भञ्जयद्वन्द्वं हुंफट् चायं ध्रुवादिकः।
बाणनेत्रेन्दुवर्णोऽत्र मालामन्त्रोऽखिलेष्टदः ॥१९२॥
एवमाराधयन् प्रोक्तं रुद्रस्यैकादशस्य तु।
अतः परम्प्रवक्ष्यामि कार्तवीर्यार्जुनस्य च ॥१९३॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते
हनुमन्मन्त्रकथनं नाम चतुस्त्रिंशः प्रकाशः॥३४॥

•

अन्य मालामन्त्र—अब मैं दूसरे मालामन्त्र को कहता हूँ। एक सौ पैंतीस अक्षरों का समस्त अभीष्ट-प्रदायक वह मन्त्र इस प्रकार है—ॐ वज्रकाय वज्रतुण्ड कपिल पिङ्गल ऊर्ध्वकेश महावीर सुरक्तमुख तडिज्जिह्व महारौद्र दंष्ट्रोत्कट कह-कह करालिने महादृढ़प्रहारिन् लङ्केश्वरवधाय महासेतु बन्ध महाशैलप्रवाह गगनेचर एह्येति भगवन् महाबलपराक्रम भैरवाज्ञापय एह्येहि महारौद्र दीर्घपुच्छेन वेष्टय वैरिणं भञ्जय-भञ्जय हुं फट्। इस मन्त्र के आराधन से ही एकादश रुद्रों की आराधना हो जाती है। अब इसके बाद मैं कार्तवीर्यार्जुन के श्रेष्ठ मन्त्र को कहूँगा॥१८७-१९३॥

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिवप्रणीत
'हनुमन्मन्त्रकथन'-नामक चतुस्त्रिंश प्रकाश
पूर्णता को प्राप्त हुआ।

•

पञ्चत्रिंशत्तमः प्रकाशः

(कार्तवीर्यार्जुनमन्त्रकथनम्)

श्रीदेव्युवाच

सुदर्शनांशसम्भूतः कार्तवीर्यार्जुनो नृपः ।
एतत्त्वया पुरा प्रोक्तं तस्य मन्त्रान् प्रब्रूहि मे ॥१॥

श्रीदेवी ने कहा—आपने पहले कहा है कि कार्त्तवीर्यार्जुन-नामक राजा सुदर्शन के अंश से उत्पन्न हुआ था; अतः अब उसके मन्त्रों को मुझसे कहिये॥१॥

कार्तवीर्यार्जुनमन्त्रकथनम्

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रेषु गोपितान् ।
पञ्चाम्नायगतान् मन्त्रानर्जुनस्य ब्रवीमि ते ॥२॥
धर्मपादाग्रभेदेन देव्याम्नायाः प्रकीर्तिताः ।
धर्मादीनां पादभेदाद्देवि तुल्यं ब्रवीमि ते ॥३॥
लोकानिन्द्यस्त्वेकपादः शास्त्रानिन्द्यो द्विपाद्भवेत् ।
त्रिपाद् द्वयोरनिन्द्यस्तु भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥४॥
सालोक्यमेकपात्प्रोक्तं सामीप्यन्तु द्विपात्स्मृतम् ।
सारूप्यम्पादहीनं स्यात्सायुज्यम्पूर्णमुच्यते ॥५॥
एषां कैवल्यरूपाणां लक्षणं शृणु पार्वति ।
यमैश्च नियमैर्युक्तः पूर्णधर्मस्तु केवलः ॥६॥
सिद्धो भवत्ययत्नेन स्वयं चेह परत्र हि ।
अकृत्वा परसन्तापमगत्वा स्मरमन्दिरम् ।
स्वधर्मेणार्जितं द्रव्यं केवलं तत्र साधनम् ॥७॥
देहाभिमाननाशेन लिङ्गदेहविनाशनम् ।
तेन कालस्वरूपत्वं तत्कैवल्यं प्रकीर्तितम् ॥८॥
उत्तरेण च पूर्वेण पश्चिमेन यथाक्रमम् ।
ऊर्द्ध्वेन दक्षिणेनैकदीपादिक्रमतोऽखिलाः ॥९॥

सिध्यन्ति केवलैश्चैवं पञ्चाम्नायैर्वृषादयः ।
तत्र सङ्करशूद्राद्या विप्रान्ताश्चाधिकारिणः ॥१०॥
यथोक्ताम्नायसेवाभिर्लभन्ते तत्परं पदम् ।
हीनसेवा तूत्तमानां रासभारोहणं यथा ॥११॥

श्रीशिव ने कहा—हे देवि! समस्त तन्त्रों में गुप्त रूप से विद्यमान अर्जुन के पञ्चाम्नाय-गत मन्त्रों को मैं तुम्हारे लिये कहता हूँ; श्रवण करो। हे देवि! धर्म के पादाग्र-भेद से देवी के आम्नाय कहे गये हैं, जो कि धर्मादि के पादभेद से तुल्य ही हैं। धर्म का प्रथम पाद लोक द्वारा एवं द्वितीय पाद शास्त्र द्वारा अनिन्द्य होता है। भक्ति एवं श्रद्धा से समन्वित धर्म का तृतीय पाद लोक एवं शास्त्र दोनों द्वारा अनिन्द्य होता है। धर्म के प्रथम पाद को सालोक्य एवं द्वितीय पाद को सामीप्य कहा गया है। सारूप्य पाद-रहित होता है एवं सायुज्य पूर्ण धर्म-स्वरूप होता है।

हे पार्वति! इनमें से कैवल्यरूपों के लक्षण का अब श्रवण करो। यम-नियम से युक्त पूर्ण धर्म ही केवल होता है, जो कि विना प्रयत्न के अनायास ही इहलोक एवं परलोक दोनों जगह सिद्ध होता है। दूसरे को पीड़ित करना एवं स्मरमन्दिर में गमन अर्थात् स्त्री-प्रसङ्ग करना—इन दो कार्यों से रहित होकर अपने धर्म से अर्जित द्रव्य द्वारा केवल का साधन किया जाता है। देहाभिमान के नष्ट हो जाने से लिङ्गशरीर का भी विनाश हो जाता है; इसीलिये वह कालस्वरूप होता है और उसे ही कैवल्य कहते हैं।

उत्तराम्नाय, पूर्वाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, ऊर्ध्वाम्नाय और दक्षिणाम्नाय के प्रदीप्त क्रम से पाँचो आम्नायों द्वारा सभी धर्म सिद्ध होते हैं, जिसके अधिकारी वर्णसंकर से लेकर ब्राह्मण-पर्यन्त होते हैं। जिनके लिये जो उक्त है, उस आम्नाय का सेवन करके वे परंपद को प्राप्त करते हैं। उत्तम वर्ण वालों के लिये निकृष्टों की सेवा ही परंपद-प्राप्ति होती है, जैसे कि गर्दभारोहण करना॥२-११॥

अथेष्टपान् मनून्वक्ष्ये कार्तवीर्यार्जुनस्य च ।
यः सुदर्शनचक्रस्यावतारः क्षितिमण्डले ॥१२॥
वह्नितारयुता रौद्री लक्ष्मीरग्नीन्दुशान्तियुक् ।
वेधा धरेन्दुशान्त्याढ्यो निद्रार्धीशाग्निबिन्दुयुक् ॥१३॥
पाशो मायाङ्कुशम्पद्मा वर्मास्त्रे कार्तवीपदम् ।
रेफो बिन्द्वासनोऽनन्तो वह्निजौ कर्णसंस्थितौ ॥१४॥
मेषः सदीर्घपवनो मनुरुक्तो हृदन्तकः ।
ऊनविंशतिवर्णोऽयं तारादिर्नखवर्णकः॥१५॥

दत्तात्रेयो मुनिश्चास्य छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्।
कार्तवीर्यार्जुनो देवो बीजं शक्तिध्रुवश्च हृत्॥१६॥
फ्रांत्रामिति स्याद्धृदयं क्लींश्रीमिति शिरः स्मृतम्।
ऊंहं शिखा समाख्याता क्रोंश्रीं कवचमीरितम्॥१७॥
हुंफडस्त्रं समाख्यातं शेषेण व्यापकञ्चरेत्।
हृदये जठरे नाभौ जघने गुह्यदेशके॥१८॥
दक्षपादे वामपादे सक्थ्नि जानुनि जङ्घयोः।
विन्यसेद्बीजदशकं प्रणवद्वयमध्यगम्॥१९॥
ताराद्यान्नव शेषार्णान् मस्तके च ललाटके।
भ्रुवोः श्रुत्योस्तथैवाक्ष्णोर्नसि वक्त्रे गलेंऽसयोः॥२०॥
सर्वमन्त्रेण सर्वाङ्गे व्यापकञ्च ततश्चरेत्।
सर्वेष्टसिद्धये ध्यायेत् कार्तवीर्यार्जुनेश्वरम्॥२१॥

कार्तवीर्यार्जुन का मन्त्र—अब मैं इस पृथिवीमण्डल पर सुदर्शनचक्र के अवतार-स्वरूप कार्तवीर्य अर्जुन के अभीष्ट की रक्षा करने वाले मन्त्रों को कहता हूँ। उन्नीस अक्षरों का इनका मन्त्र है—फ्रों व्रीं क्लीं भ्रूं आं ह्रीं क्रों श्रीं हुं फट् कार्तवीर्यार्जुनाय नमः। आदि में ॐ का संयोजन करने पर यही मन्त्र बीस अक्षरों का हो जाता है। इस मन्त्र के ऋषि दत्तात्रेय, छन्द अनुष्टुप्, देवता कार्तवीर्यार्जुन, बीज ह्रीं और शक्ति ॐ कहे गये हैं। इसका पञ्चाङ्ग न्यास इस प्रकार करना चाहिये—फ्रां व्रां हृदयाय नमः, क्लीं श्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ हं शिखायै वषट्, क्रों श्रीं कवचाय हुं, हुं फट् अस्त्राय फट्। पञ्चाङ्गन्यास करने के उपरान्त मन्त्र के शेष अक्षरों से व्यापक न्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् हृदय, जठर, नाभि, जघन (पेडू=कमर से नीचे आगे का भाग), गुह्य, दक्ष पाद, वाम पाद, ऊरु, जानु एवं जङ्घा में आदि एवं अन्त में ॐ लगाकर मन्त्र के दस बीजों का इस प्रकार न्यास करना चाहिये—ॐ फ्रीं ॐ हृदये, ॐ व्रीं ॐ जठरे, ॐ क्लीं ॐ नाभौ, ॐ भ्रूं ॐ जघने, ॐ आं ॐ गुह्ये, ॐ ह्रीं ॐ दक्षपादे, ॐ क्रों ॐ वामपादे, ॐ श्रीं ॐ ऊर्वोः, ॐ हुं ॐ जानुनोः, ॐ फट् ॐ जङ्घयोः।

इसके बाद अवशिष्ट नव वर्णों के आदि में ॐ लगाकर क्रमशः मस्तक, ललाट, दोनों भौं, दोनों कर्ण, दोनों आँख, नासिका, मुख गला एवं दोनों स्कन्ध में इस प्रकार न्यास करना चाहिये—ॐ कां मस्तके, ॐ र्तं ललाटे, ॐ वीं भ्रुवोः, ॐ र्यां कर्णयोः, ॐ र्जुं नेत्रयोः, ॐ नां नासिकायाम्, ॐ यं मुखे, ॐ नं गले, ॐ मः स्कन्धयोः।

तदनन्तर सम्पूर्ण मन्त्र (ॐ फ्रों व्रीं क्लीं भ्रूं आं ह्रीं क्रों श्रीं हुं फट् कार्तवीर्यार्जुनाय नमः) से सर्वाङ्ग में व्यापक न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् सम्पूर्ण इष्टसिद्धि के लिये राजा कार्तवीर्यार्जुन का ध्यान करना चाहिये॥१२-२१॥

प्रभाकररुचिः कण्ठे स्वर्णमालाविराजितः ।
ध्येयो रक्तांशुकोष्णीषी नानाकल्पविराजितः ॥२२॥
सहस्रार्धभुजैर्बाणान् सहस्रार्धैर्धनूंषि च ।
दधट्टङ्कारशब्दैश्च त्रासिताखिलदुर्जनः ॥२३॥
स्यन्दने च समारूढः सप्तद्वीपधरापतिः ।
भूपालमुकुटाघृष्टपादपद्मोऽब्जलोचनः ॥२४॥
स्थूलकायोऽतिभीष्मश्च रथस्थो भक्तवत्सलः ।

सूर्य की किरणों के सदृश कान्तिमान सोने की माला को कण्ठ में धारण किये हुये, रक्तवर्ण रेशमी वस्त्र की पगड़ी बाँधे हुये, अनेक अलंकारों से सुशोभित, पाँच सौ हाथों में धनुष एवं पाँच सौ हाथों में बाण धारण करके रथ पर आरूढ़ होकर धनुष के टङ्कार से समस्त दुर्जनों को भयभीत करने वाले, सात द्वीपों वाली पृथिवी के स्वामी, राजाओं के मुकुटों से घर्षित चरणकमल वाले, कमल-सदृश नेत्र वाले, स्थूल शरीर वाले, अत्यन्त पराक्रमी, रथ पर विराजमान, भक्तों के प्रति दयालु कार्तवीर्यार्जुन का ध्यान करना चाहिये॥२२-२४॥

वैष्णवे तु यजेत्पीठे पद्मं दशदलं चरेत् ॥२५॥
तस्याङ्गमूर्तिकाः पञ्च कर्णिकायां प्रपूजयेत् ।
अग्नीशासुरवायव्यकोणेषु हृदयादिकाः ॥२६॥
अस्त्राण्यपि चतुर्दिक्षु पञ्च ताः स्फटिकोज्ज्वलाः ।
खड्गचर्मधरा ध्येयाश्चन्द्राभा अङ्गमूर्त्तयः ॥२७॥
चापबाणधरा वीराः सर्वाभरणभूषिताः ।
रक्तांशुका रक्तमाल्या रक्तचन्दनचर्चिताः ।
चतुर्भुजा रोचमानाः सर्वे रक्तविलोचनाः ॥२८॥
षट्कोणेषु षडङ्गानि ततो दिक्षु विदिक्षु च ।
चौरमदविभञ्जनो मारीमदविभञ्जनः ॥२९॥
अरिमदविभञ्जनो दैत्यमदविभञ्जनः ।
दुःखनाशो दुष्टनाशो दुरितामयनाशकः ॥३०॥

दिक्ष्वष्टशक्तय: पूज्या: प्राच्यादिषु सितप्रभा: ।
क्षेमङ्करा वश्यकरी श्रीकरी च यशस्करी ॥३१॥
तद्बहिर्भूपुरे पूज्या लोकपा अस्त्रसंयुता: ॥३२॥
चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं होम: कार्य: पयोन्धसा ।
तिलाज्यतण्डुलैर्वापि पुरश्चर्या सरित्तटे ॥३३॥
तर्पणादि तत: कुर्यान्मन्त्रसिद्धि: प्रजायते ।
प्रयोगानपि कुर्वीत शृणु तानधुनेश्वरि ॥३४॥

उक्त प्रकार से ध्यान करने के उपरान्त वैष्णव पीठ पर इनका यजन करना चाहिये। एतदर्थ वैष्णवपीठ पर दशदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में पाँच अङ्गमूर्तियों का पूजन करके अग्निकोण में हृदय का, ईशान कोण में शिर का, नैर्ऋत्य कोण में शिखा का एवं वायव्य कोण में कवच का पूजन करने के उपरान्त चारो दिशाओं में अस्त्र का पूजन करना चाहिये।

उन पाँचो अङ्गदेवताओं के स्फटिक-सदृश स्वच्छ, खड्ग एवं चर्म धारण किये हुये तथा चन्द्रमा के समान प्रकाशमान स्वरूप का ध्यान करना चाहिये। धनुष एवं बाणधारी वे वीर समस्त आभरणों से विभूषित हैं तथा रक्त वस्त्र, रक्त माला एवं रक्त चन्दन धारण किये हुये हैं। वे सभी चार भुजाओं से सुशोभित हैं एवं लाल-लाल आँखों वाले हैं।

इसके बाद षट्कोण में षडङ्ग-पूजन करने के अनन्तर दिशाओं एवं विदिशाओं में क्रमश: चौरमदविभञ्जन, मारीमदविभञ्जन, अरिमदविभञ्जन, दैत्यमदविभञ्जन, दु:खनाश, दुष्टनाश, दुरितनाश एवं आमयनाश का पूजन करना चाहिये। इसके बाद पूर्व आदि दिशाओं में श्वेत प्रभा वाली, कल्याणकारिणी, वशीभूत करने वाली तथा धन एवं यश प्रदान करने वाली अष्टशक्तियों का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर उसके बाहर भूपुर में अस्त्र-सहित दिक्पालों का पूजन करना चाहिये।

तत्पश्चात् मन्त्र का चार लाख जप करके दूध-भात अथवा तिल, गोघृत एवं तण्डुल से हवन करते हुये नदी-तट पर पुरश्चरण करना चाहिये। इसके बाद तर्पण आदि करने से मन्त्र की सिद्धि होती है। मन्त्रसिद्धि के पश्चात् प्रयोगों का भी साधन करना चाहिये। हे देवि! अब उन प्रयोगों का श्रवण करो॥२५-३४॥

दक्षिणमार्गेण कार्तवीर्ययन्त्रस्य पूजनविधि:

अथातो दक्षिणे मार्गे वक्ष्यते काम्यपूजनम् ।
शुद्धभूमावष्टगन्धैर्लिखेद्यन्त्रं तदुच्यते ॥३५॥

लिखेद्दशदलं पद्मं कर्णिकायां समालिखेत् ।
फ्रोंक्लीं ॐ ऐं च पत्रेषु प्रणवाद्यानि संलिखेत् ॥३६॥
मन्त्रस्य नवबीजानि ततः पत्रान्तरेषु च ।
ॐमादिदशवर्णाश्च केशरेषु समालिखेत् ॥३७॥
शषसहान् स्वरांश्चापि तदग्रे च लिखेत्पुनः ।
वेष्टयेत्कादिकैर्वर्णैः शेषैः सहविवर्जितैः ॥३८॥
तद्बाह्ये चतुरस्रे तु वेष्टयेद् भूतवर्णकैः ।
नानाकामप्रभेदेन भूवाय्वग्निनभोऽम्भसाम् ॥३९॥
पञ्च ह्रस्वाः पञ्च दीर्घा एकाराद्याश्च पञ्च च ।
आयुष्करी तथा प्रज्ञाकरी विद्याकरी पुनः ।
धनकराष्टमी पश्चाल्लोभेशा पञ्च पङ्कजम् ।
पञ्चवर्गाः पञ्च याद्याः षसहाश्च लक्षौ क्रमात् ॥४०॥
स्तम्भने पार्थिवै रौप्यैः शान्तौ वश्ये च तैजसैः ।
उच्चाटने वायवीयैर्विद्वेषे चापि नाभसैः ।
मारणे तैजसैः शान्तौ वातैः पुष्टौ च पार्थिवैः ॥४१॥
इदं यन्त्रं तोयपूर्णघटे क्षिप्त्वा प्रपूजयेत् ।
कुम्भं स्पृष्ट्वा जपेन्मन्त्रं सहस्रं तेन सेचयेत् ॥४२॥
सम्यक् साध्यं तदा स स्यात्पुत्रवान् रोगवर्जितः ।
यशस्वी दीर्घजीवी च सत्कलत्रानुरञ्जकः ।
वाक्सिद्धश्चापि तेजस्वी प्रतापी विजितेन्द्रियः ॥४३॥
शत्रूपद्रवमापन्ने ग्रामे वा पुटभेदने ।
संस्थापयेदिदं यन्त्रं वैरिभीतिनिवृत्तये ॥४४॥

दक्षिणमार्गानुसार कार्तवीर्य-यन्त्र का पूजन—अब मैं दक्षिणमार्ग के अनुसार कार्तवीर्य यन्त्र के काम्य पूजन को कहता हूँ। एतदर्थ शुद्ध भूमि पर अष्टगन्ध से इस प्रकार यन्त्र का अंकन करना चाहिये—सर्वप्रथम दसदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में 'फ्रों क्लीं ॐ ऐं' लिखने के बाद पत्रों में प्रणव आदि नव बीजों को लिखकर पत्रान्तरों के केशरों में ॐ आदि दश वर्णों को लिखना चाहिये। इसके बाद उसके आगे श ष स ह और स्वरों को लिखने के अनन्तर श ष स ह को छोड़कर कादि वर्णों से उसे वेष्टित कर देना चाहिये। फिर उसके बाहर चतुरस्र को भूतवर्णों से वेष्टित कर देना चाहिये।

अनेक कामनाओं के भेद से पृथिवी, वायु, अग्नि, आकाश एवं जलरूप पञ्चभूतात्मक पाँच ह्रस्ववर्ण, पाँच दीर्घ वर्ण एवं एकारादि पाँच से यन्त्र-निर्माण करना चाहिये। यह यन्त्र क्रमशः आयु की वृद्धि करने वाला, बुद्धि को तीव्र करने वाला, विद्या प्रदान करने वाला एवं धन प्रदान करने वाला होता है। इस यन्त्र में क्रमशः पाँच ओष्ठवर्ण, पाँच वर्गवर्ण, पाँच यकारादि, चार शकारादि एवं ल-क्ष का अंकन करना चाहिये।

स्तम्भन-हेतु पार्थिव यन्त्र का शान्ति-हेतु रौप्य अथवा वायवीय यन्त्र का, वशीकरण-हेतु तैजस यन्त्र का उच्चाटन-हेतु वायवीय यन्त्र का, विद्वेषणहेतु नाभस यन्त्र का, मारण-हेतु तैजस यन्त्र का एवं पुष्टि-हेतु पार्थिव यन्त्र का निर्माण करना चाहिये।

इस यन्त्र को जलपूर्ण घट में डालकर पूजन करने के उपरान्त कलश को स्पर्श करके मन्त्र का एक हजार जप करने के वाद उस कलशस्थ जल से साध्य का सम्यक् रूप से अभिषेक करने से वह साध्य दीर्घ आयु वाला, स्त्री-पुत्र को प्रसन्न रखने वाला, सिद्ध वाणी वाला (वाक्सिद्ध), तेजस्वी, प्रतापी एवं जितेन्द्रिय होता है।

ग्राम अथवा नगर के शत्रु-जनित उपद्रव के प्राप्त होने पर शत्रुभय की समाप्ति के लिये वहाँ पर इस यन्त्र को सम्यक् रूप से स्थापित करना चाहिये॥३५-४४॥

वाममार्गिणां पूजनीयनृपयन्त्रकथनम्

अथ वक्ष्ये वामगानां यन्त्रभेदं शृणुष्व तम्।
लिखेदष्टदलं पद्मं ससाध्यं चान्द्रमप्युत ॥४५॥
योऽयमाद्यन्तयोस्तस्या लिखेत्पद्मेषु च क्रमात्।
मनुबीजाष्टकं चान्ते दले लेख्यं पुनश्च फट् ॥४६॥
त्रिशोऽन्तरे शेषवर्णानन्ते वर्णद्वयं लिखेत्।
त्रिशः स्वरानन्तरेषु त्रिधोष्मार्णसमन्वितान् ॥४७॥
घणाद्वयं च तद्बाह्ये तयोर्वीथ्यां च कादिकान्।
ऊष्मार्णांश्चतुरस्रे तु वज्राष्टकसमन्वितान् ॥४८॥
तद्बाह्ये सुलिखेज्जादिपूर्वकाद्भूतवर्णकान्।
स्नानार्थं घटपानीयमन्यत् पूर्ववदीरितम् ॥४९॥

वाममार्गियों द्वारा पूजनीय कार्तवीर्य यन्त्र—अब मैं वाममार्गियों के यन्त्रभेद को कहता हूँ, उसका श्रवण करो। अष्टदल कमल बनाकर उसमें साध्य का नाम चान्द्र-युक्त लिखे। जो साध्य है उसके आदि अन्त को पद्म में लिखे। मन्त्र के आठ बीजों

को अष्टपत्रों में लिखे और सबमें फट् लिखे। तीन वर्णों के मध्य में शेष वर्णों को लिखकर अन्त में दो वर्णों को लिखना चाहिये। तीन ऊष्म वर्ण-समन्वित तीन स्वरों को लिखने के बाद घ-ण इन दोनों वर्णों को लिखना चाहिये। उसके बाहर दो वृत्त की वीथि में कादि वर्णों को लिखकर उसके बाहर चतुरस्र में आठ वज्रों से समन्वित ऊष्म वर्णों को लिखना चाहिये। फिर उसके बाहर जादि-पूर्वक भूतवर्णों को लिखना चाहिये। कलशजल से अभिषेक आदि अन्य विधियाँ पूर्ववत् होती हैं।।४५-४९।।

काम्यहोमकथनम्

काम्यहोमं प्रवक्ष्यामि सङ्ख्याकार्यानुसारतः ।
सर्षपारिष्टलशुनकार्पासैर्मार्यते रिपुः ।।५०।।

कार्तवीर्यस्य यत्किञ्चिद्धोमद्रव्यं तु काम्यकम् ।
कटुतैलमहिष्याज्यैः प्लुतं कृत्वा तु होमयेत् ।।५१।।
धत्तूरैस्स्तभ्यते निम्बैर्द्वेष्यते वश्यतेऽम्बुजैः ।।५२।।
उच्चाट्यते विभीतस्य समिद्भिः खदिरस्य च ।
यवैर्हुतैः श्रियः प्राप्तिस्तिलैराज्यैरघक्षयः ।।५३।।
तिलतण्डुलसिद्धार्थलाजैर्वश्यो नृपो भवेत् ।
अपामार्गार्कदूर्वाणां होमो लक्ष्मीप्रदोऽघनुत् ।
स्त्रीवश्यकृत्प्रियङ्गूनां गुग्गुलोर्भूतशान्तिदः ।।५४।।
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटबिल्वसमुद्भवाः ।
समिधो लभते हुत्वा पुत्रानायुर्धनं सुखम् ।।५५।।
सर्पकञ्चुकसिद्धार्थधत्तूरस्य फलानि च ।
हुत्वा लवणमिश्राणि चोरनाशः प्रजायते ।
रोचनागोमयैः स्तम्भो भूप्राप्तिः शालिभिर्हुतैः ।।५६।।

काम्य हवन—अब काम्य हवन को कहता हूँ। हवन की संख्या कार्य के अनुसार होती है। सरसो, अरिष्ट (रीठा), लहसुन एवं कपास के हवन से शत्रु का मारण होता है। कार्तवीर्य के समस्त हवनीय द्रव्यों को सरसो तेल और भैंस के घी से प्लुत करके हवन करना चाहिये।

धतूर-समिधा के हवन से स्तम्भन, नीम की समिधा के हवन से विद्वेषण, कमलपुष्प के हवन से वशीकरण, बहेड़ा एवं खैर की समिधा के हवन से उच्चाटन, यव (जौ) के हवन से धन-प्राप्ति एवं गोघृत-मिश्रित तिलों के हवन से पाप-क्षय होता है।

राजा को वशीभूत करने के लिये तिल, चावल, सिद्धार्थ (सरसों) एवं लाजा (धान का लावा) से हवन करना चाहिये। अपामार्ग, अकवन एवं दूब से किया गया हवन लक्ष्मी प्रदान करने वाला तथा पापनाशक होता है। प्रियंगु से किया गया हवन स्त्री को वशीभूत करने वाला होता है एवं गुग्गुल के हवन से भूतों की शान्ति होती है।

पीपल, गूलर, पाकड़, वट एवं बेल की समिधाओं के हवन से पुत्र-प्राप्ति, आयुष्य-प्राप्ति, धन-प्राप्ति एवं सुख-प्राप्ति होती है।

लंवण-मिश्रित साँप का केंचुल, सिद्धार्थ एवं धत्तूर-फल के हवन से चोरों का नाश होता है। गोरोचन एवं गोबर के हवन से स्तम्भन होता है तथा धान्य के हवन से भूमि-प्राप्ति होती है।।५०-५६।।

कार्त्तवीर्यमन्त्रभेदकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कार्तवीर्यमनोर्भिदः।
एकोनविंशत्यर्णोऽयं तारादिर्नखवर्णकः ।।५७।।
कार्तवीर्यार्जुनं ङेऽन्तमन्ते च नमसान्वितम्।
स्वबीजाद्यो दशार्णोऽसावन्ये नवशिवाक्षराः ।।५८।।
आद्यबीजद्वयेनासौ द्वितीयो मन्त्र ईरितः।
स्वकामाभ्यां तृतीयोऽसौ स्वभ्रूभ्यां तु चतुर्थकः ।।५९।।
स्वपाशाभ्यां पञ्चमोऽसौ षष्ठः स्वेन च मायया।
स्वाङ्कुशाभ्यां सप्तमः स्यात्स्वरमाभ्यामथाष्टमः ।।६०।।
स्ववाग्भवाभ्यां नवमो वर्मास्त्राभ्यां तथान्तिमः।
एतेषु मन्त्रवर्येषु स्वानुकूलं मनुं भजेत् ।।६१।।
एषामाद्ये विराट् छन्दोऽन्येषु त्रिष्टुबुदाहृतम्।
दशमन्त्रा इमे प्रोक्ता यदा स्युः प्रणवादिकाः ।।६२।।
तदादिमः शिवार्णः स्यादन्ये तु द्वादशाक्षराः।
एवं विंशतिमन्त्राणां यजनं पूर्ववन्मनोः ।।६३।।
त्रिष्टुप्छन्दस्तदाद्ये स्यादन्येषु जगती मता।
दीर्घाढ्यमूलबीजेन कुर्यादेषां षडङ्गकम् ।।६४।।

कार्त्तवीर्य-मन्त्रभेद—अब मैं कार्तवीर्य-मन्त्र के भेदों को कहता हूँ। उपर्युक्त उन्नीस अक्षरों के आदि में ॐ का संयोजन करके स्फुटित बीस अक्षरों वाले मन्त्र के अन्य दस भेद इस प्रकार होते हैं—१. फ्रों कार्तवीर्यार्जुनाय नमः, २. फ्रों व्रीं कार्तवीर्यार्जुनाय नमः, ३. फ्रों क्लीं कार्तवीर्यार्जुनाय नमः, ४. फ्रों भ्रूं कार्तवीर्यार्जुनाय

नमः, ५. क्रों आं कार्तवीर्यार्जुनाय नमः, ६. क्रों ह्रीं कार्तवीर्यार्जुनाय नमः, ७. क्रों क्रों कार्तवीर्यार्जुनाय नमः, ८. क्रों श्रीं कार्तवीर्यार्जुनाय नमः, ९. क्रों ऐं कार्तवीर्यार्जुनाय नमः, १०. हुं फट् कार्तवीर्यार्जुनाय नमः। इन मन्त्रों में से जो अनुकूल हो, उसका जप करना चाहिये अर्थात् सिद्धारि चक्र का विचार करके मन्त्रजप करना चाहिये। इनमें से प्रथम दो मन्त्रों का छन्द विराट् एवं अन्य आठ मन्त्रों का छन्द त्रिष्टुप् कहा गया है।

उक्त सभी दस मन्त्रों के आदि में ॐ का संयोजन करने पर प्रथम मन्त्र ग्यारह अक्षर वाला होता है एवं अन्य नव मन्त्र बारह अक्षरों के होते हैं। इस प्रकार प्रस्फुटित इन बीस मन्त्रों का पूजन पूर्वमन्त्र के समान ही होता है। ॐ से संयुक्त दस मन्त्रों में से प्रथम दो मन्त्रों का छन्द त्रिष्टुप् एवं शेष आठ का छन्द जगती होता है। मूल बीज-मन्त्र के छः दीर्घ स्वरूपों से इनका षडङ्गन्यास किया जाता है।।५७-६४।।

तारो हृत्कार्तवीर्यार्जुनाय वर्मास्त्रठद्वयम् ।
चतुर्दशार्णो मन्त्रोऽयमस्येज्या पूर्ववन्मता ।।६५।।
भूनेत्रसप्तनेत्राक्षिवर्णैरस्याङ्गपञ्चकम् ।
तारो हृद्भगवान्ङेऽन्तः कार्तवीर्यार्जुनस्तथा ।।६६।।
वर्मास्त्राग्निप्रिया मन्त्रः प्रोक्तोऽष्टादशवर्णवान् ।
त्रिवेदसप्तयुग्माक्षिवर्णैः पञ्चाङ्गकं मनोः ।।६७।।

चौदह अक्षरों का एक अन्य मन्त्र है—ॐ नमो कार्तवीर्यार्जुनाय हुं फट् ठः ठः। इस मन्त्र का पूजन पूर्ववत् कहा गया है। मन्त्र के क्रमशः एक, दो, सात, दो, दो वर्णों से इसका पञ्चाङ्गन्यास किया जाता है।

अट्ठारह अक्षरों का एक अन्य मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ नमो भगवते कार्तवीर्यार्जुनाय हुं फट् स्वाहा। मन्त्र के क्रमशः तीन, चार, सात, दो, दो वर्णों से इसका पञ्चाङ्गन्यास किया जाता है।।६५-६७।।

नमो भगवते श्रीति कार्तवीर्यार्जुनाय च ।
सर्वदुष्टान्तकायेति तपोबलपराक्रमैः ।।६८।।
परिपालितसप्तान्ते द्वीपाय सर्वरापदम् ।
जन्यचूडामणिर्ङेऽन्तः सर्वशक्तिमते ततः ।।६९।।
सहस्रबाहवे प्रान्ते वर्मास्त्रान्तो महामनुः ।
त्रिषष्टिवर्णवान् प्रोक्तः स्मरणात् सर्वसिद्धिकृत् ।।७०।।
राजन्यचक्रवर्ती च वीरः शूरस्तृतीयकः ।
माहिष्मतीपतिः पश्चाच्चतुर्थः समुदीरितः ।।७१।।

रेवाम्बुपरितृप्तश्च कारागेहप्रबाधितः ।
दशास्यश्चेति षड्भिः स्यात्पदैरेतैः षडङ्गकम् ॥७२॥
सिच्यमानं युवतिभिः क्रीडन्तं नर्मदाजले ।
हस्तैर्जलौघं रुन्धन्तं ध्यात्वा मत्तं नृपोत्तमम् ॥७३॥
एवं ध्यात्वाथ तं मन्त्रं जपेदन्यत्तु पूर्ववत् ।
पूर्ववत्सर्वमेतस्य समाराधनमीरितम् ॥७४॥

तिरेसठ अक्षरों का कार्तवीर्य महामन्त्र इस प्रकार कहा गया है—नमो भगवते श्रीकार्तवीर्यार्जुनाय सर्वदुष्टान्तकाय तपोबलपराक्रमैः परिपालितसप्तद्वीपाय सर्वराजन्यचूड़ामणये सर्वशक्तिमते सहस्रबाहवे हुं फट्। इस मन्त्र के जप से समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—राजन्यचक्रवर्तिने हृदयाय नमः, वीराय शिरसे स्वाहा, शूराय शिखायै वषट्, महिष्मतिपतये कवचाय हुम्, रेवाम्बुपरितृप्ताय नेत्रत्रयाय वौषट्, कारागेह-प्रबाधितदशास्याय अस्त्राय फट्।

उक्त प्रकार से षडङ्गन्यास करने के उपरान्त नर्मदा में जलविहार करते हुये युवतियों द्वारा अभिषेक किये जाते हुये, हाथों से जल को अवरुद्ध करते हुये अत्यन्त प्रसन्न श्रेष्ठ राजा कार्तवीर्य का ध्यान करना चाहिये।

इस प्रकार ध्यान करके उपर्युक्त मन्त्र का जप करना चाहिये। इस मन्त्र की आराधना-हेतु अन्य समस्त विधियाँ पूर्ववत् ही अनुष्ठित होती हैं॥६८-७४॥

कार्तवीर्यभूपध्यानकथनम्

अथास्य वक्ष्यते ध्यानं सर्वैश्वर्यविधायकम् ।
माहिष्मत्यां मन्त्रिमध्ये समासीनमलंकृतम् ॥७५॥
नानासुरस्त्रीप्रवृतं सिंहासनगतं सदा ।
बाहुभिः शरचापासिगदामुद्गरशूलकान् ॥७६॥
भुशुण्डीपाशखेटादीन् दधतं सुप्रसन्नकम् ।
परचक्रस्तेन राजभयं ध्यानमुदीरितम् ॥७७॥

कार्तवीर्य का ध्यान—अब कार्तवीर्य के समस्त प्रकार के ऐश्वर्य-विधायक ध्यान को कहा जा रहा है। माहिष्मती में मन्त्रियों के मध्य में अनेक देववनिताओं से चारो ओर से घिरे हुये सिंहासन पर अलंकृत होकर विराजमान, हाथों में बाण, चाप, खड्ग, गदा, मुद्गर, शूल, भुशुण्डी, पाश, खेटक (मूसल) आदि धारण किये हुये, परम प्रसन्न, शत्रुओं में राजभय उत्पन्न करने वाले कार्तवीर्य का ध्यान करना चाहिये।

अथान्यद्वक्ष्यते ध्यानं सर्वं रक्षाकरं परम् ।
त्रैलोक्यभीषणं ध्यायेदयुताश्वरथस्थितम् ॥७८॥
गर्जन्तं प्रति शत्रूंश्च सहस्रार्कसमद्युतिम् ।
दोर्दण्डमण्डलैर्बाणान् क्षिपन्तं तीव्रधारकान् ॥७९॥
नानायुधधरैर्युक्तं रथिभिश्च पदातिभिः ।
गजयूथैरश्ववाहैः कुण्डलद्योतितास्यकम् ॥८०॥
ध्यात्वैवं प्राङ्मुखो भूत्वा सहस्रं नाशयेद्भयम् ।
आहवे शत्रुसङ्घातं जित्वा स सुखमेधते ॥८१॥
अयमेव तु सर्वादिश्चतुष्षष्ठार्णको मनुः ।
एकादशादिविख्यातं ध्यानपूजादिकं मनोः ॥८२॥

अब कार्तवीर्य के सर्वरक्षाकर ध्यान को कहा जा रहा है। दस हजार अश्व जुते रथ पर विराजमान, शत्रुओं के प्रति गर्जन करते हुये, हजारों सूर्य-सदृश दीप्तिमान, चालीस हाथों से तीव्र धार वाले बाणों का निक्षेप करते हुये विविध आयुध धारण किये हुये रथियों, पदातियों, गजारूढ़ों एवं अश्वारूढ़ों से समन्वित, कुण्डल से प्रकाशमान मुख वाले, तीनों लोकों के लिये भयंकर कार्तवीर्य का ध्यान करना चाहिये।

इस प्रकार ध्यान करके पूर्वाभिमुख बैठकर मन्त्र का एक हजार जप करने वाले साधक का भय विनष्ट हो जाता है; साथ ही युद्ध में शत्रुओं को जीतकर वह सुख प्राप्त करता है।

इसी मन्त्र के आदि में पूर्वोक्त ग्यारह बीजों को संयुक्त करने से यह मन्त्र चौंसठ अक्षरों का हो जाता है। इसके भी ध्यान-पूजादि पूर्ववत् होते हैं॥७८-८२॥

यन्त्रमस्य प्रवक्ष्यामि सर्वकार्यार्थसिद्धये ।
आदौ चतुर्दलं पद्मं चाष्टारं रदपत्रकम् ॥८३॥
तद्बाह्ये वेददलककर्णिकायां समालिखेत् ।
ह्रांबीजमथ पत्रेषु प्रणवं साध्यनाम च ॥८४॥
कार्ययुक्तं नमश्चान्ते तद्बाह्येऽष्टदलं लिखेत् ।
एकोनविंशत्यर्णस्य द्वौ नमो हरितार्णकान् ॥८५॥
लिखेत्प्रतिदलं द्वौ द्वौ वर्णौ बिन्दुसमन्वितौ ।
तद्बहिः षोडशदले कामबीजं समालिखेत् ॥८६॥
वक्ष्यमाणमनोरस्य ततोऽनुष्टुभमालिखेत् ।
बहिस्तस्य प्रकुर्वीत ततो वृत्तचतुष्टयम् ॥८७॥

तदाद्यवीथ्यां हि लिखेच्चतुष्षष्ठार्णकं मनुम् ।
द्वितीयायां क्षकारादिककारान्तान् विलोमतः ॥८८॥
तृतीयायां ककारादिक्षकारान्तान् क्रमेण च ।

समस्त कार्यों की सिद्धि के लिये अब इसके यन्त्र को कहता हूँ। भोजपत्र पर सर्वप्रथम चार दलों वाला कमल बनाकर उसके बाहर अष्टदल कमल बनाने के बाद उसके बाहर षोडशदल बनाना चाहिये। तत्पश्चात् चर्तुदल की कर्णिका में 'ह्रां' बीज लिखकर दलों में साध्यनाम-सहित ॐ लिखना चाहिये। तदनन्तर उसके बाहर अष्टदल में नमः के साथ कार्य का अंकन करना चाहिये। इसके बाद उसके बाहर दसदल में उन्नीस अक्षरों के मन्त्र में से 'नमः' इन दो वर्णों को छोड़कर शेष को प्रत्येक दल में दो-दो के क्रम से लिखना चाहिये। फिर उसके बाहर षोड़श दल में 'क्लीं' लिखकर वक्ष्यमाण अनुष्टुप् मन्त्र को लिखकर उसके बाहर चार वृत्त बनाकर उसकी प्रथम वीथि में चौसठ अक्षरों वाले मन्त्र को, द्वितीय वीथि में विलोमक्रम से क्ष से क-पर्यन्त वर्णों को एवं तृतीय वीथि में क से आरम्भ कर क्ष-पर्यन्त वर्णों को क्रमशः लिखना चाहिये॥८३-८८॥

ततो बीजानि च लिखेत्तत्परे च चतुर्दले ॥८९॥
कुं खुं श्रुं ध्रुं क्रमेणैव तद्बाह्येऽष्टदले पुनः ।
चुं छुं जुं झुं तथा टुं ठुं डुं ढुं षोडशदले पुनः ॥९०॥
एवं तुपुयशान्तानि चर्चाबीजानि षोडश ।
पुनरुक्तदले कादिहान्तबीजानि संलिखेत् ॥९१॥
अष्टाविंशतिसङ्ख्यानि पुनः कादिचतुष्टयम् ।
कार्यानुरूपं सुलिखेत्तद्बाह्ये भूतलं शुभम् ॥९२॥
द्विरावृत्त्या लिखेत्तस्य वीथ्या भूर्जेऽर्णकांस्तथा ।
कार्तवीर्यार्जुनस्यैतद्यन्त्रं कोऽपि न वेत्त्यलम् ।
अहं जानामि विष्णुश्च तत्रेषद्वेत्ति तद्गुहः ॥९३॥

तदनन्तर चतुर्दल में क्रमशः कुं खुं गुं घुं बीजों को लिखकर उसके बाहर अष्टदल में चुं छुं जुं झुं टुं ठुं डुं ढुं बीजों को लिखना चाहिये। इसके बाद षोडशदल में क्रमशः तुं थुं दुं धुं, पुं फुं बुं भुं, युं रुं लुं वुं, शुं षुं सुं हुं—इन सोलह चर्चाबीजों को लिखना चाहिये। फिर उक्त दलों में क से आरम्भ कर ह-पर्यन्त अट्ठाईस वर्णों को लिखने के बाद पुनः कादिचतुष्टय का अंकन करना चाहिये। कार्य के अनुसार उसके बाहर दो भूपुर बनाकर उसकी वीथि में मन्त्रवर्णों को लिखना चाहिये।

कार्तवीर्यार्जुन के इस यन्त्र को कोई भी नहीं जानता। मैं और विष्णु ही इसको जानते हैं। कार्तिकेय भी इसके बारे में थोड़ा-बहुत जानते हैं॥८९-९३॥

स्वर्णपत्रे स्थितं यन्त्रं ह्येतत्सर्वार्थसिद्धिदम्।
राजते राज्यलाभाय ताम्रे रक्षाकरं भवेत्॥९४॥
अट्टालके च लिखितं गृहरक्षाकरं भवेत्।
कण्ठे निबद्धमेतत्तु भृशं रक्षति बालकान्॥९५॥
भित्तौ तु रामरक्षाकृत्सर्वरक्षाय भूर्जके।
कारस्करस्य फलके रोगनाशाय संलिखेत्॥९६॥
चतुष्कोट्यघनाशाय लिखेद्वैकङ्कतोद्भवे।
विशाले कलिनाशाय समक्षित्यां शिलातले॥९७॥
शरावे लिखिते यन्त्रे लोकपूज्यो भवेद् ध्रुवम्।
पताकायां ध्वजे वापि जयदं नात्र संशयः॥९८॥
चन्दनागरुकर्पूररोचनासृगुशीरकैः।
लाक्षामृगमदाद्यैश्च लिखेद्वश्यादिकर्मकृत्॥९९॥
लिखेदष्टविषैश्चापि मारणादिककर्मसु।
तद्यन्त्रकलशासेकाद्वन्ध्या पुत्रं प्रसूयते॥१००॥
राजाभिषिक्तो भवति धैर्यशौर्यादिसंयुतः।

स्वर्णपत्र पर लिखित यह यन्त्र सर्वार्थसिद्धि-प्रद होता है। राज्य-प्राप्ति के लिये इस यन्त्र को रजतपत्र पर लिखना चाहिये। ताम्रपत्र पर लिखा गया यह यन्त्र रक्षा करने वाला होता है। अट्टालिका (भवन) पर लिखित यह यन्त्र उस भवन की रक्षा करने वाला होता है।

गले में बाँधने से यह बालकों की सर्वविध रक्षा करता है। भित्ति (दीवाल) पर लिखने से यह प्रेमियों की रक्षा करने वाला एवं भोजपत्र पर लिखने से सबकी रक्षा करने वाला होता है। रोग की समाप्ति के लिये इसे कारस्कर (किंपाक वृक्ष) के पटरे पर लिखना चाहिये।

चार करोड़ पापों के विनाश-हेतु इसे वैकंकत-फलक पर एवं कलियुग के नाश-हेतु विशाल समतल भूमि अथवा शिलातल पर लिखना चाहिये। मिट्टी के सकोरे पर इस यन्त्र को लिखने वाला लोक-पूज्य होता है। पताका अथवा ध्वज पर लिखा गया यह यन्त्र निश्चित जय प्रदान करने वाला होता है।

चन्दन, अगर, कपूर, गोरोचन, केसर, खश, लाक्षा, कस्तूरी आदि के घोल से

लिखित इस यन्त्र से वशीकरण आदि कर्म किया जाता है। मारण आदि कर्म-हेतु इस यन्त्र को आठ प्रकार के विषों से लिखना चाहिये। इस यन्त्र पर स्थापित कलश-जल के अभिषेक से वन्ध्या स्त्री पुत्र को जन्म देती है एवं उसी जल से यदि राजा का अभिषेक किया जाता है तो वह धैर्य, शौर्य आदि गुणों से युक्त होता है॥९४-१००॥

कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रवान्।
तस्य संस्मरणादेव हृतं नष्टं च लभ्यते॥१०१॥
द्वात्रिंशदर्णो मन्त्रोऽयं छन्दोऽनुष्टुप्च पूर्ववत्।
मुन्यादिकं च पञ्चाङ्गन्यासः सर्वेण कीर्तितः॥१०२॥
गजस्यन्दनसप्तिगैश्च पत्तिसङ्घैः समावृतम्।
महागजसमारूढं मदाघूर्णितलोचनम्॥१०३॥
पाशाङ्कुशधनुश्चापान् दधतं भीषणाकृतिम्।
धावमानमरातीनां वधार्थं संस्मरेन्नृपम्॥१०४॥
वने महाचौरभये गजयुद्धे द्विषां गृहे।
एवं ध्यात्वायुतं जप्त्वा भयान्यन्यानि सन्तरेत्॥१०५॥
सहस्रहस्तैर्नियमान् दधतं नियमस्थितम्।
सुप्रसन्नं मणिगणालंकृतं दीप्ततेजसम्॥१०६॥
योगनिष्ठं भजेद्रूपं स्वर्णाप्त्यै गोप्रवृद्धये।
आयुर्वृद्ध्यै रोगशान्त्यै द्वादशार्णः प्रकीर्तितः॥१०७॥
पादैः सर्वेण पञ्चाङ्गं ध्यानयोगादि पूर्ववत्।
द्वात्रिंशदर्णमन्त्रस्य विधिरेवमुदाहृतः॥१०८॥

कार्त्तवीर्य का बत्तीस अक्षरों का मन्त्र है—कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहु सहस्रवान्; तस्य संस्मरणादेव हृतं नष्टं च लभ्यते। इस मन्त्र का छन्द अनुष्टुप् है एवं ऋषि आदि पूर्ववत् कहे गये हैं। सम्पूर्ण मन्त्र से इसका पञ्चाङ्गन्यास कहा गया है।

हाथियों, रथों, अश्वों एवं पदाति सैनिकों द्वारा सम्यक् रूप से आवृत गजराज पर आरूढ़, मद से आघूर्णित नेत्रों वाले, पाश अंकुश धनुष एवं बाण को धारण किये हुये, भीषण आकृति वाले, शत्रुओं के वध-हेतु उनकी ओर दौड़ते हुये राजा का ध्यान करना चाहिये। वन में, महाचोर-भय में, हाथियों के युद्ध में, वैरियों के गृह में अथवा अन्य प्रकार के भी भय उपस्थित होने पर इस प्रकार का ध्यान करके उक्त मन्त्र का दस हजार जप करने पर मनुष्य समस्त भयों से पार कर जाता है।

स्वर्ण-प्राप्ति, गोवृद्धि, आयुवृद्धि एवं रोगशान्ति के लिये हजार हाथों से नियमों को धारण किये हुये, नियम में स्थित, अत्यन्त प्रसन्न, मणियों से अलंकृत, तेज से

दीप्तिमान, योगनिष्ठ राजा की इस बारहवें मन्त्र से आराधना करनी चाहिये। मन्त्र के समस्त पदों से पञ्चाङ्ग न्यास करना चाहिये। इसके ध्यान, योगादि पूर्ववत् कहे गये हैं। इस प्रकार बत्तीस अक्षरों वाले मन्त्र की यह विधि कही गई है॥१०१-१०८॥

कार्तवीर्यगायत्रीकथनम्

कार्त्तवीर्याय विद्महे महावीर्याय धीमहि।
तन्नोऽर्जुनः प्रचोदयात् ॥१०९॥
गायत्र्येषार्जुनस्योक्ता प्रयोगादौ जपेत्तु ताम्।
आनुष्टुभं मनुं रात्रौ जपतां चौरसञ्चयाः।
पलायन्ते गृहाद् दूरं हवनात्तर्पणादपि ॥११०॥
कार्तवीर्यस्य गायत्री प्रोक्ता चैषा त्रयोदशी।
प्राग्वन्मुन्यादिकं छन्दो गायत्रं पूर्ववद्धुतिः ॥१११॥
सर्वमन्त्रप्रयोगेषु जपितव्या हितैषिणा।
गायत्रीजपमात्रेण मन्त्रवीर्यप्रवर्द्धनम् ॥११२॥
मन्त्रस्यास्य जपाद्देवि नष्टं द्रव्यं च लभ्यते।
हताश्चौरा भविष्यन्ति हृतं द्रव्यं च सिध्यति ॥११३॥

'कार्त्तवीर्याय विद्महे महावीर्याय धीमहि तन्नोऽर्जुनः प्रचोदयात्' यह कार्त्तवीर्य अर्जुन की गायत्री कही गई है। प्रयोग आदि करने के पूर्व इसका जप करना चाहिये। रात्रि में उक्त अनुष्टुप् मन्त्र का जप अथवा हवन एवं तर्पण करने से चोरों का समूह घर से दूर भाग जाते हैं।

कार्तवीर्य की यह गायत्री तेरहवाँ मन्त्र है। इसके ऋषि आदि पूर्ववत् होते हैं एवं छन्द गायत्री है। कल्याण चाहने वाले को समस्त मन्त्रों द्वारा अनुष्ठान करने के क्रम में इसका जप करना चाहिये। गायत्री के जपमात्र से मन्त्र की शक्ति प्रबल हो जाती है। हे देवि! इस मन्त्र के जप से नष्ट द्रव्य की प्राप्ति होती है, चोरों की मृत्यु होती है एवं चुराया हुआ धन वापस मिलता है॥१०९-११३॥

तारो नमो भगवते कार्तवीर्यार्जुनाय च।
महाबलाय धीमहि तन्नोऽर्जुनः प्रचोदयात् ॥११४॥
य सवेतिषंता (?) दुष्ट इवाशनः।
हुं फट् स्वाहा रदार्णोऽयं प्रोक्तो मन्त्रश्चतुर्दशः ॥११५॥
मुन्यादिकं प्राग्वदेव छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्।
सप्तसप्तेषुनवभिश्चतुर्भिश्चाङ्गपञ्चकम् ॥११६॥

अनुष्टुभं जपेद्रात्रौ जपस्वाध्यायतत्परः ।
तिष्ठन्नुदङ्मुखो नित्यं शतमष्टोत्तरं सुराः ।
मण्डलान् म्रियते शत्रुर्विकलाङ्गोऽथ वा भवेत् ॥११७॥
यस्या दिशो भयं तस्याः सम्मुखो निशि सञ्जपेत् ।
अखर्वभयनाशः स्यादेकविंशतिभिर्दिनैः ॥११८॥
होमार्द्धं तर्पणं कुर्यादनेन सतिलाम्बुभिः ।
हृतं च पूर्वसम्प्रोक्तं द्रव्यं लभ्येत सत्त्वरम् ॥११९॥

दुष्टों के लिये विष-सदृश बत्तीस अक्षरों वाला कार्तवीर्य का चौदहवाँ मन्त्र है— ॐ नमो भगवते कार्त्तवीर्यार्जुनाय महाबलाय धीमहि तन्नोऽर्जुनः प्रचोदयात् हुं फट्। इस मन्त्र के ऋष्यादि पूर्ववत् हैं एवं छन्द अनुष्टुप् कहा गया है। मन्त्र के क्रमशः सात, सात, पाँच, नव एवं चार वर्णों से इसका पञ्चाङ्गन्यास किया जाता है। जप एवं स्वाध्याय में तत्पर रहकर पूर्वाभिमुख होकर प्रतिदिन रात्रि में इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने से चालीस दिनों में शत्रु की मृत्यु हो जाती है अथवा वह विकलाङ्ग हो जाता है। जिस दिशा से भय आसन्न हो, उस दिशा की ओर मुख करके इक्कीस दिनों तक रात्रि में मन्त्रजप करने से महान् भय का भी नाश हो जाता है। इस मन्त्र के द्वारा तिल-मिश्रित जल से हवन का आधा तर्पण करने से अपहृत द्रव्य शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है॥११४-११९॥

कार्तवीर्यमालामन्त्रकथनम्

तारो नमो भगवते नमः श्रीपदमुच्चरेत् ।
कार्तवीर्यार्जुनायेति हैहयेति पदं वदेत् ॥१२०॥
नाथाय कार्तवीर्यायार्जुनायेति सहस्रतः ।
करेति सर्वदुष्टान्तकायेति च पदं पठेत् ॥१२१॥
सर्वेष्टदायेति सर्वान् दण्डयद्वितयं तथा ।
आगन्तुकांश्च प्रवदेद्दस्यून् वसुविलुम्पकान् ॥१२२॥
वीरसमूहान् स्वखड्गसहस्रैश्छिन्धियुग्मकम् ।
स्वहस्तोद्धूतमुसलसहस्रैर्मर्दयद्वयम् ॥१२३॥
स्वशङ्खोद्धूतनादानां सहस्रैर्भीषयद्वयम् ।
स्वहस्तोद्धूतचक्राणां सहस्रैर्विनिकर्तय ॥१२४॥
परकृत्यां शमयेति भूपांश्चाकर्षयद्वयम् ।
त्रासयद्विर्मोहय द्विरुद्वासययुगं वदेत् ॥१२५॥

उन्मादयद्वयं त्रेधा तापय द्विर्विनाशय।
द्विर्भेदय स्तम्भय द्विर्जृम्भयद्वयमावदेत् ॥१२६॥
मारयद्वितयं प्रोच्य वशं कुरु वशं कुरु।
उच्चाटयोच्चाटयेति विनाशय विनाशय ॥१२७॥
दत्तात्रेयश्रीपदान्ते पादप्रियतमेति च।
श्रीकार्तवीर्यार्जुनेति सर्वग स्वालये वदेत् ॥१२८॥
आगन्तुकामान् प्रवदेदस्मद् द्रव्यविलुम्पकान्।
चोरसमूहान् सम्यग्वदेदुन्मूलयद्वयम्॥१२९॥
हुं फट् स्वाहेति मन्त्रोऽयं युगाष्टनगवर्णवान्।
दत्तात्रेयो मुनिश्छन्दो गायत्र्यन्यच्च पूर्ववत् ॥१३०॥
दत्तात्रेयप्रियतमं फडन्तं हृदि विन्यसेत्।
माहिष्मतीनिवासोऽयं शिरोमन्त्रो नगाक्षरः ॥१३१॥
नमः श्रीकार्तवीर्याय कीर्तितोऽयं शिखामनुः।
हैहयाधिपतिर्ङेऽन्तः कवचस्य मनुर्मतः ॥१३२॥
सहस्रबाहवे तु स्यादेवं पञ्चाङ्गमीरितम्।

कार्तवीर्य-मालामन्त्र—'ॐ नमो भगवते नमः श्रीकार्त्तवीर्यार्जुनाय हैहयनाथाय कार्तवीर्यार्जुनाय सहस्रकरसर्वदुष्टान्तकाय सर्वेष्टदाय सर्वान् दण्डय-दण्डय आगन्तुकान् दस्यून् वसुविलुम्पकान् वीरसमूहान् स्वखड्गसहस्रैः छिन्धि-छिन्धि स्वहस्तोद्धृतमुसलसहस्रैः मर्दय-मर्दय स्वशङ्खोद्धूतनादानां सहस्रैः भीषय-भीषय स्वहस्तोद्धृतचक्राणां सहस्रैः विनिकर्तय परकृत्यां शमय भूपान् आकर्षय-आकर्षय त्रासय-त्रासय मोहय-मोहय उद्वासय-उद्वासय उन्मादय-उन्मादय तापय-तापय-तापय विनाशय-विनाशय भेदय-भेदय स्तम्भय-स्तम्भय जृम्भय-जृम्भय मारय-मारय वशं कुरु-वशं कुरु उच्चाटय-उच्चाटय विनाशय-विनाशय दत्तात्रेयश्रीपादप्रिय-तमश्रीकार्तवीर्यार्जुन सर्वग स्वालये आगन्तुकामान् अस्मद् द्रव्यविलुम्पकान् चोरसमूहान् सम्यक् उन्मूलय-उन्मूलय हुं फट् स्वाहा'—यह दो सौ अट्ठानबे अक्षरों का कार्तवीर्य का मालामन्त्र कहा गया है। इस मन्त्र के ऋषि दत्तात्रेय एवं छन्द गायत्री कहा गया है। अन्य सभी पूर्ववत् होते हैं। इसका पञ्चाङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—दत्तात्रेयप्रितमाय फट् हृदयाय नमः, माहिष्मतीनिवासाय शिरसे स्वाहा, नमः कार्तवीर्याय शिखायै वषट्, हैहयाधिपतये कवचाय हुं, सहस्रबाहवे अस्त्राय फट्॥१२०-१३२॥

उदग्रबाणांश्चापानि दधतं सूर्यसन्निभम् ॥१३३॥

प्रपूरयन्तं वसुधां धनुर्ज्यानिःस्वनैस्तथा ।
कार्तवीर्यनृपं ध्यायेद् गण्डशोभितकुण्डलम् ॥१३४॥
एवं ध्यात्वा समभ्यर्च्य सर्वकर्माणि साधयेत् ।
त्रिसहस्रो जपः प्रोक्तः शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥१३५॥
दधतं दक्षिणैर्वामैर्हस्तैरस्त्राणि भूपतिम् ।
चक्रेषून्मुसलं शूलकुठारौ पाशमेव च ॥१३६॥
प्रासचर्मधनुःशङ्खान् मध्यभास्करसन्निभम्।
बलाढ्यमरुणं घोरं तत्त्वमातङ्गसंस्थितम् ॥१३७॥
रक्ताम्बरं रक्तनेत्रं ध्यात्वैवं प्रजपेन्मनुम् ।
निशीथेऽष्टोत्तरशतं नष्टद्रव्यादिसिद्धये ॥१३८॥
जपेच्चेदेकपादेन षाण्मासान्नष्टवित्तकः ।
सम्प्रार्थ्य मन्त्रिणे चोराः प्रयच्छन्त्यखिलं धनम् ॥१३९॥

तदनन्तर सूर्य-सदृश हाथों में प्रचण्ड बाणों एवं धनुषों को धारण किये हुये, धनुष के टङ्कार से सम्पूर्ण पृथिवी को शब्दायित करते हुये, कुण्डल से सुशोभित गण्डस्थल वाले राजा कार्तवीर्य का ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार ध्यान करके पूजन कर समस्त कर्मों का साधन करना चाहिये। पुरश्चरण-हेतु इस मन्त्र का तीन हजार जप कहा गया है। शेष विधियाँ पूर्ववत् करनी चाहिये।

नष्ट द्रव्य आदि की प्राप्ति के लिये दाहिने एवं बाँयें हाथों में चक्र, बाण, मूसल, शूल, कुठार, पाश, भाला, ढ़ाल, धनुष, शंखरूप अस्त्रों को धारण किये हुये; मध्याह्नकालीन सूर्य-सदृश प्रखर तेज:सम्पन्न; अत्यन्त बलशाली रक्तवर्ण वाले भयंकर हाथी पर विराजमान; रक्तवर्ण वस्त्र धारण किये हुये, रक्तवर्ण नेत्रों वाले राजा का ध्यान करके अर्धरात्रि में मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये।

नष्ट धन वाला मन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार छः मास-पर्यन्त एक पैर पर खड़े होकर यदि इस मन्त्र का जप करता है तो उसके धन को चुराये हुये चोर उसकी प्रार्थना करके समस्त अपहृत धन को लाकर उसे वापस कर देते हैं॥१३३-१३९॥

चौरैर्हृतपशुर्मन्त्री यदानेतुं समिच्छति ।
जपेदष्टोत्तरशतं ध्यात्वा भूपं समाहितः ॥१४०॥
पश्येत् सम्यक्सर्वपशून् गृहाभिमुखमागतान्।
ध्यात्वैवं सर्वपशवो ध्रुवमायान्ति मोचिताः ॥१४१॥

चौरैर्हृतस्वो ब्रह्माणीच्छदैर्होमं चरेन्निशि ।
हृतं प्रकाशमायाति स्वं स्वस्थाने न चान्यथा ॥१४२॥
बाणान् क्षिपन्तं तं रात्रौ धनुषो ध्यानतत्परम् ।
दशदिक्षु जपेन्मन्त्रं राष्ट्रादे रक्षणं भवेत् ॥१४३॥
मन्त्रेण जपितानीत्थं पार्थिवानि रजांसि च ।
क्षिप्तानि मन्त्रिणा यत्र तत्र रक्षा भवेन्निशि ॥१४४॥
दौमित्येकाक्षरो मन्त्रः कार्तवीर्यस्य षोडशः ।
मुनिपूजादिकं प्राग्वल्लक्षमेकं पुरस्क्रिया ॥१४५॥
षड्दीर्घयुक्तेनानेन षडङ्गविधिनिर्णयः ।
प्राग्वत्प्रयोग इत्येवमूर्ध्वाम्नायः प्रकीर्तितः ॥१४६॥

मन्त्रज्ञ साधक चोरों द्वारा अपहृत पशुओं को यदि पुनः प्राप्त करना चाहता है तो उसे एकाग्र होकर राजा कार्तवीर्य का ध्यान करके अपहृत समस्त पशुओं को घर के सामने आया हुआ देखते हुये मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। ऐसा करने पर चुराये गये समस्त पशु निश्चित ही उसके पास आ जाते हैं।

चोर द्वारा अपहृत धन का पता लगाने के लिये रात्रि में ब्रह्माणी (रेणुका-नामक वृक्ष) की छाल से हवन करने पर अपहृत धन अपने स्थान पर ही दिखाई देता है; यह अन्यथा नहीं है।

दशों दिशाओं में धनुष से बाण छोड़ते हुये उस राजा का ध्यान करके मन्त्रजप करने से राष्ट्र की रक्षा होती है। इस प्रकार मन्त्रजप से अभिमन्त्रित मिट्टी के कणों को वह मन्त्रज्ञ साधक रात्रि में जिस देश में विखेर देता है, वह देश रक्षित रहता है।

कार्तवीर्य का एकाक्षर सोलहवाँ मन्त्र है—दौम्। इस एकाक्षर मन्त्र के ऋषि, पूजा आदि पूर्ववत् होते हैं। एक लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है। इसके छः दीर्घ स्वरूपों (दां दीं दूं दैं दौं दः) से षडङ्गन्यास किया जाता है। इसके प्रयोग पूर्ववत् ही हैं। इस प्रकार ऊर्ध्वाम्नाय के मन्त्रों को कहा गया॥१४०-१४६॥

पश्चिमाम्नायमन्त्रास्तु प्रोक्ताश्चारब्बभाषया ।
अष्टौ शतान्यशीतिश्च येषां संसाधना कलौ ॥१४७॥
पञ्च खानाः सप्त मीनाः नव शाहा महाबलाः ।
हिन्दुधर्मप्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्त्तिनः ॥१४८॥
पूर्वाम्नाये नवशतषडशीतिप्रवर्त्तिनः ।
फिरङ्गभाषया मन्त्रास्तेषां संसाधनाद् भुवि ॥१४९॥

अधिपा मन्दराणां च संग्रामेष्वपराजिताः ।
इंग्रेजा नव गद्याश्च लण्डनेष्वपि भाविनः ॥१५०॥
बहुविद्यानिदृश्वानः प्रवक्तारो मनोरथ ।
तद्बीजपूर्वाः सर्वेऽपि मनवो वामसिद्धिदाः ॥१५१॥
दक्षिणाचारफलदः कार्तवीर्यार्जुनो मतः ।
वामाचारेण शूद्राणामिह लोके फलप्रदः ॥१५२॥
न वामिनां हितार्थं तु मन्त्रवीर्यं प्रंयोजयेत् ।
सप्तजन्मसु दारिद्र्यं पैशाच्यं प्राप्नुयाद् द्विजः ।

कार्तवीर्य के पश्चिमाम्नाय-गत मन्त्र अरबी भाषा में हैं। आठ सौ अस्सी प्रकार के इन मन्त्रों की कलियुग में साधना की जायेगी। कलियुग में हिन्दु धर्म का लोप करने वाले पाँच खान, सात मीन एवं नव शाह महान् बलशाली चक्रवर्ती राजा होंगे।

पूर्वाम्नाय में नव सौ छियासी प्रवर्तक होंगे। उनके गद्यरूप मन्त्र फिरङ्ग भाषा में होंगे, जिनकी साधना करके पृथिवी पर अपराजित काहिलों के नव राजा अंग्रेज होंगे। ये सभी लन्दन में होंगे। बहुत विद्याओं को जानने वाले इस पूर्वाम्नाय के प्रवर्त्तक मनोरथों को कहने वाले होंगे।

बीज-पूर्वक उनके समस्त मन्त्र वाममार्ग में सिद्धिप्रद होंगे। कार्तवीर्यार्जुन का मन्त्र दक्षिणाचार से ही फल-प्रद होता है। यह राजमन्त्र इस लोक में वामाचार का आश्रयण करने पर शूद्रों के लिये फल-प्रदायक होता है। वाममार्गियों के कल्याण-हेतु मन्त्रशक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिये; ऐसा करने वाला ब्राह्मण अगले सात जन्मों तक दरिद्रता और पिशाच योनि को प्राप्त होता है॥१४७-१५२॥

कार्तवीर्यप्रियङ्करदीपविधिः

अथो दीपविधिं वक्ष्ये कार्तवीर्यप्रियङ्करम् ॥१५३॥
वैशाखे श्रावणे मार्गे कार्तिकाश्विनपौषतः ।
माघे च फाल्गुने मासे दीपारम्भः प्रशस्यते ॥१५४॥
तिथौ रिक्ताविहीनायां वारे शनिकुजौ विना ।
हस्तोत्तराश्विरौद्रेषु पुष्यवैष्णववायुभे ।
द्विदैवते च रोहिण्यां दीपारम्भः प्रशस्यते ॥१५५॥
चरमे च व्यतीपाते धृतौ वृद्धौ सुकर्मणि ।
प्रीतौ हर्षे च सौभाग्ये शोभनायुष्मतोरपि ॥१५६॥

करणे विष्टिरहिते ग्रहणेऽर्द्धोदयादिषु ।
एषु योगेषु पूर्वाह्ने दीपारम्भः कृतः शुभः ॥१५७॥
कार्त्तिके शुक्लसप्तम्यां निशीथेऽतीव शोभनः ।
यदि तत्र रवेर्वारः श्रवणं भं तु दुर्लभम् ॥१५८॥

कार्तवीर्य-दीपदान विधि—अब मैं कार्तवीर्यार्जुन को प्रसन्न करने वाले दीपदान की विधि को कहता हूँ। वैशाख, श्रावण, मार्गशीर्ष, कार्तिक, आश्विन, पौष, माघ एवं फाल्गुन मास में दीपारम्भ करना प्रशस्त होता है। रिक्ता-रहित तिथियों; शनि एवं मंगल-रहित वारों; हस्त, तीनों उत्तरा, अश्विनी, आर्द्रा, पुष्य, श्रवण, स्वाति, विशाखा एवं रोहिणी नक्षत्र में दीपारम्भ करना प्रशस्त होता है। वैधृति, व्यतीपात, धृति, वृद्धि, सुकर्मा, प्रीति, हर्षण, सौभाग्य, शोभन एवं आयुष्मान् योग में भी दीपारम्भ प्रशस्त होता है। विष्टि-रहित करण, ग्रहण अर्द्धोदय आदि में पूर्वाह्न में किया गया दीपारम्भ शुभ होता है।

कार्तिक शुक्ल सप्तमी को अर्धरात्रि का समय दीपारम्भ के लिये अत्यन्त शुभ होता है। यदि उस दिन रविवार और श्रवण नक्षत्र हो तो यह योग अत्यन्त दुर्लभ होता है॥१५३-१५८॥

श्रुत्वावश्यककार्येषु मासादीनां न शोधनम् ।
आद्ये ह्युपोष्य नियतो ब्रह्मचारी शयीत कौ ॥१५९॥
प्रातः स्नातः शुद्धभूमौ लिप्तायां गोमयोदकैः ।
प्राणानायम्य सङ्कल्पं न्यासान् पूर्वोदितांश्चरेत् ॥१६०॥

आवश्यक कार्यों में मास आदि का शोधन आवश्यक नहीं होता। पहले दिन उपवास करके ब्रह्मचर्य-पूर्वक भूमि पर शयन करके दूसरे दिन प्रातः स्नान आदि से निवृत्त होकर गोबर एवं शुद्ध जल से लिप्त भूमि पर बैठकर प्राणायाम एवं संकल्प करने के बाद पूर्वोक्त न्यासों को करना चाहिये॥१५९-१६०॥

कार्तवीर्यदीपाधारयन्त्रकथनम्

षट्कोणं रचयेद्भूमौ रक्तचन्दनतण्डुलैः ।
मध्ये कामं समालिख्य षट्कोणेषु समालिखेत् ॥१६१॥
मन्त्रराजस्य षड्वर्णान् कामबीजविवर्जितान् ।
क्रों श्रीं हुं फट् च पूर्वादिदिशासु विलिखेत्क्रमात् ॥१६२॥
नवार्णैर्वेष्टयेत्तच्च त्रिकोणं तद्बहिः पुनः ।
एवं विलिखिते यन्त्रे निदध्याद्दीपभाजनम् ॥१६३॥

स्वर्णजं रजतोत्थं वा ताम्रजं तदभावतः ।
कांस्यपात्रं मृन्मयं च कनिष्ठं लोहजं मृतौ ॥१६४॥

कार्तवीर्य-दीप का आधार-यन्त्र—रक्त चन्दन एवं तण्डुल द्वारा भूमि पर षट्कोण की रचना करके उसके मध्य में कामबीज (क्लीं) लिखकर षट्कोणों में मन्त्रराज के कामबीज को छोड़कर 'ॐ फ्रों ब्रीं भ्रूं आं ह्रीं' को लिखने के बाद उसके चारो दिशाओं में क्रमशः 'क्रों श्रीं हुं फट्' लिखना चाहिये। फिर उसे नवार्ण मन्त्र (कार्तवीर्यार्जुनाय नमः) से वेष्टित कर देना चाहिये। तत्पश्चात् उसके बाहर त्रिकोण बनाना चाहिये। इस प्रकार के लिखित यन्त्र पर दीपपात्र को स्थापित करना चाहिये। वह दीपपात्र सोने, चाँदी या ताँबे का होना चाहिये। इनके अभाव में काँसे का, मिट्टी अथवा लोहे का भी दीपपात्र बनाया जा सकता है। लोहे का दीपपात्र सबसे कनिष्ठ माना जाता है॥१६१-१६४॥

शान्तये मुद्गचूर्णोत्थं सन्धौ गोधूमचूर्णजम् ॥१६५॥
ब्रध्नेषूर्ध्वसमानन्तु पात्रं कुर्यात्प्रयत्नतः ।
अर्कदिग्वसुषट्पञ्चचतूरामाङ्गुलैर्मितम् ॥१६६॥
आज्ये पलसहस्रं तु पात्रं शतपलैः कृतम् ।
आज्येऽयुतपले पात्रं पलपञ्चशतीकृतम् ॥१६७॥
पञ्चसप्ततिसङ्ख्ये तु पात्रं षष्टिपलं मतम् ।
त्रिसहस्रे घृतपले शरार्कपलभाजनम् ॥१६८॥
द्विसहस्रे शरशिवं शतार्द्धे त्रिंशता मतम् ।
शतेक्षिशरसङ्ख्यातमेवमन्यत्र कल्पयेत् ॥१६९॥
नित्यमेवं तु यो दद्यात्कार्तवीर्याय दीपकम् ।
शत्रवस्तस्य नश्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥१७०॥
व्याधयश्चाधयश्चैव विलीयन्तेऽचिरादपि।
जीवेद्वर्षशतं मन्त्री पापानि क्षयमाप्नुयुः ॥१७१॥

शान्तिकर्म के लिये मूँग के चूर्ण से, सन्धिकर्म के लिये गेहूँ के चूर्ण से दिन में मूल से शीर्ष तक समान आकार वाले दीपपात्र को यत्न-पूर्वक बारह, दस, आठ, छः, पाँच अथवा चार अंगुल का बनाना चाहिये। एक हजार पल घृत के लिये एक सौ पल वजन का, दस हजार पल घृत के लिये पाँच सौ पल वजन का, पाँच सौ पल घृत के लिये साठ पल वजन का, तीन हजार पल घृत के लिये एक सौ पच्चीस पल वजन का, दो हजार पल घृत के लिये एक सौ पन्द्रह पल वजन का, तीन सौ पल घृत

के लिये पचास पल वजन का दीपपात्र बनाना चाहिये। इसी प्रकार घृत के अनुसार अन्य पात्रों के भार की भी कल्पना करनी चाहिये।

जो व्यक्ति इस प्रकार प्रतिदिन कार्तवीर्य के लिये दीपदान करता है, उसके शत्रु नष्ट हो जाते हैं; इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये। उसके आधि-व्याधि अतिशीघ्र समाप्त हो जाते हैं। वह मन्त्रज्ञ साधक सौ वर्ष-पर्यन्त जीवित रहता है तथा उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं॥१६५-१७१॥

एका तिस्रोऽथ वा पञ्च सप्ताद्यविषमा अपि।
तिथिमानाद्यासहस्रं तन्तुसङ्ख्या विनिर्मिता ॥१७२॥
गोघृतं प्रक्षिपेत्तत्र शुद्धवस्त्रविशोधितम्।
सहस्रपलसङ्ख्यादिदशान्तं कार्यगौरवात् ॥१७३॥
सुवर्णादिकृतां रम्यां शलाकां षोडशाङ्गुलाम्।
तदर्धां वा तदर्धां वा सूक्ष्माग्रां स्थूलमूलिकाम् ॥१७४॥
विमुञ्चेद्दक्षिणे भागे पात्रमध्ये कृताग्रिकाम्।
पात्राद्दक्षिणदिग्देशे मुक्त्वाङ्गुलचतुष्टयम् ॥१७५॥
अथोग्रां दक्षिणाधारां निखनेच्छुरिकां शुभाम्।
दीपं प्रज्वालयेत्तत्र गणेशस्मृतिपूर्वकम् ॥१७६॥
दीपात्पूर्वत्र दिग्भागे सर्वतोभद्रमण्डले।
तण्डुलाष्टदले वापि विधिवत्स्थापयेद् घटम् ॥१७७॥
तत्रावाह्य नृपाधीशं पूर्ववत्पूजयेन्निशि।
एतत्प्रोक्तं द्विजातीनां वामिभिर्वामभागके ॥१७८॥
क्षेप्या शलाका च्छुरिका पश्चात्पश्चिमभागके।
जलाक्षततिलान् हस्ते गृहीत्वा मन्त्रमुच्चरेत् ॥१७९॥

इस प्रकार पात्र को स्थापित करके उसमें सूत्र से बनी बत्तियाँ डालनी चाहिये। तिथिमान से एक, तीन, पाँच, सात आदि विषम अथवा समसंख्या में भी एक हजार-पर्यन्त सूतों से बत्तियाँ बनानी चाहिये। उन बत्तियों को दीपपात्र में रखकर उसमें शुद्ध वस्त्र से विशोधित घृत कार्य की गुरुता के अनुसार एक हजार पल से लेकर दस हजार पल तक ड़ालना चाहिये।

सुवर्ण आदि से आगे से पतली तथा पीछे से मोटी सोलह, आठ अथवा चार अंगुल की सुन्दर शलाका बनाकर दीपपात्र में दाहिनी ओर शलाका के अग्रभाग को डालना चाहिये। दीपपात्र से दक्षिण दिशा में चार अंगुल छोड़कर भूमि में अधोमुख छुरी

गाड़ देना चाहिये। इसके बाद गणेश का स्मरण करते हुये दीप प्रज्वलित करना चाहिये।

दीपक के पूर्व की ओर सर्वतोभद्रमण्डल अथवा चावलों से बने अष्टदल पर घट को सविधि स्थापित करने के बाद रात्रि में उसी घट पर कार्तवीर्यार्जुन का आवाहन करके पूर्ववत् पूजन करना चाहिये। यह विधि द्विजातियों के लिये कही गई है। वामाचारियों को दक्षिण के स्थान पर वामभाग में उक्त क्रियायें करनी चाहिये। पूजन करने के पश्चात् शलाका एवं छुरिका को पश्चिम भाग में फेंक देना चाहिये। इसके बाद हाथ में जल एवं अक्षत लेकर मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये॥१७२-१७९॥

अथ मन्त्रं प्रवक्ष्यामि तारं पाशं च ह्रीं वषट्।
कार्तवीर्यार्जुनायेति वदेन्माहिष्मतीपदम् ॥१८०॥
नाथायेति सहस्रेति बाहवे पदमुच्यते।
सहस्रक्रतुशब्दान्ते दीक्षिताय पदं वदेत् ॥१८१॥
दत्तात्रेयप्रियायेति आत्रेयाय वदेत्ततः।
अनुसूयागर्भरत्नाय हुंफद् च प्रवदेत्ततः ॥१८२॥
इमं दीपं गृहाणेति अमुकं रक्ष रक्ष च।
दुष्टान्नाशययुग्मं स्यात्तथा पातय घातय ॥१८३॥
शत्रूञ्जहिद्वयं मायां तारं फ्रों क्लीं हुताङ्गनाम्।
अनेन दीपवर्येण पश्चिमाभिमुखेन च ॥१८४॥
अमुकं रक्ष चेत्युक्त्वा अमुकेति वरप्रदा।
नाय ह्रींह्रीं च ह्रीं तारं क्लीं च्रीं स्वाहा सबिन्दुकान्।
वदेद्वर्णास्तकारादीन् दश तारं हुताङ्गनाम् ॥१८५॥
दीपदानस्य मन्त्रोऽयं नेत्रबाणधराक्षरः।
दत्तात्रेयो मुनिश्छन्दोऽमितं देवोऽर्जुनः स्मृतः ॥१८६॥
चींबीजेन षडङ्गानि दीर्घषट्कयुजा चरेत्।
ध्यात्वा देवं मन्त्रमेतमष्टोत्तरसहस्रकम् ॥१८७॥
जपेत्तारं तथा पाशं रमां फ्रीं च्रीं दहाङ्गनाम्।
अङ्कुशं च पुनस्तारं मनुः प्रोक्तो नवाक्षरः ॥१८८॥
प्राग्वच्चर्षिर्देवताङ्गे छन्दोऽनुष्टुप्समीरितम्।
एवं दीपप्रदानस्य कर्त्ताप्नोत्यखिलेप्सितम् ॥१८९॥

अब मन्त्र को कहता हूँ। एक सौ बावन अक्षरों का दीपदान का मन्त्र इस प्रकार

है—ॐ आं ह्रीं वषट् कार्तवीर्यार्जुनाय माहिष्मतीनाथाय सहस्रबाहवे सहस्रक्रतुदीक्षिताय दत्तात्रेयप्रियाय आत्रेयाय अनुसूयागर्भरत्नाय हुं फट् इमं दीपं गृहाण अमुकं रक्ष रक्ष दुष्टान् नाशय नाशय पातय पातय घातय घातय शत्रून् जहि जहि ह्रीं ॐ फ्रों क्लीं स्वाहा अनेन दीपवर्येण पश्चिमाभिमुखेन अमुकं रक्ष च अमुकवरप्रदानाय हीं हीं ह्रीं ॐ क्लीं च्रीं स्वाहा तं थं दं धं नं, पं फं बं भं मं ॐ स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि दत्तात्रेय, छन्द अमित एवं देवता अर्जुन कहे गये हैं।

चीं बीज के छ: दीर्घ स्वरूपों (चां चीं चूं चैं चौं च:) से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। इसके बाद देवता का ध्यान करके इस मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करना चाहिये। जपनीय नवाक्षर मन्त्र है—ॐ आं ह्रीं फ्रीं च्रीं स्वाहा क्रों ॐ। इसके ऋषि एवं देवता पूर्ववत् हैं तथा छन्द अनुष्टुप् कहा गया है। इस प्रकार से दीपदान करने वाला अपने समस्त अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है॥१८०-१८९॥

दीपप्रबोधनसमये शुभाशुभविचारः

दीपप्रबोधकाले तु वर्जयेदशुभाङ्गिरम्।
विप्रादीनां तु पञ्चाशत्पदार्थानां निरीक्षणम्।
तस्मिन्नवसरे कार्यं सिद्धम्भवति नान्यथा॥१९०॥

शूद्रादीनां तु पञ्चाशत्पदार्थानां निरीक्षणम्।
अतियत्नात्कार्यसिद्धिं कुर्याच्चैव विलम्बतः॥१९१॥
भारद्वाजादिपञ्चाशत्पदार्थानां तु दर्शने।
व्यत्यये सति कार्यस्य नैव सिद्धिः प्रजायते॥१९२॥
कार्यनाशो बन्धवधौ म्लेच्छादीनां तु दर्शने।
आख्योत्वोर्दर्शनं दुष्टं गवयस्य सुखावहम्॥१९३॥
दीपज्वाला समा सिद्ध्यै वक्रा नाशविधायिनी।
सशब्दा भयदा कर्तुरुज्ज्वला सुखदा मता॥१९४॥
कृष्णा शत्रुभयोत्पत्त्यै वमन्ती पशुनाशिनी।
कृते दीपे यदा पात्रं भग्नं दृश्येत दैवतः।
पश्चादर्वाक् तदा गच्छेद्यजमानोऽयमालयम्॥१९५॥

दीप-प्रज्ज्वलन के समय शुभाशुभ विचार—दीपदान के समय अशुभ वचनों का त्याग करना चाहिये। उस समय ब्राह्मण आदि पचास पदार्थों के दर्शन से अभीष्ट कार्य की सिद्धि होती है; अन्यथा नहीं। दीप-प्रज्ज्वलन के समय शूद्रादि पचास पदार्थों के दिखाई पड़ने पर अत्यन्त यत्न-पूर्वक विलम्ब से कार्य-सिद्धि होती है। भारद्वाज पक्षी आदि पचास पदार्थों के दर्शन में व्यवधान होने पर कार्यसिद्धि नहीं होती।

दीप-प्रज्ज्वलन के समय म्लेच्छ आदि के दर्शन से कार्य का नाश, बन्धन तथा वध होता है। चूहा और विलाव का दर्शन अशुभ एवं गवय (नीलगाय) का दर्शन सुखप्रद होता है।

जलते हुये दीपक की ज्वाला यदि सीधी हो तो वह कार्यसिद्धि का सूचक होती है। तिरछी दीपशिखा विनाश करने वाली होती है। शिखा से शब्द निकलना भय-दायक होता है। उज्ज्वल दीपशिखा कर्ता को सुख प्रदान करने वाली होती है। काले रंग की दीपशिखा शत्रुभय उत्पन्न करने वाली तथा चिनगारी से समन्वित ज्वाला पशुओं का नाश करने वाली होती है। दीपक प्रज्वलित करने पर पात्र यदि टूट जाय तो पन्द्रह दिनों के भीतर यजमान की मृत्यु हो जाती है॥१९०-१९५॥

वर्त्यन्तरं यदा कुर्यात्कार्यं सिध्येद्विलम्बतः ॥१९६॥
नेत्रहीनो भवेत्कर्त्ता तस्मिन्दीपान्तरे कृते ।
अशुचिस्पर्शने व्याधिर्दीपनाशे तु चौरभीः ॥१९७॥
श्वमार्जाराखुसंस्पर्शे भवेद् भूपतितो भयम् ।
पात्रारम्भे वसुपलैः कृतो दीपोऽखिलेष्टदः ॥१९८॥
पलानां पञ्चविंशत्या दीपो देयोऽर्थसिद्धये ।
पञ्चाशता कृतो दीपः शत्रुवश्याय चेष्यते ॥१९९॥
पराजयश्च शत्रूणां पञ्चसप्ततिभिर्भवेत् ।
शतेन शत्रुनाशः स्यात्सहस्रेणाखिलाः क्रियाः ॥२००॥

जलते हुये दीपक की बत्ती यदि बदली जाती है तो कार्य की सिद्धि विलम्ब से होती है। जलते हुये दीपक के स्थान पर दूसरा दीपक रखने से दीपकर्ता नेत्रहीन अर्थात् अन्धा होता है, अपवित्र द्वारा दीपक का स्पर्श होने पर व्याधि होती है एवं दीपक के नष्ट होने पर चोरों का भय होता है। कुत्ता, विलार एवं चूहे द्वारा दीपक का स्पर्श होने पर राजा से भय होता है।

पात्रारम्भ में आठ पल का दीपक समस्त अभीष्ट प्रदान करने वाला होता है। इसी प्रकार अर्थसिद्धि के लिये पच्चीस पल का एवं शत्रु-वशीकरण के लिये पचास पल का दीपक ग्रहण करना चाहिये। शत्रुओं के पराजय के लिये पचहत्तर पल का एवं शत्रुनाश के लिये एक सौ पल का दीपक होना चाहिये। एक हजार पल के दीपक से समस्त क्रियायें सिद्ध होती हैं॥१९६-२००॥

तस्माद्दीपो रक्षणीयः प्रयत्नेनान्तरायतः ।
आसमाप्तेः प्रकुर्वीत ब्रह्मचर्यञ्च भूशयम् ॥२०१॥

स्त्रीशूद्रपतितादीनां सम्भाषामपि वर्जयेत् ।
जपेत्सहस्त्रं प्रत्येकं मन्त्रराजं नवाक्षरम् ॥२०२॥
स्तोत्रपाठं प्रतिदिनं निशीथिन्यां विशेषतः ।
एकपादेन दीपाग्रे स्थित्वाऽथो मन्त्रनायकम् ।
सहस्त्रं प्रजपेद्रात्रौ सोऽभीष्टं क्षिप्रमाप्नुयात् ॥२०३॥
समाप्य शोभने घस्त्रे सम्पूज्य द्विजनायकान् ।
कुम्भोदकेन कर्तारमभिषिञ्चेन्मनुं स्मरन् ॥२०४॥
कर्त्ता च दक्षिणां दद्यात्पुष्कलां तोषहेतवे ।
पलानां तु दशांशेन मुख्यं प्राङ्मुख्यभाजने ॥२०५॥
विंशत्यंशेन मध्यं स्याच्छतांशेनापरं स्मृतम् ।

इसलिये प्रज्वलित दीपक की प्रयत्न-पूर्वक विघ्नों से रक्षा करनी चाहिये। दीपदान-काल में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये भूमि पर शयन करना चाहिये एवं स्त्री, शूद्र, पतित आदि से वार्तालाप भी नहीं करना चाहिये। प्रतिदिन नवाक्षर मन्त्र का एक हजार जप करना चाहिये। प्रतिदिन विशेषतया रात्रि में स्तोत्रपाठ करना चाहिये।

जो साधक अर्धरात्रि में दीपक के सामने एक पैर पर खड़े होकर मन्त्र का एक हजार जप करता है, वह शीघ्र ही अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है।

शोभन दिन में अनुष्ठान को समाप्त करके यजमान द्वारा ब्राह्मणों का पूजन करने के बाद ब्राह्मणों द्वारा मन्त्र का स्मरण करते हुये अर्थात् मन्त्रोच्चारण करते हुये कलशजल से यजमान का अभिषेक करना चाहिये। साथ ही कर्ता यजमान द्वारा भी सन्तुष्टि के लिये उन ब्राह्मणों को प्रभूत दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये। सर्वप्रथम मुख्य आचार्य को दीपक के भार का दशांश, उपाचार्य को विंशांश एवं अन्य ब्राह्मणों को शतांश दक्षिणा देनी चाहिये॥२०१-२०५॥

गुरौ तुष्टे ददातीष्टं कृतवीर्यसुतो नृपः ॥२०६॥
गुर्वाज्ञया स्वयं कुर्याद्यदि वा कारयेद् गुरुम् ।
गुर्वाज्ञामन्तरा कुर्याद्यो दीपं स्वेष्टसिद्धये ।
प्रत्युतानुभवत्येव हानिमेव पदे पदे ॥२०७॥
दीपदानविधिं ब्रूयात्कृतघ्नादिषु नो गुरुः ।
दुष्टेभ्यः कथितो मन्त्रो वक्तुर्दुःखावहो भवेत् ॥२०८॥
उत्तमं गोघृतं प्रोक्तं मध्यमं महिषीभवम् ।
तिलतैलं तु तादृक् स्यात्कनीयोऽजादिजं घृतम् ॥२०९॥

आस्यरोगे सुगन्धेन दद्यात्तैलेन दीपकम्।
सिद्धार्थसम्भवेनाथ द्विषतां नाशहेतवे ॥२१०॥

गुरु के सन्तुष्ट होने पर कृतवीर्य-पुत्र राजा कार्तवीर्य अर्जुन साधक को उसका अभीष्ट प्रदान करते हैं। गुरु की आज्ञा से यजमान को स्वयं कार्य करना चाहिये अथवा गुरु से ही कराना चाहिये। गुरु से आज्ञा प्राप्त किये विना जो साधक अपने इष्ट की सिद्धि के लिये दीप-प्रज्ज्वलन करता है, वह अनेक कठिनाइयों का अनुभव तो करता ही है; पग-पग पर उसे हानि भी होती है।

गुरु द्वारा इस दीपदान विधि को कृतघ्नों से नहीं कहना चाहिये; क्योंकि दुष्टों के लिये कथित मन्त्र वक्ता के दुःख का कारण होता है।

गोघृत से दीपदान उत्तम होता है। भैंस के घृत एवं तिलतैल से किया गया दीपदान मध्यम तथा बकरी आदि के घृत से किया गया दीपदान अधम होता है। मुखरोग में सुगन्धित तैल से एवं शत्रुओं के विनाश के लिये सरसों के तैल से दीपदान करना चाहिये॥२०६-२१०॥

सहस्रेण पलैर्दीपे विहिते चेन्न दृश्यते।
कार्यसिद्धिस्तदा कुर्यात्त्रिवारं दीपजं विधिम् ॥२११॥
तदा तु दुर्लभं कार्यं सिध्यत्येव न संशयः।
यथाकथञ्चिद्यः कुर्याद्दीपदानं स्ववेश्मनि ॥२१२॥
विघ्नाः सर्वेऽरिभिः साकं तस्य नश्यन्त्यदूरतः।
सर्वदा जयमाप्नोति पुत्रान् पौत्रान् धनं यशः ॥२१३॥
दीपप्रियः कार्तवीर्यो मार्तण्डो नतिवल्लभः।
स्तुतिप्रियो महाविष्णुर्गणेशस्तर्पणप्रियः ॥२१४॥
दुर्गार्चनप्रिया नूनमभिषेकप्रियः शिवः।
तस्मात्तेषां प्रतोषाय कुर्यात्तत्तु च तादृशम् ॥२१५॥

विहित होने पर भी एक हजार पलभार के दीपक से यदि कार्यसिद्धि न हो तो तीन बार दीपदान विधि करनी चाहिये। ऐसा करने से दुर्लभ कार्य भी निःसन्देह सिद्ध होते हैं। जिस-किसी प्रकार से साधक अपने घर में यदि दीपदान करता है तो उसके शत्रुओं सहित आने वाले समस्त विघ्न दूर से ही नष्ट हो जाते हैं। वह सदैव जय प्राप्त करता है एवं पुत्र-पौत्र-धन-यश से समन्वित रहता है।

राजा कार्त्तवीर्य दीप-प्रिय, सूर्य नमस्कार-प्रिय, महाविष्णु स्तुति-प्रिय, गणेश

तर्पण-प्रिय, दुर्गा अर्चन-प्रिय एवं शिव अभिषेक-प्रिय हैं। इसलिये उन सबको प्रसन्न करने के लिये जिसको जो प्रिय है, उसी का आश्रयण करना चाहिये॥२११-२१५॥

ग्रन्थसमापनम्

इति भोः कथितं देवा दीपदानं महीक्षितुः ।
अतः परं किं वक्तव्यं तत्पृच्छत सुरोत्तमाः ॥२१६॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते कार्तवीर्यार्जुन-मन्त्रकथनं नाम पञ्चत्रिंशत्तमः प्रकाशः॥३५॥

•

हे देवों! इस प्रकार राजा कार्तवीर्य के दीपदान को मेरे द्वारा कहा गया। हे श्रेष्ठ देवताओं! अब इसके बाद मुझे क्या कहना चाहिये, उसे पूछें॥२१६॥

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र
में शिवप्रणीत 'कार्त्तवीर्यार्जुनमन्त्रकथन'-नामक
पञ्चत्रिंशत्तम प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।

•

समाप्तश्चायं ग्रन्थः * शुभमस्तु

तन्त्रशास्त्र-ग्रन्थाः

अन्नदाकल्पतन्त्र। हिन्दी टीका सहित। श्री एस. एन. खण्डेलवाल

अभिनवगुप्त-एक परिचय। डॉ. (श्रीमती) प्रेमा अवस्थी

अहिर्बुध्न्यसंहिता (श्रीपाञ्चरात्रागमान्तर्गत) 'सरला' हिन्दीटीकासहित। डॉ. सुधाकर मालवीय

आगमतत्त्वविलास। हिन्दी-टीका सहित। श्री एस. एन. खण्डेलवाल। (1-4 भाग सम्पूर्ण)

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी। (ज्ञानाधिकार)। प्रथम अधिकार के पाँचवे आह्निक की सप्तम कारिका से लेकर आह्निक के अन्त तक की 'लीला' हिन्दी व्याख्या। टीकाकार - डॉ. दयाशङ्कर शास्त्री

एकजटातारासाधनतन्त्र। हिन्दी टीका सहित। श्री एस. एन. खण्डेलवाल

Kamakala Vilasa : Text with 'Cidwalli' Sanskrit Commentary and English Translation, Notes etc. Dr. R. P. Dwivedi & Dr. S. Malaviya

कामकलाकालीसपर्या। डॉ. रामप्रिय पाण्डेय

कामकलाविलास। चिद्वल्ली संवलितः। सरोजिनी हिन्दी व्याख्या। डॉ. श्यामकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

कामाख्यातन्त्र। 'ज्ञानवती' हिन्दी टीका सहित। आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी

कुण्डलिनी शक्ति। (योग-तान्त्रिक साधना-प्रसङ्ग) श्री अरुणकुमार शर्मा

कुलार्णवतन्त्र। 'नीरक्षीरविवेक' हिन्दीटीका। डॉ. परमहंस मिश्र

गायत्री-मन्त्रार्थ भास्कर। भाषा टीका सहित। पं. यमुना प्रसाद द्विवेदी

गायत्रीमहातन्त्र। आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदिप्रणीत। हिन्दीभाष्य विभूषित

तन्त्रविज्ञान और साधना। श्री सीताराम चतुर्वेदी

तन्त्रसार। अभिनवगुप्तपादाचार्य विरचित। हिन्दीटीका सहित। (1-2 भाग)। डॉ. परमहंस मिश्र

तन्त्रराजतन्त्र।हिन्दी टीका सहित। श्रीकपिलदेव नारायण

तन्त्रसारसङ्ग्रह। नारायण विरचित। सव्याख्या। आंग्ल एवं संस्कृत भूमिका सहित।

तन्त्रालोक। अभिनवगुप्तपादाचार्य। जयरथकृत'विवेक' टीका एवं पं. राधेश्याम चतुर्वेदीकृत हिन्दीटीका

त्रिपुरारहस्य। डॉ. जगदीशचन्द्र मिश्रकृतहिन्दी अनुवाद सहित। (ज्ञान एवं महात्म्यखण्ड)

त्रिपुरार्णवतन्त्र। (उपासनाखण्ड) हिन्दीटीका सहित। डॉ. जगदीशचन्द्र मिश्र

त्रिपुरासारसमुच्चय। श्रीमधुसूदनप्रसादशुक्लः

दक्षिणकालिकासपर्यापद्धति। डॉ. रामप्रिय पाण्डेय

दुर्गासप्तशती। दुर्गाप्रदीप-गुप्तवती-चतुर्धरी-शान्तनवी-नागोजीभट्टी-जगच्चन्द्रिका-दंशोद्धार नामक सप्तटीकायुक्त।

दुर्गासप्तशती। मूलमात्र। नव-शत-सहस्रचण्डी-पल्लवयोजना-कवचअर्गला-कीलक-कुञ्जिकास्तोत्र सहित।

देवीरहस्य। (परिशिष्ट सहित) श्रीरुद्रयामलतन्त्रार्गत। हिन्दीटीका सहित। श्री कपिलदेव नारायण

नीलसरस्वतीतन्त्र। श्री एस. एन. खण्डेवालकृत हिन्दी टीका।

नित्याषोडशिकार्णव। संस्कृत एवं हिन्दी-टीका सहित। श्री एस. एन. खण्डेलवाल

नित्योत्सव। हिन्दी-टीका सहित। श्रीपरमहंस मिश्र

नेत्रतन्त्र। क्षेमराजकृत 'नेत्रोद्योत' संस्कृत एवं श्रीराधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' हिन्दीटीका सहित

परलोकविज्ञान। श्री अरुणकुमार शर्मा

प्रत्यभिज्ञाहृदय। हिन्दी टीका सहित। डॉ. सुधांशु कुमार षडंगी
प्राणतोषिणी। मूलमात्र। श्रीरामतोषण भट्टाचार्य।
पुरश्चर्यार्णव। श्रीनेपालमहाराजाधिराज प्रतापसिंह साहदेवविरचित। सम्पादक - म. म. मुरलीधर झा
प्रपञ्चसारसारसंग्रह। (मूलमात्र) गीर्वाणेन्द्रसरस्वतीविरचित। के. एस. सुब्रह्मण्यशास्त्री सम्पादित।
ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी साधना। डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी
भूतडामरतन्त्र। श्री एस. एन. खण्डेलवालकृत हिन्दी टीका
भारतीय शक्ति-साधना। (शक्ति-विज्ञान : स्वरूप एवं सिद्धान्त) डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'
Mahanirvanatantram. Sanskrit Text and English Translation by M. N. Dutta
मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य। डॉ. शिवशङ्कर अवस्थी
महाकालसंहिता (कामकला कालीखण्ड)। 'ज्ञानवती' हिन्दीभाष्य सहित। प्रो. राधेश्याम चतुर्वेदी
महाकालसंहिता (गुह्यकालीखण्ड)। 'ज्ञानवती'हिन्दीभाष्यसहित। प्रो. राधेश्याम चतुर्वेदी (1-5 भाग)
मन्त्रमहोदधि। 'नौका' संस्कृत टीका तथा 'अरित्र' हिन्दी व्याख्या। डॉ. सुधाकर मालवीय
महानिर्वाणतन्त्र। हिन्दी टीका सहित। श्रीकपिल देव नारायण
मुद्राविज्ञान-साधना। डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी
राधातन्त्र। हिन्दी टीका सहित। श्री एस. एन. खण्डेलवाल
रुद्रयामलतन्त्र। हिन्दी टीका सहित। टीकाकार - डॉ. सुधाकर मालवीय
रेणुकातन्त्र। हिन्दी टीका सहित। श्रीकपिल देव नारायण
ललितासहस्रनाम। 'सौभाग्यभास्करभाष्य' एवं श्रीभारतभूषणकृत विस्तृत हिन्दी व्याख्या।
ललितोपाख्यान। (तन्त्र)। मूलमात्र
वर्णबीजप्रकाश। श्रीसरयूप्रसाद द्विवेदी। सम्पादक - डॉ. परमहंसमिश्र
वरिवस्यारहस्य। 'प्रकाश' संस्कृत एव डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द' कृत हिन्दी टीका सहित।
विज्ञानभैरव। श्रीबापूलाल आँजना विरचित कारिकानुवाद विवृतभागस्थ हिन्दी व्याख्या
बृहत्तन्त्रसार। कृष्णानन्द आगमवागीशकृत। 'साधनात्मक' हिन्दीटीका सहित। श्रीकपिलदेव नारायण
श्रीतत्त्वचिन्तामणि। संस्कृतटीका एवं 'भावना' हिन्दी टीका। श्रीमधुसूदनप्रसादशुक्ल (1-2 भाग)
श्रीविद्यार्णवतन्त्र। 'साधनात्मक' हिन्दीटीका सहित। श्रीकपिलदेव नारायण (1-5 भाग सम्पूर्ण)
श्रीविद्यासपर्यापद्धति। ब्रह्मश्रीशङ्कररामशास्त्री
श्रीविद्या-साधना। (श्रीविद्या का सर्वाङ्गपूर्ण शास्त्रीय विवेचन)। डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी
शारदातिलक। 'पदार्थादर्श' संस्कृत टीका एवं डॉ. सुधाकर मालवीयकृत हिन्दी-टीका सहित।
षट्चक्रनिरूपण। पूर्णानन्दयति। शिवोक्त पादुकापञ्चक सहित। श्रीभारतभूषणकृत हिन्दी व्याख्या।
सप्तशतीसर्वस्व। (मूलमात्र) नानाविधसप्तशतीरहस्यसंग्रहः। पं. सरयू प्रसाद द्विवेदी
सर्वोल्लासतन्त्र। हिन्दी टीका सहित। टीकाकार - श्री एस. एन. खण्डेलवाल।
सार्द्ध-नवचण्डि-पुरश्चरण। डॉ. रामप्रिय पाण्डेय
सिद्धनागार्जुनतन्त्र। श्री एस. एन. खण्डेनवाल कृत हिन्दी टीका सहित।
सौन्दर्यलहरी। 'लक्ष्मीधरी' संस्कृत एवं 'सरला' हिन्दी व्याख्या। सुधाकर मालवीय
स्पन्दकारिका। विस्तृत हिन्दी व्याख्या, तुलनात्मक अध्ययन सहित। डॉ. श्यामकान्त द्विवेदी
स्वच्छन्दतन्त्र। संस्कृत-हिन्दी टीका सहित। प्रो. राधेश्याम चतुर्वेदी (1-2 भाग)
सिद्धसिद्धान्तपद्धति। हिन्दी अनुवाद सहित। स्वामी द्वारकादास शास्त्री।

●

Translated & Written by
Giri Ratna Mishra

Sri Kali Tantra
&
Sri Rudra Chandi

Text with English
Commentary & Introduction

•••••

An acme assortment of various mantras, variegated worship rituals and tantric practices of Sri Dakshin Kali, along with glory saga and worship ritual of Sri Rudra Chandi.

Bhootdaamar Tantra

Text with English
Commentary & Introduction

•••••

An authoritative Tantra of Sri Krodha Bhairava along with his; mantras, variegated mandal worship, rituals and accomplishment rituals of Bhootinis, Yakshinis, snake-girls etc.

Uddish Tantra

Text with English
Commentary & Introduction

•••••

An authoritative work on various exorcisms, Yakshini accomplishment, Bhootini accomplishment and black magic like Indrajaal compiled by Lankesh Ravan.

Sri Matrika Cakra Viveka

Text with English
Commentary & Introduction

•••••

An acme Sri Vidya mantra Shastra of Kashmir, correlating the creation and liberation of this world with Sri Yantra while describing the meaning of Sanskrit alphabets called Matrikas using Sri Yantra.

Sri Bagala Tatva Prakashika

•••••

A detailed study on philosophical and worship aspects of Sri Bagalamukhi as mentioned in Vedas, Upanishads, Puranas, Sri Durga Saptashati and Tantra.

तन्त्रशास्त्र-ग्रन्थ

एस.एन. खण्डेलवाल—अनुदित एवं लिखित

- नित्याषोडशिकार्णव
- सर्वोल्लासतन्त्र
- नीलसरस्वतीतन्त्र
- भूतडामरतन्त्र
- सिद्धनागार्जुनतन्त्र
- अन्नदाकल्पतन्त्र
- राधातन्त्र
- सौभाग्यलक्ष्मीतन्त्र
- कालीतन्त्र-रुद्रचण्डीतन्त्र
- तोडलतन्त्र-निर्वाणतन्त्र
- आगमतत्त्वविलास (1-4)
- श्रीसाम्बपुराण
- श्रीदेवीपुराण
- श्रीसौरपुराण
- शाबर मंत्र सागर (1-2 भाग)
- महाचीनक्रमाचारसार तन्त्रम्
- पुरश्चरणरहस्यम्

श्यामाकान्त द्विवेदी—लिखित एवं अनुदित

- श्रीविद्या-साधना (1-2 भाग सम्पूर्ण)
- शक्तितत्त्व एवं शाक्त साधना
- ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी-साधना
- काश्मीर शैवदर्शन एवं स्पन्दशास्त्र
- भारतीय शक्ति-साधना
- स्पन्दकारिका
- मुद्राविज्ञान एवं साधना
- कामकलाविलास
- वरिवस्यारहस्य
- महार्थमंजरी
- शिवसुत्र : सिद्धान्त एवं साधना

श्री कपिलदेवनारायण द्वारा अनुदित

- लक्ष्मीतन्त्र (1-2 भाग)
- तन्त्रराजतन्त्र (1-2 भाग)
- श्रीविद्यार्णवतन्त्र (1-5 भाग)
- मेरूतंत्रम् (1-5 भाग सम्पूर्ण)
- देवीरहस्य : (रुद्रयामलतन्त्रोक्त) (1-2 भाग)
- महानिर्वाणतन्त्र
- बृहत्तन्त्रसार (1-2 भाग)
- रेणुकातन्त्र-प्रचण्डचण्डिकातन्त्र

श्री परमहंस मिश्र द्वारा अनुदित

- तन्त्रसार (1-2 भाग)
- कुलार्णवतन्त्र
- नित्योत्सव : श्रीविद्याविमर्शकसद्ग्रन्थ

राधेश्याम चतुर्वेदी—अनुदित एवं लिखित

- कृष्णयामल महातंत्र
- गायत्री महातंत्र
- नेत्रतन्त्र
- कामाख्यातन्त्र
- शक्ति संगम तंत्र (1-4 भाग)
- महाकालसंहिता : (कामकला-कालीखण्ड)
- महाकालसंहिता : (गुह्यकाली-खण्ड) (1-5 भाग)
- तारिणीय पारिजाततन्त्र
- वामकेश्वरीयतम्
- श्री तंत्रालोक (1-5 भाग)
- श्रीस्वच्छन्द तंत्र (1-2 भाग)

श्री जगदीशचन्द्र मिश्र द्वारा अनुदित

- त्रिपुरारहस्य (ज्ञानखण्ड एवं माहात्म्यखण्ड)
- त्रिपुरार्णवतन्त्र

श्री रामप्रिय पाण्डेय द्वारा लिखित

- श्रीदक्षिणकालिका-सपर्यापद्धति
- श्रीमहाविद्यापुरश्चरणपद्धति
- कामकलाकालीसपर्यापद्धति
- कालसर्पयोग-शान्तिप्रयोग
- सार्द्धनवचण्डीपुरश्चरण
- श्रीप्रत्यंगिरा-पुनश्चर्या
- विपरीतप्रत्यंगिरापुनश्चर्या
- अष्टलक्ष्मी प्रयोग
- बटुकभैरवसपर्या
- विनायकशान्तिपद्धति

मधुसुदन शुक्ल—अनुदित एवं सम्पादित

- षट्कर्म दीपिका
- सांख्यायन तंत्र
- स्वच्छन्दपद्धति
- श्रीतत्वचिन्तामणि
- त्रिपुरासारसमुच्चय
- ललितास्तवरत्नम् एवं त्रिपुरामहिम्नस्त्रोत

श्री राम चन्द्र पुरी—अनुदित एवं सम्पादित

- प्रपञ्चसारततन्त्रम् (1-2 भाग)
- श्रीतंत्र दुर्गासप्तशती
- सांख्यायनतन्त्र
- षट्वामतन्त्राणि। (तन्त्र)
- ललितात्रिशतीस्त्रोतम्

सुधाकर मालवीय—अनुदित एवं सम्पादित

- रुद्रयामलतन्त्र (1-2 भाग)
- शारदातिलकम् (1-2 भाग)
- सौन्दर्यलहरी
- मन्त्रमहोदधि

अन्य पुस्तकें—

- विज्ञानभैरव : बापूलाल आँजना
- कृष्ण की तान्त्रिक पूजा : विष्णु आचाय
- गौतमीयतंत्र : श्री निवास शर्मा
- अभिनवस्त्रोत्रावलि : चतुर्वेदी
- अनुष्ठान प्रकाशः (भा.टी.) - अभय कात्यायन
- श्री तैलगस्वामी के तत्वोपदेश – केशव प्रसाद काया
- बृहन्नील-तन्त्रम् (भा.टी.) – स्वामी शत्रुघ्न दास
- सप्तशती तन्त्रसार – स्वामी शत्रुघ्न दास
- फेत्करणी तन्त्र
- श्री लक्ष्मी-प्रत्यंगिरार्चन
- रुद्रयामल उत्तरतन्त्र – श्रीमनोज कुमार रजक।
- श्री बगला ब्रह्मास्त्र—कल्पः—पं. विकास थपलियाल
- त्रिपुरोपनिषद्—डॉ. क्षितीश्वरनाथ पाण्डेय
- उड्डीशतन्त्रम्—डॉ. शशिशेखर चतुर्वेदी

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी-221001
chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com
www.chaukhamba.co.in

₹ 5000 set in 5 vols.